CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विश्व सभ्यता का इतिहास

3555

डा० उदयनारायण राय

नवभारती प्रकाशन

बाद—१

डा. उदयनारायण राय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

3554

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विश्व-सभ्यता का इतिहास

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण

लेखक

डॉ० उदयनारायण राय, एम० ए०, डी० फिल०

[प्राध्यापक, प्राचीन इतिहास विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय]

प्रकाशक

नवभारती प्रकाशन

लूकरगंज, इलाहाबाद—१

CC-0 Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकाशक : नवभारती प्रकाशन, इलाहाबाद—१

मुद्रक : पियरलेस प्रिंटर्स, इलाहाबाद

राज्य संग्रहालय उ. प्र. लखनऊ
क्रम 3554
State Museum, Library, Lko.

प्रथम संस्करण : जनवरी १९६२
द्वितीय संस्करण : जुलाई १९६५

आवरण सज्जा : फणीन्द्र मुकर्जी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राक्कथन

विधाता की निखिल सृष्टि का मुकुटमणि है मानव, और इतिहास उस मानव की सांस्कृतिक चेतना का मधुमय निदर्शन है। इतिहास का व्यापकतम और विराट रूप है विश्व-सभ्यता का निरूपण तथा उसका मूल्यांकन। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का पावन उदात्त आदर्श भारत की राष्ट्रीय चेतना में युग युगों से मुखरित होता रहा है और प्राचीन काल से ही विश्व के विभिन्न देश एकता के स्वर्णिम सूत्र में आबद्ध रहे हैं। विश्वबंधुत्व एक भव्य लक्ष्य है और प्राचीन विश्व-सभ्यता का अध्ययन है उस लक्ष्य तक पहुँचने का एक सुदृढ़ सोपान। छात्रों का दृष्टिकोण उदार और विश्व-जनीन बन सके, उनके सङ्कल्प शुभ हो सकें तथा उनकी बुद्धि परिमार्जित हो सके, इस पवित्र उद्देश्य को दृष्टि में रख कर विश्वविद्यालयों में विश्व-इतिहास को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया है।

प्रस्तुत प्रबंध में ३२३ ई० पू० से लेकर ४७६ ई० तक विश्व-सभ्यता के इतिहास का निरूपण किया गया है। भारतीय विश्वविद्यालयों में पठन-पाठन का कार्य अधिकांशतः मातृभाषा के माध्यम से होने लगा है, अतएव विद्यार्थियों को हिन्दी में इस काल से सम्बन्धित पुस्तक की अतीव आवश्यकता थी। इस प्रबंध को उनके समक्ष प्रस्तुत करते हुये मुझे हार्दिक परितोष का अनुभव होता है। छात्रों का संतोष ही मेरी सफलता है। यों यदि इस पुस्तक से विद्वज्जनों का भी किंचित् मनोरंजन हो सके, तो मुझे परम प्रसन्नता होगी। इसमें ससैनियन सभ्यता का निरूपण सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक तथा चीन की सभ्यता का वर्णन बारहवीं शताब्दी तक किया गया है, क्योंकि कतिपय विश्वविद्यालयों का पाठ्यक्रम इस काल तक सीमित है। अभी तक विश्व-इतिहास की रचनाओं में पाश्चात्य विश्व, मध्य एशिया, चीन तथा दक्षिणपूर्व एशिया के साथ भारतवर्ष के प्राचीन संपर्क का एकत्र निरूपण कम उपलब्ध होता है। इस अभाव की पूर्ति के निमित्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यथाशक्ति चेष्टा की गई है।

मैं उन सभी विद्वानों का उपकृत हूँ, जिनकी रचनायें इस प्रबन्ध की लेखन-क्रिया में उपयोगी सिद्ध हुई हैं। इस कार्य की समाप्ति में मुझे समय समय पर जो प्रेरणा मेरे गुरुवर्य श्री गोवर्द्धन राय जी शर्मा (डायरेक्टर, इंस्टीट्यूट ऑफ आर्क्योलोजी तथा प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय) से प्राप्त हुई, उसके लिये मैं उनका अत्यंत आभारी हूँ। मेरे गुरुवर्य डॉ० गोविन्दचन्द्र जी पाण्डेय (प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय) ने मेरे विश्व-इतिहास की अध्ययन-क्रिया में मार्ग-प्रदर्शन का कार्य किया था। उनके प्रति मेरा आभार अतल्प है। मैं श्री जसवन्त सिंह जी नेगी के प्रति भी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। उन्होंने मुझे समय समय पर अमूल्य निर्देश एवं सुझाव दिये हैं। श्री अम्बादत्त जी पंत तथा श्री लक्ष्मीकान्त जी दीक्षित (प्राध्यापक, प्रयाग विश्वविद्यालय) ने इस ग्रंथ के संपादन तथा प्रकाशन में मुझे पर्याप्त सहयोग प्रदान किया है। मैं उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रगट करता हूँ। श्री धनेश्वर मंडल ने प्रूफ-संशोधन तथा श्री गोपालकृष्ण कपूर ने मानचित्र की तैयारी में मेरी सहायता की है। इसके लिये उन्हें धन्यवाद है। अंत में मैं अपने परम सुहृद डॉ० बृजनाथसिंह यादव एवं प्राचीन इतिहास-विभाग (प्रयाग विश्वविद्यालय) के उन सभी सहयोगी मित्रों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने इस कार्य के शीघ्र पूरा होने में मुझे प्रोत्साहन प्रदान किया है।

यह पुस्तक अपने पवित्र उद्देश्य की संपूर्ति में सफल हो—यही मेरी कामना है और यही है ईश्वर से अभ्यर्थना।

—उदयनारायण राय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वितीय संस्करण की भूमिका

इस पुस्तक के प्रथम संस्करण को पाठकों ने अल्प काल में ही अपना कर मेरे उत्साह को द्विगुणित किया है। इसके द्वितीय संस्करण को उनके समक्ष प्रस्तुत करते हुये मुझे हार्दिक प्रसन्नता होती है। इस संस्करण की विशेषता यह है कि प्रायः प्रत्येक परिच्छेद को संशोधित एवं परिवर्द्धित कर दिया गया है। विशेष रूप से परिच्छेद-संख्या प्रथम, द्वितीय, तृतीय, पंचम तथा द्वादश में नूतन एवं अधिक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री का समावेश किया गया है। इसके अतिरिक्त दो नवीन परिच्छेद भी ('पार्थियन सभ्यता' तथा 'भारत-वर्ष एवं ईरान') उपयोगिता की दृष्टि से जोड़ दिये गये हैं। इस संस्करण में भी यथासंभव सरल भाषा के प्रयोग द्वारा विषय को रोचक एवं बोधगम्य बनाने का प्रयास किया गया है। सहृदय विद्वज्जन यत्र-तत्र छूटी हुई मुद्रण-संबन्धी अशुद्धियों का स्वयं मार्जन कर अपनी उदारता का परिचय देंगे। हिन्दी भाषा में अब भी यह अपनी कोटि का प्रथम ग्रन्थ है। मुझे आशा और विश्वास है कि यह प्रबन्ध पहले से अधिक पूर्ण एवं उपादेय सिद्ध होगा।

—उदयनारायण राय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

अध्याय पृष्ठ-संख्या

१ **हेलेनिस्टिक सभ्यता**—[मैसीडोनिया का अभ्युदय-सिकन्दर महान का प्रारम्भिक जीवन, राज्याभिषेक एवं आन्तरिक स्थिति का सुसंगठन, दिग्विजयः एशियामाइनर, सीरिया, मिश्र, बैबीलोनिया, फारस, बैक्ट्रिआ तथा सोग्डिआना, भारतवर्ष, मृत्यु, विजेता के रूप में मूल्याङ्कन—शासक एवं राजनीतिज्ञ, सिकन्दर के आक्रमण का महत्त्व—राजनीतिक महत्त्व, धार्मिक महत्त्व, आर्थिक महत्त्व, सांस्कृतिक महत्त्व, यूनानी सभ्यता में परिवर्तन, सिकन्दर के साम्राज्य का भविष्य, हेलेनिस्टिक सभ्यता की उत्पत्ति, हेलेनिस्टिक सभ्यता एवं हेलेनिक (यूनानी) सभ्यता का विभेद, हेलेनिस्टिक सभ्यता के साधन, महत्ता, हेलेनिस्टिक सभ्यता के प्रमुख अंगों का अध्ययन : साहित्य, इतिहास, गद्य, काव्य, गीति काव्य, नाटक, भूगोल, साहित्यिक विशेषताएँ, कला, नगर-विन्यास, भवन, तक्षण-कला, चित्रकला, विज्ञान, खगोल-विद्या, ज्यामिति एवं अङ्कगणित, भौतिक विज्ञान, शरीर-विज्ञान, वनस्पति-शास्त्र, जन्तु-विज्ञान, चिकित्सा-शास्त्र, दर्शन, विशेषताएँ, स्टोइक विचारधारा, सिद्धान्त, एपिक्यूरियन विचारधारा, सिद्धान्त, संशयवाद, अन्य विचारधाराएँ, धर्म—पूर्वीकरण, एकेश्वरवाद, ज्योतिष एवं भाग्यवाद, सम्राट- १७—८७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय पृष्ठ-संख्या

पूजा, धार्मिक आचार एवं अनुष्ठान, मूर्ति-पूजा, शक्ति-उपासना, देव-पूजा, अवतारवाद, आर्थिक दशा—नगर-जीवन, भूमि का विभाजन, कृषि, मुद्रा का प्रचलन, बैंक, व्यवसाय, व्यापार]

२ **रोम की सभ्यता**—[साधन—रोम साहित्य, यूनानी इतिहासकारों के ग्रन्थ, लिवी की कृतियाँ, रोम की स्थापना, एट्रस्कन-कालीन रोम, रोम नगर-राज्य की उत्पत्ति, समाज, शासन, आर्थिक दशा, धर्म, नागरिकों का चरित्र, अन्य उपलब्धियाँ, एट्रूस्कन शासन का अधःपतन, एट्रूस्कन शासन की देन, गणतन्त्र काल—कौंसल, प्रोकौंसल, डिक्टेटर, क्वेस्टर, ट्रिब्यून, एडाइल, प्रायटर, सेन्सर, सेनेट, कमीशिया सेन्चुरियाटा, कमीशिया-ट्रिबुटा, वर्ग-समानता, अन्य कार्य, रोम साम्राज्य का विस्तार—पहली अवस्था, दूसरी अवस्था, प्रथम प्यूनिक युद्ध, द्वितीय प्यूनिक युद्ध, हेनीबाल, प्रथम मैसी-डन युद्ध, तीसरी अवस्था, साम्राज्य-स्थापना का प्रभाव—सैनिक प्रभाव, कृषि पर प्रभाव, दास-प्रथा का प्रचार, शोषित वर्ग का आविर्भाव, आप्टीमेट्स वर्ग का अभ्युदय, पूँजीपतियों का उद्गम, सेनेट का शक्ति-विस्तार, मुद्रा तथा बैंक, व्यावसायिक प्रभाव, सामाजिक प्रभाव, सांस्कृतिक प्रभाव, कला, साहित्य, दर्शन, धर्म, आमोद-प्रमोद, रोम की क्रान्ति, टाइबेरियस ग्रेकस, गेयस ग्रेकस, गेयस मैरियस, लिवियस ड्रूसस, सुला, पाम्पी, सिसरो, प्रथम त्रिगुट, जूलियस सीजर का शासन- ८८—२१२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय पृष्ठ-संख्या

काल, उपाधियाँ एवं अधिकार, सुधार, षड्यन्त्र, सीजर के चरित्र का मूल्याङ्कन, द्वितीय त्रिगुट की स्थापना, क्रान्तिकाल का अन्त, आगस्टस-काल—उपाधियाँ एवं अधिकार, राजनीतिक सुधार, सामाजिक सुधार, आर्थिक सुधार, सैनिक सुधार, सार्वजनिक कार्य, आगस्टस-कालीन संस्कृति—साहित्य, काव्य—वर्जिल, होरेस, प्रणयगीति—एल्बियस टिबुलस, सेक्सटस प्रापर्टियस, ओविड, गद्य-लिवी, पाम्पियस ट्रोगस, वेरियस फ्लेकस, पारिभाषिक ग्रन्थ—जूलीयस हाईजिनस, विट्रूवियस, यूनानी भाषा में लिखे हुए ग्रन्थ—डिओडोरस, डिओनिसियस, निकोलस, स्ट्रेबो, वास्तु-कला, तक्षण-कला, चित्र-कला, आर्थिक जीवन, मनोविनोद के साधन, समाज, धर्म तथा दर्शन, नगर-जीवन, कानून, विज्ञान, जूलिओ क्लाडियन काल—टाइबेरियस, गेयस सीजर, क्लाडिअस, नीरो, फ्लेवियन-काल—वेस्पेशियन, टीटस, डोमीशियन, ऐन्टोनाइन काल—नर्वा, ट्रेजन, हैड्रियन, ऐन्टोनियस, मार्कस आरेलियस, सैनिक शासन का काल, सैनिक राजतन्त्र—कमोडियस, सेप्टीमस, कैरेकेल्ला, अलेक्जेन्डर-सेवेरस, सैनिक अराजकता का काल, रोम-सभ्यता (१४ ई० पू०-२८५ ई०)—शासन—सम्राट, सहायक पदाधिकारी, आर्थिक शासन, कानून, सैनिक शासन, आर्थिक जीवन, सामाजिक दशा, कला, साहित्य, उत्तर कालीन रोम-साम्राज्य—डिओक्लिशियन—अन्य सुधार, अवकाश-ग्रहण,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय पृष्ठ-संख्या

कांस्टेन्टाइन महान—पूर्वी निरंकुशता, सैनिक सुधार, अन्य सुधार, धार्मिक नीति, कांस्टैन्टीनोपुल की स्थापना, रोम-साम्राज्य के दर्शन एवं धर्म—दर्शन—निओपाइथागोरियन मत, एपीक्यूरियन मत, निओ-प्लेटोनिक मत, स्टोइक मत, धर्म—आइसिस की पूजा, सर्पिस की पूजा, यहूदी धर्म, मिश्र धर्म, ग्नास्टिक धर्म, रोम साम्राज्य में ईसाई धर्म का सूत्रपात एवं विस्तार—रोम-साम्राज्य में ईसाई धर्म की उत्पत्ति, गिरजाघर की स्थापना तथा धर्म-प्रचार, प्रसार की प्रथम अवस्था—जान, द्वितीय अवस्था, प्रचार के कारण, तृतीय अवस्था, ईसाई धर्म के स्वरूप में परिवर्तन, रोम-साम्राज्य के अधःपतन के कारण, रोम-साम्राज्य में ईसाई धर्म का प्रचार, साम्राज्य की विशालता, रोम-सम्राटों की निरंकुशता, विजिगीषु नीति, उत्तराधिकार-सम्बन्धी नियमों का अभाव, उत्तरकालीन नरेशों की अयोग्यता, पूर्वी आदर्शों का पालन, आर्थिक दुर्व्यवस्था, सामाजिक दोष, सैनिक शक्ति का ह्रास, बाह्य आक्रमण, अन्य कारण, रोम-सभ्यता के योगदान का मूल्याङ्कन—रोम की भाषा की देन, लैटिन साहित्य की देन, राजनीतिक जीवन की देन, कानून के क्षेत्र में देन, दर्शन एवं धर्म की देन, कला की देन, व्यावहारिक विज्ञान की देन।]

३ **चीन की सभ्यता**—[चिन-वंश का राज्यकाल, शिह-ह्वांग-टी—शासक के रूप में, सामन्तवादी प्रथा का अन्त, शासन का स्वरूप, सैन्य-सुधार, राजधानी २१३—२८६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय पृष्ठ-संख्या

का परिवर्तन, दण्ड-विधान, आर्थिक नीति, प्रति-क्रियावादी प्रवृत्तियों का विनाश, अन्य कार्य, साम्राज्य का आकारवर्धन, धार्मिक विचार, शिह-ह्वांग-टी की मृत्यु तथा चिन-वंश का अधःपतन, विद्रोह, हन् वंश, पूर्व हन् वंश का काल—ल्यूपंग, आंतरिक दौर्बल्य का काल, वूती—विजयें, आन्तरिक नीति, आर्थिक शासन, बौद्धिक उत्थान, धार्मिक नीति, वूती की मृत्यु तथा प्रारम्भिक हन्-वंश के अधःपतन का प्रारम्भ, वांग मंग, उत्तर हन् वंश, हन् कालीन सांस्कृतिक विकास, सांस्कृतिक प्रभाव, शिक्षा एवं साहित्य, पन पियाओ, दर्शन, विज्ञान, अन्य आविष्कार, धर्म, कला, बौद्ध धर्म का प्रवेश, व्यापारिक सम्बन्ध, संगीत, मनोविनोद, निष्कर्ष, चीन में बौद्ध धर्म का प्रसार, प्रतिकूल परिस्थियाँ, प्रचार सम्भव होने के कारण, बौद्ध धर्म के प्रचारक, मध्य एशिया के प्रचारक-धर्मरक्ष, कुमारजीव, काश्मीर के बौद्ध प्रचारक-संघभूमि, गौतम संघदेव, पुण्यत्रात, धर्मयशस, बुद्धयशस, विमलाक्ष, बुद्धजीव, गुणवर्मा, धर्ममित्र, मध्यदेश के बौद्ध प्रचारक—धर्मक्षेम, गुणभद्र, पूर्वी भारत के प्रचारक, पश्चिमी भारत के प्रचारक—उपशून्य, परमार्थ, उत्तर-पश्चिम भारत के बौद्ध प्रचारक, बुद्धभद्र, विमोक्षसेन, बोधिधर्म, जिनगुप्त, धर्मगुप्त, बौद्ध धर्म का चीन पर प्रभाव, बौद्ध धर्म पर चीनी प्रभाव—चन; तियेन ताइ, चिंग तु, तंग-काल—ताइ सुंग, काओत्सुंग, वु हाऊ, सुअन सुंग, तंग-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय पृष्ठ-संख्या

वंश का अधःपतन-काल, तंग-कालीन संस्कृति, काव्य—लिपो, तुफू, पोचुइ, गद्य, कला, आर्थिक जीवन, व्यापार, मुद्रण-कला, वाह्य प्रभाव, बौद्ध धर्म का उत्कर्ष, बौद्धधर्म के तंगकालीन भारतीय प्रचारक—प्रभाकरमित्र, बोधिरुचि, शुभाकरसिंह, वज्रबोधि, अमोघवज्र, कन्फ्यूशियस एवं ताओ मत, तंगकालीन सभ्यता का प्रभाव, सुंग काल—सुधार, साहित्य, मुद्रण, कला, निओ-कनफ्यूशियन मत, व्यापार]

४ **पार्थियन सभ्यता**—[मूलभूमि एवं प्रसरण, साधन, अर्सेकिज प्रथम, तिरिदतीज़, अर्तबेनुसप्रथम फ्रिअपेटिअस, मिथ्रदतीज़ प्रथम, फ्रातीज़ द्वितीय, मिथ्रदतीज़ द्वितीय, विसंघटन-काल, फ्रातीज़ तृतीय, ओरोडस् द्वितीय, फ्रातीज़ चतुर्थ, अर्तबेनुस तृतीय, वोलोगेसीज़ प्रथम, वोलोगेसीज़ द्वितीय, अर्तबेनुस पंचम, सभ्यता एवं संस्कृति—साम्राज्य-संगठन, समाज, आर्थिक जीवन, धर्म, कला, नगर-निर्माण, राजप्रासाद, मन्दिर, मूर्तिकला, उत्कीर्ण-भास्कर, चित्रकारी, भाण्डकला] २९०-३१८

५ **ससैनियन सभ्यता**—[राजनीतिक पृष्ठभूमि, ससैनियन शक्ति का विस्तार, शापुर प्रथम, ईरान का आंतरिक संगठन, शापुर प्रथम के उत्तराधिकारी, नरश, शापुर द्वितीय, शापुर द्वितीय के उत्तराधिकारी, यज़्दगर्द प्रथम, वहराम पंचम, यज़्दगर्द द्वितीय, पिरोज़, कवद, कोसरोज़ प्रथम, होरमिज़्द चतुर्थ, वहराम कोबिन का विद्रोह, ३१९-३५६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय पृष्ठ-संख्या

कोसरोज़ द्वितीय, ससैनियन राजवंश का अधःपतन, ससैनियन सभ्यता एवं संस्कृति—धर्म-मज़दधर्म, अनहित की पूजा, पुरोहित का प्रभाव, राजकीय धर्म की आवश्यकता, मनीच धर्म की विशेषताएँ, मनीच धर्म के अनुयायी, मनीच धर्म का अधः-पतन, मज़दक धर्म, सामाजिक संगठन, आर्थिक दशा—कृषि, व्यवसाय, आंतरिक व्यापार, विदेशी व्यापार, मुद्रायें, बैंक प्रथा, आर्थिक संगठन के दोष, शासन-व्यवस्था, मंत्रिमण्डल, आर्थिक शासन, न्याय-शासन, स्थानीय शासन, राजसभा का शिष्टाचार, सैनिक शासन, शिक्षा, साहित्य, कला।

६ **भारतीय सभ्यता**—[मौर्य-कालीन सभ्यता—शासन-व्यवस्था—सम्राट, मंत्रि-परिषद, उच्च कर्मचारी, प्रांतीय शासन, न्याय-व्यवस्था, गुप्तचर-विभाग, नगरपालिका, जनसंख्या, अशोक के शासन-सुधार, आर्थिक दशा—कृषि एवं पशुपालन, व्यवसाय, व्यापार, नगर, सामाजिक दशा—स्त्री-दशा, चरित्र-संगठन, दास-प्रथा, कला—चन्द्रगुप्त मौर्य के काल की कला, अशोक-कालीन कला, शुंगकालीन सभ्यता—ब्रह्मणधर्म का पुनरुत्थान, सामाजिक दशा—जाति-प्रथा, विवाह, बहुविवाह, विवाह-विच्छेद, विधवा-विवाह, स्त्री-दशा, पर्दा-प्रथा, सती-प्रथा, आर्थिक दशा—व्यवसाय, मुद्रायें, व्यापार, नगर, कलाः कुषाण-कालीन सभ्यता—बौद्धधर्म का संरक्षण एवं विकास, बौद्धिक प्रगति, कला, गुप्तकालीन सभ्यता—शासन-व्यवस्था—सम्राट ३५७-४०७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय पृष्ठ-संख्या

का स्थान, मंत्रिमण्डल, प्रान्तीय शासन, जिला-शासन, नगर-शासन, ग्राम-शासन, न्याय-शासन, कर-व्यवस्था, साहित्यिक विकास—काव्य, कथा, नाटक, पारिभाषिक ग्रन्थ, धार्मिक ग्रन्थ, विज्ञान, शिक्षा, सामाजिक जीवन—अन्नपान, वेशभूषा, आभूषण, उत्सव, मनोविनोद के शासन, दास-प्रथा, चण्डाल, गणिका, आर्थिक जीवन—व्यवसाय, व्यापार, नगर, धार्मिक दशा—वैष्णव धर्म, शैव धर्म, बौद्ध धर्म, जैन-धर्म, सूर्य-पूजा, वास्तु-कला—राजप्रासाद, नागरिक शालाएँ, मन्दिर—भुमरा का शिव-मन्दिर, नचना-कुठार का पार्वती मन्दिर, भिटारगाँव का मन्दिर, लाड़खान का मन्दिर, खोह का मन्दिर, देवगढ़ का दशावतार मन्दिर, स्तूप, गुफाएँ, तक्षण-कला—बौद्ध प्रतिमायें, शिव-मूर्तियाँ, वैष्णव मूर्तियाँ, वराह-प्रतिमाएँ, चित्र-कला, अजन्ता की चित्रकला, बाघ की चित्रकला, संगीत, अभिनय]

७ **भारतवर्ष एवं पाश्चात्य विश्व**—[प्रागैतिहासिक पृष्ठभूमि, ऐतिहासिक काल—भारतवर्ष एवं फारस का सम्बन्ध, भारतवर्ष का यूनान से सम्बन्ध, भारतवर्ष का रोम से सम्बन्ध, मिश्र के साथ भारतवर्ष का संबन्ध, भारतीय बन्दरगाह, सुपारा, कल्याण, टिंडिस, मुजिरिस, नेलकिंडा, कावेरी-पत्तन, मदुरा, पत्तन, संपर्क का प्रभाव—पाश्चात्य सभ्यताओं का भारतीय संस्कृति पर प्रभाव, भारतवर्ष का पाश्चात्य सभ्यताओं पर प्रभाव। ४०८—४२५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय		पृष्ठसंख्या
८	**भारतवर्ष और ईरान**—[मूलभूमि एक, विभेद, हप्त हिन्दु, खामनीष-साम्राज्य का भाग, अष्टाध्यायी का प्रमाण, प्राचीन महाकाव्यों के उल्लेख, पौराणिक वर्णन, पुरातत्त्व साक्ष्य, ईरान की देन—शिलालेख-परम्परा, अशोक-स्तम्भ, खरोष्ठी लिपि, मौर्य-कला, दाढ़ी की प्रथा, केश-स्नान, जन्म-दिवस-समारोह, भारतीय प्रभाव]	४२६—४४२
९	**भारतवर्ष एवं मध्य एशिया**—[भूमिका, सम्बन्ध की प्राचीनता, पूर्वी तुर्किस्तान के राज्य, सम्बन्ध का सामान्य परिचय, बौद्ध धर्म का प्रचार, प्रतिमाओं का जलूस, मठ, हस्तलिपियाँ, कूची, कुमारायण, बौद्ध स्मारक, भारतीय अनुशीलन, करसहर, बज़क्लिक]	४४३—४५०
१०	**भारतवर्ष एवं दक्षिण-पूर्व एशिया**—[भूमिका, मार्ग, सम्बन्ध की प्राचीनता, उपनिवेशों की स्थापना के कारण, प्रमुख हिन्दू-राज्य, भारतीय संस्कृति का प्रभाव—शासन-प्रबन्ध, सामाजिक दशा—वर्ण-व्यवस्था, स्त्री-दशा, सती-प्रथा, अन्त्येष्ठिसंस्कार, वेशभूषा, मनोरंजन के साधन, साहित्य, धर्म—बौद्ध धर्म, वैष्णव धर्म, शैव धर्म, अन्य देवों की पूजा, धार्मिक विश्वास, कला, नगर-निर्माण, अंकोरवट, बोरोबोदुर का स्तूप, मूर्ति-कला]	४५१—४६७
११	**भारत-चीन-संपर्क**—[सम्बन्ध की प्राचीनता, मार्ग, बौद्ध-धर्म का प्रचार, चीनी यात्री—चू-शे-हिंग, फाहियान, भारतीय यात्रा, शासन-	४६८—४९३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय		पृष्ठ-संख्या
	पद्धति, समाज, उत्सव, अन्य सूचनाएँ, पाओ-युन, चे-मोंग, फा-यांग, हुयेनसांग, शासनपद्धति, सामाजिक दशा, सार्वजनिक कार्य, शिक्षा, धार्मिक विश्वास, पंचवर्षीय दान-वितरण, कान्यकुब्ज की धार्मिक सभा, लि-यि-पियाओ, वंग-हुयेन-त्सो, इत्सिंग, चीन-सभ्यता को भारतवर्ष की देन—बौद्ध साहित्य, महायान ग्रंथ, हीनयान ग्रंथ, ज्योतिषशास्त्र एवं नक्षत्रविद्या, चिकित्सा-शास्त्र, कला, संगीत]	
१२	**हूण**—[मूलस्थान एवं प्रसरण, पश्चिमी शाखा के हूण, उल्दीन, रुगिला, अत्तिल, पूर्वी रोम-साम्राज्य पर आक्रमण, पश्चिमी रोम-साम्राज्य पर आक्रमण—कारण :—(१) होनोरिया का निमन्त्रण, (२) गैसेरिक का सहयोग, (३) साम्राज्य-सम्पन्नता, युद्ध :—(१) आर्लियाँ का घेरा, (२) कैटेलोनियन का संग्राम (३) अन्तिम सैनिक अभियान, अत्तिल के वंशज, पूर्वी शाखा के हूण, फारस में हूणों की कृतियाँ, फीरोज़ की हत्या, कवद का हूण-युद्ध, नौशेरवाँ तथा हूण, प्रथम आक्रमण, सुरक्षा-व्यवस्था, तोरमाण, मिहिरकुल, सुंग-युन का वर्णन, कास्मस का उल्लेख, हुयेनसांग का साक्ष्य, बालादित्य की पहचान, भानुगुप्त का हूण-युद्ध, मिहिरकुल की अंतिम पराजय, राजतरंगिणी का वर्णन, ग्वालियर के लेख से सूचनाएँ, मिहिरकुलोत्तर हूण-इतिहास, मौखरियों की हूण-विजय, वर्द्धनों का हूण-युद्ध, हूण-मुद्रायें]	४६४-५१८
	ग्रन्थ-सूची	५१९-५२५
	शब्दानुक्रमणी	५२६-५३६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय १

हेलेनिस्टिक सभ्यता

मैसीडोनिया का अभ्युदय—चतुर्थ शताब्दी ईसा पूर्व यूनान के इतिहास में राजनीतिक दृष्टि से परिवर्तन का काल था। इस समय स्पार्टा तथा एथेंस के नगर-राज्यों की पूर्वकालीन शक्ति एवं समृद्धि समाप्त हो गई तथा उनके स्थान पर मैसीडोनिया के राज्य का अभ्युदय प्रारंभ हुआ जो कि संपूर्ण यूनान की तत्कालीन एक केन्द्रीय घटना मानी जा सकती है। जाति एवं भाषा की दृष्टि से मैसीडोनिया के लोग वस्तुतः यूनानी ही थे। वे जन्म-जात योद्धा, अदम्य उत्साह से युक्त तथा अपने नगर-राज्य के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति रखने वाले थे। सौभाग्यवश उन्हें फिलिप के रूप में एक कुशल शासक उपलब्ध हुआ, जिसमें एक नेता एवं संगठनकर्ता के सभी अपेक्षित गुण विद्य-मान थे। ३५६ ई० पू० में वह बाईस वर्ष की अवस्था में सिंहासनारूढ़ हुआ था। रूस के उत्थान के निमित्त जो योगदान पीटर महान् ने दिया था, वही सेवा मैसीडोनिया के छोटे से राज्य के विकास के हेतु फिलिप ने की थी। अपने देशवासियों को विभिन्न सभ्यताओं के संपर्क में लाने के लिये उसने अपनी नवीन राजधानी समुद्रतट पर स्थित एक उपयुक्त स्थान में बसाई। उसने अपने सैनिकों को नवीन रण-पद्धतियों की शिक्षा देने तथा अपने राज्य के साधनों को विकसित करने के पश्चात् अपनी युद्ध-क्रिया प्रारंभ की। सबसे पहले उसने पूर्व में थ्रेस को जीता। तत्पश्चात् उसने अंशतः अपनी शक्ति तथा अंशतः कूटनीति के द्वारा थेसली तथा केन्द्रीय यूनान पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। ३३८ ई० पू० में उसने थीब्ज़ तथा एथेंस को जीत कर संपूर्ण यूनान के ऊपर अपना सिक्का जमा लिया। इसके उपरांत यूनान का राजनीतिक इतिहास वास्तव में मैसीडोनिया के विजेताओं का इति-हास है। दुर्भाग्यवश फिलिप की योजनायें पूरी न हो सकीं, क्योंकि दो ही वर्ष उपरान्त (३३६ ई० पू० में) वह मार डाला गया। अतएव उसके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधूरे कार्य को पूर्ण करने का उत्तरदायित्व उसके सुयोग्य पुत्र को प्राप्त हुआ, जो इतिहास में सिकन्दर महान् के नाम से अमर है।

सिकन्दर महान् का प्रारम्भिक जीवन—विश्व-इतिहास के पृष्ठों में सिकन्दर एक प्रसिद्ध विजेता, संगठनकर्ता एवं साम्राज्य-निर्माता के रूप में चिरस्मरणीय रहेगा। उसका अभ्युदय युगान्तर का निर्माण करता है। उसके दिग्विजय के फलस्वरूप हेलेनिस्टिक काल का सूत्रपात हुआ,[१] जो विशिष्ट सांस्कृतिक विकासों के लिये विश्व-सभ्यता के इतिहास में अपना एक महत्व-पूर्ण स्थान रखता है। उसके व्यक्तित्व के सर्वाङ्गीण विकास के लिये उसे आरंभ से ही आदर्श शिक्षा दी गई थी। लिओनिदास से उसने व्यायाम, खेल-कूद तथा युद्ध-कला की उच्च योग्यता प्राप्त की थी। लिसिमेकस उसका साहित्यिक आचार्य था। फिलिप उसे दर्शनशास्त्र में भी निपुण बनाना चाहता था। इस बात को दृष्टि में रखते हुये उसने अरस्तू को उसका दार्शनिक गुरू नियुक्त किया था। वह सिकन्दर से कहा करता था कि यदि तुम दर्शनशास्त्र का ठीक अध्ययन करोगे, तो तुमसे जीवन में कोई त्रुटि न हो सकेगी तथा तुम्हारे व्यक्तित्व का नैसर्गिक एवं पूर्ण विकास संभव हो सकेगा।

सिकन्दर का विद्या से स्वाभाविक अनुराग था। प्लूटार्क लिखता है कि वह ज्ञान का पिपासु था। उसकी ज्ञानार्जन की प्रवृत्ति वयोवृद्धि के साथ क्रमशः बढ़ती गई। वह प्रायः सभी प्रकार की विद्याओं को सीखने की अभि-लाषा रखता था। यूनानी लेखकों का कथन है कि सिकन्दर रात्रि में विलम्ब तक साहित्यकारों एवं वैज्ञानिकों के साथ वार्तालाप में संलग्न रहता तथा उनके ज्ञान का लाभ उठाता था। उसने अपने दिग्विजय के समय अरस्तू को लिखा था कि मैं शक्ति एवं साम्राज्य की अपेक्षा उच्च ज्ञान का अधिक आदर एवं श्रद्धा करता हूँ। नील नदी के स्रोत को ज्ञात करने के निमित्त उसने निपुण वैज्ञानिकों का एक मंडल नियुक्त किया था। सम्राट्-काल में वैज्ञानिक अनु-संधान के हेतु उसने विशेषज्ञों को पर्याप्त प्रोत्साहन प्रदान किया। वह अपने

---

१. "The Hellenistic Age was ushered in by the Campaigns of Alexander the Great." —Caldwell.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
पिता के ही समान व्यवहार-कुशल तथा सूक्ष्मदर्शी था। ये गुण उसे युद्ध-जीवन में सर्वदा उपयोगी एवं सहायक सिद्ध हुये। वह फिलिप की ओलिम्पियास नामक पत्नी से उत्पन्न हुआ था, जो कि एक कुशाग्र मस्तिष्क की महिला थी। फलतः जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सिकन्दर ने अपनी व्युत्पन्न बुद्धि का परिचय प्रदान किया था।

उसका शारीरिक विकास सब प्रकार से आदर्श था।[१] वह खेल-कूद में निपुण, तेज दौड़ने वाला, घोड़े की सवारी में पटु, कुशल तीरंदाज़ तथा निर्भीक शिकारी था। फिलिप उसके गुणों पर मुग्ध था। वह उससे कहा करता था कि "पुत्र! मैसीडन तुम्हारे लिये बहुत छोटा है। तुम एक ऐसे विशाल साम्राज्य का निर्माता बनना, जो तुम्हारी महानता के अनुकूल हो!" वह अथक परिश्रमी एवं आखेट-प्रेमी था। कभी-कभी युद्ध से लौटने के उपरान्त भी वह मृगया के लिये निकल जाता था। उसे अपनी शारीरिक योग्यता में पूर्ण विश्वास था। यही कारण है कि वह प्रायः अकेले ही पैदल घने जंगल में निकल जाया करता था। उसने कई अवसरों पर बिना किसी के सहायता के ही सिंह का आखेट सफलता के साथ किया था। उसे साहसिक कार्यों से प्रेम तथा आलस्य से घृणा थी। उसका भोजन, आहार एवं विहार संयमित तथा व्यक्तित्व श्लाघनीय था।[२]

प्रारंभ से ही वह बहुत महत्वाकांक्षी था। महान् सम्राट बनने की इच्छा उसमें युवराज-काल से ही थी। अपने पिता के समय में ही वह अपनी युद्ध-निपुणता का परिचय दे चुका था। भेरी-घोष से उसे युद्ध के लिये प्रेरणा उत्पन्न होती थी। समरांगण में अवतरित होते ही उसका उत्साह द्विगुणित हो

१. "He had a violent thirst and passion for learning, which increased as time went on. He was a lover of all kinds of reading and knowledge." —Plutarch.

२. "He was handsome beyond all precedents for a king, with expressive features, soft blue eyes and luxuriant auburn hair." —Will Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उठता था। वह खतरे से नहीं डरता था। युद्ध के अवसर पर वह शत्रु-सेना को चीरता हुआ दूर तक निकल जाता था। उसके इस दुस्साहस को देख कर उसके सैनिक कभी कभी उसकी सुरक्षा के विषय में भयभीत हो उठते थे। वह अपनी ओजस्विनी वक्तृता के द्वारा अपने दल के सैनिकों में जोश भर देता था। उसका रण-चातुर्य उसके सिपाहियों के लिये प्रेरणा का विषय था।

राज्याभिषेक एवं आंतरिक स्थिति का सुसंगठन—फिलिप की मृत्यु के समय (३३६ ई० पू० में) उसकी अवस्था केवल बीस वर्ष की ही थी। परन्तु इतनी अल्पावस्था में ही उसने अपनी प्रारंभिक समस्याओं एवं कठिनाइयों को सुलझाते हुये अपनी प्रतिभा का सुन्दर परिचय दिया था। अपने सिंहासनारोहण के पश्चात् दो वर्षों (३३४ ई० पू०) तक वह अपनी आन्तरिक स्थिति को सुदृढ़ करने में संलग्न था। सर्वप्रथम उसके विरुद्ध विपक्षियों के द्वारा एक षडयंत्र का आयोजन किया गया, जिसका दमन उसने शौर्य एवं निपुणता के साथ किया। उसके पश्चात् उसने 'लौह रक्त' नीति का अवलम्बन करते हुये विभिन्न यूनानी नगर-राज्यों को अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिये बाध्य किया। एथेंस ने उसे दैवी सम्मान प्रदान किया। अत्यधिक आतंकित होने के कारण थीब्ज़ के नगर-राज्य ने भी उससे क्षमायाचना की। स्पार्टा को छोड़ कर अन्य सभी नगर-राज्यों के प्रतिनिधियों का कोरिंथ में एक अधिवेशन हुआ, जिसमें उन्होंने सिकन्दर को यूनान का नायक घोषित किया। सिकन्दर ने बदले में इन नगर-राज्यों को स्थानीय परम्पराओं एवं रीति-प्रथाओं के अनुसार स्वशासन का अधिकार प्रदान किया। तदनन्तर उसने अपनी राजधानी में शांतिमय वातावरण स्थापित कर इसे सुरम्य नगर का रूप देने के निमित्त अपनी चेष्टाओं को प्रारंभ किया।

यहाँ पर उल्लेखनीय है कि बाहरी नगर-राज्यों में अब भी उसके विरुद्ध षडयंत्र एवं विद्रोह की भावना छिपी हुई थी और वे इसके लिये अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा में थे। एक समय, जब सिकन्दर इलीरियन लोगों के आक्रमण को रोकने के निमित्त सर्विया गया हुआ था, संपूर्ण यूनान में विरोधी शक्तियों के द्वारा अफवाह उड़ा दी गई कि वह डैन्यूब नदी के तट पर किसी युद्ध में लड़ता हुआ मार डाला गया। इसके फलस्वरूप यूनान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
में विद्रोह का वातावरण चतुर्दिक शीघ्रता के साथ बढ़ने लगा। थीब्ज़ में सिकन्दर के द्वारा नियुक्त मैसीडोनियन पदाधिकारी मार डाले गये। इस कार्य में एथेंस ने भी थीब्ज़ की सहायता की। फारस की सहायता से मैसीडन को जीतने के लिये एक योजना बनाई गई। लगता था कि इतने थोड़े ही समय में जिस राजनीतिक ढाँचे को सिकन्दर ने खड़ा किया था, वह मानों अब धराशायी होने जा रहा हो। इस समय तक सिकन्दर इलीरियन विद्रोह का दमन कर चुका था तथा वह मैसीडन वापस आ गया था। यूनान में अपने विरुद्ध विद्रोह के इस वातावरण को देख कर उसकी कोपाग्नि प्रज्वलित हो उठी। उसने बदला लेने के लिये सबसे पहले थीब्ज़ पर आक्रमण किया। उसने इस नगर-राज्य की सेना को पराजित किया तथा इस विद्रोह का बदला थीब्ज़वासियों से बुरी भाँति लिया। वहाँ के नगर जला दिये गये। इस क्रूर दमन के कारण थीब्ज़ में हाहाकार मच गया। इस घटना से भयभीत होने के कारण यूनान के अन्य विरोधी नगर-राज्यों ने भी सिकन्दर को आत्मसमर्पण किया।

दिग्विजय : एशिया माइनर—इस प्रकार यूनान में अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के उपरान्त उसने ३३४ ई० पू० के ग्रीष्म-ऋतु में दिग्विजय के लिये प्रस्थान किया। उसने ऐंटीपेटर नामक अपने विश्वासपात्र एवं सुयोग्य कर्मचारी को दस हजार चुने सैनिकों के साथ मैसीडन को सुरक्षित तथा यूनानी नगर-राज्यों के ऊपर कड़ी दृष्टि रखने का भार सौंपा। प्रस्थान के समय सिकन्दर की सेना में कुल तीन हजार पैदल सैनिक तथा पाँच हजार घुड़सवार सम्मिलित थे। उसने एशिया माइनर में ग्रेनिकस नदी के तट पर पारसीक सेना को परास्त किया, जिसमें प्रधानतः यूनानी सिपाही सम्मिलित थे। एशिया माइनर में स्थित यूनानी उपनिवेशों ने सिकन्दर की अधीनता स्वीकार कर ली। इस घटना के पश्चात् ३३३ ई० पू० में ईसस में दारा तृतीय के नेतृत्व में पारसीक सेना के साथ सिकन्दर का भीषण संग्राम हुआ। इसकी गणना उसके प्रसिद्ध युद्धों की कोटि में होती है। इसमें उसने अपनी अश्वसेना से आक्रमण तथा पदाति सेना से सुरक्षा का कार्य लिया। इस रणनीति तथा अपने सैनिकों के उत्साह एवं कुशलता के कारण सिकन्दर विजयी हुआ और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दारा तृतीय को युद्ध के मैदान से भागना पड़ा। उसने अपने इस यूनानी विजेता के पास सन्धि का प्रस्ताव भेजा। पर सिकन्दर ने इसे ठुकरा दिया, क्योंकि वह तो इस समय 'एशिया का सम्राट' बनने का स्वप्न देख रहा था।

सीरिया—अपने इस संकल्प को पूरा करने के लिये उसे अभी काफी कार्य करना बाकी था। एशिया माइनर के विजय के पश्चात् उसने सीरिया पर आक्रमण किया। वह अंतियोक, दमिश्क तथा सीडन को जीतता हुआ टायर पहुँचा। यहाँ पर यूनानियों का घेरा सात महीने तक पड़ा रहा। उसने इस नगर को जीतने के लिये अपनी संपूर्ण सैनिक शक्ति तथा राजनीतिक चालों का प्रयोग किया। यह नगर दो हिस्सों में विभक्त था। इसका नया भाग एक छोटे से द्वीप पर बसा था। समुद्र की एक पतली पेटी इसे नगर के पुराने भाग से अलग करती थी। नये भाग के चतुर्दिक एक अभेद्य दीवाल थी। यह पुर-भाग एक सुदृढ़ नौसेना के द्वारा भी सुरक्षित था। यहाँ के सैनिकों ने यूनानी आक्रमणकारियों का बड़ी बहादुरी के साथ सामना किया। टायर के लगभग आठ हजार वीरवर मार डाले गये और अन्त में विवश होकर इस नगर को आत्मसमर्पण करना पड़ा। लगभग तीस हजार सैनिकों को पकड़ कर दास बनाया गया। इस ध्वस्त नगर को सिकन्दर ने पुनः आबाद किया। अब यह सीरिया के समुद्र-तट पर वर्तमान् इस यूनानी विजेता का सबसे महत्वपूर्ण दुर्ग था।

दारा तृतीय ने इस समय सिकन्दर के पास पुनः एक सन्धि-प्रस्ताव भेजा, जिसके अनुसार वह फरात नदी के पश्चिम का संपूर्ण पारसीक राज्य उसे समर्पित करने के हेतु प्रस्तुत था। परन्तु सिकन्दर ने अपने विजय-दंभ में इसे भी अस्वीकार कर दिया। कहा जाता है कि इस समय उसके पुराने विश्वास-पात्र सेनानायक पर्मेनिओ ने कहा था कि "अगर मैं आज सिकन्दर रहता, तो दारा के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता।" पर सिकन्दर को यह प्रस्ताव मान्य ही क्यों होता ? उसमें तो इस समय 'एशिया का सम्राट्' बनने की महत्वाकांक्षा विद्यमान् थी। इसके उपरान्त उसका आक्रमण गाज़ा नामक नगर पर हुआ। दो महीने कड़ा सामना करने के पश्चात् टायर के समान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ही इस नगर का भी विनाश हुआ। इस समय पूरे सीरिया के ऊपर सिकन्दर का सिक्का स्थापित हो चुका था।

मिश्र—इसके उपरान्त उसने मिश्र-विजय की योजना बनाई। वह सबसे पहले आधुनिक पोर्ट सईद के समीप स्थित पेलुसिअम के बंदरगाह पर पहुँचा, जहाँ यूनानी जलसेना उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। इस बंदरगाह को 'मिश्र की कुंजी' कहा जाता था। वह यहाँ से होता हुआ मेम्फीज़ पहुँचा। लगभग दस वर्ष पहले फारस ने इसे जीता था। वहाँ के निवासियों के साथ पारसीक विजेताओं ने काफी दुर्व्यवहार किया। उनके पुरातन मन्दिरों को मदान्ध एवं क्रूर पारसीकों ने धराशायी कर दिया। मेम्फीज़ में अपनी सत्ता स्थापित करने के अनन्तर वहाँ के निवासियों के साथ सिकन्दर ने सहानुभूति दिखाई। उसने वहाँ के मन्दिरों का जीर्णोद्धार तथा मिश्र के देवताओं के सम्मान में कई धार्मिक अनुष्ठान संपन्न किया। उसका यह व्यवहार पारसीक व्यवहार के प्रतिकूल था। इस कारण मिश्रवासियों ने उसे अपने उद्धारक के रूप में ग्रहण किया।

इसके उपरान्त वह नील नदी के मुहाने पर पहुँचा जहाँ उसने सिकन्दरिया नामक नगर बसाया। यह पश्चिमी जगत् का सबसे प्रसिद्ध बंदरगाह माना जाता था। यह नगर रोड्स के प्रसिद्ध वास्तुकार डेनोक्रेटीज़ के पर्यवेक्षण में बसाया गया, जो अपने समय में नगर-निर्माण-कला का सबसे बड़ा आचार्य माना जाता था। यह सिकन्दर के द्वारा स्थापित पहला तथा सर्वश्रेष्ठ नगर था। इस बंदरगाह ने नील की घाटी को काला सागर तथा भूमध्य सागर से मिला दिया था। हेलेनिस्टिक विश्व का यह सबसे विशिष्ट व्यापारिक तथा सांस्कृतिक केन्द्र सिद्ध हुआ। यहाँ पर तीनों महाद्वीप (यूरप, अफ्रीका तथा एशिया) के व्यापारी एकत्र होते थे। यहाँ की बाज़ारों की सड़कों पर विदेशी सौदागर क्रय-विक्रय करते हुये देखे जा सकते थे। इस नगर में यूनानी कलाकारों ने बस कर स्वदेशी स्थापत्य तथा तक्षण-कला का मिश्र में प्रचार किया।

जिस समय सिकन्दर मिश्र-विजय में संलग्न था, उसके बहादुर सैनिकों ने पारसीक जहाजी बेड़े को अन्तिम बार हरा कर ईजियन द्वीप-समूह को जीत लिया। इस प्रकार ईजियन सागर तथा पूर्वी मध्य सागर उसके प्रभाव-क्षेत्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के अन्तर्गत आ गये। इसी समय ईलीरियन विद्रोह भी हुआ, जिसका उसके विश्वासपात्र सेनानायक ऐंटीपेटर ने दमन किया। ३३२ ई० पू० में स्पार्टा-वासियों ने एजिस के नेतृत्व में मैसीडन के विरुद्ध विद्रोह किया। ऐंटीपेटर ने बड़ी कुशलता के साथ इसे दबा लिया। इस विद्रोह के दमन में स्पार्टा के लगभग पाँच हजार सैनिक काम आये। एजिस भी बहादुरी के साथ लड़ता हुआ मारा गया। यह मैसीडन के हाथ स्पार्टा की अन्तिम पराजय थी।

सिकन्दरिया से वह लिबिया के रेगिस्तान से होता हुआ एमन पहुँचा। वहाँ उसने 'ज़ियस-एमन' के मन्दिर में श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। इससे प्रभावित होने के कारण वहाँ के पुजारियों ने उसका पर्याप्त सम्मान किया। मिश्रवासियों ने उसे अपने देश को पारसीक शासन से स्वतन्त्र करने वाला तथा अपना वैधानिक शासक घोषित किया। उसके उपरान्त वह मेम्फीज़ वापस लौटा, जहाँ उसने ज़ियस के सम्मान में एक समारोह का आयोजन किया। इस अवसर पर खेल-कूद तथा संगीत-प्रतियोगितायें हुईं, जिसमें मिश्रवासियों ने बड़े उत्साह के साथ भाग लिया। उसने मिश्र-शासन के लिये एक नई योजना बनाई, जिसके अनुसार सैनिक एवं दीवानी विभाग अलग स्थापित किये गये। ३३१ ई० पू० की ग्रीष्म-ऋतु में वह टायर वापस आया, जहाँ पर पारसीक साम्राज्य के पूर्ण विजय के निमित्त उसने अपना अगला कदम निश्चित किया।

बैबीलोनिया—मिश्र-विजय के पश्चात् सिकन्दर असीरिया होता हुआ बैबीलोनिया पहुँचा। दारा तृतीय ने उसका सामना करने के लिये इस समय एक बड़ी सेना का संगठन किया। आर्बेला के समीप गागमेला नामक स्थान पर (जो दजला के पश्चिमी तट पर स्थित था) इस सेना के साथ सिकन्दर का युद्ध हुआ। पारसीक सेना में यूनानी सेना की समता में सैनिकों की संख्या काफ़ी अधिक थी। इस दलबल को देख कर पहले सिकन्दर घबड़ाया, पर उसके सैनिकों ने धैर्य से कार्य लिया। उसके सेनानायक पर्मेनिओ के नेतृत्व में यूनानी घुड़सवारों की पैतरेबाज़ी के कारण पारसीक सेना उखड़ने लगी। दारा तृतीय ने युद्ध-क्षेत्र से भाग कर मीडिया में शरण ली। गागमेला के संग्राम की पराजय ने उसका विनाश निश्चित कर दिया। इस विजय के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पश्चात् सिकन्दर ने राष्ट्रीय देवताओं के सम्मान में विविध धार्मिक अनुष्ठानों को संपन्न कराया। उसने अपने सैनिकों को उनकी बहादुरी के लिये पुरस्कृत किया। बैबीलोनिया के निवासियों ने अपने सम्राट् के रूप में उसका स्वागत किया।

फारस—उसके पश्चात् उसने ३३१ ई० पू० में सूसा के ऊपर आक्रमण किया। उसने बड़ी सरलता के साथ इस नगर को जीत लिया। यहाँ के राजकीय कोष में उसे चालीस हजार रजत् तथा नव हजार सुवर्ण मुद्रायें प्राप्त हुईं। इनको उसने अपने सैनिकों में विभक्त कर दिया। इसके उपरान्त पर्सिपोलिस पर घेरा डाला गया। यहाँ की लूट में उसे एक लाख बीस हजार पारसीक 'टैलेंट' (मुद्रायें) प्राप्त हुईं। प्लूटार्क लिखता है कि अभी तक सिकन्दर को फारस में इतना प्रचुर धन प्राप्त हुआ कि खच्चरों और ऊँटों पर उसे लाद कर मैसीडन पहुँचाया गया। यहाँ पर सिकन्दर ने नागरिकों के साथ क्रूरता का व्यवहार किया। उसकी आज्ञा के अनुसार यह नगर जला दिया गया। उसके सैनिकों ने यहाँ की महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार किया। इसका कारण यह था कि पारसीक सैनिकों ने इसके पहले जरक्सीज़ के समय में आठ सौ यूनानियों का अंगभंग कर डाला था। उनके हाथ, पैर, नाक, कान तथा आँख में कोई एक बर्बरता के साथ काट दिया गया। इसके स्मरण के कारण यूनानी अब भी क्रोधांध थे तथा इसका बदला लेने के लिये उन्होंने पर्सिपोलिस के नागरिकों को काफी सताया। इस नगर का राजप्रासाद जला दिया गया, जो पारसीक वास्तुकला का एक ज्वलंत उदाहरण था। इसकी गणना सिकन्दर के काले कारनामों में की जाती है।

इस घटना के अनन्तर वह ३३० ई० पू० की ग्रीष्म-ऋतु में दारा तृतीय की तलाश में उत्तर की ओर पाँच सौ मील की दूरी तय करता हुआ एकबतना आया। पर वह यहाँ से पहले ही भाग चुका था। सिकन्दर ने सूसा तथा पर्सिपोलिस में प्राप्त द्रव्य को यहाँ के दुर्ग में सुरक्षित किया तथा हरपेलस को वहाँ राजकीय कोषाध्यक्ष नियुक्त किया। इसी समय उसे ज्ञात हुआ कि दारा अपने कर्मचारियों के द्वारा मार डाला गया। प्लूटार्क लिखता है कि उसने दारा के शव को प्राप्त कर पूरे राजकीय सम्मान के साथ पर्सिपोलिस में सारवा-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मनीष सम्राटों की समाधि-भूमि में उसे दफना दिया। इस समय से उसने पारसीक वेश धारण करना तथा वहाँ के राजकीय शिष्टाचार का पालन करना प्रारंभ किया। फारस के लोग यूनानी सेना में भर्ती किये गये। उसने अपने इस व्यवहार के द्वारा वहाँ के निवासियों की सहानुभूति को जीत लिया। यह उसकी कुशल राजनीति का परिचायक है।

बैक्ट्रिआ तथा सोग्डिआना—इस समय तक सिकन्दर की विजय-तृष्णा समाप्त न हो सकी थी। वह आगे बढ़ता हुआ हेरात आया, जहाँ उसने 'अलेक्ज़ेंड्रिआ-एरिओन' नामक नगर बसाया। इस समय तक उसके सैनिक काफी थक गये थे और उसकी अगली विजय-योजना से वे ऊब चुके थे। पूर्वी रीति-प्रथाओं के प्रति सिकन्दर की श्रद्धा को बढ़ते देख कर उनकी राष्ट्रीय भावना को काफी ठेस पहुँची। अतएव कुछ व्यक्तियों के द्वारा उसके विरुद्ध षडयंत्र रचा गया। इनका नायक फिलोटस था, जो कि सिकन्दर के विश्वासपात्र सेनानायक पर्मेनिओ का पुत्र था। षडयंत्र का भेद खुलने पर उसने फिलोटस तथा पर्मेनिओ दोनों को मरवा डाला। पर्मेनिओ निर्दोष मारा गया। इस षडयंत्र में उसका कोई भी हाथ न था। इस क्रूरता के लिये यूनानी लेखकों ने सिकन्दर को दोषी ठहराया है। पर्मेनिओ सिकन्दर के उन चुने हुये स्वामिभक्त नायकों में आता है, जिन्होंने अपने प्राणों की बाजी लगा कर सिकन्दर की सेवा की थी।

बैक्ट्रिआ में प्रवेश करते ही बेसस पकड़ा गया, जिसने दारा तृतीय की हत्या की थी। उसकी आज्ञा के अनुसार बेसस अमानुषिक ढंग से मार डाला गया। सिकन्दर के द्वारा अपने शत्रु के हत्यारे का वध कराना उसके उच्च चरित्र का परिचय देता है। बैक्ट्रिआना तथा सोग्डिआना के ईरानी स्वस्थ, बहादुर तथा राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत थे। इन्हें जीतने में दो वर्ष लग गये। इतना समय सीरिया से पार्थिआ तक की भूमि को विजय करने में नहीं लगा था। यूनानी लेखकों के अनुसार बैक्ट्रिआ तथा सोग्डिआना के युद्धों में सिकन्दर को काफी सैनिक प्रतिभा दिखानी पड़ी थी। वह आगे बढ़ता हुआ आधुनिक समरकन्द तक आया, जहाँ सोग्डिआना की उत्तरी सीमा समाप्त होती थी। यहाँ पर उसने शराब के नशे में क्लिटस नामक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपने एक प्रिय नायक को मरवा डाला। उसने ग्रेनिकस के युद्ध में सिकन्दर की जान बचाई थी। उसको मृत्युदंड देने का कारण यह था कि उसने सिकन्दर के द्वारा पूर्वी धर्मों तथा सामाजिक आचार को अपनाने एवं यूनानियों के ऊपर उन्हें लादने की आलोचना की थी।

सिकन्दर इस समय विश्व-राज्य की स्थापना की भावना से ओतप्रोत था। उसे अपने इस भावी विश्व-राज्य के निमित्त एक विश्व-सभ्यता की आवश्यकता थी, जिसमें सभी देशों की संस्कृतियों की विशेषतायें विद्यमान हों। अतएव वह विभिन्न सभ्यताओं के सम्मिश्रण से निकली हुई संस्कृति के पक्ष में था। यहाँ पर यूनानी सैनिकों के राष्ट्रीय दृष्टिकोण से उसका सैद्धान्तिक विभेद था। यह मतभेद उस समय पराकाष्ठा पर पहुँचा, जब उसने केलिस्थनीज़ नामक अपने चाटुकार इतिहासकार को मरवा डाला जो अरस्तू का भतीजा भी था। उसने सिकन्दर को पारसीक फर्शी सलामी करने से इन्कार कर दिया था। उसके ऊपर इसके क्रोध का यही एकमात्र कारण था। कहा जाता है कि इस घटना के पश्चात् भी अरस्तू के साथ उसका पत्र-व्यवहार बना रहा। सिकन्दर ने इस समय सोग्डिआना की परम सुन्दरी राजकन्या रोक्साना से अपना विवाह किया। इसका लक्ष्य विजित शत्रु के हृदय को अपने प्रति जीतना था।

भारतवर्ष—उसने ३२७ ई० पू० में भारत-विजय की अभिलाषा से हिन्दुकुश को पार किया। काबुल से सिन्धु नदी की ओर बढ़ने पर प्यूकेला-ओतीस (पुष्कलावती) का राज्य था। यह प्राचीन गंधार का पश्चिमी भाग था। यूनानी लेखकों ने इसके शासक का नाम अस्टीस बताया है। यह भारतीय अष्टक का यूनानी नाम लगता है। यहाँ का शासक सिकन्दर का बहादुरी के साथ सामना करता हुआ मारा गया। स्ट्रेबो के अनुसार इसके पूर्व सिन्धु और झेलम नदियों के बीच तक्षशिला का राज्य था। यह प्राचीन गन्धार का पूर्वी भाग था। यह उस समय का एक समृद्धिशाली नगर माना जाता था। इसके नागरिक संपन्न थे। वहाँ पर उस समय आम्फीस (आम्भी) राज्य कर रहा था। उसने बिना किसी युद्ध के ही सिकन्दर की अधीनता स्वीकार कर ली तथा उसे बहुमूल्य उपहार चढ़ाया। अपने देश के प्रति

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विश्वासघाती सिद्ध होने वाले भारतीय नरेश का यह प्रथम ऐतिहासिक उदाहरण माना जा सकता है।

उत्तर-पश्चिम में सिकन्दर का सबसे भीषण संघर्ष पोरस के साथ हुआ। उसका राज्य झेलम तथा चेनाब नदियों के बीच में पड़ता था। स्ट्रेबो के अनुसार यह एक उर्वर तथा विशाल भू-भाग था, जिसमें तीन सौ नगर थे। डिओडोरस लिखता है कि उसकी सेना में पचास हजार पैदल, तीन हजार घुड़सवार, एक हजार रथ तथा एक सौ तीस हाथी सम्मिलित थे। पोरस की एकता संस्कृत के पुरु अथवा पौरव से की जाती है। बृहत्संहिता में पौरव का उल्लेख मिलता है। महाभारत में पौरव के द्वारा रक्षित पुर (पौरव-रक्षितं पुरम्) का वर्णन आता है, जो कि काश्मीर के समीप पड़ता था। पोरस एक वीर सम्राट् था। उसने एक आदर्श भारतीय सम्राट् की भाँति सिकन्दर की अधीनता को मानना अस्वीकार कर दिया। वह बहादुरी के साथ इस यूनानी सम्राट् का सामना करता हुआ बन्दी बनाया गया। पोरस के शौर्य से वह प्रभावित था तथा लौटते समय उसने उसके राज्य को वापस कर दिया।

सिकन्दर के आक्रमण के समय उत्तर-पश्चिम भारतवर्ष में कुछ गणराज्य भी थे; उदाहरणार्थ कठ, शिवि, क्षुद्रक, मालव, अम्बष्ठ, अर्जुनायन तथा शूद्र गणराज्य। कठ गणराज्य के लोगों को यूनानी लेखकों ने कठैओई कहा है। इनकी राजधानी संगल नामक नगर में वर्तमान थी। सिकन्दर के साथ युद्ध में इस गण राज्य के लोगों में सत्तरह हजार मार डाले गये तथा सत्तर हजार बन्दी बनाये गये। शिवि गणराज्य के लोगों को यूनानी लेखकों ने सिबोई कहा है। ये झेलम तथा चेनाब के संगम के नीचे वाले प्रदेश में रहते थे। शिवि जनपद का उल्लेख महाभारत तथा जातकों में हुआ है। स्ट्रेबो लिखता है कि ये लोग जानवरों की खाल पहनते तथा भाला चलाने में दक्ष थे। वे सिकन्दर के द्वारा परास्त किये गये।

डिओडोरस ने आक्सीद्रकाई गण-राज्य का उल्लेख किया है। आक्सीद्रकाई को पहचान क्षुद्रक से की जाती है। एरियन लिखता है कि इस जाति के लोग योद्धा प्रकृति के थे। यूनानी लेखकों ने मालव (मल्लोई) गण-राज्य का भी उल्लेख किया है। पाणिनि ने मालव गण-राज्य की गणना शस्त्रोपजीवी संघ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में की है। कर्टियस के अनुसार सिकन्दर से मोर्चा लेने के लिये इन दोनों गण-राज्यों ने सम्मिलित सेना एकत्र की थी, जिसमें नब्बे हजार पैदल सैनिक, दस हजार घोड़े तथा नव सौ रथ सम्मिलित थे। इनके साथ युद्ध में सिकन्दर को सख्त चोट लगी थी। अन्ततोगत्वा उसने इनको भी जीत लिया। क्रुद्ध यूनानी सैनिकों ने इनके राज्य के ग्राम एवं नगर जला दिये। यहाँ तक कि उन्होंने सामने पड़ने वाले स्त्री और बच्चों को भी काट डाला। यहाँ उल्लेखनीय है कि यूनानी लेखकों के द्वारा कथित मालव-क्षूद्रक गण-राज्यों के सम्मिलित मोर्चे वाली बात असत्य नहीं है। महाभारत के अनुसार कुरुक्षेत्र युद्ध में इन दोनों गण-राज्यों ने मिलकर कौरवों की ओर से भाग लिया था। कात्यायन ने संयुक्त पद "क्षौद्रक-मालवा" का उल्लेख किया है। यह दोनों के संघ की ओर संकेत करता है।

डिओडोरस ने अम्बष्ठ गण-राज्य के लोगों को ऐबेस्टनोई कहा है। महाभारत में उत्तर-पश्चिम भारतवर्ष के शिवि, क्षूद्रक तथा मालवों के साथ अम्बष्ठ लोगों का उल्लेख हुआ है। यूनानी लेखकों के अनुसार अम्बष्ठ गण-राज्य के लोग शक्तिशाली थे तथा इनका संविधान प्रजातन्त्रात्मक आदर्शों पर आधारित था। उनकी सेना में साठ हजार पैदल, छः हजार घुड़सवार तथा पाँच सौ रथ थे। इसी के पास अर्जुनायन गण-राज्य के लोग रहते थे। डॉ० राधा कुमुद मुकुर्जी का कथन है कि यूनानी लेखकों ने अर्जुनायनों को ही अगलस्सोई कहा है। उनके अनुसार इनकी सेना में चालीस हजार पैदल तथा तीन हजार घुड़सवार थे। इनके एक नगर में बीस हजार व्यक्ति रहते थे। सिकन्दर से हारने के पश्चात् अपने स्त्री और बच्चों के साथ ये प्रज्वलित अग्नि में जल मरे थे। यह प्रथा कालान्तर के राजपूत 'जौहर' का स्मरण दिलाती है। शूद्र गण-राज्य के लोगों को यूनानियों ने सोड्राई कहा है। शूद्र गण-राज्य को ही प्रयाग की प्रशस्ति में आभीर गण-राज्य कहा गया है।

सिकन्दर उत्तर-पूर्व भारतवर्ष को भी जीतना चाहता था, पर उसके सैनिकों ने आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया। वे इस समय तक काफी थक गये थे तथा स्वदेश वापस लौटना चाहते थे। परिणामस्वरूप उसे आगे बढ़ने की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

योजना को समाप्त करना पड़ा। सिकन्दर ने भारतवर्ष में भी नगरों की स्थापना की थी; उदाहरणार्थ झेलम के तट पर बूकेफेला, निकाइया (जहाँ पोरस के साथ उसका युद्ध हुआ था), सिन्धु एवं चेनाब के संगम पर सिकन्दरिया तथा सिन्धु और सतलज के समीप सोग्डिआन सिकन्दरिया। इनमें सबसे प्रसिद्ध नगर सिन्धु और चेनाब के संगम पर स्थित सिकन्दरिया था। महावंश में इसे अलसन्द कहा गया है। पेरिप्लस में बूकेफेला-सिकन्दरिया का नामोल्लेख हुआ है। अशोक के एक लेख में उत्तर-पश्चिम भारतवर्ष में वर्तमान यूनानी वस्तियों का उल्लेख हुआ है। यह इन्हीं नगरों की ओर संकेत करता है। उसने यवनराज तुषास्फ को सौराष्ट्र का राज्यपाल नियुक्त किया था।

इन बस्तियों की स्थापना भारतवर्ष के सांस्कृतिक इतिहास में एक महत्व-पूर्ण घटना मानी जाती है। इनमें यूनानी कलाकार रहते थे। उनके संपर्क से मूर्तिकला की गंधार शैली का उद्गम हुआ, जो यूनानी तक्षण-कला से स्पष्ट प्रभावित है। यूनानी कला से परिचय के फलस्वरूप भारतवर्ष के कला-कारों ने प्रस्तरवास्तु सीख लिया। अशोक के स्तम्भ प्रस्तरवास्तु के सुन्दर उदाहरण हैं। इसके पहले भारतीय वास्तु मूलतः काष्ठवास्तु था। मेगस्थनीज़ ने साफ लिखा है कि चन्द्रगुप्त मौर्य का राजप्रासाद लकड़ी का बना था। अशोक के समय तक भारतवर्ष के लोगों ने यूनानी कलाकारों से गृह-निर्माण में पत्थरों का प्रयोग करना सीख लिया। फाहियान लिखता है कि उसके आगमन के समय पाटलिपुत्र में अशोक का राजप्रासाद वर्तमान था। उसकी दीवालों एवं खंभों में पत्थर चुने गये थे तथा उन पर काट-छाँट का कार्य सुन्दर ढंग से किया गया था। उसे देख कर चीनी यात्री आश्चर्यचकित हो उठा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानों उसका निर्माण देवताओं ने किया था न कि मनुष्य ने।

मृत्यु—सिकन्दर सिन्धु नदी के किनारे से होता हुआ इसके मुहाने पर पहुँचा। वहाँ उसने नियार्कस की अध्यक्षता में अपनी सेना के एक भाग को जलमार्ग के द्वारा यूनान भेजा। सेना के दूसरे भाग के साथ वह जेड्रोसिया से होता हुआ सूसा तथा तत्पश्चात् बैबीलोनिया पहुँचा। वहाँ पर ३२३ ई० पू०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में कठिन ज्वर से पीड़ित होने के कारण ३३ वर्ष की अवस्था में ही उसकी मृत्यु हो गई।

विजेता के रूप में मूल्यांकन—सिकन्दर की सैनिक प्रतिभा निर्विवाद है। उसकी सेना सशक्त थी तथा उसके सैनिक ऊँची योग्यता से युक्त थे। तथापि उसकी सफलता मूलतः स्वकीय उद्योग का परिणाम थी। निस्संदेह वह युद्ध-कला का मर्मज्ञ था। ग्रेनिकस, ईसस, टायर तथा गागमेला की लड़ाइयाँ उसके रण-चातुर्य का परिचय देती हैं। इसके भारतीय युद्ध व्यूह-रचना में कुशलता के प्रमाण हैं। विश्व-इतिहास में एक वही ऐसा विजेता है, जिसे कभी हार नहीं खानी पड़ी थी।

शासक एवं राजनीतिज्ञ—अपनी विजयों के फलस्वरूप सिकन्दर एक ऐसे विशाल साम्राज्य का अधिपति हुआ, जो पश्चिम में यूनान से लेकर पूर्व में झेलम तक फैला हुआ था। इसमें यूनान, एशिया माइनर, सीरिया, मिश्र, असीरिया, बैबीलोनिया, फारस, बैक्ट्रिआ, सोग्डिआना, अफगानिस्तान तथा भारतवर्ष का उत्तर-पश्चिम भाग सम्मिलित था। इस विशाल साम्राज्य को वह एकता के सूत्र में दृढ़बद्ध करना चाहता था। विभिन्न प्रदेशों के निवासियों की श्रद्धा को जीतने के लिये उसने अपनी दैवी उत्पत्ति घोषित की। उसके कर्मचारियों ने प्रचार किया कि वह भूमंडल पर ईश्वर का प्रतिनिधि शासक है। मिश्र में घोषणा की गई कि वह ज़ियस-एमन का पुत्र है। फारस के निवासियों ने उसे साखामनीष शासकों के दैवी अधिकारों का उत्तराधिकारी माना। बैबीलोनिया तथा असीरिया के पुजारियों ने उसे देव-सम्राट् स्वीकार कर लिया। यूनानी नगर-राज्यों से भी उसने अपने आपको देवता घोषित कराया। स्पार्टावासियों ने भी इससे सहमत होते हुये कहा कि 'यदि सिकन्दर देवता समझे जाने की इच्छा रखता है, तो उसे इस रूप में स्वीकार कर लो।'

वह अपने कर्मचारियों से भी दैवी सम्मान की आशा रखता था। उसने उनके लिये दरबार में फर्शी सलाम आवश्यक कर दिया। यह प्रथा फारस के लोगों के लिये तो ठीक थी, पर यूनानियों के लिये नई चीज़ थी। स्वतन्त्र विचार वाले यूनानी कर्मचारियों के लिये यह एक असह्य बोझ था। यही कारण है कि उसका विरोध करने पर कुशल एवं विश्वासपात्र यूनानी पदा-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धिकारियों को भी जान से हाथ धोना पड़ा था। इस प्रकार उसने हेलेनिस्टिक जगत् में सम्राट्-पूजा की भावना का प्रचार किया। इसमें सिकन्दर की राजनीतिक दक्षता का प्रतिबिम्ब मिलता है। सम्राट्-पूजा की यह भावना हेलेनिस्टिक विश्व में राजनीतिक एकता का सबल स्रोत सिद्ध हुई थी।[१]

साम्राज्य की विभिन्न जातियों में पारस्परिक प्रेम उत्पन्न करने के लिये उसने अन्तर्जातीय विवाह प्रोत्साहित किया। इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि उसने सोग्डिआना की राजकुमारी रोक्साना से अपना पाणिग्रहण किया। उसके कई सैनिकों ने इस उदाहरण का अनुसरण किया। कहा जाता है कि लगभग दस हजार यूनानी सिपाहियों ने एशियाई कन्याओं के साथ विवाह किया। वह यूनानियों और पारसीकों को एक दूसरे के समीप लाना चाहता था। इसके लिये उसने यूनानी सैनिकों का विवाह पारसीक महिलाओं के साथ सम्पन्न कराया। इनके विवाह में उसने राजकोष से बीस हजार टैलेंट की सहायता की थी। उसने यूनानी पदाधिकारियों को पारसीक कुमारियों के साथ विवाह करने के लिये कई रूपों में प्रेरणा प्रदान की थी। उसने स्वयं अपना विवाह दारा तृतीय की पुत्री स्ततिरा तथा अर्तजरक्सीज तृतीय की पुत्री पेरीसतिज के साथ किया था। प्लूटार्क लिखता है कि फारसवासियों को प्रसन्न करने के लिये वह कभी कभी पारसीक वस्त्र धारण करता था। उसने अन्य देशों के सैनिकों को अपनी सेना में भर्ती किया। उसकी सेना में तीन हजार पारसीक सिपाही सम्मिलित थे। इनको उसने यूनानी पद्धति पर शिक्षित किया था।

वह अपने सैनिकों के उत्साह को द्विगुणित करने के निमित्त विजित देशों से प्राप्त धन को उनमें लुटा देता था। उसने अपने साम्राज्य की व्यापार एवं वाणिज्य-सम्बन्धी आवश्यकताओं को देखते हुये नये प्रकार के सिक्के चलाये। उसने सुचारु शासन के निमित्त दीवानी और फौजदारी विभागों को एक

१. "The god king idea, however, became a powerful force in both politics and religion in the Hellenistic world and the predominant unifying element in the Roman Empire."

—Caldwell.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूसरे से अलग करते हुये अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया। सिकन्दर की कूटनीति का अनुमान कभी कभी मैसीडोनियन कर्मचारी नहीं लगा पाते थे। अकाल मृत्यु के कारण उसकी शासन-सम्बन्धी समस्त योजनायें कार्यान्वित न हो सकीं। तथापि अल्पकाल में उसने जिस पटुता के साथ शासन किया, वह सर्वथा श्लाघनीय है। उसने अपने पदाधिकारियों को जनता का शोषण करने से रोका। सुदृढ़ शासन के द्वारा वह अपने साम्राज्य को स्थायी बनाना चाहता था। निस्संदेह उसमें अच्छे शासक के समस्त वांछनीय गुण विद्यमान थे।[१]

सिकन्दर के आक्रमण का महत्त्व—सिकन्दर के आक्रमण ने विश्व के इतिहास में एक ऐसे नवीन युग का प्रवर्तन किया, जो सभ्यता एवं संस्कृति के विकास की दृष्टि से सर्वाङ्गसंपन्न था। वह कोई विजेतामात्र न था। यदि उसे विध्वंसकारी, लुटेरा अथवा परराष्ट्रों के धन एवं स्वातंत्र्य का अपहारक कहा जाय, तो यह एक ऐतिहासिक भूल होगी। पारसीक नरेशों की भाँति उसके सैनिक अभियान का उद्देश्य केवल साम्राज्य-विस्तार, अर्थलाभ तथा धनसंचय नहीं था। विजित देशों से प्राप्त धन का सदुपयोग वह साहित्य, कला एवं विज्ञान के विकास में करना चाहता था तथा इस क्रिया में वह बहुत कुछ अंशों में सफलीभूत भी हुआ था। वह एक कुशल राजनीतिज्ञ तथा सूक्ष्मदर्शी व्यक्ति था। उसका दृढ़ विश्वास था कि किसी भी सम्राट् का शासन तभी तक सुव्यवस्थित रह सकता है, जब तक प्रजा की सहानुभूति उसे प्राप्त है। अतएव जनसाधारण की आवश्यकता की पूर्ति के निमित्त साम्राज्य के आर्थिक एवं सामाजिक विकास की महत्ता से वह पूर्ण रूप से परिचित था। कतिपय इतिहासकारों का कथन है कि पाश्चात्य विश्व-सभ्यता

---

१. Without question he was a good administrator, he ruled with kindness and firmness the wide domain which his arms had won, he was loyal to the agreements which he signed with commanders and cities and he tolerated no oppression of his subjects by his appointees." —Will Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के इतिहास में केवल तीन ही प्रसिद्ध घटनायें हुई हैं; (१) सिकन्दर का अभ्युदय, (२) रोम साम्राज्य की स्थापना तथा (३) ईसाई धर्म का उद्गम। सिकन्दर का साम्राज्य रोम साम्राज्य का पूर्ववर्ती था। उसने विभिन्न देशों के निवासियों में पारस्परिक सहानुभूति एवं सौहार्द स्थापित करने की चेष्टा की थी। इस व्यवहार को हम ईसाई धर्म के भाई चारे की भावना की पूर्वगामी घटना मान सकते हैं।

दुर्भाग्यवश असामयिक मृत्यु के कारण वह अपने पौरुष तथा साम्राज्य के साधनों का समुचित प्रयोग सभ्यता के विकास की दिशा में न कर सका। इस कारण कतिपय इतिहासकार उसके आक्रमण की महत्ता में संदेह प्रगट करते हैं। उदाहरणार्थ ग्रोटे लिखता है कि यूनानी इतिहास सिकन्दर के साथ समाप्त हो जाता है। वह एक सफल आक्रमणकारी तथा अपने आतंक एवं बल पर समकालीन राष्ट्रों को दहला देने वाला भले ही रहा हो, पर उसका अभियान निष्फल था। उसके आक्रमण का क्रम विश्व के इतिहास में उस उल्का की भाँति था, जो अल्प काल के लिये लोगों को चमत्कृत कर देता है। पर वास्तविक तथ्यों एवं आधुनिक ऐतिहासिक अनुसंधानों के आलोक में यह मत समीचीन नहीं प्रतीत होता। इसमें लवलेश संदेह नहीं कि सिकन्दर की कृतियों ने पाश्चात्य सभ्यता को प्रसार-पथ पर आयोजित किया था। पाश्चात्य एवं पौर्वात्य संस्कृतियों के समागम द्वारा एक नवीन संस्कृति को जन्म देने का श्रेय सिकन्दर को ही था।

पश्चिम एवं पूर्व की संस्कृतियों की पृष्ठभूमि वास्तव में उसके अभ्युदय के पहले ही प्रस्तुत हो चुकी थी। छठी शताब्दी ईसा पूर्व से ही एशिया माइनर के यूनानी उपनिवेशों तथा पश्चिमी एशिया के बीच व्यापारिक एवं सांस्कृतिक संबन्ध और विचारों का पारस्परिक आदान प्रदान प्रारंभ हो गया था। इसी समय के लगभग व्यापार-संबन्ध के फलस्वरूप यूनानी संस्कृति के ऊपर मिश्र की सभ्यता का प्रभाव पड़ा। यूनानी व्यापारी, पर्यटक एवं कलाकार मिश्र के विज्ञान एवं कला की विशेषताओं को अपने साथ स्वदेश ले आये। सिकन्दर के उत्थान-काल के पूर्व यूनान के भिषक, सिपाही, राजनीतिज्ञ तथा यात्री पारसीक नरेश की छत्रछाया में रहते थे। इन लोगों ने यूनानी सभ्यता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का फारस में प्रचार किया। सिकन्दर के पहले भी विश्ववादी व्यक्ति हो चुके हैं। उदाहरणार्थ जेनोफन (Xenophon) ने विश्व-राज्य की स्थापना द्वारा विश्व-संस्कृति की योजना बनाई थी। सिकन्दर का पूर्ववर्ती आइसोक्रेटीज़ भी विश्ववादी था। वह राष्ट्रीय संस्कृति के प्रति अंध भक्ति का विरोधी तथा नाना संस्कृतियों के अधिकाधिक संपर्क का समर्थक था। सिनिक वर्ग के दार्शनिक भी विभिन्न जातियों के बीच भेदभाव की भावना को हटाने के पक्ष में थे। सिकन्दर ने हेलेनिस्टिक जगत् की स्थापना के द्वारा पाश्चात्य एवं पूर्वी सभ्यता के सम्मिश्रण की पहले से चली आने वाली भावना को एक विशाल पैमाने पर कार्यान्वित किया था।

राजनीतिक महत्त्व—सिकन्दर के सैनिक अभियान का प्रत्यक्ष प्रभाव कुछ कम महत्त्वपूर्ण न था। उसके उत्तराधिकारियों ने हेलेनिस्टिक राज्यों में लगभग दो सौ वर्षों तक राज्य किया। मिश्र में टालमी शासकों का राज्य तीन सौ वर्षों तक वर्तमान था। अब फारस का कोई नाम न था। प्राचीन यूनानी राजनीतिक व्यवस्था भी समाप्त हो चुकी थी। सिकन्दर ने यूनानी नगर-राज्यों को राजनीतिक एकता का संदेश दिया। इसमें रहने वाले व्यक्तियों ने जाति, धर्म तथा संप्रदाय-विषयक संकीर्ण परिधि का अतिक्रमण कर एकीकरण को अपना लक्ष्य निर्धारित किया। हेलेनिस्टिक जगत् के निवासी अंतर्राष्ट्रीय भावना के द्वारा प्रभावित हुये। विभिन्न राष्ट्रों के बीच पारस्परिक सौहार्द का मूल्य समझा गया। सिकन्दर के उदाहरण ने कालान्तर के विजेताओं के लिये पथ-प्रदर्शन का कार्य किया। जूलियस सीजर, आगस्टस तथा ट्रेजन ने उसकी योजना का अनुसरण किया। सिकन्दर के साम्राज्य ने कालान्तर के रोम साम्राज्य एवं बाइजेंटाइन साम्राज्य के लिये पूर्वपीठिका प्रस्तुत की थी। उदार एकतंत्रीय शासन एवं देव-सम्राट की भावना सिकन्दर की देन थी। मध्य काल के 'होली रोमन साम्राज्य' तथा 'होली कैथोलिक चर्च' के संगठन ने सिकन्दर के लक्ष्य से प्रेरणा प्राप्त की थी। हेलेनिस्टिक काल में एथेंस और स्पार्टा की पूर्व प्रसिद्धि समाप्त हो गई। इस समय बहुत से यूनानी सिकन्दर के द्वारा विजित देशों में शांतिमय नागरिकों के रूप में रहने लगे। उसकी निष्पक्षता के सिद्धान्त पर आधारित विश्व-राज्य के आदर्श

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने इस काल के विचारकों को विश्व-बन्धुत्व की भावना का सन्देश दिया। इसी आदर्श को लेकर स्टोइक विचारकों ने विश्व-नागरिकता की कल्पना की, जो धर्म एवं जाति के संकुचित दृष्टिकोण से सर्वथा दूर थी।

धार्मिक महत्व—हेलेनिस्टिक साम्राज्य की स्थापना का प्रभाव धार्मिक क्षेत्र में भी पड़ा। ईसाई धर्म के स्वरूप-निर्धारण तथा प्रसार में इसका योगदान था। सेल्यूकस-परम्परा में आने वाले सिकन्दर के उत्तराधिकारी साइलेसिया से लेकर पैलेस्तीन तक काफी शक्तिशाली थे। इस कारण पश्चिमी सेमाइट लोगों पर पर्याप्त यूनानी प्रभाव पड़ा। संत पाल की जन्मभूमि टर्सस का विश्वविद्यालय यूनानी आदर्शों पर संगठित था। सेमेटिक ईसाई धर्म का उद्गम यूनानी वातावरण में हुआ था। इसके प्रचार का माध्यम यूनानी भाषा थी। अतएव इसका प्रचार पूर्वी देशों की अपेक्षा पश्चिमी देशों में अधिक हुआ। यूनानी स्टोइक दर्शन का जन्मदाता एक सेमेटिक था। मिश्र के सिकन्दरिया नगर में रहने वाले ईसाई यूनान की अध्यात्मवादी दार्शनिक धाराओं से भी परिचित थे। उन्होंने ईसाई धर्म तथा प्लेटो एवं स्टोइक विचारधाराओं में समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की। इसका परिणाम ईसाई धर्म का यूनानीकरण था। यहाँ पर रोम के साम्राज्यवादी काल के निओप्लेटोनिज़्म का उल्लेख किया जा सकता है, जिसमें यूनानी विचारों तथा ईसाई मत दोनों का ही पुट मिलता है। इस विचारधारा का उद्गम सिकन्दरिया में हुआ था। कतिपय इतिहासकारों के अनुसार पाश्चात्य धार्मिक इतिहास में ईसाई धर्म पर जो यूनानी प्रभाव पड़ा वह अन्यत्र नहीं दृष्टिगोचर होता। सीरिया, साइलेसिया तथा पैलेस्तीन के ऊपर यूनानी धर्म की निस्संदेह गहरी छाप थी।

आर्थिक महत्व—सिकन्दर के आक्रमण का आर्थिक प्रभाव राजनीतिक प्रभाव की अपेक्षा अधिक स्थायी, दूरतर एवं महत्वपूर्ण था। उसके काल में यूनानी औपनिवेशीकरण शीघ्रता के साथ आगे बढ़ने लगा। सीरिया से लेकर सिन्धु नदी तक तथा पोंटुस से लेकर अरब तक फैले हुये भू-भाग में यूनानियों ने प्रचुर संख्या में अपने उपनिवेश स्थापित किये। सहस्रों की संख्या में यूनानी कलाकार, व्यावसायिक एवं व्यापारी इन उपनिवेशों में बसाये गये। कहा जाता है कि सिकन्दर ने सत्तर उपनिवेशों की स्थापना की थी। उसके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तराधिकारियों ने भी नगरों के रूप में उपनिवेश बसाये। सिकन्दर के आक्रमण के फलस्वरूप कई स्थल एवं जल-मार्ग प्रकाश में आये। नवीन व्यापारिक केन्द्रों की स्थापना एवं नये उद्योग-धंधों के विकास ने इस समय में एक तरह से व्यावसायिक क्रान्ति उत्पन्न कर दी। उसके सैनिक अभियान ने आर्थिक संघटन में पूँजीवाद को जन्म दिया। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि इन नवीन आर्थिक परिवर्तनों के कारण केवल उच्च वर्ग के लोगों को ही लाभ हुआ। जहाँ तक जनसाधारण का प्रश्न है, उसकी स्थिति अब पहले से अधिक शोचनीय थी। धन के केन्द्रीकरण ने शोषित कृषक-दास तथा श्रमिक वर्ग को जन्म दिया। तत्कालीन आर्थिक संगठन में यह नवीन वैषम्य निश्चयात्मक रूप से सदोष था।

नवीन उपनिवेशों की स्थापना एवं व्यापारिक सुविधाओं की प्राप्ति के कारण यूनानी नागरिक अब अपने पुरातन संकीर्ण आर्थिक जीवन के शिकंजों से मुक्त हुये। अर्थागम के उपायों को देखते हुये लोग नवीन केन्द्रों में बसने लगे। व्यापारिक मार्गों के परिवर्तन तथा मिश्र के सिकन्दरिया जैसे नगरों के विकास के कारण एथेन्स को काफी क्षति पहुँची। इसकी जनसंख्या घटने लगी तथा पूर्वकालीन महत्ता क्रमशः विलीन होने लगी। अन्ततोगत्वा इसकी व्यापारिक क्षति उसी प्रकार अवश्यम्भावी हो गई, जिस प्रकार सोलहवीं शताब्दी में वेनिस की। यूनान के साहसी एवं सुयोग्य नवयुवक विदेशी नगरों में बसने लगे। फलतः वहाँ की ग्राम-जनसंख्या पहले की समता में क्षीण होने लगी तथा कृषि-भूमि पर भार अब कम था। इसीलिये कहा जाता है कि हेलेनिस्टिक विश्व के सिकन्दरिया-तुल्य नगर जनसंख्या की समस्या की दृष्टि से यूनान के लिये वरदान सिद्ध हुये थे।

सांस्कृतिक महत्व—कतिपय पाश्चात्य विद्वानों का कथन है कि सांस्कृतिक दृष्टि से सिकन्दर के आक्रमण का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। यूनानी सभ्यता मूलतः नागरिक सभ्यता थी। पूर्वी ग्राम-जीवन पर इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। वहाँ ग्राम-जनसंख्या नगर-जनसंख्या से अधिक थी, अतएव पूर्वी देशों की एक विशाल जनसंख्या यूनानी प्रभाव से बाहर थी। यूनान की सभ्यता की छाप मिश्र में केवल सिकन्दरिया तथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एशिया में सीरिया तथा निकट पूर्व तक ही सीमित था। फारस इससे अप्रभावित था। अतएव कुछ इतिहासकारों के अनुसार सिकन्दर के बावजूद भी पूर्व ने अपनी पूर्वीयता का परित्याग नहीं किया।[१]

पर यदि ऐतिहासिक तथ्यों की ठीक आलोचना की जाय, तो यह आरोप निराधार प्रतीत होता है। सिकन्दर के हृदय में अन्तर्राष्ट्रीय भावना छिपी थी। उसने यूनान तथा पार्श्ववर्ती देशों के बीच सदियों से वर्तमान खाई को भरने की चेष्टा की। उसके प्रयत्न के फलस्वरूप यूनानी संस्कृति ने विश्व-संस्कृति का रूप धारण किया। निकट पूर्वी देशों के साहित्य, शिक्षा तथा सरकारी कामों में यूनानी भाषा का प्रयोग होने लगा। सिकन्दरिया में रहने वाले यहूदियों ने अपने धार्मिक ग्रन्थ (ओल्ड टेस्टैमेन्ट) का यूनानी भाषा में अनुवाद किया। उन्होंने अपने धर्म तथा प्लेटो के विचारों में समझौता स्थापित करने के लिये चेष्टा की। यूनानी ग्रन्थों का पठन-पाठन पूर्वी देशों में होने लगा। सिकन्दर के उपरान्त इंडो बैक्ट्रिअन राजाओं के काल में तक्षशिला में यूनानी साहित्य का अध्ययन-अध्यापन होने लगा। मिश्र का सिकन्दरिया यूनानी दर्शन तथा संस्कृति के विभिन्न पहलुओं का एक प्रतिष्ठित केन्द्र बन गया। यूनानी कला ने पूर्वी कला को प्रभावित किया। भारतवर्ष की गन्धार-कला यूनानी कला की देन थी। इसकी विशेषताओं का प्रचार कालान्तर में चीन, कोरिया, जापान तथा तिब्बत में भी हुआ। वहाँ की बौद्ध मूर्तियों में मुद्रा तथा वस्त्रों का व्यावर्तन यूनानी कला के आदर्शों पर निर्मित हैं। इन सब बातों को देखते हुये यूनानी सांस्कृतिक प्रभाव पर संदेह प्रगट करना ऐतिहासिक तथ्यों से रहित होगा। राजनीतिक एवं आर्थिक प्रभावों की अपेक्षा सिकन्दर के सैनिक अभियान का सांस्कृतिक परिणाम कहीं दूरतर एवं चिरस्थायी था। इस घटना के कारण पूर्व का यूनानीकरण बहुत कुछ अंशों में संभव हो सका था।

यूनानी सभ्यता में परिवर्तन—यहाँ पर उल्लेखनीय है कि पूर्वी सभ्यताओं के संपर्क के कारण यूनानी सभ्यता में भी परिवर्तन हुये। इस देश की कला एवं साहित्य के ऊपर यथार्थवाद का प्रभाव स्पष्ट रूप से पड़ा।

१. "Orient largely remained orient despite Alexander."—Trever.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एशिया माइनर, सीरिया एवं मिश्र के देवताओं को यूनानी देव-समूह में स्थान दिया गया। बाहरी धर्मों के प्रभाव के कारण धर्म व्यक्ति से संबन्धित माना जाने लगा। यूनान के लोग पूर्वी धार्मिक अनुष्ठान, शुद्धता के हेतु विधियों, परलोक तथा आत्मा के मोक्ष आदि में विश्वास करने लगे। एक प्राचीन लेखक ने सिकन्दर के पूर्वकालीन यूनान की तुलना पिंजड़े में बन्द ऐसी चिड़िया से की है, जिसे धूप एवं प्रकाश से कोई भेंट नहीं रहती। सिकन्दर ने इस पिंजड़े के दरवाजे को खोल दिया, जिससे सूर्य की किरण एवं प्रकाश का प्रवेश उसमें संभव हुआ। फलतः उस विहग को एक नव-जीवन से भेंट हुई और वह पिंजड़े को छोड़कर आकाश के स्वच्छन्द वातावरण में उड़ने लगा। सिकन्दर के उत्तरकालीन यूनान के विषय में यह कथन सर्वथा सत्य है। नवीन वाह्य प्रभावों के फलस्वरूप यूनानी सभ्यता ने एक नवीन कलेवर धारण किया और उसने अब यूनान जैसे एक सीमित क्षेत्र की संस्कृति के स्थान पर विश्व-संस्कृति का रूप धारण किया, जिसमें नाना संस्कृतियों का सम्मिश्रण था।

सिकन्दर के साम्राज्य का भविष्य—सिकन्दर की मृत्यु के अनंतर उसके साम्राज्य की राजनीतिक एकता स्थापित न रह सकी। इस समय नाना षडयंत्र एवं युद्ध प्रारंभ हुए, जिसमें उसकी माता, बहिन, रानियों एवं सेनानायकों का हाथ था। सबसे पहले रोक्साना से उत्पन्न सिकन्दर के पुत्र तथा तदनंतर उसके भाई के नाम पर साम्राज्य की एकता को स्थायी रखने की चेष्टा की गई, परन्तु यह प्रयत्न विफल सिद्ध हुआ। इसके उपरान्त चतुर्दिक अराजकता का वातावरण फैलने लगा। इस समय ऐंटिगोनस नामक व्यक्ति ने साम्राज्य में अपना प्रभाव बढ़ाना चाहा, परन्तु ३०१ ई० पू० में वह इप्सस के युद्ध में मार डाला गया। सेल्यूकस ने सिकन्दर के पश्चिमी एवं एशियाई साम्राज्य को एक में मिलाने की चेष्टा की, परन्तु इस कार्य के संपन्न होने के पूर्व ही उसकी मृत्यु हो गई। कालांतर में सिकन्दर का साम्राज्य तीन बड़े टुकड़ों में विभक्त हो गया—(१) **मिश्र**—यहाँ पर टालमी शासक राज्य करने लगे, (२) **एशियाई राज्य**—यहाँ सेल्यूकस के उत्तराधिकारियों का राज्य स्थापित हुआ तथा (३) **मैसीडन**—यहाँ ऐंटिगोनस के वंशज राज्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करते थे। इन तीनों का पारस्परिक संबन्ध ठीक न था। मिश्र तथा एशियाई राज्य सीरिया में एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी थे। एशिया माइनर में प्रभुता स्थापित करने के लिये मैसीडन तथा एशियाई राज्य में संघर्ष हुआ। मैसीडन एवं मिश्र ईजियन द्वीप-समूह में अपनी प्रभुता स्थापित करना चाहते थे। इस कारण दोनों राज्यों में पर्याप्त वैमनस्य था। प्रतिस्पर्द्धा के कारण इन तीनों राज्यों में त्रिकोण युद्ध की क्रिया कई वर्षों तक चलती रही। इस युद्ध का अंत रोम-साम्राज्य के विस्तार के साथ हुआ। रोम ने इन राज्यों पर अपनी सत्ता स्थापित कर इनके अस्तित्व को समाप्त कर दिया।

हेलेनिस्टिक सभ्यता की उत्पत्ति—हेलेनिस्टिक सभ्यता सिकन्दर के विशाल साम्राज्य की देन थी। उसके साम्राज्य में यूनान के अतिरिक्त वे अनेक प्रदेश सम्मिलित थे, जिन्हें सिकन्दर ने जीता था। इन विजित प्रदेशों में यूनानियों ने छोटी बस्तियों और नगरों के रूप में अपने उपनिवेश स्थापित किये। इस प्रकार विभिन्न प्रदेशों के निवासियों के साथ यूनानियों का संपर्क बढ़ा। इसके फलस्वरूप यूनानी सभ्यता का विभिन्न सभ्यताओं के साथ सम्मिश्रण हुआ। इस कारण एक नवीन सभ्यता का आविर्भाव हुआ, जिसे हेलेनिस्टिक सभ्यता की संज्ञा दी जाती है। इस सभ्यता की अवधि चतुर्थ शताब्दी ई० पू० के उत्तरार्द्ध से लेकर ईसवी शताब्दी के प्रारम्भ तक मानी जाती है।

हेलेनिस्टिक सभ्यता एवं हेलेनिक (यूनानी) सभ्यता का विभेद—हेलेनिस्टिक सभ्यता को एकमात्र यूनानी सभ्यता मान लेना बहुत बड़ी ऐतिहासिक भूल होगी। दोनों सभ्यतायें एक दूसरे से सर्वथा पृथक थीं—(१) हेलेनिक सभ्यता का केन्द्र केवल यूनान था, पर हेलेनिस्टिक सभ्यता का आविर्भाव उन विभिन्न क्षेत्रों में हुआ जो सिकन्दर के साम्राज्य (हेलेनिस्टिक विश्व) में सम्मिलित थे। (२) हेलेनिक सभ्यता विशुद्ध एवं मौलिक यूनानी सभ्यता थी, पर हेलेनिस्टिक सभ्यता यूनानी संस्कृति तथा अन्य विभिन्न संस्कृतियों के सम्मिश्रण का परिणाम थी। हेलेनिस्टिक सभ्यता पर पूर्वी सभ्यताओं की गहरी छाप थी। (३) हेलेनिक सभ्यता में सादगी थी, पर हेलेनिस्टिक सभ्यता में अपेक्षाकृत विषमता अधिक थी। (४) हेलेनिक सभ्यता में विशेषतः ग्रामीण जीवन की पुट वर्तमान थी पर हेलेनिस्टिक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सभ्यता में नागरिक जीवन की छाप थी। हेलेनिस्टिक काल की राजनीतिक संस्थायें, सामाजिक जीवन तथा आर्थिक आदर्श विभिन्न देशों के आदर्शों पर आधारित थे।

हेलेनिस्टिक सभ्यता के साधन—यूनान के प्राचीन लेखकों का कथन है कि सिकन्दर अपने युद्धों का दैनिक विवरण स्वयं तैयार करता था। उसके कुछ सेनानायकों ने भी लड़ाइयों से संबन्धित संस्मरण लिखे। सिकन्दर के साथ कई इतिहासकार रहते थे। इनका कार्य उसकी उपलब्धियों का व्यौरा प्रस्तुत करना था। दुर्भाग्यवश ये सारी कृतियाँ प्राप्त नही हैं। तथापि इनके कुछ अंश उद्धरण के रूप में कालांतर के ग्रंथों में मिलते हैं। इनसे हेलेनिस्टिक सभ्यता के विषय में महत्वपूर्ण परिचय उपलब्ध होता है। रोम साम्राज्य के पहली शताब्दी के लेखक कर्टियस रुफस ने सिकन्दर का जीवनचरित लिखा। उसकी जीवनी के विषय में हमारे परिचय का प्रधान साधन इसी लेखक की कृति है। प्लूटार्क तथा एरियन के लेखों में सिकन्दर के युद्धों के यत्र-तत्र विवरण मिलते हैं, जो ऐतिहासिक दृष्टि से उपयोगी हैं। सिसली के डिओडोरस ने "लाइब्रेरी ऑफ हिस्ट्री" नामक ग्रंथ लिखा। इसके द्वारा सिकन्दर के उत्तराधिकारियों के विषय में परिचय मिलता है। पॉलिबियस की रचना में हेलेनिस्टिककालीन नगरों, कवियों एवं गद्यकारों के उल्लेख आते हैं जो इस समय के सांस्कृतिक इतिहास को समझने में सहायक सिद्ध हुए हैं। तत्कालीन लेखों एवं मुद्राओं ने भी इस सभ्यता के पुनर्निर्माण में इतिहासकारों की बहुत सहायता की है। मिश्र के उत्खनन में हेलेनिस्टिक काल के कई यूनानी लेख उपलब्ध हुये हैं, जो कि राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक विषयों से सम्बन्धित हैं। इस सभ्यता की जानकारी में इन लेखों का मूल्य निश्चयात्मक रूप से अधिक है।

महत्ता—कई शताब्दियों तक हेलेनिस्टिक सभ्यता की महत्ता की ओर इतिहासकारों का ध्यान आकर्षित नहीं हुआ था। यूनानी एवं रोम सभ्यता की समता में लोग इसे उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में ड्रॉयसेन (Droysen) ने सबसे पहले इसकी वास्तविक महत्ता को प्रकाश में लाया। इस सभ्यता के लिये हेलेनिस्टिक नाम उसी ने दिया था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसके उपरांत कई पाश्चात्य विद्वानों ने उपर्युक्त साधनों की सहायता से इस सभ्यता का इतिहास लिखा। इसके फलस्वरूप हेलेनिस्टिक काल अब मानव सभ्यता के इतिहास में प्रगति, विकास, महत्ता एवं अभिरुचि का काल माना जाता है।[१] कुछ विद्वानों का तो यहाँ तक कहना है कि रोम-सभ्यता को हेलेनिस्टिक सभ्यता ने प्रभावित किया था, न कि यूनानी सभ्यता ने।[२]

हेलेनिस्टिक सभ्यता के प्रमुख अंगों का अध्ययन

साहित्य—इतिहासकारों का कथन है कि हेलेनिस्टिक काल साहित्यकारों का काल था। इस काल में लेखकों ने इतिहास, नाटक, विज्ञान, दर्शन तथा राजनीति के ऊपर अपनी लेखनी उठाई। हेलेनिस्टिक नरेश स्वयं साहित्य के प्रेमी थे। कवियों एवं लेखकों को उनके द्वारा प्रोत्साहन के विविध प्रमाण उपलब्ध हैं। इस समय शिक्षा एवं ज्ञान के विकास के प्रति लोगों की श्रद्धा बढ़ने लगी। तत्कालीन कुछ विचारकों ने प्रचार किया कि उच्च ज्ञान अमूल्य निधि एवं मनुष्य के जीवन का एक बहुत बड़ा संबल है। वे इसे ऐश्वर्य से ऊँचा स्थान प्रदान करने लगे। महत्त्वपूर्ण नगरों में विचारों का आदान-प्रदान, गंभीर विषयों पर चिन्तन, यातायात की सुविधायें तथा मनीषियों का पारस्परिक संपर्क एवं एक दूसरे के साथ तर्क-वितर्क आदि संभव हुआ। ग्रन्थों का उत्पादन संस्कृति का लक्षण माना जाने लगा। इन परिस्थितियों में इस समय साहित्य का विकास होना आश्चर्य-जनक नहीं था। इस समय के लगभग ग्यारह सौ लेखकों के नाम उपलब्ध होते हैं।

कुछ समालोचकों ने यह आरोप लगाने की चेष्टा की है कि इस

---

१. "It is now considered an age of advancement, of expansion and of great importance and interest in the story of mankind"

—Caldwell.

२. "The age is of fundamental importance in world history, since it was the Hellenistic and not the Hellenic culture which influenced the Romans and which they transformed and transmitted to the Western world". —Caldwell.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समय के साहित्य में कोई मौलिकता एवं गंभीरता नहीं थी और कुछ अंशों में यह हल्का साहित्य था। तत्कालीन ग्रन्थों से लोगों का मन बहलाव अवश्य हो जाता था पर उनसे पाठक के मस्तिष्क पर कोई स्थायी प्रभाव नहीं पड़ता था। पर यह लांछन तथ्यों से रहित है। इन रचनाओं के वर्णन निस्संदेह रोचक एवं महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें रमणीयता, सूचनाओं की बहुलता, सज्य सामग्री, उदार एवं मौलिक दृष्टिकोण तथा उदात्त आदर्श आदि विशेषतायें उपलब्ध होती हैं जो किसी भी देश एवं काल के साहित्य को गौरवान्वित करती हैं। प्रचुर ग्रन्थों की रचना के फलवस्वरूप इस समय पुस्तकालयों की संख्या अधिकाधिक बढ़ने लगी। सिकन्दरिया में टालमी नरेशों के द्वारा स्थापित पुस्तकालय जगत्प्रसिद्ध था। इतिहासकारों के अनुसार इसमें पाँच लाख बत्तीस हजार पुस्तकें थीं। इस पुस्तकालय में प्रसिद्ध साहित्यकारों की रचनाओं की हस्तलिपियाँ भी सुरक्षित थीं। पुस्तकों के संग्रह के निमित्त टालमी नरेशों ने बहुत सा धन दिया था। इस युग के प्रसिद्ध विद्वान् इस पुस्तकालय में पुस्तकाध्यक्ष के पद पर नियुक्त रह चुके थे, उदाहरणार्थ एपोलोनियस, इरैटोस्थनीज तथा अरिस्टार्कस। इस काल का प्रसिद्ध विद्वान कवि कैलिमेकस भी इस पुस्तकालय का अध्यक्ष रह चुका था। उसने इसके पुस्तकों का विवरण तथा सूची प्रस्तुत की थी। इस पुस्तकालय में अनेक विशिष्ट विद्वान भी रहते थे, जिसके कारण इसकी गणना एक सुप्रसिद्ध बौद्धिक केन्द्र के रूप में होती थी। हेलेनिस्टिक जगत् के अन्य सुप्रसिद्ध नगरों में भी पुस्तकालय विद्यमान थे, उदाहरणार्थ इफेसस तथा कार्थेज। सिकन्दरिया के पुस्तकालय की समकक्षता में पर्गेमम का भी पुस्तकालय आता था। इसमें पुस्तकों की संख्या दो लाख के लगभग थी।

इतिहास—इस काल के साहित्य में सर्वप्रथम इतिहास-रचना उल्लेखनीय है। हेलेनिस्टिक काल के इतिहासकारों में पॉलिबियस अग्रगण्य था। समालोचक उसे हेरोडोटस और थ्यूसीडाइड्स की कोटि का लेखक मानते हैं। कुछ प्रशंसकों ने उसे इतिहासकारों का भी इतिहासकार कहा है। उसका जन्म एक प्रतिष्ठित कुल में हुआ था। उसका बचपन बहुत ही ऐश्वर्य में बीता। भाग्यचक्र के परिवर्तन के कारण वह रोम के लोगों द्वारा बन्दी बनाया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया। इसके उपरांत सोलह वर्षों तक उसका जीवन बहुत कष्ट में बीता था। तत्पश्चात् उसके सुखमय दिन प्रारंभ हुये। इस समय से उसने लेखन-कार्य बड़ी लगन एवं तत्परता के साथ प्रारंभ किया। बयासी वर्ष की अवस्था में शिकार से लौटते समय घोड़े पर से गिर जाने के कारण उसकी मृत्यु हो गई। उसने एक विशाल ऐतिहासिक ग्रन्थ की रचना की, जो "हिस्टरीज़" नाम से प्रसिद्ध है।

इस ग्रन्थ में लेखक ने २२१ ई० पू० से लेकर १४६ ई० पू० तक न केवल यूनान अपितु समस्त विश्व के इतिहास को लिखने की योजना बनाई। समालोचकों का कहना है कि इस ग्रन्थ को विश्व-इतिहास की संज्ञा दी जा सकती है। इस ग्रन्थ के चालीस भाग थे, जिसके केवल पाँच भाग ही उपलब्ध हो सके हैं। इस ग्रन्थ में विभिन्न संस्कृतियों का वर्णन मिलता है। रोम तथा भूमध्यसागरीय देशों का इतिहास उसने मनोरम ढंग से लिखा। उसने स्वयं देखी हुई घटनाओं का ही वर्णन किया है। यही कारण है कि ऐतिहासिक दृष्टि से उसका ग्रन्थ प्रामाणिक है। वह कहता था कि इतिहासकार को उसी घटना के वर्णन का अधिकार प्राप्त है, जिसको कि उसने स्वयं देखा हो। सच्ची सूचनाओं के ज्ञान के निमित्त उसने विभिन्न प्रदेशों का पर्यटन किया। वह अनेक देशों की भौगोलिक स्थिति से पूर्ण रूप से परिचित था। वह एक गुणदोष-विवेचक लेखक था। वह घटनाओं के यथातथ्य वर्णन के लिये इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा।

इस काल का एक महान् इतिहासकार हायरोनिमस था। वह कार्डिया में यूमिनीज़ के संरक्षण में रहता था। उसने सिकन्दर के काल से लेकर एपिरस के शासक पिरीज़ के काल तक घटनाओं का यथातथ्य वर्णन किया है। विश्व-इतिहास में उसके विवरणों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। स्थान-स्थान पर उसकी शैली थ्यूसीडाइड्स की शैली से साम्य रखती है। फिलार्कस ने भी ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन सिकन्दर के काल के उपरान्त से प्रारम्भ किया। इस लेखक में विलक्षण ऐतिहासिक प्रतिभा विद्यमान थी। हेलेनिस्टिक काल के इतिहासकारों के अन्तर्गत पोसिडोनियस की भी गणना होती है। इसके वर्णन अधिक विस्तृत एवं रोचक हैं। कुछ समालोचकों ने इसकी शैली

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में एक महान् दोष का निर्देश किया है। भाषा-अलंकार में अत्यधिक संलग्नता के कारण इसकी कृतियों में स्थान स्थान पर ऐतिहासिक पक्ष गौण हो जाता है। वह पात्रों का गुणदोष-निरूपण तथा गहराई के साथ घटनाओं की छान-बीन एवं विवेचनात्मक शैली के आधार पर उनका समग्र रूप पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने में सफल नहीं हो पाया है।

निकोलस भी हेलेनिस्टिक काल का इतिहासकार था। वह दमिश्क का निवासी था। उसे हेरोड प्रथम के दरबार में संरक्षण उपलब्ध हुआ था। इसकी शैली प्रसाद गुण से युक्त एवं प्रभावशालिनी थी। उसके वर्णन में अतिशयोक्ति अधिक मिलती है। अपने संरक्षक की कृतियों की बढ़ाव चढ़ाव के साथ प्रशंसा करते हुये वह स्थान स्थान पर संतुलित विवेचन भूल जाता है, जो कि एक सफल इतिहासकार का वास्तविक कर्त्तव्य है। डिओडोरस सिसली का निवासी था। उसने 'हिस्टारिकल लिबर्टी' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ में उसने अपने पूर्वकालीन इतिहासकारों की एक लम्बी सूची दी है। उसका प्रयत्न उतना पूर्ण एवं खरा उतर नहीं पाया है जितना करने का वह दावा रखता है। तथापि उसके प्रबन्ध की महत्ता में कोई संदेह नही रह जाता। उसका कार्य निस्संदेह उत्कृष्ट कोटि का था।

इसके अतिरिक्त इस काल में कुछ फुटकर ऐतिहासिक ग्रन्थों की रचना संपन्न हुई। उदाहरणार्थ बैबीलन तथा मिश्र के बेरोसस तथा मनेथो नामक पुरोहितों ने अपने देश का एक संक्षिप्त ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत किया। टालमी प्रथम के संरक्षण में हेकाटोस ने मिश्र का इतिहास लिखा। फिलोकोरस ने "एथेनियन क्रानिकिल" नामक ग्रन्थ की रचना की। इसमें उसने एथेंस के संविधान तथा यहाँ की सामाजिक रीति-प्रथाओं का वर्णन किया। इसी समय पोलेमन ने एथेंस के शासन-पत्रों का संग्रह किया। वह एक सफल पुरातत्ववेत्ता माना जाता था। अपने जीवन का आधा भाग उसने अध्ययन एवं भ्रमण में व्यतीत किया। इरैटोस्थनीज़ भी इसी कोटि के इतिहासकारों में आता था। वह एक सफल ऐतिहासिक समालोचक था। तिथिक्रम की जानकारी के निमित्त उसके विवरण बहुत ही महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं।

हेलेनिस्टिक काल में इतिहासकारों का एक नवीन वर्ग पैदा हुआ। ये

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पेरिपेटेटिक वर्ग के इतिहासकार कहलाते हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि ये घूम-घूम कर घटनाओं का संग्रह किया करते थे। इस प्रकार के इतिहासकारों में थिओफ्रेस्टस आता है। इसने शिक्षा-सम्बन्धी एक ऐतिहासिक ग्रन्थ की रचना की। डूरियस ने कला का इतिहास लिखा तथा केमेकोलिअन ने काव्य के इतिहास के ऊपर लेखनी उठाई। डिकार्कस ने यूनान के सांस्कृतिक इतिहास के ऊपर "दी लाइफ ऑफ हेलास" नामक ग्रन्थ लिखा। इस प्रकार के ग्रन्थों में गम्भीर इतिहास अथवा विवेचनात्मक वर्णन नहीं उपलब्ध होता। इनमें स्थान स्थान पर कल्पना का सन्निवेश मिलता है, जिसके कारण ऐतिहासिकता बहुत अंशों में समाप्त हो जाती है।

इस काल में संस्मरण भी लिखे गये, जिनकी गणना ऐतिहासिक साहित्य की कोटि में की जाती है। संस्मरण—लेखकों में सैटिरस उल्लेखनीय है। इसने "लाइफ़ ऑफ यूरीपिडीज़" लिखा। हर्मिपस भी इसी कोटि का लेखक था। सबसे महत्त्वपूर्ण संस्मरण-लेखक ऐंटिगोनस था। इसने तृतीय शताब्दी ई० पू० तक के दार्शनिकों की जीवनी लिखी। संस्मरण-ग्रन्थ उत्कृष्ट इतिहास के अन्तर्गत नहीं आते। इनके वर्णनों में सत्य और कल्पना के स्थल एक दूसरे से इतना घुल मिल गये हैं कि उन्हें एक दूसरे से पृथक करना कठिन कार्य हो जाता है।[१]

इस काल में विभिन्न देशों का इतिहास लिखने की भी चेष्टा की गई। इनमें वैबीलोनिया, फिनिशिया, जुडिआ, अरब, मिश्र, यूथोपिया तथा कार्थेज आदि के इतिहास उल्लेखनीय हैं। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनके लिखने का कार्य स्थानीय लेखकों के द्वारा संपन्न हुआ जो कि अपने यहाँ के महत्वपूर्ण एवं संबन्धित प्राचीन लेखों से परिचित थे। उन्होंने अपने ग्रन्थों की भाषा यूनानी रखी।

कतिपय समालोचकों के अनुसार हेलेनिस्टिक-कालीन इतिहास दोषरहित नहीं है। इस समय की ऐतिहासिक रचनाओं में किसी प्रकार की उत्कृष्टता नहीं उपलब्ध होती। पर यदि वस्तुस्थिति पर गंभीरतापूर्वक विचार किया

१ "Truth and falsehood had become hopelessly fused."—Tarn.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जाय तो यह आरोप समीचीन नहीं प्रतीत होता। तत्कालीन कुछ इतिहासकार ऐसे भी थे जिन्होंने घटनाओं का यथार्थ निरूपण करते हुये इतिहास-रचना के क्षेत्र में एक नवीन आदर्श प्रस्तुत किया था। इनकी कृतियों की विशेषताओं का कालान्तर के ऐतिहासिक ग्रन्थों पर विशेष प्रभाव मिलता है।

गद्य—हेलेनिस्टिक काल में इतिहास के अतिरिक्त गद्यसंबन्धी अन्य ग्रन्थ भी लिखे गये, जिनका वर्गीकरण कुछ इस प्रकार किया जा सकता है। (१) **वक्तृतायें**—राजनीति के कुशल वक्ताओं ने अपनी वक्तृताओं को प्रकाशित किया। परिणामस्वरूप एक नवीन प्रकार के गद्य-साहित्य का सृजन हुआ, जिसे व्याख्यान-साहित्य कहते हैं। (२) **यात्राविवरण**—इस समय के यात्रियों ने अपनी यात्राओं का मनोरम विवरण प्रस्तुत किया। इनसे देश और काल के ज्ञान में बहुत बड़ी सहायता उपलब्ध होती है। (३) **कथायें**—कथाओं को लिखने के निमित्त लेखकों ने गद्य का आश्रय लिया। ये कथायें लोकप्रिय थीं। (४) **वाद-विवाद**—इस शैली को दार्शनिकों ने अपनाया था। इसमें वाद-विवाद के द्वारा अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन एवं विपक्ष मत का खंडन उपलब्ध होता है। (५) **मनोवैज्ञानिक विश्लेषण**—इतिहासकार ट्रेवर के अनुसार इस काल के मनोवैज्ञानिक विवरण प्राचीन सामाजिक पृष्ठभूमि के जिज्ञासुओं के लिये उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुये हैं। (६) **यूटोपियन साहित्य**—इस काल के गद्य में "यूटोपियन साहित्य" भी आता है। इस कोटि के ग्रन्थों में काल्पनिक आदर्श समाज का चित्रण उपलब्ध होता है। इनमें ज़ेनो के विश्व राज्य का उल्लेख किया जा सकता है। इस ग्रन्थ में साम्यवाद को महत्ता प्रदान की गई है। इसके अनुसार विश्व के सभी मनुष्य पारस्परिक भातृभावना के सूत्र में एकबद्ध हैं। इस प्रकार के राज्य में पूर्ण शांति, सुरक्षा तथा बंधुत्व की भावना की प्रतिष्ठा थी। यूटोपियन लेखकों में मसेना का निवासी डिकार्कस भी आता था। वह अरस्तू का शिष्य था। उसने सभ्यता के आविर्भाव के पूर्व के समाज की तुलना स्वर्ग से की है। इस प्रकार के समाज में कलुषता का अभाव था तथा मनुष्य को धन की कोई भी आवश्यकता नहीं थी। इस काल का मनुष्य संतुष्ट था। उसकी कृतियाँ उसके स्वभाव के सर्वथा अनुकूल थी (७) **जीवनचरित**—सिकन्दर की कृतियों ने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस समय के लेखकों को जीवनचरित लिखने के लिये सामग्री प्रदान की। थोड़े ही समय के भीतर लगभग पच्चीस ऐसे ग्रन्थ तैयार किये गये जो कि उसके प्रारंभिक जीवन एवं सम्राट के रूप में उसके कार्यों से संबन्धित हैं। सिकन्दर का सर्वोत्कृष्ट जीवनचरित टालमी ने लिखा। इस सम्राट के साथ रहने के कारण वह उसकी कृतियों से व्यक्तिगत रूप में परिचित था। अतएव उसके वर्णन विश्वसनीय तथा सन्तुलित हैं। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि सिकन्दर के जीवनचरित-संबन्धी कतिपय ग्रन्थों में काल्पनिक समावेश अधिक हैं। उदाहरणार्थ क्लिटार्कस ने उसे विलक्षण प्रतिभा एवं शक्ति से संपन्न व्यक्ति सिद्ध करने के लिये उसकी प्रशंसा अतिशयोक्ति के साथ की है। ऐसी रचनाओं की जनता में अधिक माँग थी, क्योंकि इनमें आने वाले वर्णन रोचक एवं आह्लादकारी थे। (८) **आलोचनायें**—हेलेनिस्टिक काल में प्राचीन साहित्य पर आलोचनात्मक ग्रन्थ प्रस्तुत किये गये। सिकन्दरिया के कुछ विद्वानों ने होमर की कृतियों पर टिप्पणियाँ लिखीं। इनमें उनके गुण-दोष की गहराई के साथ छान-बीन की गई। कठिन शब्दों का अर्थ तथा महत्त्व-पूर्ण स्थलों की व्याख्या आदि इनमें दी गई, जिसके कारण पुरातन ग्रन्थ लोगों को सरलता के साथ बोधगम्य हुये और उनकी माँग बढ़ने लगी।

काव्य—इस काल में सिकन्दरिया काव्य का एक प्रतिष्ठित केन्द्र था। यहाँ पर प्रसिद्ध काव्यकारों का आविर्भाव हुआ। इनमें कैलीमेकस का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वह एक पढ़ा-लिखा व्यक्ति था, अतएव उसकी रचनाओं पर उसके पांडित्य का प्रभाव स्पष्टतया परिलक्षित होता है और उसे हम विद्वान कवि की संज्ञा प्रदान कर सकते हैं। जहाँ तक काव्य के कला-पक्ष का प्रश्न है, उसने भविष्य के लेखकों के लिये एक आदर्श प्रस्तुत किया था। उसके ग्रन्थों की उत्कृष्टता को देखते हुये कालान्तर के एक समा-लोचक ने उसे 'अनवद्य' लेखक कहा है। इसकी कृतियों में हम प्रणय का निरूपण पर्याप्त मात्रा में पाते हैं। इस काल का दूसरा प्रसिद्ध काव्यकार एपो-लोनियस नामक था। यह कैलीमेकस का शिष्य रह चुका था। पर कालान्तर में इन दोनों में बहुत अधिक द्वेष हो गया। फलस्वरूप दोनों एक दूसरे के सबल प्रतिद्वन्द्वी सिद्ध हुये। टालमी नरेशों का कृपापात्र बनने के लिये इन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दोनों में विलक्षण संघर्ष छिड़ा। एपोलोनियस ने एक विशाल महाकाव्य की रचना की। कैलीमेकस ने इस ग्रंथ की कटु आलोचना करते हुये कहा कि ग्रन्थ का बहुत बड़ा होना एक महान् दोष है। परंतु वास्तविकता यह है कि यह एक उत्कृष्ट रचना थी। इस ग्रंथ से इसका समकालीन टालमी नरेश बहुत अधिक प्रसन्न हुआ। उसने पुरस्कार के स्वरूप में इसे राजकीय पुस्तकाध्यक्ष के पद पर नियुक्त किया। उसके महाकाव्य को वर्जिल ने अपना आदर्श बनाया था। थिआक्रिटस इस काल के काव्यकारों में सबसे अधिक प्रसिद्ध था। वह सिसली से जीविका की खोज में सिकन्दरिया आया था। उसने टालमी द्वितीय का गुणगान किया। टालमी ने भी प्रसन्न होकर इसको पुरस्कार देते हुये अपने दरबार में सम्मानित किया। जीविकापालन के लिये ही यह सिकन्दरिया में बसा हुआ था, अन्यथा इसका कवि-हृदय सिसली की प्राकृतिक छटा में अनुरक्त था। यही कारण है कि इसकी कृतियों में ग्राम के दृश्य सुन्दर ढंग से अंकित मिलते हैं। इसीलिये इसकी कविता को "ग्रामीण काव्य" कहा जाता है। इसके ग्रंथों में प्रणय का भी वर्णन मिलता है। उसने नगर-जीवन की विषमता, संकुलता तथा दोषों को प्रकाश में लाते हुये सरल एवं नैसर्गिक ग्राम-जीवन की श्रेष्ठता को महत्त्व प्रदान किया है।

गीति काव्य—इसकी रचना के दो प्रदान लक्ष्य थे—(१) नैतिक उत्थान तथा (२) जनता का मनोरंजन। इस वर्ग के काव्यकार घूम घूम कर लोगों को अपनी कविताओं को सुनाते थे। इनमें प्राकृतिक वर्णन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। इस कोटि के लेखकों में मेनिप्पस तथा क्रेट्स आते हैं। मेनिप्पस के पद ललित एवं गेय थे। यह गदारा का निवासी था। क्रेट्स थीब्ज का रहने वाला था। उसकी उक्तियाँ मार्मिक एवं प्रभाव उत्पन्न करने वाली थीं। इतिहासकार ट्रेवर का कथन है कि हेलेनिस्टिक गीति-काव्य की उत्कृष्टता के प्रति संदेह प्रगट करना बहुत बड़ी भूल होगी। रोम के कवियों ने इससे प्रेरणा प्राप्त की थी।

नाटक—हेलेनिस्टिक काल के नाटककारों में सबसे प्रसिद्ध मेनेन्डर (३४० ई० पू०-२६१ ई० पू०) था। यह सुप्रसिद्ध नाटककार एलेक्सीज़ का भतीजा था। यह थिओफ्रेस्टस नामक आचार्य का शिष्य था। प्रारंभ में ही नाटक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिखने में इसकी विशेष रुचि थी। इसने एक सौ चार ग्रंथों की रचना की थी। इसके ग्रंथ उत्कृष्ट कोटि के माने जाते हैं। इसकी शैली परिमार्जित, परिपक्व एवं प्रभावशालिनी है। इसकी पंक्तियाँ प्रसिद्ध उद्धरण के रूप में आज भी प्रचलित हैं, उदाहरणार्थ—बुरी भावनायें सदाचार को भ्रष्ट करती हैं, अन्तःकरण की प्रवृत्तियाँ भीरु को साहसी बनाती हैं तथा प्रत्येक वस्तु का विनाश अपनी आंतरिक बुराइयों के कारण होता है। कहा जाता है कि यह नाटककार स्वभाव का मनमौजी था। प्रायः राजाओं के निमंत्रण को भी वह अस्वीकार कर देता था। टालमी प्रथम के द्वारा आमंत्रित होने पर इसने स्वयं न जाकर अपने मित्र को भेजा था। बावन वर्ष की अवस्था में इसकी मृत्यु हुई थी।

उसने अपनी रचनाओं के द्वारा सुखान्त नाटक लिखने की एक नवीन परंपरा स्थापित की। उसकी कृतियों में बदलते हुये युग का प्रतिबिम्ब मिलता है। उसने आचरण के पुराने आदर्शों एवं परंपरा के समर्थक व्यक्ति की भावनाओं की कटु आलोचना की तथा नवीन विचारों से ओत-प्रोत नवयुवक के हार्दिक उद्गार, स्वच्छन्द समाज के तरुण एवं तरुणी के स्वाभाविक प्रेम और स्वामी के कठोर अत्याचारों के विरुद्ध दास की विद्रोह-भावना आदि का निरूपण किया। इसकी रचनाओं का प्रभाव रोम के नाटककारों पर पड़ा था। इस काल के अन्य प्रसिद्ध नाटककारों में फिलेमन का नाम भी उल्लेखनीय है। एथेंस के लोग इसे मेनेन्डर से भी महान् लेखक मानते थे। इस काल में नाटकों का अभिनय भी प्रचुर मात्रा में होता था। प्रायः प्रत्येक नगर में अभिनय के निमित्त प्रेक्षागृह बने हुये थे। अभिनय में भाग लेने वालों को समाज बहुत ही सम्मानित दृष्टि से देखता था।

इस समय हास्यरस-प्रधान नवीन कोटि के नाटक ग्रन्थ लिखे गये, जिन्हें माइम (भाँड़-साहित्य) कहा जाता है। इनमें जीवन के प्रत्येक वर्ग के प्रतिनिधि पात्रों का उपहासपूर्वक अनुकरण उतारा गया है। इस प्रकार के नाटकों के लिखने की परंपरा सबसे पहले इटली अथवा सिसली में प्रारंभ हुई तथा कालान्तर में यह रोम में लोकप्रिय हुई। हेलेनिस्टिक काल में यह प्रथा सिकन्दरिया में सबसे अधिक प्रचलित थी। थिआक्रिटस ने भी इस कोटि के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नाटक लिखे थे। उसने सिसली के गड़ेरियों एवं चरवाहों के जीवन का निरूपण किया था। इसकी कृतियों में व्यंग की भरमार मिलती है। इस कोटि के ग्रन्थों में वार्तालाप की शैली परुष है, अतएव इनमें पूर्णता नहीं आ सकी है और इनमें से कुछ को यदि हल्के प्रकार का साहित्य कहा जाय तो संभवतः यह तथ्यों से रहित न होगा।

भूगोल—इस काल में भौगोलिक ग्रंथों की भी रचना हुई। सर्वप्रथम इरैटोस्थनीज़ का उल्लेख किया जा सकता है। उसने भूमध्यसागरीय देशों का वर्णन किया है। उसने पूर्वी देशों का भी वर्णन किया। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि दजला फरात घाटी के पूर्व के देशों का उसने जो भूगोल दिया है वह दूसरे लेखकों के वर्णन पर आधारित है। अतएव इन अंशों में उतनी विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता नहीं उभड़ पाई है जितनी अपेक्षित है। उसकी शिक्षा एथेन्स में संपादित हुई थी, पर वह कालान्तर में सिकन्दरिया चला आया था। अरस्तू की भाँति उसकी भी प्रतिभा बहुमुखी थी। भूगोल के अतिरिक्त गणित, विज्ञान, दर्शन तथा साहित्य आदि में उसकी अभिरुचि थी। उसने अपनी गणना के आधार पर पृथ्वी की परिधि २४,६६२ मील (२५२,००० स्टेडीज़) बताई जो कि वास्तविक गणना (२४,८५७ मील) के समीप है। उसने विश्व का एक मानचित्र बनाते हुये उसे अक्षांश एवं देशान्तर में विभाजित किया तथा विश्व के प्रमुख केन्द्रों के स्थान का उसमें निर्देश भी किया। इस काल का सबसे प्रसिद्ध भूगोल-लेखक एगाथर्काइडीज़ था। उसके लालसागर-संबन्धी वर्णन सबसे अधिक प्रामाणिक एवं विश्वसनीय माने जाते हैं। उसने इस समुद्र-तट पर रहने वाले निवासियों के जीवन तथा उनके सामाजिक एवं धार्मिक संगठन के विभिन्न अंगों का रोचक वर्णन प्रस्तुत किया है। इस समय एपोलोडोरस ने बैक्ट्रिआ तथा चीनी तुर्किस्तान का भौगोलिक विवरण प्रस्तुत किया। पोसीडोनियस भी एक महान् भौगोलिक माना जाता था। इसके वर्णन अधिक यथातथ्य हैं। इसने पश्चिमी एशिया माइनर तथा अरब का भौगोलिक वर्णन किया। उसने "ऑन दी ओशन" नामक एक भूगोल लिखा। उसने ज्वार-भाटा के कारणों के ऊपर प्रकाश डाला तथा पृथ्वी की परिधि की विशालता का पता लगाया। उसके वर्णन अधिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रोचक एवं सजीव हैं। उसने स्पेन के खनिज पदार्थों, एशिया माइनर के ज्वालामुखी स्थलों एवं पश्चिमी यूरोप की जातियों का विवरण किया जिससे स्ट्रेबो की भी भौगोलिक रचनायें प्रभावित हैं। डिकार्कस भी भूगोल का पंडित था। उसने विश्व का मानचित्र प्रस्तुत किया एवं प्रसिद्ध पहाड़ों की ऊँचाई तथा पृथ्वी के परिमाण को निर्धारित किया। उसकी धारणा थी कि सभी महासागर वस्तुतः एक हैं। उसने अटलांटिक महासागर के आकार के संबन्ध में तत्कालीन प्रचलित धारणा का विरोध किया। उसके अनुसार यह महासागर पहले अधिक बड़ा था। इसमें पृथ्वी का भी अंश मिश्रित था, जो अमेरिका के रूप में प्रगट हुआ। उसने पृथ्वी की परिधि तीन लाख स्टेडीज़ के लगभग बताई थी। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि इरैटोस्थनीज़ की तत्संबन्धी गणना अधिक शुद्ध थी। वैज्ञानिक भौगोलिकों में हिप्पार्कस का नाम आता है। उसे अक्षांश एवं देशान्तर का सही एवं समुचित ज्ञान था। नियार्कस ने भारतवर्ष से लेकर बैबीलन तक अपनी समुद्री यात्रा का रोचक वर्णन किया। वह सिकन्दर की जलसेना का नायक था। पिथिसस ने यूरोप के उत्तरी समुद्री तट की यात्रा करते हुये आर्कटिक सागर का पता लगाया।

साहित्यिक विशेषतायें—हेलेनिस्टिक काल के साहित्यकारों की विद्वत्ता में संदेह प्रकट करना ऐतिहासिक तथ्यों से रहित होगा। ये लेखक मौलिक साहित्य के सृजन में सर्वथा सफल थे। उनका दृष्टिकोण आलोचनात्मक एवं वैज्ञानिक था। इस काल की साहित्यिक क्रान्ति के कारण शिक्षा के विकास में महान् प्रेरणा मिली। आख्यान, कथाओं, गल्प एवं इतिहास ने अध्ययन के निमित्त अभिरुचि उत्पन्न की। इस समय के ग्रन्थों में तत्कालीन नगर एवं ग्रामीण जीवन तथा नैसर्गिक वातावरण का सुन्दर प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर होता है। पेरिक्लीज के काल में दुःखान्त नाटकों की रचना प्रधान रूप से हुई थी। पर हेलेनिस्टिक काल में अधिकांशतः सुखान्त नाटक लिखे गये। इस समय के दुःखान्त नाटककारों में केवल लिकोफ्रोन आता है, पर उसकी रचनायें अधिक उत्कृष्ट नहीं मानी जातीं।

कला—हेलेनिस्टिक काल कलात्मक विकास के निमित्त विश्व इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। इस समय कला के क्षेत्र में नवीन परिवर्तन दृष्टि-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गोचर होते हैं। इसके पूर्व यूनानी कला प्रधान रूप से धर्म से संबन्धित थी। इस देश के कलाकारों ने अपनी निपुणता का परिचय देवालयों एवं देव-प्रतिमाओं के निर्माण में दिया। पर हेलेनिस्टिक कला धर्म की सीमित परिधि का अतिक्रमण कर एक व्यापक क्षेत्र में प्रसारित हुई। इस समय कला का विषय प्रधानतः लौकिक था।[१]

तत्कालीन आर्थिक विकास के कारण हेलेनिस्टिक कला को एक समृद्ध वातावरण में पनपने का सुअवसर उपलब्ध हुआ। इस समय के कलाकार इस युग की नवीन सूझ एवं जीवन के प्रति मौलिक दृष्टिकोण से परिचित हुये। यात्रासंबन्धी ग्रन्थों के प्रकाश में आने के कारण शिल्पकारों की प्रतिभा नव परिचय के द्वारा परिवर्द्धित हो उठी। परिणामतः इस काल के स्थापत्य में कलात्मक गुणों का चूड़ान्त निदर्शन समुपलब्ध होता है।

हेलेनिस्टिक नरेश कला के प्रेमी थे। उन्हें अपनी समृद्धि के अनुकूल विशाल नगरों को बसाने के लिए निपुण कलाकारों की आवश्यकता प्रतीत हुई। धार्मिक व्यक्तियों के समस्त ठाटबाट की सामग्री से सुसज्जित भव्य महलों के निर्माण का प्रश्न था। इस कारण प्रायः सभी प्रसिद्ध नगरों में पारंगत कलाकार मिलने लगे। मिश्र के सिकन्दरिया जैसे अंतर्राष्ट्रीय केन्द्रों में नाना देशों के कारीगर रहने लगे। उन्हें एक दूसरे की कला की विशेषताओं को समझने का सुयोग प्राप्त हुआ। परंपरागत कला-संबन्धी रूढ़ियाँ एवं प्रतिबन्ध समाप्त हो गये। नवीनता के समावेश की भावना के कारण पूर्वकालीन सीमाओं को तोड़ दिया गया।

समृद्ध नागरिक भव्य मूर्तियों का समुचित मूल्य देने लगे। एक ही प्रतिमा के लिये सौ टैलेंट मुद्राओं के देने के प्रमाण प्राप्त होते हैं। अतएव मूर्ति-निर्माण जीविका का अच्छा साधन सिद्ध होने लगा और इसने पैतृक व्यवसाय का रूप धारण किया। असाधारण केन्द्रों में भी इसीलिये बहुसंख्या में मूर्तियाँ सुशोभित रहती थीं। रोम के लेखकों के अनुसार थर्मम में दो हजार मूर्तियाँ

---

१ "Architecture and art in Hellenistic Age was essentially secular in character" —Caldwell.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा लगभग इतनी ही अम्ब्रेसिया में भी विद्यमान थीं, यद्यपि ये दोनों स्थान कला के कोई केन्द्र नहीं थे। इस प्रमाण के द्वारा हम तक्षणकला की लोकप्रियता का अनुमान लगा सकते हैं।

नगर-विन्यास—इस काल की कला का प्रथम दर्शन हमें तत्कालीन नगर-विन्यास में प्राप्त होता है। इतिहासकार ट्रेवर के शब्दों में हेलेनिस्टिक काल नगर-निर्माण का युग था। इस समय इस क्षेत्र में जितनी प्रगति हुई, उतनी पूर्व काल में किसी समय भी नही हुई थी।[१]

इस काल के नगरों में कोरिन्थ, सिराक्यूज, टैरेन्टम, मस्सिलिया, रोड्स और पर्गेमम प्रसिद्ध माने जाते थे। इस काल में सिकन्दर और सेल्यूकस ने सिकन्दरिया तथा सेल्यूसिया नामक नगरों की स्थापना की। सिकन्दरिया नामक नगरों में सबसे प्रसिद्ध मिश्र का सिकन्दरिया था। इसकी जनसंख्या ५ लाख के लगभग थी। इसमें यूनान, रोम, एशिया माइनर, फारस, सीरिया तथा अरब आदि देशों के निवासी रहते थे। स्ट्रेबो के अनुसार यह नगर तीन मील लम्बा और डेढ़ मील चौड़ा था। प्लिनी लिखता है कि इसकी परिधि दस मील के लगभग थी। यह नगर आयताकार था। इसकी सड़कें चौड़ी और संख्या में अधिक थीं। चौराहों पर प्रकाश-स्तंभ बने हुये थे। नगर की गंदगी को बाहर निकालने के निमित्त नालियाँ बनी हुई थीं। इस नगर के भीतर एक ऊँचा प्रकाश-गृह था। इसकी ख्याति अंतर्राष्ट्रीय थी। सिकंदरिया की प्रतिष्ठा इसमें विद्यमान संग्रहालय के कारण भी सुविशेष थी। यह नगर अपने समय का सुप्रसिद्ध बंदरगाह तथा व्यावसायिक केन्द्र माना जाता था। विश्व के सभी प्रसिद्ध व्यापारिक मार्ग सिकन्दरिया से होकर जाते थे। इस रूप में इसकी ख्याति समस्त विश्व में व्याप्त थी। बौद्धिक केन्द्र के रूप में भी इसकी गणना की जाती थी। इसके भीतर एक पुस्तकालय था, जिसमें विविध विषयों पर पुस्तकें संग्रहीत थीं। इसमें कवियों एवं साहित्यकारों का सर्वदा जमघट लगा रहता था।

---

१ "The Hellenistic Age was an age of great cities and city building for beyond any thing known before." —Trever.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिकन्दर के द्वारा स्थापित अन्य सिकन्दरिया नामक नगरों में सीरिया का सिकन्दरिया उल्लेखनीय है। सेल्यूकस के द्वारा स्थापित सेल्यूसिया नामक नगरों में टर्गिस का सेल्यूसिया बहुत ही प्रसिद्ध था। इतिहासकार ट्रेवर के शब्दों में इन नगरों के विन्यास का ढंग वैज्ञानिक था। पुरातत्व प्रमाण इसका साक्षी है। नगरों का आकार बहुधा आयताकार हुआ करता था। राजमार्गों के निर्माण द्वारा नगर को विभिन्न भागों में विभक्त कर दिया जाता था तथा तदुपरान्त प्रत्येक भाग को पूर्वनिर्धारित योजना के अनुसार बसाया जाता था। यातायात की सुविधा के निमित्त राजमार्गों को ठोस और चौड़ा बनाया जाता था। मिश्र के सिकन्दरिया का प्रधान राजमार्ग १०० फीट चौड़ा था। पर्गेमम की सड़क ३३ फीट चौड़ी थी। सड़कें सीधी रेखा में होती थीं तथा एक दूसरे को समकोण पर काटती थीं। राजकीय भवन नगर के सुरक्षित भाग में स्थित होते थे। एक व्यवसाय के पालन करने वाले बहुधा नगर के एक ही भाग में निवास करते थे। राजमार्ग की स्वच्छता पर पर्याप्त ध्यान दिया जाता था। स्थान-स्थान पर जनता-स्नानगृह, व्यायामशालायें और शौचगृह बने होते थे। प्रत्येक नागरिक के लिये आवश्यक था कि वह अपने घर के सामने सड़क को स्वच्छ रखे। इस बात के निरीक्षण के लिये राजपुरुष नियुक्त किये जाते थे। नगरों की गंदगी को दूर करने के निमित्त नालियाँ बनी होती थीं। ये नालियाँ प्रायः ढकी हुआ करती थीं। नगरों में जलाशय बने होते थे, जिनमें स्वच्छ जल की व्यवस्था की जाती थी। जलाशयों से नगर में जल पहुँचाने के निमित्त नालियाँ बनी होती थी, जिनमें जल पहुँचाने के पूर्व उसे जलशोधन यंत्र से शुद्ध कर लिया जाता था। नगर-चत्वरों पर बाजार, मनोरंजनगृह, पाठशालायें एवं देवालय सुशोभित हुआ करते थे।

भवन—इस काल के भवन कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। गृह-निर्माण में अलंकरण को प्रधानता दी जाती थी। राजमहलों में विशाल कमरे एक ही क्रम में बने होते थे। टालमी नरेशों के प्रासादों से इस प्रकार के कमरों के उदाहरण उपलब्ध हुये हैं। इनमें विशाल स्तंभ बने होते थे, जिनमें प्रस्तरखंड की चुनाई की जाती थी। डेलोस में वर्तमान फिलिप चतुर्थ के प्रासाद में सुदृढ़ स्तम्भों का प्रयोग किया गया था। इस काल में वृत्ताकार भवनों के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निर्माण की एक नवीन शैली का उद्गम हुआ। इस प्रकार के भवन सेमोथ्रेस में विद्यमान थे। इस समय नवीन प्रकार के प्रेक्षागृह बनाये गये, जिन्हें इतिहासकारों ने "ऐम्पिथियेटर" की संज्ञा दी है। इनमें दर्शकों के बैठने के लिये आसनों की पंक्तियाँ क्रमशः एक दूसरे से अधिक ऊपर उठी हुई सुशोभित रहती थीं। इस प्रकार के प्रेक्षागृह हेलेनिस्टिक काल की कला के महत्त्वपूर्ण देन स्वीकार किये जाते हैं। इस काल के भवनों का निर्माण विशेषतया आयोनिक तथा कोरिन्थियन प्रणाली में किया गया। आयोनिक पद्धति के अनुसार बने हुये भवनों में स्तंभ पतले और बनावट में बहुत ही सुन्दर थे। स्तंभ के शिरोभाग में काटछाँट का काम बारीकी के साथ किया जाता था। ये स्तंभ आकार में बहुधा तिकोने हुआ करते थे। इस प्रकार के स्तंभों पर स्थान-स्थान पर मूर्तियाँ भी अंकित की जाती थीं। इस प्रकार के स्तंभ-निर्माण की शैली का जन्म सर्वप्रथम एशिया माइनर में हुआ। सिकन्दर के समय में यूनानी कलाकारों का इस शैली से परिचय हुआ तथा परिणामस्वरूप यूनान में भी इसका प्रचार हुआ। कोरिन्थियन प्रणाली प्रधान रूप से हेलेनिस्टिक कला की देन मानी जाती है। इस शैली में सौंदर्य और अलंकार को आयोनिक प्रणाली से भी अधिक स्थान दिया गया। इसमें स्तंभों के आधार में विभिन्न प्रकार के बेलबूटों, चित्रों एवं आकृतियों के अंकन का कार्य उपलब्ध होता है।

हेलेनिस्टिक काल में धार्मिक एवं लौकिक दोनों प्रकार के भवनों का निर्माण किया गया। धार्मिक प्रकार के भवनों में ओलिम्पिया में वर्तमान ज़ियस का मन्दिर सर्वोत्कृष्ट है। यह मन्दिर बहुत ही भव्य था। लिवी लिखता है कि ज़ियस के तत्कालीन अनेक मन्दिरों में यही एक मन्दिर ऐसा था, जो अपने विलक्षण सौन्दर्य के कारण इस देवता के निवास के निमित्त सर्वथा अनुकूल था। इस काल के अन्य प्रसिद्ध मन्दिरों में मिलेटस का एपोलो-मन्दिर तथा सिकन्दरिया का सर्पियम का मन्दिर उल्लेखनीय है।

हेलेनिस्टिक कला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण पर्गेमम में वर्तमान ज़ियस की वेदी है। यह वेदी ऊँचाई में लगभग १५ फीट है। इसके ऊपर आने के लिये इसके चतुर्दिक सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इसका निर्माण आयोनिक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शैली में हुआ था। वेदी के ऊपर संगमरमर की सुन्दर छत का निर्माण प्राप्त होता है। लौकिक भवनों के अंतर्गत सिकन्दरिया का प्रकाश-भवन तथा यहाँ का संग्रहालय आता है। वह प्रकाश-भवन ४०० फीट ऊँचा था। यह १३२६ ई० तक अपने स्थान पर वर्तमान था। इसकी सुदृढ़ता का प्रमाण यह है कि यह सोलह शताब्दियों तक धूप और बरसात का सामना करता हुआ अपने स्थान पर वर्तमान था। यह भवन तीन मंजिलों से युक्त था। सबसे ऊपरी मंजिल में आठ स्तंभ बने हुये थे। इन्हीं स्तंभों के ऊपर प्रकाश जलाया जाता था। इतिहासकार ट्रेवर का कथन है कि मुसलमानों ने मीनार बनाने का आदर्श इसी प्रकाश-स्तंभ को बनाया था। इसको फेरास की संज्ञा दी गई थी। सिकन्दरिया का संग्रहालय भी बहुत विशाल था। इस भवन में पुस्तकों के रखने की व्यवस्था तथा विद्वानों के रहने का प्रबंध किया गया था। यह संग्रहालय जगत्प्रसिद्ध था। सिकन्दरिया के भवनों में लकड़ी के प्रयोग का अभाव था। इसीलिये किंवदन्ती यह थी कि यह नगर कभी जल नहीं सकता था।

तक्षण-कला—इस काल में तक्षण-कला के क्षेत्र में भी कलाकारों ने अपनी निपुणता का विलक्षण परिचय प्रदान किया। विल डयूरेन्ट का कथन है कि हेलेनिस्टिक काल में जितनी अधिक संख्या में मूर्तियों का निर्माण किया गया, उतना किसी भी युग में नहीं।१

द्रव्य की अपूर्व अभिवृद्धि, निर्माण के लिये उत्साह तथा ऐतिहासिक व्यक्तियों को सम्मानित करने की परंपरा ने इस काल की तक्षण-कला को एक महान् प्रेरणा प्रदान की। इस काल में मूर्तिकला के तीन प्रधान केन्द्र थे—(१) रोड्स, (२) सिकन्दरिया तथा (३) पर्गेमम। प्लिनी का कथन है कि रोड्स में कम से कम १०० ऐसी भव्य मूर्तियाँ थीं, जिनमें से प्रत्येक किसी भी नगर के यश को स्थायी रखने के निमित्त पर्याप्त थी। सिकन्दरिया में टालमी नरेशों के पर्यवेक्षण में मूर्तिकला का विकास संपन्न हुआ। वहाँ की

---

१. "Never has statuary been more abundant than in the Hellenistic Age."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तक्षण-कला प्रैक्सीटेलीज की कला से प्रभावित थी। यहाँ पर निर्मित एक देव-प्रतिमा का वर्णन करता हुआ एक प्राचीन लेखक लिखता है कि यह अत्यन्त सजीव दृष्टिगोचर होती थी। देवालय के गर्भगृह में स्थापित इस मूर्ति के नेत्रों में रत्न जड़े हुये थे। इससे दर्शक के ऊपर एक विलक्षण प्रभाव पड़ता था। यह मूर्ति देवत्व की महानता के सर्वथा अनुकूल थी। सिकन्दरिया में पच्चीकारी एवं नक्काशी का कार्य सुन्दर ढंग से किया जाता था। पर्गमम में लौकिक प्रकार की मूर्तियों का निर्माण किया गया। वहाँ की मूर्ति-कला स्कोपा की कला से प्रभावित थी। इस केन्द्र में निर्मित संगमरमर की मूर्तियों में कुछ के उदाहरण प्राप्त हुये हैं।

इस काल की कला में यूनानी कला का आंशिक अनुकरण मिलता है। यह प्राच्य कला के द्वारा भी कुछ अंशों में प्रभावित थी। इसका आदर्श प्रधानतः मौलिक ही था। इस कला में अतिरंजित यथार्थ-चित्रण मिलता है। फलस्वरूप मूर्तिकला के विषयों में कहीं-कहीं विकृति तथा अभव्यता भी दिखाई देती है। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि ऐसे स्थल बहुत थोड़े ही हैं। इस कला में प्रतीकात्मकता का भी पुट मिलता है। देवयोनियाँ धन, ऐश्वर्य, शांति एवं युद्ध का प्रतीक मानी गई। इस काल के प्रसिद्ध मूर्तिकारों को राजकीय संरक्षण उपलब्ध हुआ। फलस्वरूप ऐतिहासिक मूर्तियों का निर्माण प्रचुर संख्या में हुआ।

इस काल की मूर्तियों में कुछ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—(१) ज़ियस की वेदी का रिलीफ स्कल्पचर—इसका निर्माण पर्गसम् में यूमेनिज़ द्वितीय के संरक्षण में संपन्न हुआ। इसमें एक साथ कई मूर्तियाँ पंक्तिबद्ध निर्मित की गईं हैं। वे एक ही भावना को अभिव्यंजित करती हैं। इनमें यूमेनिज़ द्वितीय के विजय का दृश्य अंकित किया गया है। इस युद्ध के दृश्य का अंकन देव-दानव-संग्राम के रूप में हुआ है। देवगण यूमेनिज और उसके अनुचरों के सूचक हैं तथा दानव बर्बर जातियों को व्यक्त करते हैं। यह "रिलीफ स्कल्पचर" अपने वर्ग की मूर्तियों में श्रेष्ठ स्थान रखता है। (२) रिलीफ स्कल्पचर के एक द्वितीय उदाहरण में सिकन्दर एवं उसके सैनिक दिखाये गये हैं। इतिहास में यह "अलेक्जेंडर सर्कोफेगस" के नाम से प्रसिद्ध है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आजकल यह कांस्टैंटिनोपुल के संग्रहालय में सुरक्षित है। इसमें सैनिकों के अवयव का सौष्ठव एवं उभाड़ देखते बनता है। सिकन्दर के विरोधी पारसीक सैनिकों की भी मूर्तियाँ इसमें बनी हुई हैं। इनके वस्त्र आदि देश और काल के अनुकूल बनाये गये हैं तथा इस दृष्टि से इनमें ऐतिहासिकता का सुन्दर पुट मिलता है। (३) आलेख्य मूर्तियों में डेमोस्थनीज की मूर्ति का उल्लेख किया जा सकता है। इसके निर्माण में ताँबे का उपयोग हुआ है। इसके पूर्व एथेंस में ताम्र-मूर्तियाँ बनाई जाती थीं। संभव है कि इन्हीं के आदर्श पर यह मूर्ति बनाई गई हो। इस प्रतिमा में यथार्थता का प्रतिबिम्ब मिलता है। (४) वैटिकन की एपोलो की मूर्ति—यह उन मूर्तियों की कोटि में आती है, जिनमें दैव योनियों को मानवी स्तर पर दिखाने की चेष्टा की गई है। इसमें मुख-मुद्रा अत्यन्त उग्र है। इस मूर्ति में काट-छाँट का कार्य कुशलता के साथ किया गया है। (५) मेलोस की एफ्रोडाइट की मूर्ति—इससे शांति, संतुलन एवं श्रद्धा की भावना टपकती है। इसकी मुद्रा में भयंकरता एवं उग्रता का नामोनिशान नहीं है। (६) नाइक की मूर्ति—यह एक देवी की मूर्ति है, जो सेमाथ्रेस में स्थापित की गई थी। इसे एक नौका के अग्रभाग में बनाया गया है। इसके वस्त्रों को कलात्मक ढंग से प्रदर्शित किया गया है। वस्त्र के छोर समुद्र की हवा से उड़ते हुये दिखाये गये हैं। इसके एक हाथ में विजय का बिगुल तथा दूसरे हाथ में विजय का मुकुट है। इसे प्रतीकात्मक कला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण माना गया है। ट्रेवर के अनुसार यह सुन्दरतम हेलेनिस्टिक मूर्ति है। (७) रोड्स की मूर्तियों में सूर्य देवता की ताम्र-मूर्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसे "कोलोसस ऑफ रोड्स" कहा जाता है। यह एक विशाल प्रतिमा है। यह "रोडियन शैली" की सबसे सुन्दर मूर्ति मानी जाती है। प्लिनी के अनुसार इस मूर्ति की गणना विश्व के सप्त आश्चर्यों में की जाती थी। इसका निर्माण चारेस नामक कलाकार ने किया था। जनश्रुति के अनुसार इस मूर्ति के निर्माण में अनुमानित व्यय से अधिक खर्च हो गया। परिणामस्वरूप इसने आत्महत्या कर ली थी। यह मूर्ति ऊँचाई में १०५ फीट थी। इतिहासकारों का कथन है कि रोड्स के लोगों को दिखावट एवं विशालता से अधिक प्रेम था। यही कारण है कि

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह मूर्ति इतनी ऊँची बनाई गई थी। (८) रोडियन शैली की एक दूसरी मूर्ति लाग्रोकून नामक थी। इसका निर्माण संगमरमर के द्वारा हुआ था। इतिहासकारों का मत है कि इसका प्रभाव पुनर्जागृति काल के प्रसिद्ध कलाकार माइकेलैंजिलों पर पड़ा था। इसमें ट्रोजन का एक पुजारी अपने पुत्रों को भयंकर सर्पों से बचाता हुआ प्रदर्शित किया गया है। (९) हेलेनिस्टिक मूर्तिकला के श्रेष्ठ उदाहरणों में 'फार्चुन ऑफ ऐंटिओक' नामक मूर्ति भी गिनी जाती है। यह मूर्ति वैटिकन से उपलब्ध हुई है। इसमें एक सुवस्त्रा स्त्री ध्यानावस्थित मुद्रा में प्रदर्शित की गई है। इसके पैरों के समीप एक बालक की आकृति अंकित की गई है, जो अपने सिर पर लच्छेदार मुकुट धारण किये हुये है। इसके हाथ में अनाज का गुच्छा दिखाया गया है। (१०) हेलेनिस्टिक तक्षण-कला में कुछ लघु मूर्तियाँ भी आती हैं, जो विभिन्न पाश्चात्य संग्रहालयों में सुरक्षित हैं, उदाहरणार्थ—हंस के साथ क्रीड़ा करता हुआ अल्पवयस्क बालक, भेड़ चराने वाली वृद्धा स्त्री, गोचारण करने वाला युवक, शावकों के साथ मृग, दानव के पाश से तरुणी को मुक्त करने वाला वीर युवक, धूमिल प्रकाश में शयन करता हुआ पुरुष, मदिरा के आनन्द से उन्मत्त स्त्री। इन मूर्तियों के निर्माण में सूक्ष्म कला का निदर्शन उपलब्ध होता है।

चित्रकला—हेलेनिस्टिक काल में चित्रकला का विकास होना नितांत स्वाभाविक ही था। इसका कारण यह है कि इस काल के शासक चित्रकला के बहुत बड़े प्रेमी थे। सिकन्दर महान् स्वयं चित्रकला को आदर की दृष्टि से देखता था। मिश्र के शासकों ने भी चित्रकला को प्रोत्साहित किया। इनके दरबार चित्रकारों के केन्द्रविन्दु थे। इन लोगों ने राजमहलों की दीवालों को चित्रकारी से सुशोभित कराया। इस काल के धनिक व्यक्तियों की भी चित्रकला के क्षेत्र में अभिरुचि थी। इन लोगों ने चित्रकारों को पुरस्कार एवं उचित पारिश्रमिक दिया। इस काल में विशेषतः भित्ति चित्रों की रचना हुई। भित्ति-चित्रों की प्रमुख विशेषता वर्णचयन, निर्माण तथा प्रदर्शन-चातुर्य है। इनमें प्रकाश तथा छाया का यथोचित प्रदर्शन मिलता है। इस समय के भवनों के फर्श भी चित्रित किये जाते थे। इनमें रंगे हुये

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्थरों का उपयोग किया जाता था। इस प्रकार की चित्रकला का प्रचार मिश्र एवं सीरिया में विशेष रूप से हुआ। इसका कारण यह है कि इन देशों में रंगीन पत्थरों एवं सस्ते श्रमिकों की बहुलता थी। कभी-कभी फर्श पर चित्र बनाये जाते थे। इस प्रकार के चित्रों में युद्ध, प्राकृतिक दृश्य तथा जानवरों के आकार का निरूपण मिलता है। इस समय खाका चित्रों का भी निर्माण हुआ। इनका निर्माण मोटे कपड़े के ऊपर किया जाता था। इस काल का सबसे प्रसिद्ध चित्रकार एपिलीज़ था।

विज्ञान—हेलेनिस्टिक काल विज्ञान के विकास का काल था। इस समय वैज्ञानिक विकास के निमित्त एक सुन्दर पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी। पाइथागोरस एवं अरस्तू ने अपने महत्वपूर्ण अनुसंधानों के द्वारा जिज्ञासुओं को संलग्नता के साथ ज्ञानवर्द्धन के निमित्त नवीन प्रेरणा दी थी। सिकन्दर तथा मिश्र के टालमी नरेशों ने विज्ञान के विकास में अभिरुचि दिखाई। सिकन्दर ने वैज्ञानिकों को अपने दरबार में आमन्त्रित किया तथा उनसे बेबी-लोनिया के ज्योतिष-ग्रंथों का यूनानी भाषा में अनुवाद कराया और इस रूप में उन्हें अधिक लोकप्रिय बनाया। टालमी नरेशों ने भी इसी प्रकार विज्ञान का संरक्षण किया। उन्होंने अपने समकालीन कई प्रसिद्ध वैज्ञानिकों को आर्थिक सहायता प्रदान कर उन्हें गवेषणात्मक कृतियों के उत्पादन में संलग्न किया। इस समय के पाठ्यक्रम में विज्ञान भी सम्मिलित था। तत्कालीन वायुमंडल पूर्ण रूप से बौद्धिक था। पुस्तकालयों, पाठशालाओं, विश्वविद्यालयों तथा प्रयोगशालाओं की स्थापना के कारण लोगों की बुद्धि जागरूक होकर वैज्ञानिक अनुसंधानों में कार्यशील हो उठी थी। हेलेनिस्टिक जगत् के विभिन्न भागों के निवासियों के बीच विचारों का आदान-प्रदान हुआ, जिससे जीवन के प्रति लोगों का दृष्टिकोण परिवर्तित हो उठा। इस काल के मानव ने अंधविश्वास को त्याग कर तर्क के द्वारा सत्य को समझने की चेष्टा की। खगोल विद्या, ज्यामिति, अंकगणित, भौतिक विज्ञान, रसायन शास्त्र, जीवविद्या, शरीरविज्ञान तथा चिकित्साशास्त्र के क्षेत्र में लोगों ने नवीन उत्साह के साथ कार्य करना प्रारम्भ किया।

खगोल विद्या—विज्ञान के विकास में सर्वप्रथम खगोल विद्या उल्लेख-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नीय है। हेलेनिस्टिक काल के पूर्व खगोल शास्त्र का प्रथम विकास बैबीलोनिया में हुआ था। वहाँ पर नक्षत्र-मंडल का नकशा तैयार किया गया, जिसका यूनान के लोगों ने अनुकरण किया। हेलेनिस्टिक काल में लोगों ने आकाश के दृष्ट स्वरूप, प्रधान नक्षत्रों की संख्या एवं उनके स्थान को निर्धारित किया। पृथ्वी, सूर्य और चन्द्रमा के विषय में नवीन जानकारी प्रकाश में लाई गई। (१) खगोल शास्त्र के क्षेत्र में सर्वप्रथम एरिस्टार्कस (३१० ई० पू० –२३० ई० पू०) ने महत्वपूर्ण कार्य किया। उसे सिकन्दरिया का कापरनिकस कहा जाता है। उसने इस बात का निर्देश किया कि सूर्य पृथ्वी से तीन सौ गुना अधिक बड़ा तथा उससे काफी दूर है। उसने यह निश्चित किया कि पृथ्वी अपनी धुरी पर सूर्य के चारों ओर घूमती रहती है। इसी प्रकार अन्यान्य ग्रह भी सूर्य की परिक्रमा लगाते हैं। उसने सूर्य एवं चन्द्रमा के आकार तथा पृथ्वी से उनकी दूरी को निर्धारित करने के लिये एक नवीन उपाय बताया। उसने इस विषय पर एक पुस्तक की रचना भी की, जिसे "ऑन दी साइज़ेज़ ऐंड डिस्टेंसेज़ ऑफ दी सन ऐंड दी मून" की संज्ञा दी गई थी। यह ग्रंथ अपने समय का एक अनुपम ग्रंथ माना जाता था। इसके अन्य ग्रंथों में भी नवीन बातों का प्रतिपादन मिलता है। इस वैज्ञानिक के कुछ विचार यूडोक्सस तथा हेराक्लिडिज़ के विचारों से भी प्रभावित थे। (२) एपोलोनियस—यह एरिस्टार्कस का शिष्य रह चुका था। यह विलक्षण प्रतिभा का व्यक्ति था। इसने अपने आचार्य के वैज्ञानिक सिद्धान्तों का दूरतर प्रचार किया। कतिपय स्थलों पर इसका मत एरिस्टार्कस के मत से विभिन्न था। उदाहरणार्थ एरिस्टार्कस सूर्य-केन्द्रवादी था पर एपोलोनियस भूकेन्द्रवादी था। (३) इस काल में खगोल शास्त्र का सबसे प्रसिद्ध विद्वान् हिप्पार्कस (१४६ ई० पू०–१०६ ई० पू०) था। उसने चन्द्रमा के व्यास तथा पृथ्वी से उसकी दूरी निर्धारित की। इसी प्रकार उसने सूर्य की विशालता तथा उसकी दूरी का पता लगाया। नक्षत्रों के ऊपर उसका अध्ययन सबसे अधिक सुन्दर था। प्रायः वह पूरी रात जागकर नक्षत्रों की गति को सूक्ष्मता एवं ध्यान के साथ देखा करता था। उसने नक्षत्रों की एक वृहत् सूची तथा एक विशाल नक्शा तैयार किया। इसमें उसने १०८० नक्षत्रों के स्थान को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निर्धारित किया। उसने ग्रहण के सम्बन्ध में गहराई के साथ छानबीन की। लोगों का कहना है कि वह कुछ अंशों तक बैबीलोनिया के वैज्ञानिकों से प्रभावित था। उसके ग्रहण-सम्बन्धी विचारों के बीज बैबीलोनिया के 'किडेनस' नामक वैज्ञानिक के अनुसन्धानों में उपलब्ध होते हैं। उसने एक स्थान पर किडेनस का नामोल्लेख भी किया है। कालान्तर में इसकी नक्षत्र-सूची का उपयोग अन्य वैज्ञानिकों के द्वारा किया गया। किडेनस ने इस बात का निर्देश किया कि पृथ्वी सूर्य के चतुर्दिक परिक्रमा लगाती है। उसकी गणना के अनुसार वर्ष का मान ३६५ दिन, ५ घंटा, ४१ मिनट तथा ४.१६ सेकेंड होता है। इसमें वास्तविक गणना से केवल ७ मिनट और १६ सेकेंड का ही अन्तर पड़ता है।

ज्यामिति एवं अंकगणित—(१) इस काल का सबसे प्रसिद्ध गणितज्ञ यूक्लिड नामक व्यक्ति था। इसकी गति रेखागणित के क्षेत्र में सुविशेष थी। उसने 'एलिमेंट्स' नामक पुस्तक की रचना की जिसमें उसके अनुसन्धानों का वर्णन मिलता है। विश्व के अनेक शिक्षालयों में अभी हाल तक यह पुस्तक पाठ्यग्रन्थ के रूप में सम्मिलित थी। इससे उसकी श्रेष्ठता का अनुमान लगाया जा सकता है। इसने 'कोनिक्स' नामक एक दूसरे ग्रन्थ की रचना की। इसमें उसने कोण के ऊपर नवीन बातें बताईं। वह अपने समय का एक सुप्रसिद्ध शिक्षक भी था। सिकन्दरिया में उसने एक विद्यालय खोल रखा था, जिसमें वह अध्यापन का कार्य करता था। वह निःशुल्क शिक्षा दिया करता था। कुछ समालोचकों का कथन है कि वह कोई मौलिक गणितज्ञ नहीं था। उसकी कृति प्राचीन, मध्य एवं अर्वाचीन युग में एक सफल पाठ्य-पुस्तक भले ही रही हो, पर उसमें कोई नवीनता नहीं थी। पर यह आरोप समीचीन नहीं है। उसकी प्रतिभा बहुमुखी थी तथा नवीन तथ्यों के अनुसन्धान का श्रेय उसे कई रूपों में था। वह आर्किमिडीज़ की भाँति प्रखर बुद्धि से सम्पन्न एवं ज्ञान का वास्तविक पुजारी था। (२) एपोलोनियस भी गणितज्ञ माना जाता था। वह यूक्लिड की परम्परा में आता था। उसने कोण के विषय में महत्वपूर्ण बातों का निर्देश किया। कुछ लोगों का अनुमान है कि त्रिकोण-मिति के श्रीगणेश का श्रेय उसी को था। (३) इरैटोस्थनीज़

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की भी गणना इस काल के प्रसिद्ध गणितज्ञों में होती थी। जब वह चालीस वर्ष का था, तभी उसकी प्रतिभा से प्रभावित होने के कारण टालमी तृतीय ने उसे सिकन्दरिया के पुस्तकालय का अध्यक्ष बनाया। उसने अनुपात के ऊपर महत्वपूर्ण अध्ययन किया था। उसकी प्रतिभा बहुमुखी थी। वह कवि एवं इतिहासकार भी था। उसने "क्रोनोग्राफिआ" नामक ग्रन्थ में विशिष्ट ऐतिहासिक घटनाओं की सूची प्रस्तुत की थी। वह नक्षत्र-शास्त्र का भी ज्ञाता था। उसने पृथ्वी तथा अन्य नक्षत्रों की स्थिति के ऊपर सुन्दर अध्ययन किया। वह प्रधान रूप से भूगोल का विद्वान था। उसने "जिआग्रैफिका" नामक पुस्तक की रचना की थी। उसने इस ग्रन्थ में मेगस्थनीज तथा अन्य व्यक्तियों की रचनाओं का (जिन्होंने अनेक देशों का भ्रमण किया था) उपयोग किया। वह सबसे पहला विद्वान् था, जिसने बताया कि स्पेन से अफ्रीका का चक्कर लगाते हुये भारतवर्ष पहुँचा जा सकता है। इस भौगोलिक के अनुसार यूरोप, एशिया तथा अफ्रीका पहले एक ही महाद्वीप के अन्तर्गत थे। उसने कई नवीन सामुद्रिक मार्गों का निर्देश किया। उसने ज्वार-भाटा के ऊपर भी अनुसन्धान किया था। (४) जेमिनस ने अपने काल तक के गणित-सम्बन्धी आविष्कारों के ऊपर एक पुस्तक की रचना की।

भौतिक विज्ञान—आर्किमिडीज (२८७ ई० पू०–२१२ ई० पू०) हेलेनिस्टिक काल का सबसे प्रसिद्ध भौतिक विज्ञान का पंडित था। उसका जन्म सिराक्यूज में २८७ ई० पू० में हुआ था। वह फीडिअस नामक नक्षत्रवेत्ता का पुत्र था। वह पढ़ने के लिये सिकन्दरिया आया था। वहाँ पर यूक्लिड के शिष्यों से उसने शिक्षा प्राप्त की थी। प्रारम्भ से ही विज्ञान से उसका प्रगाढ़ अनुराग था। न्यूटन की भाँति भोजन तथा जल आदि को छोड़कर वह घंटों विचारमग्न रहता था। उसके दस ग्रन्थ उपलब्ध हुये हैं—(१) दी मेथड, (२) ए कलेक्शन ऑफ लेम्मस, (३) दी मेज़रमेंट ऑफ ए सर्किल, (४) दी काड्रेचर ऑफ दी पैरेबोला, (५) ऑन स्पिरल्स, (६) दी स्फियर ऐंड दी सिलिंडर, (७) ऑन कोनोइड्स ऐंड शेरोइड्स, (८) दी सैंड रेकनर, (९) ऑन प्लेन इक्विलिब्रियम्स तथा (१०) ऑन फ्लोटिंग बॉडीज़।

आर्किमिडीज़ के अन्वेषणों से विश्व का विशेष कल्याण हुआ। कहते

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हैं कि उसी के सिद्धान्तों का अनुगमन कर नील नदी की बाढ़ के पानी को नलों के द्वारा कृषि के उपयोग में लाया गया। उसकी चिन्तन-सम्बन्धी कथायें आज भी आख्यान के रूप में प्रचलित हैं। कहा जाता है कि गम्भीर विचार करते समय वह सुध बुध खो बैठता था। उसका सबसे प्रसिद्ध अनुसन्धान "प्रिंसिपल ऑफ आर्किमिडीज़ अथवा "लॉस ऑफ वेट" कहलाता है। इसका अन्वेषण उसने विलक्षण परिस्थितियों में किया था। हायरोन नामक एक राजा ने किसी स्वर्णकार को कुछ स्वर्ण राजमुकुट के निर्माण के लिये दिया था। स्वर्णकार ने कुछ सोना चुरा लिया तथा बराबर वजन की चाँदी उसमें मिला दी। जब राजमुकुट तैयार किया गया, तो उसका वजन दिये हुये सोने के तौल के बराबर निकला। परन्तु राजा को राजमुकुट के चमक में कमी प्रतीत हुई। इस कारण उसे मिलावट का सन्देह हुआ। उसने इस बात को पकड़ने के लिये आर्किमिडीज को बुलाया। आर्किमिडीज बहुत दिनों तक इस बात का पता लगाने में असफल रहा, परन्तु एक दिन उसने सहसा इसके लिये उपाय ढूँढ़ निकाला। एक बार जब वह टब में नहा रहा था, उस समय उसे अपना वजन हल्का प्रतीत हुआ। इससे उसने सिद्धान्त निकाला कि पानी के अन्दर की वस्तु अपने द्वारा हटाये हुये पानी के तौल के बराबर हल्की हो जाती है। इससे उसे तुरन्त प्रतीत हुआ कि राजमुकुट की समस्या को वह हल कर लेगा। वह टब के बाहर निकल आया और "पता लगा लिया, पता लगा लिया" (यूरेका, यूरेका) चिल्लाता हुआ राजा के पास आया। उसकी इच्छा के अनुसार बराबर वजन का सोना और चाँदी मँगाई गयी। चाँदी का घनत्व सोने के घनत्व से अधिक होता है, अतएव चाँदी को डुबोने पर सोने की समता में अधिक पानी ऊपर उठ आया। इस प्रकार की तुलना पहले दिये हुये वजन के सोने एवं राजमुकुट को जब डुबोकर की गई, तब चाँदी के मिश्रण के कारण राजमुकुट के द्वारा सोने से अधिक जल ऊपर उठाया गया। इस प्रकार उसने यह सिद्ध कर दिया कि राजमुकुट में चाँदी का मिश्रण किया गया था। राजा ने प्रसन्न होकर उसे पुरस्कार दिया। उसने पाई के मूल्य (वृत्त की परिधि एवं व्यास का अनुपात) का भी निर्धारण किया था। आर्किमिडीज एक कुशल योद्धा भी था। जहाजी बेड़ों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के वैज्ञानिक गतिसंधान में वह बहुत ही कुशल था। भयानक परिस्थितियों में उसने अपनी सैनिक सेवाओं के द्वारा राष्ट्र की रक्षा विभिन्न अवसरों पर की थी।

भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में इस काल के दो और व्यक्ति भी विशेषज्ञ समझे जाते थे (१) टेसिवियस और (२) हेरो। टेसिवियस सिकन्दरिया का का रहने वाला था। उसने आर्किमिडीज़ के सिद्धान्त "लॉस ऑफ वेट" को अधिक प्रमाणित कर उसका दूरतर प्रचार किया। उसने कई यंत्रों के आविष्कार किये। उदाहरणार्थ उसने एक पाषाणक्षेपक यंत्र का आविष्कार किया। यह यंत्र विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध हुआ। यद्यपि इस काल में अल्प वेतन पर श्रमिक सरलतापूर्वक उपलब्ध हो जाते थे, तथापि कम मेहनत में अधिक कार्य के संपादन के हेतु इस प्रकार के यंत्र की बड़ी आवश्यकता थी। उपर्युक्त यंत्र ने कुछ स्थानों पर अपने काल की श्रमविषयक आर्थिक समस्या के सुलझाव में योग दिया था। इस वैज्ञानिक को जलघड़ी के भी आविष्कार का श्रेय था। हेरो ने भौतिक विज्ञान के ऊपर भी अपनी लेखनी उठाई थी। (३) एरिस्टार्कस ने सूर्य-घड़ी का आविष्कार किया। (४) हेरोन सिकन्दरिया का वैज्ञानिक था। इसने भाप की शक्ति के ऊपर अनुसंधान किया।

यहाँ पर उल्लेखनीय हो जाता है कि जिन यन्त्रों का हेलेनिस्टिक काल में अनुसन्धान हुआ, उनमें अधिकांश को विशेष प्रयोग में नहीं लाया गया। इसके दो कारण थे—(१) एक तो इनका अनुसन्धान ऐसे व्यक्तियों के द्वारा किया गया जो कि अपने आपको दार्शनिक मानते थे। अतएव अपने द्वारा यंत्रों के प्रयोग को उन्होंने स्वकीय मर्यादा के विरुद्ध समझा। (२) इस समय मज़दूर इतने सस्ते थे कि यन्त्र अनावश्यक समझे गये। रोम-साम्राज्य के काल में सम्राट वेस्पेसियन को एक आविष्कारक ने मार्ग-निर्माण करने वाले एक यंत्र को प्रस्तुत किया। वह इसे देख कर प्रसन्न हुआ तथा उसे पुरस्कार भी दिया। पर उसकी आज्ञा से यंत्र जमा कर दिया गया क्योंकि इसके प्रयोग में लाने पर कई गरीब व्यक्तियों की रोज़ी मारी जाती।

शरीर-विज्ञान—हेरोफिलस शरीर-विज्ञान का सबसे बड़ा ज्ञाता था। इसके कार्य-कलाप का प्रधान केन्द्र सिकन्दरिया का नगर था। उसने बताया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि मनुष्य का मस्तिष्क शरीर का सम्राट है। उसने नाड़ी विज्ञान के ऊपर महत्त्वपूर्ण अन्वेषण किये। उसके अनुसार शरीर के भीतर दो प्रकार की नाड़ी होती है। (१) धमनी—इनमें शुद्ध रक्त भरा होता है। हृदय का साफ खून इनके द्वारा शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचाया जाता है। (२) शिरायें—इनमें अशुद्ध रक्त रहता है। शरीर का गंदा खून इनके द्वारा सफाई के लिए हृदय में पहुँचाया जाता है। उसने रुधिर-संचार के ऊपर अनेक महत्त्वपूर्ण अनुसंधान किये। इसने स्वास्थ्य की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए कहा कि इसके बिना विज्ञान, कला तथा द्रव्य आदि सभी निरर्थक सिद्ध हो जाते हैं।

वनस्पति-शास्त्र—वनस्पति-शास्त्र का सबसे बड़ा विद्वान थिओफ्रेस्टस था। वह अरस्तू का शिष्य रह चुका था तथा उससे अधिक प्रभावित था। वनस्पति-शास्त्र के ऊपर उसने दो पुस्तकों की रचना की। (१) "दी हिस्ट्री ऑफ दी प्लांट्स" तथा (२) "दी काज़ेज़ ऑफ प्लांट्स"। उसको बागवानी का शौक था। इस रूप में पौदों के बीच रह कर उनके ऊपर अध्ययन का उसे सुअवसर उपलब्ध हुआ। उसके ग्रंथों में विभिन्न स्थानों में प्राप्त वनस्पतियों का विवेचन प्राप्त होता है। उसका सबसे महत्त्वपूर्ण अन्वेषण यह था कि पौदे के प्रत्येक भाग में उगने की शक्ति रहती है, उदाहरणार्थ बीज, शाखा तथा जड़। एक वैज्ञानिक के समस्त प्रशस्त गुण उसमें विद्यमान थे। उसने निर्देश किया कि पौदों का प्रयोग औषधियों के रूप में किया जा सकता है।

जन्तु-विज्ञान—इस क्षेत्र में भी विशेष प्रगति हुई। हेलेनिस्टिक काल में यूनानियों का परिचय नये जानवरों से बढ़ने लगा। सेल्यूकस ने एथेंस में भारतीय बाघ भेजा था। टालमी द्वितीय की पशुशाला में सिंह, तेंदुये, अजगर, बिल्ली, भारतीय एवं अफ्रीकी भैंसें तथा भालू एवं गैंड़े आदि रखे गये थे। इसी तरह भारतवर्ष के तोते, मोर, मुर्गे एवं तीतर आदि भी उसकी पक्षिशाला में विद्यमान थे। स्ट्रेटो ने इस समय जन्तु-विज्ञान पर एक ग्रन्थ लिखा।

चिकित्सा-शास्त्र—हेलेनिस्टिक काल में कई चिकित्सक उत्पन्न हुये।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(१) हेरोफिलस, जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है, एक कुशल चिकित्सक तथा अपने काल का एक प्रसिद्ध आचार्य समझा जाता था। उसने एक पाठ-शाला खोल रखी थी, जिसमें सुदूर भागों के विद्यार्थी शिक्षार्थ उपस्थित होते थे। उसने शरीर की ऐसी अनेक धमनियों का पता लगाया, जिनके विषय में लोगों को पहले कोई भी सूचना नहीं थी। उसके अनुसार धमनियाँ मस्तिष्क और रीढ़ से मिली हुई हैं। रक्त-संचार के विषय में उसने जो अन्वेषण किये, वे चिकित्सा-शास्त्र के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुये थे। (२) इरैसिस्ट्रेटस—वह सेल्यूकस का राजकीय चिकित्सक था। उसने हृदय के ऊपर नवीन अनु-संधान कर अपनी वैज्ञानिक प्रतिभा का परिचय दिया। उसने शिरा और धमनी के अन्तर के ऊपर भी प्रकाश डाला। उसके अनुसार शरीर के विभिन्न अवयव एक दूसरे के साथ शिराओं एवं धमनियों के द्वारा संबद्ध हैं। एक चिकित्सक के रूप में सिकन्दरिया में उसकी बहुत बड़ी ख्याति थी। विल ड्यूरेंट का कथन है कि इरैसिस्ट्रेटस जैसे चिकित्सकों ने सिकन्दरिया को प्राचीन संसार का वियना बना दिया था।[१] (३) फिलिनस—उसके अनुसार रोग का निवारण शरीर-विज्ञान की जानकारी के बिना भी किया जा सकता है। (४) एस्क्लिपियाडिज़—उसने प्राकृतिक चिकित्सा की महत्ता को स्पष्ट किया। उसके अनुसार रोग का निवारण रासायनिक दवाओं से नहीं, अपितु संतुलित आहार, व्यायाम और शीतल स्नान आदि प्राकृतिक उपायों से हो सकता है। उसकी प्रतिष्ठा उच्च कोटि की थी। उसके विषय में बहुत दिनों तक एक कहावत प्रचलित थी कि श्मशान की ओर ले जाये जाते हुये मनुष्य को देख कर उसने फौरन लोगों को सावधान किया कि उसमें जान थी और उसकी बात सही निकली। अतएव इसके विषय में कहा जाता है कि वह मुर्दे को भी जिलाने की शक्ति रखता था। (५) आगस्टस—उसने चिकित्सा के ऊपर एक ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रंथ में उसने हिप्पाक्रेटिज के काल से लेकर अपने काल तक चिकित्सा-संबन्धी अनुसंधानों का संक्षिप्त इतिहास लिखा।

---

१ "Such men made Alexandria the Vienna of the ancient world."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(६) गैलेन—उसने चिकित्सा-शास्त्र के ऊपर २२ भागों में एक पुस्तक की रचना की जो कि सतरहवीं शताब्दी ईसवी तक पाश्चात्य देशों में प्रामाणिक माना जाता था। प्राचीन लेखों से ज्ञात होता है कि हेलेनिस्टिक चिकित्सक लोगों की निःशुल्क सेवा करने को प्रस्तुत रहते थे। संक्रामक रोगों में भी ये रोगी की पूर्ण सेवा एवं अपेक्षित उपचार स्वेच्छापूर्वक करते थे।

दर्शन—हेलेनिस्टिक काल दार्शनिकों का भी काल माना जाता है। इस काल के पूर्व दर्शन के विकास की एक सुन्दर पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी। पेरिक्लीज़ के स्वर्णकाल में एथेंस ने विकसित दर्शन का परिचय प्रदान किया था। वातावरण की अनुकूलता के कारण हेलेनिस्टिक काल में उसे अधिक पनपने का सुअवसर उपलब्ध हुआ। इस समय भी एथेंस दार्शनिकों के आविर्भाव के कारण गौरवान्वित हो उठा। एथेंस के अतिरिक्त अन्य हेलेनिस्टिक नगरों में भी दर्शन को स्वाभाविक संवर्द्धन का सुअवसर प्राप्त हुआ। इस प्रकार के नगरों में सिकन्दरिया एवं रोड्स विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

विशेषतायें—हेलेनिस्टिक काल के दर्शन में निम्नलिखित विशेषतायें परिलक्षित होती हैं। (१) विभिन्नता में एकता—इस काल के दर्शन की विभिन्न शाखाओं में यद्यपि वाह्य रूप से अंतर था, तथापि वे सभी एक दूसरे से आन्तरिक एकता के सूत्र में दृढ़बद्ध थे। यदि इनमें एक ओर वैयक्तिकता की छाप मिलती है, तो दूसरी ओर व्यावहारिकता एवं नैतिकता की दृष्टि से इनसे एकरूपता का भाव भी प्रकट होता है। (२) आंतरिक शान्ति—इस दर्शन का उद्देश्य आन्तरिक शान्ति प्राप्त करना था। इस काल का मानव सांसारिक आपत्तियों से मुक्ति पाने के लिये आतुर था। धार्मिक एवं सामाजिक परिवर्तनों के कारण लोगों को अपने जीवन में त्रास एवं अरक्षा दिखाई देने लगी। इसके लिये एक संबल की आवश्यकता प्रतीत हुई। आश्रय का यह कार्य दर्शन के द्वारा संपन्न किया गया। इसने मनुष्य को अपनी चित्तवृत्तियों को शांतिमार्ग में एकाग्र करने का संदेश दिया। (३) आदर्शवाद—हेलेनिस्टिक दर्शन बहुत कुछ अंशों में आदर्शवादी भी था। इसने मनुष्य को वाह्य भेदों से ऊपर उठने का संदेश दिया। विराग, प्रश्रय एवं आत्म-सन्तुष्टि की प्राप्ति तत्कालीन दर्शन का प्रमुख लक्ष्य था। (४) विचारात्मकता एवं वस्तु-स्थिति का विभेद—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस काल के दर्शन ने विचार-जगत् तथा व्यवहार-जगत् के भेद को स्पष्ट कर दोनों में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया। तत्कालीन दर्शन ने सुकरात एवं प्लेटो द्वारा प्रवर्तित विचारधारा से इस बात के लिये प्रेरणा ली थी। (५) पूर्व-सुकरात दर्शन के प्रति प्रत्यावर्तन—इस काल की विचारधारा में पूर्व-सुकरात दर्शन के प्रति प्रत्यावर्तन के निमित्त कतिपय स्थलों पर प्रयत्न मिलता है। इनमें रहस्यवाद का पुट तथा प्राचीन आख्यानों के द्वारा विचार-प्रतिपादन उपलब्ध होता है।

स्टोइक विचारधारा—इस विचारधारा के प्रवर्तक का नाम ज़ेनो था। वह साइप्रस का निवासी था। उसका जन्म इसी द्वीप में हुआ था तथा उसकी शिक्षा एथेन्स में संपादित हुई थी। उसने अपने जीवन के प्रारम्भिक दिनों में एक व्यापारी का कार्य किया था। इस रूप में उसने अतुल धनराशि संचित की थी। तीस वर्ष की अवस्था में उसके जीवन में एक महान् परिवर्तन हुआ। समुद्र में माल से लदा हुआ उसका एक जहाज डूब गया। फलस्वरूप वह निर्धन हो गया तथा जीविका की खोज में इधर उधर घूमता रहा। इस रूप में वह सिनिक वर्ग के दार्शनिकों के संपर्क में आया। उनके विचारों से वह अधिक प्रभावित हुआ। उन्हीं के समान उसने सरल जीवन बिताना प्रारम्भ किया। कालान्तर में उसने ज्ञानवृद्धि के उपरान्त एक नये मत का प्रवर्तन किया। उसके प्रचार का केन्द्रविन्दु स्टोआ था। वहीं पर वह अपने शिष्यों को उपदेश देता था। यही कारण है कि उसके द्वारा चलाये हुये मत का नाम स्टोइक मत पड़ा। वह अपनी वेशभूषा तथा आचरण से किसी पूर्वी देश का लगता था। उसका यूनानी भाषा का ज्ञान अपूर्ण था। उसके एकेश्वरवाद, विश्व-बन्धुत्व की भावना एवं ज्योतिष-शास्त्र में विश्वास आदि के कारण कुछ लोगों ने उसकी तुलना पूर्वी दार्शनिकों से की है। इन पूर्वी विचारों के होते हुये भी पश्चिमी देशों में उसका काफी सम्मान हुआ। एथेन्स के लोग उसे श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। उसकी मृत्यु के पूर्व वहाँ एक सभा में प्रस्ताव पास किया गया कि उसे सोने का मुकुट भेंट में दिया जाय। बाद में इस मत का प्रचार ऐंटिगोनस, क्लिन्थीज तथा क्रीसिप्पस नामक इसके शिष्यों ने किया। ऐंटिगोनस स्टोइक विचारधारा का घोर अनुयायी था। जिन बातों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का वह उपदेश देता था, उनका वह अपने व्यक्तिगत जीवन में पालन कर लोगों को दिखा देता था। इसके आचार का तत्कालीन जनता के ऊपर सुन्दर प्रभाव पड़ा। क्लिन्थीज (३०० ई० पू० से २३२ ई० पू०) ने हिम्न नामक ग्रंथ में अपने आचार्य के सिद्धान्तों की आलोचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत की। वह दार्शनिक होने के अतिरिक्त धार्मिक भी था। वह सर्वशक्तिमान् ईश्वर में विश्वास रखता था। उसके अनुसार विश्व इसके द्वारा एक निश्चित योजना के अनुसार निर्मित है। इसका निर्माण उसने सदाशय एवं सद्भावनाओं को लेकर किया है। मनुष्य का कर्त्तव्य उसके द्वारा निर्मित व्यवस्थाओं का पालन है। वास्तविक संतोष एवं सुख की प्राप्ति के लिये उसे ऐश्वर्य एवं संपत्ति की उपलब्धि की भावना का परित्याग कर देना आवश्यक है। वह कविता भी करता था जिसमें उसके विचारों का प्रतिबिम्ब मिलता है। ज़ेनो के शिष्यों में सबसे अधिक ख्याति क्रीसिप्पस (२८० ई० पू०-२०६ ई० पू०) की थी। जन-साधारण में इसका विशेष प्रभाव था। कभी कभी इसे स्टोइक दर्शन का द्वितीय प्रवर्तक माना जाता है। इस दर्शन का प्रचार विभिन्न दिशाओं में शीघ्रता के साथ होने लगा। तृतीय शताब्दी ई० पू० में बैबीलन तथा कार्थेज में स्टोइक मतावलंबी वर्तमान थे। ईसा के आविर्भाव के समय तक टर्सस स्टोइक शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र था। द्वितीय शताब्दी ई० पू० में स्टोइक दर्शन का प्रवेश रोम में भी हो चुका था।

सिद्धान्त—इस दर्शन में विश्वबंधुत्व का चिन्तन मिलता है। इसके अनुसार संसार के सभी मनुष्य एकता के सूत्र में बद्ध हैं। जातीयता इस भावना का शत्रु है। सबके साथ भाई चारे की भावना के द्वारा ही विश्वबंधुत्व संभव हो सकता है। इसमें परंपरागत विभेदों का उन्मूलन तथा जाति, वर्ग एवं लिंग के आधार पर पारस्परिक विभेद की आलोचना मिलती है। इस वर्ग के दार्शनिकों ने देवालयों के निर्माण एवं मूर्ति-पूजा की कटु आलोचना की। इस दर्शन का सबसे आकर्षक गुण इसकी ग्राहकता थी। इस कारण इसमें नाना दार्शनिक, नैतिक एवं धार्मिक सिद्धान्तों का सम्मिश्रण उपलब्ध होता है। इसमें पूर्व विचारकों के मत एवं प्राच्य उपदेश इस प्रकार घुलमिल गये कि यह सर्वग्राह्य एवं प्रचारसुलभ सिद्ध हुआ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यह दर्शन वैयक्तिक एवं सामाजिक दोनों ही था। इस विचारधारा के दार्शनिक सदाचार को सबसे अधिक प्रधानता देते थे। इनके अनुसार सदाचार ही अन्तिम एवं सही उद्देश्य है। सदाचारी व्यक्ति विश्व का सुखी, संपन्न और बुद्धिमान मानव है। इस दृष्टि से यह दर्शन वैयक्तिक था। इसके अनुसार सदाचार-संपन्न मनुष्य अपने आपको समाज से पृथक नहीं रख सकता। समाज का प्रत्येक धर्मनिष्ठ व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग है। इस दृष्टि से यह दर्शन सामाजिक था। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि जहाँ समाज-हित एवं व्यक्तिहित में प्राथमिकता का प्रश्न है, इस दर्शन के समर्थक व्यक्तिहित को ही प्रधानता देते थे। उनके अनुसार सामान्य जन के हेतु व्यक्तिगत सुख समाज-सुख से अधिक आवश्यक है। इसी कारण अधिकांश आलोचकों का कहना है कि यह दर्शन केवल बाह्य दृष्टि से ही सामाजिक था। व्यावहारिक दृष्टि से यह घोर वैयक्तिक था। मनुष्य स्वभाव, वातावरण एवं योग्यता के अनुसार भिन्न होते हैं। यही कारण है कि इस दर्शन का आधारभूत लक्ष्य विश्व-बंधुत्व व्यावहारिक नहीं बन सका। यह केवल दार्शनिकों की कल्पना का ही विषय रह गया, न कि जनसाधारण के आचार का विषय।[१]

इस वर्ग के दार्शनिक आत्मा को अमर मानते थे। उनमें अधिकांश के अनुसार जगत् नश्वर है। इस कारण वे शक्ति और निर्बलता, रोग एवं अरोगिता तथा धन और निर्धनता के विरोधी स्वभाव को किसी प्रकार की भी महत्ता नहीं प्रदान करते थे। उनके अनुसार धीमान् मनुष्य पार्थिव वस्तुओं की कोई परवाह नहीं करता। केवल आत्मा ही चिरस्थायी एवं नश्वर है। आत्मा के परिचिन्तन में पटु और दक्ष होने पर ही मानव-एकता संभव हो सकती है। इन दार्शनिकों के अनुसार एकता की यह अनुभूति जनसाधारण के लिये विश्व की वर्तमान व्यवस्था में सरलतापूर्वक संभव नहीं हो सकती। यह उस समय संभव होगी, जब वर्तमान विश्व का विलय होगा। तदुपरान्त नवनिर्मित विश्व में सभी मनुष्य दैवी प्रेरणा के अनुसार पारस्परिक प्रेम के द्वारा आबद्ध होंगे। इसमें छल, दंभ, झूठ तथा पाखंड का कोई भी

१ "Their world state was in practice unrealisable"—Tarn.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्थान न होगा। इस समय लोग विश्व को एक बृहत् परिवार के रूप में निश्चयात्मक रूप से ग्रहण करेंगे। सभी मनुष्य अपने आपको एक ही पिता परमेश्वर की संतान मानेंगे तथा बराबरी का अनुभव करेंगे। इस विचारधारा के अनुसार ज्ञान-प्राप्ति प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। ज्ञान मनुष्य को अनुभूतियों के द्वारा प्राप्त होता है।

इस वर्ग के दार्शनिक तर्कवादी थे। उनके अनुसार तर्क मनुष्य की सबसे बड़ी निधि है। उनका विश्वास तत्व की विशिष्टता में भी था। वे कहते थे कि विश्व का निर्माण तत्व के द्वारा हुआ है। वे ईश्वर तथा आत्मा तक को तत्वनिर्मित मानते थे। ईश्वर के अस्तित्व में उनका विश्वास था। वे ईश्वर को सर्वशक्तिमान्, विश्व का नियन्ता, पालक तथा पोषक मानते थे। उनके अनुसार ईश्वर जगत् का आदि, मध्य तथा अंत है। इस वर्ग के दार्शनिक प्रारब्धवादी थे। भाग्य के कारण ही मनुष्य को अच्छे तथा बुरे फल की प्राप्ति होती है। वे बुरी से बुरी घटना को ईश्वर का अभिशाप मान कर आत्मसंतोष करते थे। कहा जाता है कि ज़ेनो स्वयं बहुत बड़ा भाग्यवादी था। एक बार उसने अपने नौकर को चोरी के अपराध में पकड़ लेने पर उसे शारीरिक दंड दिया। बाद में उसे अपने मारने पर पश्चाताप हुआ। उसने सेवक को यह कहते हुए सान्त्वना प्रदान की कि भाग्य में लिखा होने के कारण उसने उसे पीटा।

स्टोइक वर्ग के दार्शनिक सादगी के प्रेमी थे। उनके अनुसार मनुष्य को अपनी आवश्यकताओं को अधिकाधिक सीमित रखना चाहिये। वे ऐश्वर्य एवं समृद्धि को आदर्श जीवन का विरोधी मानते थे। वे सामाजिक जीवन के विरोधी नहीं थे। प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य समाज का कल्याण है। वे विराग नहीं अपितु राग के समर्थक थे। मनुष्य का आदर्श जीवन सन्यास अथवा विरक्त का जीवन नहीं है। वे शरीर को कष्ट देने में विश्वास नहीं करते थे। कुछ अंश तक मनुष्य के जीवन का सुखमय होना अनिवार्य है।

यहाँ पर उल्लेखनीय है कि स्टोइक दर्शन ने तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक विचारों को काफी प्रभावित किया। इस विचारधारा के लोग धार्मिक भी थे। उन्होंने सन्देश दिया कि विश्व की आत्मा ईश्वर है तथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यक्त विश्व उसका बहिर्रूप है। अतएव विश्व सद् पुरुषों के निवास के लिये उचित स्थान है। इसमें होने वाली प्रत्येक घटना दैवी निर्देश से संचालित होती है। ईश्वर में आस्था रखने वाले व्यक्ति को जीवन की विडंबनायें एवं प्रतिकूल परिस्थितियाँ किसी प्रकार विचलित नहीं कर सकतीं। ये सिद्धान्त लोगों को अच्छे लगे। ज़ेनो के 'ऑन किंगशिप' नामक ग्रन्थ ने राजनीतिक विचारों पर प्रभाव डाला। छोटे राज्य तथा आपसी लड़ाइयाँ इनमें निन्दनीय बताई गईं। अतएव नाना यूनानी नगर-राज्यों की पृथक सत्ता के आदर्श से आस्था समाप्त होने लगी। इसके स्थान पर एक ही विश्व-राज्य एवं एक ही सम्राट का होना जनहित कर मूल समझा गया। स्टोइक प्रभाव के फल-स्वरूप यूरोपियन साहित्य का सृजन हुआ जिसमें ऐसे देश और द्वीप की कल्पना की गई जिसका प्रत्येक नागरिक सुखी एवं वासनाओं से परे था। कहा जाता है कि मैसीडन के कैसेन्डर नामक सम्राट ने स्टोइक राजनीतिक आदर्शों को प्रयोग में लाने की चेष्टा की। उसने एक नव नगर (सिटी ऑफ हेवेन) बसाया, जिसके नागरिकों को आपसी प्रेम तथा अनावश्यक रागद्वेष के परित्याग आदि आदर्शों पर रहना था।

कालान्तर में स्टोइक दर्शन के स्वरूप में महान् परिवर्तन हुआ। उसने दर्शन के स्थान पर धर्म का रूप धारण किया। इस समय ईश्वर की उपासना को सर्वाधिक महत्ता प्रदान की गई। दैवी प्रेरणा को अधिक महत्त्वशील बताया गया। परंपरागत देव-पूजा ने भी इसमें अपना स्थान पाया। जन-समूह के लिये इसे अधिक ग्राह्य बनाने के हेतु इसमें अन्यान्य समावेश किये गये। उदाहरणार्थ, प्राचीन आख्यानों को अध्यात्म-पुट देकर उन्हें अपना लिया गया। इसको मानने वाले जादू, मंत्र एवं चमत्कारों में भी विश्वास करने लगे। फलस्वरूप यह अधिकाधिक आकर्षक एवं बोधगम्य बन गया। इसके सिद्धान्तों का प्रभाव कई पाश्चात्य विचारधाराओं पर पड़ा। ट्रेवर का कथन है कि ईसाई धर्म भी इससे प्रभावित है।[१]

---

१ "Its ethical principles are still an integral part of Christian ethics." —Trever

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एपिक्यूरियन विचारधारा— इस दर्शन के प्रवर्तक का नाम एपिक्यूरियस था। उसका जन्म सेमोस नामक द्वीप में ३४१ ई० पू० में हुआ था। बारह वर्ष की अल्पावस्था में ही दर्शन के क्षेत्र में इसकी अभिरुचि उत्पन्न हो चुकी थी। उन्नीस वर्ष की अवस्था से उसने एथेंस में रह कर शिक्षा का उपार्जन किया। उसका विद्यार्थी-जीवन दरिद्रता की अवस्था में व्यतीत हुआ। ३०६ ई० पू० के अनन्तर एथेन्स उसकी कृतियों का प्रधान केन्द्रविन्दु बन गया। उसने २७० ई० पू० तक (मृत्युपर्यन्त) अपना जीवन यहीं व्यतीत किया था। उसका व्यक्तित्व आकर्षक था। उसकी वाणी में प्रभावशक्ति थी तथा अपने सिद्धान्तों का समर्थन वह इतने सुन्दर ढंग से करता था कि थोड़े ही काल में उसके अनुयायियों की संख्या प्रचुर हो गयी। उसके मित्र तथा शिष्य समाज के प्रत्येक वर्ग के प्रतिनिधि थे। उसने कई पुस्तकें लिखीं, पर वे अप्राप्य हैं। उसके कुछ सिद्धान्त प्राचीन लेखों में उत्कीर्ण मिलते हैं। उसकी शिक्षाओं के विषय में अधिकांश परिचय उसके आलोचकों की कृतियों के द्वारा उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त उसके अनुयायी रोमन कवि ल्यूक्रिटस (९९ ई० पू०-५५-ई० पू०) की 'ऑन दी नेचर ऑफ थिंग्स' नामक कविता से भी उसके विचारों पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। उससे विषय में कुछ जानकारी उसके उन पत्रों से भी प्राप्त होती है, जिन्हें उसने अपने शिष्यों को लिखा था। वह अपने समय का एक सफल आचार्य माना जाता था। उसने एथेंन्स में एक पाठशाला खोल रखी थी, जहाँ वह शिक्षक का भी कार्य करता था। उसका प्रभाव अपने शिष्यों पर अधिक था। उसके छात्र उसके उपदेशों को अन्तिम वचन के रूप में स्वीकार करते थे। वह स्त्री-शिक्षा एवं उनकी सामाजिक स्थिति में सुधार का पक्षपाती था। उसके शिष्यों में महिलायें भी थीं।

सिद्धान्त—यह दार्शनिक सुखवाद में विश्वास करता था। इसके अनुसार मानव-जीवन का उद्देश्य सुख की प्राप्ति है। जिस सुख की उसने कल्पना की वह भौतिक एवं ऐश्वर्यवादी सुख से विभिन्न था तथा इससे तात्पर्य इन्द्रियजनित सुख से किसी प्रकार भी नहीं था। एपिक्यूरियन सुख में सादगी की उस भावना का समावेश था, जो कि बुद्धिमान व्यक्ति के जीवन का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आदर्श है। इस सुख का उद्देश्य दुःखों से छुटकारा पाना था। यह सुख शरीर एवं आत्मा को अवांछनीय कष्टों से बचाने का परिणाम है। यह विलास एवं ऐश्वर्य से दूर है तथा आवश्यकताओं को सीमित करने से उत्पन्न होता है। इसका विशेष सम्बन्ध मन और विवेक से है। सुख की समता में वह सदाचार को गौण मानता था। सदाचार वहीं तक अच्छा है, जहाँ तक उससे सुख की प्राप्ति हो सकती है। जिस सदाचार से सुख की प्राप्ति नहीं होती, वह त्याज्य है। वह स्वयं कहता था कि "मुझे सदाचार से उस समय घृणा उत्पन्न होती है, जब कि इससे सुख की प्राप्ति नहीं होती।" एपिक्यूरस प्राकृतिक जीवन का समर्थक था। उसके अनुसार प्रारंभिक प्रकृति-राज्य सर्वोत्कृष्ट था। आधुनिक मानव-समाज प्रकृति-राज्य का स्वाभाविक उत्तर विकास है। यह क्रमिक विकास मनुष्य-जीवन की कृत्रिमताओं की अभिवृद्धि का परिणाम है। इस प्रकार से उसने समाज की व्युत्पत्ति की एक वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की थी।[१]

उसका कथन था कि विश्व परमाणु-निर्मित है। परमाणुओं में विघटन की प्रवृत्ति होती है। यही प्राणि-मात्र के प्रलय का कारण है। मृत्यु परमाणुओं के विघटन का परिणाम है। मृत्यु की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं हो सकती, अतएव इसकी चिन्ता करना व्यर्थ है। परमाणुवाद के आधार पर उसने उपासना, यज्ञ तथा इस प्रकार के अन्य धार्मिक आचारों को सारहीन सिद्ध किया। उसके अनुसार देवता संसार से परे हैं। विश्व से उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं है। इसलिये उसने देवताओं के भय को निराधार बताया। उसने व्यक्ति को समाज तथा परिवार से प्रधान बताया। कोई भी व्यक्ति अपने प्रयत्न के द्वारा संपूर्ण समाज के सुख की व्यवस्था नहीं कर सकता। इस प्रकार की चेष्टा सफल नहीं हो सकती। वह केवल अपने ही सुख की व्यवस्था कर सकता है और इसी रूप में समाज की सेवा कर सकता है। इस प्रकार के प्रतिपादन द्वारा इस दार्शनिक ने व्यक्तिवाद का समर्थन किया। वह आत्मा एव शरीर

१ "In its brilliant concept of the evolution of human society, Epicureanism made a distinct contribution to scientific thought."

—Trever.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को एक दूसरे से अभिन्न मानता था। उसके अनुसार आत्मा शरीर में व्याप्त है। शरीर के विनाश के पश्चात् आत्मा का भी विनाश हो जाता है। मनुष्य की इच्छायें पृथक् हुआ करती हैं। अतएव प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करे। दर्शन का वास्तविक उद्देश्य मनुष्य को देवताओं एवं धर्म के भय से मुक्त करना है।

एपिक्यूरियन विचारधारा पर पूर्व दर्शन की छाप यत्र तत्र दृष्टिगोचर होती है। सिरीनिक दर्शन का परवर्ती होने के कारण इस पर उसका प्रभाव पड़ना नितांत स्वाभाविक ही था। इसके अतिरिक्त इसके ऊपर सोफिस्ट विचाराधारा तथा डिमाक्रिटस के अणुवाद के सिद्धान्त का भी प्रभाव पड़ा। कुछ अंशों में यह स्टोइक मत के समान था। दोनों दर्शनों ने व्यक्तिवाद तथा चारित्रिक उत्थान को महत्ता प्रदान की। दोनों जगत् को पदार्थ रूप में देखते थे। दोनों ने आन्तरिक शान्ति की प्राप्ति को मानव-जीवन का उद्देश्य माना। पर अधिकांश रूप में दोनों में विषमता परिलक्षित होती है। स्टोइक मानव-सफलता का प्रधान कारण संकल्प मानते थे। परन्तु एपिक्यूरियन के अनुसार सफलता का आधार बहुत कुछ अंशों में संयोग है। स्टोइक के समान एपिक्यूरियन दैवी प्रेरणा में विश्वास नहीं करते थे। इनके अनुसार इसका मानव-जीवन से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। इनके अनुसार संसार द्वैत-विशिष्ट है। अतएव वे स्टोइक के समान विश्ववंधुत्व की भावना में विश्वास नहीं करते थे। उनके अनुसार संसार के सभी मनुष्यों का एकबद्ध होना नितांत असंभव है। स्टोइक सदाचार को सुख से प्रधान मानते थे पर एपिक्यूरियन के अनुसार सुख सदाचार से प्रधान था। स्टोइक आत्मा को अमर मानते थे परन्तु एपिक्यूरियन नहीं। वे स्टोइकों के विपरीत देवताओं के अस्तित्व, प्रारब्धवादिता एवं ईश्वर के द्वारा विश्व-संचालन में विश्वास नहीं रखते थे। एपिक्यूरस के प्रति लोगों की बहुत बड़ी श्रद्धा थी। वह अपने सिद्धान्तों को व्यवहार में लाता था। इस कारण उसकी सच्चाई में लोगों का विश्वास था।

एपिक्यूरस की मृत्यु के पश्चात् उसके शिष्यों ने उसके कार्य को जारी रखा। उसके शिष्यों में सबसे प्रधान मेट्रोडोरस था। उसने अपने आचार्य के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिद्धान्तों का प्रचार बड़ी संलग्नता के साथ किया। पर कालान्तर में एपिक्यूरियन सिद्धान्त से लोगों को घृणा होने लगी। इसका परिणाम समाज-हित के लिये घातक सिद्ध होने लगा। अतएव कतिपय देशों से इसके प्रचारक बहिर्निष्कासित किये गये।

संशयवाद—इस दर्शन के प्रवर्तक का नाम पिरोह था। यह सिकन्दर का समकालीन दार्शनिक था। यही कारण है कि संशयवादी दर्शन अन्य हेलेनिस्टिक दर्शनों की समता में अधिक प्राचीन माना जाता है। इस दर्शन पर अंशतः सुकरात, प्लेटो तथा सोफिस्ट दार्शनिकों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। (१) मानव के द्वारा अन्तिम ज्ञान की प्राप्ति नितांत दुष्कर है। इसमें वास्तविक ज्ञान की उपलब्धि के विषय में संदेह प्रकट किया गया है। यही कारण है कि इसे शंकावादी विचारधारा की संज्ञा दी गई। (२) इस दर्शन में सन्यास की भावना का प्रतिपादन मिलता है। इसके सन्यास-सम्बन्धी विचार भारतीय सन्यास के आदर्शों से साम्य रखते हैं। इस समय तक यूनान और भारत का संपर्क बहुत आगे बढ़ चुका था। इससे अधिक संभव लगता है कि पिरोह भारतीय सन्यास की भावना से प्रभावित हुआ था। उसने कर्म एवं भावना दोनों के सन्यास को महत्वशील बताया।[१] (३) इसमें तर्क एवं आलोचना को महत्ता प्रदान की गई। इससे मनुष्य में वैज्ञानिक प्रवृत्ति की अभिवृद्धि होती है। (४) इस दर्शन में संभावनावाद के सिद्धान्त पर भी महत्व दिया गया। इसके अनुसार किसी महत्वपूर्ण प्रश्न पर अन्तिम निर्णय देना दुष्कर है। किसी निष्कर्ष को निकालने के पूर्व जो किंचित काल के लिये यथार्थ के रूप में संभावित हो, उसका स्वीकरण श्रेयस्कर है। (५) इसमें गुरुडम तथा प्रतीकात्मकता का खंडन मिलता है। इसके अनुसार गुरु का वचन भी आलोचनात्मक दृष्टि से ग्राह्य है।

पिरोह के शिष्यों में सर्वप्रथम तिमन उल्लेखनीय है। उसके अनुसार

---

१ "Pyrrho seems to have preached a Hellenic type of Hindu renunciation both in action and in speculative thought."

—Trever.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ज्ञान का स्वरूप मतमतान्तर के अनुसार विभिन्न हुआ करता है। ज्ञान के परस्पर विरोधी स्वरूप विश्व में कष्ट की जड़ सिद्ध होते हैं। अतएव सत्य के विषय में कुछ निश्चित जान लेना सचमुच ही बड़ा कठिन है। किसी भी प्रश्न पर अन्तिम निर्णय नहीं देना चाहिये। यहाँ तक कि जीवित रहना एवं मरना भी महत्त्वपूर्ण नहीं है। इस प्रकार का विचार उत्पन्न करने पर ही मनुष्य को शान्ति का प्राप्त करना संभव हो सकता है।

आर्केसिलस ने इस विचारधारा का प्रचार किया। उसका सिद्धान्त था कि सत्य ज्ञान की प्राप्ति असंभव है। सत्य का रूप शाश्वत् एवं स्थिर नहीं है। वह समय और स्थान के अनुसार बदलता रहता है। वह एथेन्स का नागरिक था। समकालीन लेखकों का कथन है कि वह अन्य विचारधाराओं के खंडन में अधिक लगा रहता था। अतएव एक दार्शनिक के रूप में वह कोई रचनात्मक कार्य विशेष रूप से करने में असफल सिद्ध हुआ। कार्नीडीज इस विचारधारा का प्रमुख उन्नायक था। उसने बताया कि ज्ञान का आधार मनुष्य की अनुभूतियाँ हैं। इनके द्वारा ग्राह्य ज्ञान सर्वदा अपूर्ण एवं सीमित होगा। उसने भी अपना अधिकांश समय अन्य मतों के विरोध में लगा दिया, अन्यथा वह ऊँची प्रतिभा का दार्शनिक था। उसके क्लिटोमेकस नामक शिष्य ने उसकी मौखिक शिक्षाओं को लेखबद्ध किया था। इस स्थान पर उल्लेखनीय है कि सन्देहात्मकता एवं तर्क की प्रधानता होने के कारण यह दर्शन क्रमशः विलीन होने लगा। प्रत्येक व्यक्ति को पथप्रदर्शन के निमित्त आचार्य के निर्देश की आवश्यकता होती है। गुरु के प्रति अश्रद्धात्मक भावना के ऊपर महत्व ने इसके प्रति जनसाधारण के विश्वास को उठा दिया। आगे चलकर प्रथम शताब्दी के लगभग इस शाखा के विचारकों ने इसे अवसर के अनुकूल बनाने की चेष्टा की। इनमें ल्यूसियन का नाम उल्लेखनीय है। एनेसिडेमस ने इस विचारधारा को पुनरुज्जीवित करने की चेष्टा की। पर इस प्रयत्न का कोई विशेष लाभ न हुआ।

अन्य विचारधारायें—इस काल में कुछ अन्य दार्शनिक विचारधारायें विद्यमान थीं। (१) प्लेटो के अनुयायी उसकी विचारशृंखला को इस समय भी स्थापित किये हुये थे। उसके ऐकेडेमी की गणना अब भी बौद्धिक केन्द्र

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के रूप में होती थी। उसके शिष्य उसके नैतिक सिद्धान्तों का उत्साह के साथ प्रचार कर रहे थे। (२) अरस्तू के अनुयायी भी उसके चिन्तन-पक्ष के स्थान पर नैतिक पक्ष का ही विशेष प्रचार कर रहे थे। इनको पेरिपेटेटिक्स कहा जाता था। थिओफ्रेस्टस अरस्तू के सिद्धान्तों के प्रवर्तन के लिये विख्यात था। यहाँ पर उल्लेखनीय हो जाता है कि यद्यपि प्लेटों तथा अरस्तू की विचारधारायें इस समय वर्तमान् थीं, पर उनका कोई विशेष प्रभाव नहीं रह गया था। (३) इस काल में एक्लेक्टिसिज़्म नामक एक दूसरी विचारधारा विद्यमान थी। इसमें मौलिकता न थी। इसमें पूर्व दार्शनिकों के प्रशस्त एवं मान्य सिद्धान्तों का संग्रह किया गया था। सामूहिक रूप से दृष्टिपात करने पर हेलेनिस्टिक दर्शन की महत्ता में संदेह नहीं प्रगट किया जा सकता। यद्यपि यह उतना अधिक गंभीर एवं उत्पादक नहीं था जितना कि वांछनीय है तथापि इसमें व्यावहारिक गुण एवं देश और काल की आवश्यकताओं के अनुसार रूपान्तर की प्रवृत्ति विशेष थी। इस काल के दर्शन का प्रभाव रोम के विचारकों तथा ईसाई धर्म के ऊपर पड़ा था। (४) सिनिक विचारधारा के दार्शनिक भी इस समय मौजूद थे। वे सच्चरित्र एवं सरल जीवन के समर्थक एवं प्रतिष्ठा तथा संपत्ति आदि लौकिक उपलब्धियों के विरोधी थे। उनके कार्यकलापों का कोई निश्चित केन्द्र नहीं था। वे प्रायः नाना स्थानों में घूमकर उपदेश देते थे और दरिद्रता के सिद्धान्त को लेकर चलते थे। उनका प्रभाव गरीब जनता पर अधिक था। इस विचारधारा के दार्शनिकों में ऐंटिस्थनीज तथा डायोजिनीज उल्लेखनीय हैं। डायोजिनीज प्रभावशाली व्यक्तियों की कोई परवाह नहीं करता था। कहा जाता है कि किसी अवसर पर जब सिकन्दर उसका सम्मान करने के लिए आगे बढ़ा, उस समय उसने उसे बगल हटने का आदेश दिया क्योंकि उसके सामने आ जाने के कारण सूर्य की किरणें डायोजिनीज के शरीर पर गिरने से रह जाती थीं।

धर्म—हेलेनिस्टिक काल के धर्म में नवीन प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं।

(१) पूर्वीकरण—इस काल के धर्म के ऊपर पूर्वी धर्मों का प्रभाव पड़ा। इसके पूर्व यूनानियों ने अपने देवताओं की कल्पना मनुष्य के रूप में की थी। उनका स्वरूप तथा गुण मानव-सदृश था। वे लौकिक दुर्बलताओं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

से परे नहीं थे। उनसे दोष तथा अपराध हो सकता था। पर पूर्वी प्रभाव के कारण यह धारणा बदल गई। उन्होंने अब देवताओं में आधिभौतिक शक्ति की कल्पना की। वे विश्व के पालक, पोषक और नियामक समझे गये। वे पवित्रता की साक्षात् मूर्ति थे। वे मुक्ति एवं अमरत्व के दायक माने गये। पूर्वी धर्म के संपर्क के फलस्वरूप आत्मवाद, नैतिकता एवं सूक्ष्मता को हेलेनिस्टिक धर्म में अधिकाधिक स्थान मिला।

(२) **एकेश्वरवाद**—लोगों का विश्वास एकेश्वरवाद में बढ़ने लगा। इसका कारण प्रधान रूप से राजनीतिक था। हेलेनिस्टिक साम्राज्य के विशाल होने के कारण यहाँ अनेक देवी-देवताओं की पूजा होती थी। इस विभिन्नता को दूर करने के लिये एक सर्वशक्तिमान् देवता की पूजा की आवश्यकता प्रतीत हुई। उसे विश्व का स्रष्टा, पोषक तथा संरक्षक माना गया। सिकन्दर भी कहता था कि विश्व के सभी मनुष्य एक ही पिता की संतान हैं। एकेश्वरवाद की इस भावना का प्रभाव कालान्तर में ईसाई धर्म पर भी पड़ा।

(३) **ज्योतिष एवं भाग्यवाद**—मिश्र तथा बैबीलोनिया के प्रभाव के कारण लोगों का विश्वास ज्योतिष में बढ़ने लगा। मनुष्य के जीवन पर नक्षत्रों के प्रभाव को स्वीकार किया गया। जन्म-पत्र की लोकप्रियता क्रमशः बढ़ने लगी। पूर्वी प्रभाव के कारण लोग भाग्यवादी बनने लगे। लोग समझने लगे कि मनुष्य का भाग्य पूर्व-निर्णीत होता है। परिणामतः लोगों का विश्वास तर्क में कम हो गया। अब उसके स्थान पर रहस्य एवं मान्यता को प्रधानता दी जाने लगी।

(४) **सम्राट-पूजा**—पूर्वी प्रभाव के कारण सम्राट की दैवी उत्पत्ति में लोगों का विश्वास और अधिक बढ़ा। राजा पृथ्वी के ऊपर ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाने लगा। अतएव राजा की पूजा देवता के रूप में होने लगी। हेलेनिस्टिक नरेश सोतर (रक्षक), थिओस (ईश्वर) तथा एपिफेनीज़ (ईश्वर का व्यक्त रूप) जैसी उपाधियाँ धारण करते थे, जिससे राजा का दैवी स्वरूप प्रगट होता है।

(५) **धार्मिक आचार एवं अनुष्ठान**—भाग्यवाद में विश्वास के कारण हेलेनिस्टिक धर्म में अनुष्ठान एवं कर्मकाण्डों का समावेश होने लगा। मनुष्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपना भविष्य ग्रहों की गति से संचालित मान लेने के कारण उन्हें अनुकूल बनाने के निमित्त विभिन्न धार्मिक क्रियायें करने लगा। ग्रह-शान्ति के लिये विविध उपाय किये जाने लगे।

(६) मूर्ति-पूजा—इस धर्म में मूर्ति-पूजा को भी स्थान मिला। मूर्तियों की प्रतिष्ठा के लिये देवालयों का निर्माण किया गया। हेलेनिस्टिक संसार में मूर्ति-पूजा का प्रचार तथा देवालय-निर्माण मिश्र एवं भारतीय धर्म का प्रभाव माना जा सकता है।

(७) शक्ति-उपासना—इस काल में लोग आइसिस नामक शक्ति-देवी की पूजा करते थे। इसमें अलौकिक चमत्कार माना जाता था। इसकी पूजा हेलेनिस्टिक जगत में एक व्यापक रूप धारण करती जा रही थी।[१] इसकी पूजा अनिष्ट के निवारण तथा भौतिक फलों के लाभ के निमित्त की जाती थी। कालान्तर में इसकी पूजा का प्रभाव ईसाई धर्म के ऊपर भी पड़ा। कहा जाता है कि ईसाई धर्म में वर्जिन मेरी की पूजा आइसिस की पूजा का रूपान्तर है।

(८) देव-पूजा—इस काल में लोग सरपिस नामक देवता की पूजा करते थे। इसे विश्व-इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया जाता है।[२] इसकी पूजा मिश्र, बैबीलोनिया तथा एशियामाइनर आदि देशों में होती थी। इस देवता की कई मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं। सिकन्दरिया से प्राप्त सरपिस की मूर्ति इस कोटि की सुन्दरतम प्रतिमा मानी जाती है। इसका सिर सुवर्ण-निर्मित है तथा इसकी आँखों में हीरे जड़े हुये हैं। इस देवता को आइसिस का पति माना जाता था। इसलिये कभी-कभी दोनों की प्रतिमायें एक साथ भी स्थापित की जाती थीं। इस काल में ज़ियस, हेड्स तथा मार्दूक नामक देवताओं की भी पूजा की जाती थी। अनुबिस प्रेतात्मा की शान्ति

---

१ "By the first century, it must have seemed that if there was to be a universal religion it could be only this." —Tarn.

२ "Sarapis has been supposed to be the only god, ever successfully made by modern man." —Tarn.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का देवता माना जाता था। मिश्र का प्राचीन देवता ओरिसिस भी हेलेनिस्टिक संसार का उपास्य देव माना जाता था।

(६) **अवतारवाद**—कुछ वर्गों में अवतारवाद की भावना का भी प्रचार था। इस सिद्धान्त को मानने वाले महापुरुषों के व्यक्तित्व में देवताओं की अभिव्यक्ति मानते थे। इस समय प्रकृति के उपासक भी वर्तमान थे। ये लोग प्राकृतिक विषयों में अलौकिक शक्तियों को व्याप्त मानते थे।

आर्थिक दशा—हेलेनिस्टिक काल का आर्थिक विकास महत्त्वपूर्ण था। सिकन्दर के दिग्विजय के पूर्व आर्थिक विकास में अनेक अवरोध थे। पूर्वी और पश्चिमी देश एक दूसरे से इतने पृथक थे कि दोनों के बीच किसी प्रकार का अर्थ-सम्बन्ध स्वप्नमात्र था। परन्तु हेलेनिस्टिक विश्व की स्थापना के फलस्वरूप पूर्व-पश्चिम का सम्बन्ध इतनी शीघ्रता के साथ बढ़ा कि नवीन व्यापारिक मार्ग, नई बाजारें, खनिज पदार्थ तथा अर्थागम के नये स्रोत प्रकाश में आने लगे।

(१) **नगर-जीवन**—हेलेनिस्टिक आर्थिक विकास का सबसे महत्त्वपूर्ण परिणाम नगरों का अभ्युदय था। जिस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी में नगरों का बहुत बड़ा विकास हुआ, उसी प्रकार सिकन्दर के साम्राज्य में नवीन नगरों का उद्गम हुआ। इसका कारण वाणिज्य एवं व्यापार का विकास था। मिश्र तथा एशिया में सिकन्दर एवं सेल्यूकस ने कई नवीन नगर स्थापित किये। इनका परिमाण, विशाल जन-संख्या तथा सुरम्यता उल्लेखनीय है। इनके अवशेष इनके अतीत वैभव के स्मारक हैं।

(२) **भूमि का विभाजन**—इस काल में विभिन्न भागों में भूमि का विभाजन विभिन्न आधारों पर किया गया। मिश्र में सबसे उपजाऊ भूमि के ऊपर राजा का स्वामित्व था। यह राजकीय भूमि थी। इसकी फसल काश्तकार काटते थे तथा अनाज का एक निश्चित भाग राजा को कर के रूप में प्रदान करते थे। कुछ भूमि देवालयों के अधिकार में थी। इसका नियंत्रण राजकीय कर्मचारी करते थे। इसकी भी व्यवस्था राजकीय भूमि के समान थी। कुछ भूमि सामन्तों को राज-सेवा के परिणाम में दान में दी गई थी। ये सामन्त भारतीय जमीदारों की भाँति रहते थे। वे प्रायः नगरों में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रहते थे तथा भूमि के संरक्षण एवं सुव्यस्था के ऊपर उनका ध्यान नहीं रहता था। कुछ भूमि सैनिकों को उनकी सेवा के उपलक्ष में प्रदान की गई थी। इस प्रकार की भूमि के ऊपर कर नहीं लगाया जाता था। इसके फलस्वरूप राजकीय सेना में अधिक से अधिक व्यक्ति भर्ती होने के लिये लालायित रहते थे। एशियाई देशों में भूमि के वितरण की व्यवस्था इससे पृथक थी। इनमें भूमि के ऊपर सामन्त-प्रभाव मिटा दिया गया। इसका कारण यह था कि सामन्तों की बढ़ती शक्ति सम्राट-हित के लिये बाधक सिद्ध होती थी। इन देशों में भूमि पर पूर्ण स्वामित्व सम्राट का था। राजकीय भूमि और कृषक-दास साथ सम्बन्धित थे। जब इनमें भूमि का विक्रय होता था, तो उसके साथ कृषक-दासों का भी विक्रय होता था। हेलेनिस्टिक जगत की स्थापना ने यूनान की भूमि-समस्या को बहुत कुछ अंशों में सुलझाया। यूनानी अपनी सुविधा की दृष्टि से अपने देश को छोड़कर अन्य हेलेनिस्टिक केन्द्रों में बसने लगे। इसके फलस्वरूप यूनान की जन-संख्या पहले से कम हो गई। इस कारण जिन व्यक्तियों के पास छोटे भूमि-खण्ड थे, वे अपेक्षाकृत विस्तृत भूमि के स्वामी हुये।

(३) कृषि—कृषि के क्षेत्र में मिश्र में अपूर्व उन्नति हुई। यहाँ पर दास सरलतापूर्वक उपलब्ध हो जाते थे। कृषि-विधि में इन्होंने अपने वनस्पति-शास्त्र के ज्ञान से पर्याप्त लाभ उठाया। अन्य हेलेनिस्टिक देशों में आर्थिक सुलभता के निमित्त नवीन विधियों को अपनाया गया। उत्पादन-वृद्धि के हेतु नई खादों को प्रयोग में लाया गया। भारवहन के निमित्त अब तक ऊँट और गधे व्यर्थ जानवर माने जाते थे। पर अब उनकी उपयोगिता स्वीकार की गई। विशेषतः ऊँट सामान ढोने के कार्य में बहुत ही उपयोगी माना गया।

(४) मुद्रा का प्रचलन—इस काल में मुद्रा को क्रय-विक्रय का साधन बनाया गया। इस समय यूनानियों ने फारस से अधिक मात्रा में सोना और चाँदी प्राप्त किया। इन धातुओं की प्राप्ति के कारण मुद्रायें प्रचुर संख्या में ढाली गईं। सामयिक सैनिकों को मुद्रायें वेतन के स्वरूप में दी जाती थीं, न कि भूमि-खण्ड।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(५) **बैंक**—मुद्रा के प्रचलन के कारण बैंक खोलने में आसानी प्रतीत हुई। इस काल में बैंक आर्थिक संगठन के मूल केन्द्र थे। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि बैंक मिश्र में ही अधिक संख्या में खोले गये। अन्य भागों में अन्नागारों से बैंक का कार्य लिया जाता था। हेलेनिस्टिक फारस में, जहाँ सेल्यूकस के उत्तराधिकारी शासन कर रहे थे, अब भी अन्नागारों से बैंक का कार्य लिया जाता था। यहाँ पर राजकीय कार्यों में अनाज उपयोग में लाया जाता था। अनाज के रूप में कर वसूल किये जाते थे तथा सैनिकों को वेतन दिया जाता था।

(६) **व्यवसाय**—हेलेनिस्टिक काल में व्यावसायिक विकास का होना नितान्त स्वभाविक ही था। प्राच्य देशों में इस समय नई बाजारें खुल गईं, नगरों की संख्या बढ़ने लगी, धन एवं सूद की प्रथा में वृद्धि हुई तथा अधिकांश भागों में कम वेतन पर अधिक मजदूर मिल जाते थे। इस समय के नरेशों ने भी व्यावसायिक विकास में अपनी अभिरुचि दिखाई। मिश्र के टालमी नरेशों ने व्यवसाय के ऊपर अपना एकाधिकार स्थापित किया। यहाँ पर सम्राट प्रत्यक्ष रूप से उद्योग-धन्धों के ऊपर अपना नियंत्रण रखता था। प्रत्येक वस्तु का मूल्य राज्य की ओर से निश्चित कर दिया गया। इतिहासकार ट्रेवर के अनुसार टालमी नरेश अपने समय का सबसे बड़ा कृषक, व्यापारी, व्यावसायिक तथा पूँजीपति माना जाता था। इस समय व्यवसाय के तीन प्रधान केन्द्र माने जाते थे—(१) मिश्र का सिकन्दरिया, (२) पर्गेमम तथा (३) मिलेटस। सिकन्दरिया तेल के व्यवसाय के लिये विशेष रूप से प्रसिद्ध था। यह सिकन्दरिया का राज्य-व्यवसाय था। जन-साधारण केवल उन अनाजों को उत्पन्न करता था, जिनसे तेल निकाला जाता था। परन्तु तेल निकालने का कार्य एकमात्र राजकीय संस्थाओं के द्वारा ही किया जाता था। यह अधिकार कृषक को नहीं प्राप्त था। कभी-कभी पुजारियों को राज्य की ओर से तेल निकालने की आज्ञा प्राप्त हो जाती थी। वे उतना ही तेल निकाल सकते थे जितना धार्मिक कार्य के निमित्त आवश्यकता पड़ती थी। राज्य की ओर से तेल का क्रय एवं विक्रय-मूल्य निर्धारित था। राजकीय नियमों के अनुसार व्यापारी तेल-व्यापार के द्वारा क्रय-मूल्य का अष्टांश लाभ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में प्राप्त कर सकते थे। पर्गेमम में कपड़े का व्यवसाय विशेष रूप से प्रचलित था। मिलेटस में ईंट का व्यवसाय तथा खपड़े का व्यवसाय व्यापक रूप में प्रचलित था। उस काल में यंत्रों के द्वारा भी वस्तुओं का उत्पादन प्रारम्भ हो गया। इस काल में नवीन यंत्रों का आविष्कार किया गया। स्क्रू, पम्प तथा जल-चक्र के कारण पहले की अपेक्षा कार्य अधिक सरल हो गया। श्रम-विभाजन के सिद्धान्त का प्रचार हुआ। व्यवसाय का केन्द्रीकरण शीघ्रता के साथ बढ़ने लगा।

(७) व्यापार—व्यावसायिक विकास के कारण व्यापार के क्षेत्र में भी प्रगति हुई। लोगों का भौगोलिक ज्ञान विकसित हुआ। सिकन्दर ने यूनानियों को ईजियन सागर से लेकर सिंधु नदी तक तथा जैक्सार्टिस से लेकर नील नदी तक नवीन मार्गों से परिचित कराया। कैस्पियन तथा अरब समुद्र में यातायात अब पहले से अधिक होने लगा। इसी प्रकार लाल सागर तथा फारस की खाड़ी को भी सामुद्रिक व्यापार के निमित्त जलमार्ग चुना गया। मेगस्थनीज के यात्रा-विवरण के द्वारा भी पूर्व में भारतवर्ष तक के मार्ग प्रकाश में लाये गये। व्यापार में भर्ती अधिक लगाई गई। साझेदारी के आधार पर भी लोग व्यापार करने लगे। बैंक के कारण व्यापारियों को सुविधा प्राप्त हुई। बैंक रुपया जमा करता था तथा कम सूद पर ऋण देता था। समाज में मध्यम-वर्ग का अभ्युदय हुआ, जिसका कार्य एकमात्र व्यापार एवं वाणिज्य था। आमोद प्रमोद के वस्तुओं की माँग बढ़ने लगी। हेलेनिस्टिक काल के शासकों ने व्यापार करना प्रारंभ किया। केवल कुछ को छोड़कर इस काल के सभी शासक तिजारती थे। आंतरिक व्यापार के निमित्त नवीन सड़कों का निर्माण किया गया। नदियों पर पुल बनाये गये। पोतकला का विकास हुआ। इस काल का एक बड़ा जहाज चार हजार टन का बोझ उठा सकता था। जहाजों में यात्रियों की सुविधा के निमित्त कमरे, कैबिन तथा स्नानागार बनाये गये। इस काल में अच्छे बंदरगाहों का निर्माण किया गया। उनमें प्रकाश की भी व्यवस्था की गई थी। उनमें जहाज सुविधापूर्वक रुक सकते थे। इस काल के प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्रों में सिकन्दरिया, पर्गेमम, मिलेटस, रोड्स, कोरिन्थ, टैरेंटम, सिराक्यूज, मस्सिलिया तथा कार्थेज उल्लेखनीय हैं। इन नगरों में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आयात एवं निर्यात का क्रम अविच्छिन्न था। उदाहरणार्थ सिकन्दरिया में निबिया से हाथी तथा हाथी-दाँत, एशियामाइनर से ऊनी कपड़े, सीरिया से शराब, यूनान से मधु, साइप्रस से ताँबा, स्पेन से चाँदी, ब्रिटेन से टिन तथा थ्रेस से दास मँगाये जाते थे। इससे बाहरी देशों में शीशा, मखमल, पेपिरस तथा सुगंधित द्रव भेजे जाते थे। बाजारों में वस्तुओं का मूल्य राज्य की ओर से निर्धारित रहता था। दूकानों के आस-पास गुप्तचर घूम कर देखते थे कि उचित मूल्य से अधिक दाम पर वस्तुओं का विक्रय न किया जाय। इस काल के व्यापारिक विकास के कारण समाज में आर्थिक संकीर्णता बढ़ने लगी। पूँजीवाद का विकास शीघ्रता के साथ होने लगा। व्यापारिक वर्ग नगरों में रहता था। इस काल में आर्थिक विकास के कारण नागरिक एवं ग्रामीण-जीवन में स्पष्ट विभेद स्थापित हो चुका था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय २

रोम की सभ्यता

साधन—आविर्भाव-काल से लेकर तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व के पूर्वार्द्ध तक रोम के प्रारम्भिक इतिहास के विषय में पुरातत्ववेत्ताओं का परिचय अधूरा है। इसका कारण यह है कि इस काल के भीतर यहाँ के निवासियों ने अपनी सभ्यता का कोई क्रमबद्ध विवरण प्रस्तुत नहीं किया। पाँचवीं तथा चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में यूनान में हेरोडोटस, थ्यूसीडाइड्स तथा अन्य इतिहासकारों ने मनोरम गद्य-शैली में अपने देश का रोचक इतिहास लिखा। परन्तु रोम में इस प्रकार का प्रयत्न नहीं हुआ। तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व के उत्तरार्द्ध में सर्वप्रथम फैबियस पिक्टर ने रोम की स्थापना तथा शक्तिविस्तार के ऊपर अपनी लेखनी उठाई। प्रागैतिहासिक रोम के इतिहास की जानकारी के निमित्त होमर के महाकाव्यों के सदृश यहाँ पर किसी वीर-काव्य की भी रचना नहीं हुई। ऐसी दशा में रोम के प्रारम्भिक इतिहास के पुनर्निर्माण के लिये पुरातत्त्व साक्ष्यों का आश्रय लेना पड़ता है। परन्तु इनसे उतनी पूर्ण एवं विश्वसनीय सूचनायें नहीं उपलब्ध हो पातीं, जितनी अपेक्षित हैं।

रोम की स्थानीय परम्परायें, जनश्रुतियाँ एवं लोककथायें यहाँ की घटनाओं का वर्णन बारहवीं शताब्दी ई० पू० से करने लगती हैं। परन्तु उन्हें मनोरंजक बनाने के लिये समय-समय पर उनमें इतने नूतन काल्पनिक समावेश किये गये कि उनकी प्रामाणिकता के विषय में इतिहासकार को संदेह होने लगता है। ये स्थानीय परम्परायें प्राचीन घटनाओं को उनके वास्तविक स्वरूप में हमारे समक्ष नहीं लातीं। उनमें नायक एवं पूर्वजों का गुणानुवाद चढ़ाव-बढ़ाव के साथ मिलता है। उनमें यह अतिशयोक्ति राजाओं की कृतियों के निरूपण के सम्बन्ध में भी उपलब्ध होती है।

चतुर्थ शताब्दी ई० पू० के उपरान्त रोम के इतिहास के निर्माण के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निमित्त जिन साधनों की प्रामाणिकता में विश्वास किया जा सकता है, वे इस प्रकार हैं। (१) प्रारम्भिक लेख, (२) रोम-साहित्य, (३) यूनानी इतिहासकारों के ग्रंथ तथा (४) लिवी की कृतियाँ। **प्रारम्भिक लेख**—इसमें सर्वप्रथम सुप्रसिद्ध "ट्वेल्व टेबुल्स" की गणना की जा सकती है। ये उत्कीर्ण लेख बारह विभिन्न पट्टिकाओं पर अंकित मिले हैं। ये लेख शासन-सम्बन्धी सिद्धान्त, कानून तथा सामाजिक एवं आर्थिक दशाओं के ऊपर प्रकाश डालते हैं। इसके उपरान्त "एनाल्स पोंटीफिकस" का उल्लेख किया जा सकता है। इसमें रोम की प्रधान वार्षिक घटनाओं का वर्णन मिलता है। पोंटिफेक्स नामक रोम के पुरोहितों के प्रधान ने इनको लकड़ी के तख्तों के ऊपर लिख कर अपने घर की दीवालों पर लटका दिया था। ये लेख १२९ ई० पू० तक सुरक्षित किये गये थे। इसी समय के लगभग रोम के प्राचीन लेखों को क्रमबद्ध रूप में सजाकर एक ग्रंथ लिखा गया जिसे "एनाल्स मैक्सीमी" की संज्ञा दी गई। यह ग्रंथ अपने वास्तविक रूप में अप्राप्य है, परन्तु इसके कुछ अंश उद्धरण के रूप में कालान्तर के ऐतिहासिक ग्रंथों में उपलब्ध होते हैं। इन उद्धरणों की ऐतिहासिक महत्ता अधिक है। इसके अतिरिक्त कुछ वंश-लेख भी उपलब्ध हुये हैं। उच्च वंश के लोग अपने पूर्वजों का जीवन-चरित लिखते थे, जिसमें उनके पद, उपाधियों एवं कृतियों का वर्णन मिलता था। ये वंश-लेख अप्राप्य हैं; परन्तु उनके विषय में परिचय उन लेखकों की कृतियों के द्वारा उपलब्ध होता है जिन्होंने इनका उपयोग किया।

रोम-साहित्य—इस वर्ग में वे ऐतिहासिक ग्रंथ आते हैं, जिनकी रचना तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व के उत्तरार्द्ध से प्रारम्भ हुई। इसमें सर्वप्रथम फैबियस पिक्टर की कृति उल्लेखनीय है जिसकी चर्चा की जा चुकी है। उसने रोम का इतिहास यूनानी भाषा में लिखा। द्वितीय प्यूनिक युद्ध (२१८-२०१ ई० पू०) में भाग लेने वाले दक्षिण इटली के निवासी एनियस ने रोम का इतिहास लैटिन भाषा में पद्य के रूप में किया। उसके कुछ ही वर्षों के उपरान्त "कैटो दी सेन्सर" ने भी रोम का इतिहास लिखा। यह ग्रंथ अधिक प्रामाणिक माना जाता है। द्वितीय शताब्दी ई० पू० में रोम में इतिहासकारों के एक नवीन वर्ग का उद्गम हुआ, जिनकी भाषा आलं-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कारिक एवं साहित्यिक थी। इनको "रहेटॉरिकल हिस्टोरियन्स" कहा जाता था। इनके वर्णन रोचक हुआ करते थे, परन्तु उनमें यथार्थता की कमी हुआ करती थी। इस प्रकार के इतिहासकारों में वलेरियस ऐंशिटअस सबसे प्रसिद्ध था। इसका काल द्वितीय शताब्दी ई० पू० का उत्तरार्द्ध था। इसके वर्णन काल्पनिक अधिक हैं। परिणामस्वरूप उनकी प्रामाणिकता संदेहास्पद है। इसके उपरान्त मार्कस टैरेन्टियस वरो का आविर्भाव हुआ। वह जूलियस सीज़र का समकालीन था। उसने "रोमन ऐंटीक्वीटीज़" नामक ग्रंथ की रचना की। इस पुस्तक में विवेचनात्मक शैली का अभाव मिलता है।

यूनानी इतिहासकारों के ग्रंथ—रोम की प्रसिद्धि के बढ़ने के कारण इस देश के इतिहास के ऊपर यूनानियों ने भी लेखनी उठाई। चतुर्थ शताब्दी ई० पू० के एक यूनानी लेखक के अनुसार रोम की स्थापना ट्राय के शरणार्थियों ने की थी। सुप्रसिद्ध यूनानी इतिहासकार पॉलिबियस ने कार्थेज के साथ रोम के युद्ध तथा १४६ ई० पू० तक यूनान के साथ इस देश के सांस्कृतिक संपर्क का इतिहास प्रस्तुत किया। सिसिली के डिओडोरस ने भी रोम का इतिहास लिखा। उसका ग्रंथ अप्राप्य है, परन्तु उसके कुछ अंशों को बाद के ग्रंथों में उद्धृत किया गया है। इनसे ऐतिहासिक सूचनायें प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती हैं।

लिवी की कृतियाँ—लिवी का ग्रंथ रोम के इतिहास का भण्डार है। इसकी शैली अद्वितीय थी।[१] उसने घटनाओं का वर्णन बड़ी सतर्कता के साथ किया। इसकी पंक्तियों में उपलब्ध साहित्यिक सामग्री का समुचित उपयोग मिलता है। उसकी देशभक्ति अटूट थी। यदि उसका ग्रंथ उपलब्ध नहीं होता, तो रोम-इतिहास के विषय में जानकारी अपूर्ण रह जाती। इसका ग्रंथ अत्यन्त लोकप्रिय था। कालान्तर के इतिहासकारों ने इसे अपनी रचना का आदर्श बनाया।

रोम की स्थापना—परंपरा के अनुसार रोम की स्थापना ७५३ ई० पू०

१ "As a stylist, Livy has had few equals in any age."
—Van Sickle.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में हुई। इसका श्रेय रोमलस नामक व्यक्ति को था। इसका जुड़वा भाई रेमुस नामक था। कहा जाता है कि किसी गड़ेरिये ने इनकी रक्षा भेड़िये से की थी। एक युद्ध में रेमुस की मृत्यु हो गई। रोमलस बहुत योग्य था। अपने भाई की मृत्यु के उपरान्त वह शक्ति-विस्तार में संलग्न हुआ। रोम के नाम की व्युत्पत्ति उसी के नाम के आधार पर मानी जाती है। उपर्युक्त परंपरा के अनुसार वह एक महान संगठनकर्ता था। उसने एक संश्रय-स्थान खोल रखा था, जहाँ युद्ध में पराजित व्यक्ति आश्रय पाते थे। इनसे उसने अपने सैनिक-कार्यों में सहायता प्राप्त की। उसने शासन-व्यवस्था तथा सामाजिक दशा को सुदृढ़ कर कई वर्षों तक योग्यतापूर्वक राज्य किया। परन्तु आधुनिक इतिहास-कारों का मत है कि यह परम्परा चाहे कितनी भी रोचक क्यों न हो, विश्वस-नीय नहीं है। इन लोगों का कथन है कि रोम की व्युत्पत्ति की कथा को समझना इतिहास की एक जटिल समस्या है। इस विषय में ठीक सूचना केवल पुरातत्त्व साक्ष्यों से कुछ अंशों में मिल पाती है।

पुरातत्त्ववेत्ताओं के अनुसार प्रागैतिहासिक काल में प्राचीन रोम के स्थान पर एक छोटा सा ग्राम था। दसवीं शताब्दी ईसा पूर्व के लगभग लैटिन जाति के लोगों ने इसके समीप एक दूसरा ग्राम बसाया। उसके उपरान्त सातवीं शताब्दी ईसा पूर्व के लगभग लैटिन जाति के लोगों ने इसके चतुर्दिक छः और ग्राम तथा सैबाइन जाति के लोगों ने दो अन्य ग्राम बसाये। इस प्रकार सातवीं शताब्दी ई० पू० तक रोम के स्थान पर कुल मिला कर १० ग्राम विद्यमान थे पर वहाँ पर कोई नगर नहीं था। कालान्तर में इस ग्राम-समूह ने क्रमिक विकास के द्वारा एक समृद्धिशाली नगर को जन्म दिया। इनमें से सात लैटिन ग्रामों ने अपनी सुरक्षा के निमित्त एक संगठन बनाया, जिसे "सेप्टीमोन्टियम" (लीग ऑफ दी सेवन हिल्स = सात पहाड़ियों का दल) की संज्ञा दी गई। टाइबर नदी के किनारे स्थित होने के कारण इन ग्रामों को आर्थिक विकास के निमित्त पूर्ण सुविधायें उपलब्ध थीं।

एट्रूस्कन-कालीन रोम—सातवीं शताब्दी ई० पू० के अन्तिम चरण में एट्रूस्कन नामक एक बाहरी जाति ने टाइबर नदी के दोनों किनारों के क्षेत्रों को जीत लिया। इस जाति के लोग शक्तिशाली थे। उनके सामने लैटिन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ग्रामों का संगठन बालू की रस्सी की भाँति छिन्न भिन्न हो गया। उन्होंने इन दस ग्रामों पर अपना आधिपत्य जमाकर उन्हें अपने नवविजित प्रदेशों का केन्द्र-स्थल बनाया। एट्रूस्कन लोगों का शासन ५०० ई० पू० तक विद्यमान था। परम्परा के द्वारा केवल तीन ही एट्रूस्कन राजाओं के नाम विदित हो सके हैं—(१) टार्क्विन प्रथम, (२) सर्वियस टुलियस तथा (३) टार्क्विन दि प्राउड। इन नरेशों ने एट्रूस्कन प्रथाओं के अनुसार शासन किया। इनके शासन ने रोम के इतिहास में युगान्तर का प्रवर्तन किया। इनके समय के निम्नलिखित विकास उल्लेखनीय हैं :—

रोम नगर-राज्य की उत्पत्ति—एट्रूस्कन-शासन का प्रथम परिणाम यह हुआ कि रोम ने नगर का रूप धारण किया। इस समय उपर्युक्त ग्रामों को तोड़कर एक नई बस्ती बड़े पैमाने पर बसाई गई। इसकी सीमाओं के चतुर्दिक सुरक्षा के निमित्त सुदृढ़ दीवार का निर्माण किया गया। राजप्रासाद एवं नवीन राजकीय भवनों के द्वारा इसे अलंकृत किया गया। एट्रूस्कन कलाकार बहुत निपुण थे। वे लोग रोम की एक ही बस्ती में बस गये, जिसका नाम "विकस टस्कस" पड़ा। इन लोगों ने यहाँ पर व्यावहारिक तथा ललित कलाओं का प्रचार किया। कलात्मक विकास के द्वारा इन लोगों ने स्थानीय व्यापार की उन्नति में योग दिया। स्वच्छता की दृष्टि से इसमें नालों का निर्माण किया गया। इनके द्वारा गन्दा पानी नगर के बाहर बहा दिया जाता था। यहाँ की बाजारें विक्रय की वस्तुओं से सुसज्जित रहा करती थीं। इस व्यवस्था को जन्म देने के कारण एट्रूस्कन शासक रोम के वास्तविक जन्मदाता कहे जाते हैं।[१] इसको राजधानी बनाकर उन्होंने अपने राज्य को सुसंचालित किया, जो लगभग ४०० वर्गमील के क्षेत्र में प्रसरित था। यह राज्य अपने राजनीतिक संगठन के द्वारा यूनानी नगर-राज्यों का स्मरण दिलाता है।

समाज—एट्रूस्कन-समाज दो वर्गों में विभाजित था—(१) पैट्रीशियन

---

१ "The Etruscan kings were the true founders of Rome."

—Van Sickle.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
वर्ग तथा (२) प्लेबियन वर्ग। पैट्रीशियन वर्ग समाज का उच्च वर्ग था। नगर-राज्य के सभी राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक अधिकार इसके हाथों में केन्द्रित थे। प्लेबियन वर्ग समाज का निम्न वर्ग था। इसके अधिकार बहुत कम थे। इन दोनों वर्गों में वैवाहिक सम्बन्ध की स्थापना नहीं हो सकती थी। प्लेबियन वर्ग का सदस्य पैट्रीशियन वर्ग में किसी भी दशा में स्थान नहीं प्राप्त कर सकता था। पैट्रीशियन कुल में पिता प्रधान हुआ करता था। उसकी पत्नी एवं पुत्रों को उसके निर्देश के अनुसार कार्य करना पड़ता था। वंश के भीतर पिता के अधिकार की प्रधानता को "पैट्रिआ पोटेस्टाज़" कहते थे। पैट्रीशियन वर्ग में कई गोत्र सम्मिलित थे। एक मूल पुरुष से निकले हुये विभिन्न कुल के सदस्य गोत्र-निर्माण करते थे। गोत्र को "जेन्टीज़" कहा जाता था। सभी गोत्रों के लोग वर्ग-हित को प्रधान मानते थे एवं उसकी सुरक्षा के निमित्त प्रयत्न करते थे। अपने अधिकार, ऐश्वर्य एवं संगठन के कारण पैट्रीशियन वर्ग ने शासन के क्षेत्र में अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। प्लेबियन-वर्ग अपेक्षाकृत असंगठित था। दरिद्रता के कारण इसके सदस्य अपने विकास का मार्ग नहीं सोच पाते थे। अपनी असमर्थता के कारण कभी कभी ये लोग किसी पैट्रीशियन सदस्य के संरक्षण की प्रार्थना करते थे। इस प्रकार का संरक्षक प्राप्त करने वाला प्लेबियन सदस्य "क्लायंट" कहलाता था। संरक्षक पैट्रीशियन उसके ("क्लायंट") परिवार की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता था तथा उसे अत्याचारों से बचाने का प्रयत्न करता था। इसके बदले में उसे अपने संरक्षक की सेवा करनी पड़ती थी। संरक्षक उससे अपने लिये किसी प्रकार की भी सहायता ले सकता था। इस प्रकार सारी बातों को देखते हुये यही कहा जा सकता है कि प्लेबियन-वर्ग की दशा दयनीय थी।

शासन—शासन-व्यवस्था में राजा का स्थान सर्वोच्च था। वह निर्वाचित किया जाता था। उसके अधिकार महत्वपूर्ण थे। वह नगर-राज्य का प्रधान न्यायाधीश था। वह मृत्यु-दण्ड दे सकता था। उसके न्याय-संबन्धी अधिकारों को "इम्पीरियम्" कहा जाता था। उसे सेनापति का भी कार्य करना पड़ता था। वह नगर-राज्य का प्रधान पुरोहित भी समझा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाता था। उसके ये अधिकार "आस्पिसियम्" कहलाते थे। राजा के निर्वाचन का कारण यह था कि रोम को लोकप्रिय शासक की आवश्यकता थी। वंशानुगत शासक से नगर-राज्य की उतनी सुरक्षा नहीं हो सकती थी जितनी कि अपेक्षित थी। राजा की सहायता के निमित्त दो सभायें थीं—(१) लोकसभा (कमिशिया क्यूरिआटा) तथा (२) सेनेट। लोकसभा में पैट्रीशियन तथा प्लेबियन दोनों वर्गों के लोग सम्मिलित थे। इसके प्रतिनिधि निर्वाचित किये जाते थे। इनकी संख्या तीस थी। किसी प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिये कम से कम सोलह प्रतिनिधियों की अनुमति अनिवार्य थी। सेनेट सामंत-सभा थी। इसमें पैट्रीशियन वर्ग के प्रतिनिधि सम्मिलित थे। राजा सभी महत्वपूर्ण विषयों में सेनेट की मंत्रणा लेता था। युद्ध-घोषणा तथा संधि-निर्धारण में वह इस समिति की अनुमति अवश्य लेता था। राजा का कर्तव्य इन दोनों संस्थाओं को मिलाकर शासन करना था। जनता की सहानुभूति को प्राप्त करना राजकीय आदर्श समझा जाता था। उसे अपने आपको प्रजा का पिता सिद्ध करना पड़ता था न कि उसका स्वामी।

आर्थिक दशा—रोमवासियों का आर्थिक जीवन कृषिप्रधान था। मुद्रा से परिचित न होने के कारण व्यापारिक विकास नहीं हो सका। लोग अपने धन की गणना पशुओं की संख्या के अनुसार करते थे। पशु-पालन के निमित्त उस समय लंबे चरागाह हुआ करते थे। क्रय-विक्रय का साधन वस्तु-विनिमय था। धातुओं में अभी तक केवल ताँबे का प्रयोग लोगों को विदित था। लोहे से अभी तक लोग परिचित न हो सके थे। कृषि-भूमि राजकीय संपत्ति मानी जाती थी।

धर्म—एट्रूस्कन लोगों का धर्म बहुदेववाद था। इनके प्रभाव से रोम में तीन देवताओं की पूजा की जाती थी—(१) ज्यूपिटर, (२) जूनो तथा (३) मिनर्वा। ज्यूपियर सबसे प्रधान देवता था। वह आकाश एवं पृथ्वी का अधीश्वर था। उसकी पत्नी का नाम 'जूनो' था। वह स्त्री-वर्ग की संरक्षिका मानी जाती थी। मिनर्वा शिल्पी तथा कारीगरों का देवता था। युद्ध-देवता की पूजा लोग मार्स के नाम से करते थे। इस समय मूर्ति-पूजा का श्रीगणेश हो चुका था। यह धर्म प्रधान रूप से लौकिक था। आचार एवं नैतिकता से धर्म का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोई विशेष संबन्ध अभी तक नहीं समझा जाता था। तथापि ये परलोक में विश्वास करते थे। वे अधिकतर अपने मुर्दों को कब्रों में गाड़ देते थे। कब्र की दीवाल के ऊपर वे अपने सामाजिक एवं धार्मिक जीवन से संबन्धित दृश्यों को अंकित करते थे। इनमें शव के जलाने की भी प्रथा प्रचलित थी।

नागरिकों का चरित्र—इस समय का रोम-नागरिक देश-भक्त था। वह एक ऐसा कठोरकर्मा व्यक्ति था, जिसके विचारजगत् में कल्पना एवं दर्शन के लिये कोई स्थान नहीं था। वह एक ऐसा व्यावहारिक व्यक्ति था, जिसके सरल स्वरूप में केवल देश का गौरव और राष्ट्रभक्ति की प्रशस्त भावना कूट कूटकर भरी हुई थी। वह शारीरिक विकास एवं कृषि में विशेष रूप से संलग्न था।

अन्य उपलब्धियाँ—इतिहासकारों का ऐसा अनुमान है कि एट्रूस्कन लोग किसी प्रकार की लिपि से अवश्य परिचित थे। ये अधिकार-चिह्नों का प्रयोग करते थे, जिन्हें कालान्तर में रोम के पदाधिकारी धारण करने लगे; उदाहरणार्थ नीले रंग का चोगा तथा हाथी-दाँत का दण्ड इत्यादि। एट्रूस्कन कलाकार पत्थर एवं ताँबे की आकृतियों के निर्माण में दक्ष थे। वे अपने बर्तनों के ऊपर काले रंग का पालिश चढ़ाते थे एवं उन पर प्राकृतिक जीवन से संबंधित दृश्यों के चित्र बनाते थे। जिस सन्दूक में रख कर वे अपने मुर्दे को गाड़ते थे, उस पर एक विशेष प्रकार का चित्र बनाया जाता था। इस प्रकार के चित्र में मृत व्यक्ति परलोक में प्रीतिभोज का आनन्द लेता तथा विविध प्रकार के सुख एवं ऐश्वर्य क[illegible]पभोग करता हुआ प्रदर्शित किया जाता था। इस प्रमाण से स्पष्ट [illegible]धिकारि[illegible]त्तर जीवन में इनका विश्वास था। इनकी कला के ऊपर य[illegible]त रखनी पड़ती थ[illegible]नी प्रभाव था, तथापि इसकी निजी विशेषतायें भी[illegible]। लोगों की संपत्ति का वि[illegible] के ऊपर निश्चयात्मक रूप में महत्वपूर्ण प्रभाव प[illegible] व्यक्तिगत जीवन [illegible]

[illegible]। (६) सेनेट—[illegible]

एट्रूस्कन-शासन क[illegible]त थे। प्रारंभ [illegible]वी के वर्णन से ऐसा विदित होता है कि ५०० ई० पू० के [illegible]स्कन-शासन रोम में समाप्त हो गया। [illegible], पर क[illegible] इस समय के लगभग इटली[illegible] निवासियों ने एट्रूस्कन के विरुद्ध विद्रोह किया। इन लोगों ने रोम के ऊपर आक्रमण भी किया। इसी समय रोम में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राजतंत्र शासन के विरुद्ध एक क्रान्ति की चिनगारी अन्य एट्रूस्कन केन्द्रों में भी फैली। इस समय तक एट्रूस्कन लोगों की शक्ति यूनानियों के द्वारा पराजय के कारण पर्याप्त मात्रा में क्षीण हो चुकी थी। इन विपरीत परिस्थितियों के कारण इन लोगों के हाथों से रोम के नगर-राज्य की बागडोर सर्वदा के लिये छीन ली गई। इनके अधःपतन के उपरान्त रोम में गणतंत्र-शासन का उद्गम हुआ।

एट्रूस्कन शासन की देन—एट्रूस्कन सम्राटों के अधःपतन के साथ रोम से विदेशी-शासन समाप्त हो गया। इतिहासकार बर्ग के शब्दों में एट्रूस्कन-शासन के अभाव में रोम के इतिहास का स्वरूप कुछ दूसरा ही होता।[१] इन्होंने इस देश के विकास एवं वैभव के निमित्त पृष्ठभूमि प्रस्तुत की। इनके काल में रोम नगर के चतुर्दिक जिस दीवार का निर्माण किया गया, वह वास्तुकला के उत्कृष्ट उदाहरण के रूप में आज भी स्वीकार की जाती है। एट्रूस्कन-सभ्यता निस्संदेह मौलिक थी तथा रोम के सांस्कृतिक विकास के ऊपर इसका महान् प्रभाव था। मांटेस्क्यू का कहना है कि समृद्धिशाली रोम के निर्माण का प्रारंभ एट्रूस्कन जाति वालों ने ही किया था।

गणतंत्र-काल—(५०० ई० पू०-१३३ ई० पू०)—५०० ई० पू० के लगभग रोम के इतिहास में गणतंत्र की स्थापना सीमा-चिह्न के समान प्रमुख है। (१) इस काल में रोम के शासन का कार्य दो प्रमुख अधिकारियों के द्वारा किया जाता था, जो **कौंसल** कहलाते थे। वे एक वर्ष के लिये निर्वाचित किये जाते थे। वे गणतंत्र के सबसे महान शासक, सेनापति, न्यायाधीश तथा पुरोहित हुआ करते थे। पर व्यावहारिक रूप में उनके ऊपर कुछ अंशों में नियंत्रण भी हुआ करता था। उदाहरणार्थ उन्हें सेनेट नामक समिति की मंत्रणा लेनी पड़ती थी। मतभेद होने पर एक कौंसल दूसरे की नीति का निषेध कर सकता था। वह अपने कार्यों के लिये जनता के प्रति उत्तरदायी था। केवल सैनिक शासन के क्षेत्र में इसके अधिकार अनियंत्रित तथा असीमित

१ "Had it not been for th Etruscan domination, her constitution might well have taken a different form" —Burg.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
थे। उसके सैनिक अधिकारों को "इम्पीरियम् मिलिशियाये" कहते थे। (२) कार्य अधिक हो जाने पर कभी-कभी **प्रो कौंसल** की नियुक्ति की जाती थी। वह "कौंसल" का अधीनस्थ कर्मचारी था। उसके अधिकार "कौंसल" की अपेक्षा अधिक सीमित हुआ करते थे। (३) **डिक्टेटर**—संकट के अवसर पर डिक्टेटर की नियुक्ति की जाती थी। उनकी कार्यावधि केवल ६ महीने हुआ करती थी। परंतु कभी-कभी डिक्टेटर ६ महीने के भीतर ही अपने कार्य को समाप्त कर अपने अधिकार समर्पित कर दिया करते थे। रोम के गणतंत्रकालीन इतिहास की विशेषता यह है कि यहाँ के किसी भी डिक्टेटर ने सम्राट बनने के निमित्त अपने अधिकारों का दुरुपयोग नहीं किया। (४) **क्वेस्टर**—प्रारंभ में क्वेस्टर की संख्या दो थी। कालांतर में इनकी संख्या बढ़ा कर आठ कर दी गई। फौजदारी के मुकदमों में ये कौंसल की सहायता किया करते थे। इनकी नियुक्ति कौंसल के द्वारा की जाती थी। (५) **ट्रिब्यून**—इनकी संख्या दस थी। इन्हें अपने कर्त्तव्यों के सुचारु रूप से पालन के लिये शपथ ग्रहण करना पड़ता था। ये शासन-संस्थाओं के ऊपर नियंत्रण रखते थे। इन्हें सेनेट के कार्यों के भी निषेध का अधिकार प्राप्त था। नागरिकों के लाभ के निमित्त इन्हें प्रयत्न करना पड़ता था। (६) **एडाइल**—इनका कार्य सार्वजनिक भवनों की देख रेख, बाजारों का निरीक्षण, सामूहिक लाभ के हेतु कार्य तथा जनता के मनोविनोद के निमित्त प्रयत्न करना था। (७) **प्रायटर**—उनका पद बड़ा ही उत्तरदायित्वपूर्ण माना जाता था। वे नगरों में दीवानी तथा फौजदारी के मुकदमों का निर्णय करते थे। (८) **सेन्सर**—ये जन-संख्या की गणना करते थे। पदाधिकारियों एवं प्रतिनिधि-सभाओं की सूची उन्हें अपने कार्यालय में सुरक्षित रखनी पड़ती थी। उन्हें सैनिक नियुक्तियों के भी अधिकार उपलब्ध थे। लोगों की संपत्ति का विवरण इनके पास मौजूद रहता था। कर्मचारियों के व्यक्तिगत जीवन की बुराइयों के ऊपर वह नियंत्रण स्थापित करता था। (९) **सेनेट**—यह एक प्रतिनिधि सभा थी, जिसमें तीन सौ सदस्य सम्मिलित थे। प्रारंभ में केवल पैट्रीशियन वर्ग के लोग ही इसके सदस्य हो सकते थे, पर कालान्तर में प्लेबियन वर्ग के लोगों को भी इसकी सदस्यता का अधिकार दिया गया। इसका प्रधान कार्य आवश्यक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विषयों में 'कौंसल' को मंत्रणा प्रदान करना था। इसके अतिरिक्त यह संस्था सेना नियुक्त करती तथा कर लगाती थी। इसके अन्य उल्लेखनीय कार्यों में प्रो-कौंसल की नियुक्ति तथा परराष्ट्र नीति के निर्धारण की गणना की जा सकती है। कुछ इतिहासकारों का कहना है कि गणतंत्रकालीन रोम में जितनी सुयोग्यता के साथ सेनेट ने शासन किया, उतना किसी भी पाश्चात्य देश में कोई भी जन-समिति शासन नहीं कर सकी थी।[१] कतिपय विद्वानों का तो यहाँ तक कथन है कि गणतंत्र-काल में सेनेट ही रोम की सबसे महत्त्वपूर्ण संस्था थी। एक तरह से इस समय यहाँ के पूरे शासन पर इसी सभा का पर्यवेक्षण हुआ करता था। इसके सदस्य अपनी उच्च प्रतिभा, सद्गुणों एवं राजनीतिक अनुभवों के कारण चुने जाते थे। कुछ व्यक्ति अपनी ऊँची योग्यता एवं विशिष्ट ख्याति के कारण आजीवन सदस्य नियुक्त कर दिये जाते थे। इस कोटि के सदस्यों को प्रिंसेप कहा जाता था। ऐसे सदस्यों की एक समिति हुआ करती थी, जिससे किसी भी आवश्यक विषय पर परामर्श लिया जा सकता था। रोम के प्राचीन लेखों में इनकी गंभीरता, कार्यक्षमता एवं अटूट देश-भक्ति की प्रचुर प्रशंसा उपलब्ध होती है। (१०) **कमिशिया सेंचुरियाटा**—इसमें सदस्यों की संख्या १९३ थी। यह युद्ध एवं संधि का निर्णय करती थी। यह उच्च कर्मचारियों की नियुक्ति करती थी। इसके सदस्यों के सामने नये कानून विचारार्थ आते थे परंतु इन्हें अलग से कानूनों को प्रस्तावित तथा उन्हें पास करने का कोई भी अधिकार नहीं था। यहाँ पर उल्लेखनीय हो जाता है कि इस सभा के सदस्यों को अपनी संपत्ति के अनुसार एक से अधिक वोट देने का अधिकार था। इस प्रकार यह सभा धनीमानी व्यक्तियों की सभा थी। (११) **कमिशिया ट्रिबुटा**—यह रोम की सबसे बड़ी प्रजातंत्रात्मक सभा थी। ३३९ ई० पू० तक इसके अधिकार बहुत अधिक बढ़ा दिये गये। इसे कानून बनाने के अधिकार प्राप्त थे। यह 'ट्रिब्यून' तथा 'क्वेस्टर' की भी

---

१ "It has been maintained that no finer body of men has ever directed the course of any state with greater success than did the Senate during Rome's rise to power" —Caldwell.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नियुक्ति कर सकती थी। रोम के किसी भी नागरिक को इस सभा की बैठक में प्रवेश मिल जाता था, पर उसे मतदान का कोई अधिकार नहीं था। वह अपने विचार या सुझाव लोगों के सामने रख सकता था। मतदान का अधिकार एकमात्र सदस्यों को ही उपलब्ध था।

वर्ग-समानता—गणतंत्रकाल में प्लेबियन वर्ग के सदस्यों की दशा में सुधार किया गया। कोई भी मजिस्ट्रेट लोकसभा की अनुमति के अभाव में किसी भी प्लेबियन को प्राणदण्ड नहीं दे सकता था। इस वर्ग के सदस्यों की नियुक्ति उच्च पदों पर की जाने लगी। प्लेबियन तथा पैट्रीशियन के बीच विवाह वैधानिक माना गया। कम से कम एक कौंसल का प्लेबियन होना अनिवार्य कर दिया गया। इस समय रोम की प्रथम विधान-संहिता तैयार की गई, जिसे "ट्वेल्व टेबुल्स" कहते हैं। इससे दोनों वर्गों के कानूनी विभेद को हटा दिया गया। कालान्तर में इसी के आधार पर रोम के कानूनों का परिवर्द्धन किया गया। इस विधान-संहिता का निर्माण कर यहाँ के निवासियों ने अपनी व्यावहारिक बुद्धि का परिचय दिया। विश्व-सभ्यता को रोम-वासियों की यह एक मौलिक देन थी। इतिहासकार लिवी ने इसे रोम के व्यक्तिगत एवं सामूहिक कानूनों का स्रोत माना है। इस विधान-संहिता के निर्माण के चार सौ वर्षों के उपरान्त सिसरो लिखता है कि उसके काल में विद्यार्थियों को इसे कंठस्थ कराया जाता था। इसके बन जाने के कारण पैट्रीशियन तथा प्लेबियन के बीच राजनीतिक एवं सामाजिक भेदभाव समाप्त हो गया।

अन्य कार्य—इस काल में रोम की सेना का पुनर्संगठन किया गया। नई सड़कें बनाई गयीं। इनके द्वारा यातायात एवं व्यापार को प्रोत्साहन मिला। रोम नगर को राजकीय भवनों के निर्माण द्वारा और अधिक सुसज्जित किया गया। लौह-व्यवसाय, चमड़े के व्यवसाय तथा भाण्ड-निर्माण को प्रोत्साहन दिया गया। इस काल में नवीन प्रकार की मुद्रायें ढाली गईं। ताँबे के सिक्के सर्वप्रथम इसी समय बनाये गये। इनकी तौल बारह औंस हुआ करती थी। "सेस्टर्टियस" नामक चाँदी के सिक्के का भी निर्माण इसी काल में हुआ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रोम-साम्राज्य का विस्तार—गणतंत्र-काल में रोम-साम्राज्य का महान् विस्तार हुआ। इतिहासकारों का कथन है कि रोम के विशाल साम्राज्य की स्थापना कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। यह निर्माण कई शताब्दियों के क्रमिक विकास का फल था।[१] बर्ग ने इस विस्तार-क्रिया में तीन अवस्थाओं का निर्देश किया है :—(१) पहली अवस्था की अवधि ५०८ ई० पू० से लेकर २७२ ई० पू० तक (२) दूसरी अवस्था की अवधि २७२ ई० पू० से लेकर २०१ ई० पू० तक तथा (३) तीसरी अवस्था का अवधि २०१ ई० पू० से लेकर १४६ ई० पू० तक मानी जा सकती है।

पहली अवस्था—(५०८ ई० पू०–२७२ ई० पू०)–विकास की पहली अवस्था में रोम ने संपूर्ण इटली के ऊपर अपना आधिपत्य स्थापित किया। इसके पूर्व रोम का राज्य छोटा था और कई शक्तियों के द्वारा घिरा हुआ था। रोम के उत्तर में तीन जातियों का राज्य था :—(१) गाल (२) एट्रूस्कन तथा (३) सेबाइन। रोम के दक्षिण में भी तीन जातियों के राज्य थे—(१) लैटिन (२) वाल्शियन तथा (३) सेम्नाइट। सुदूर दक्षिण में यूनानियों के उपनिवेश थे। रोम के पश्चिम में एक्वियन राज्य तथा यूनानियों के कुछ उपनिवेश विद्यमान थे। रोम का राज्य इनके बीचोबीच स्थित था। ३६० ई० पू० तक रोम अपनी आन्तरिक स्थिति को सुदृढ़ करने तथा कुछ समीपवर्ती प्रदेशों को जीतने में संलग्न था। इस समय तक टाइबर नदी के आसपास के क्षेत्रों के ऊपर रोम का आधिपत्य निर्विवाद रूप से स्थापित हो गया। ३६० ई० पू० में रोम की इस नवविकसित शक्ति को छिन्न भिन्न करने के लिये गाल जाति ने इस नगर के ऊपर आक्रमण किया। इस जाति के लोग बहुत शक्तिशाली थे। इन्होंने रोम को नष्ट कर दिया

१ "The Roman advance to power had been evolutionary rather than planned." —Caldwell.

"That 'Rome was not built in a day' is true not only of the character and institutions of the sovereign city, but also of her world-empire." —Burg.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था। अन्त में बड़ी कठिनाई के साथ ये लोग भगाये गये। तदुपरान्त रोम की लुप्त समृद्धि का पुनरुज्जीवन हुआ। रोम की शक्ति को छिन्न भिन्न करने के लिए लैटिन जाति ने **"लैटिन लीग"** की स्थापना की। ३३८ ई० पू० के लगभग रोम ने इस दल को छिन्न-भिन्न कर लैटिन जाति के द्वारा शासित भू-भाग को छीन लिया। इसी काल के लगभग वाल्शियन जाति को भी हार खानी पड़ी तथा अपने राज्य से हाथ धोना पड़ा। इसके उपरान्त सेम्नाइट जाति की बारी आई। इस जाति के लोग भी शक्तिशाली थे। इनके साथ रोम के कई युद्ध हुये, जो कि "सेम्नाइट युद्ध" (३२७-२६० ई० पू०) के नाम से प्रसिद्ध हैं। सेम्नाइट लोग प्रारंभ में कुछ सफलीभूत अवश्य हुये, पर अंत में उन्हें पराजित होना पड़ा। उनका पूरा राज्य रोम के द्वारा छीन लिया गया। इस समय तक उत्तर में एट्रूस्कन, गाल तथा सेब्राइन जातियों का भी राज्य जीता जा चुका था। इसके उपरान्त इटली में वर्तमान यूनानी उपनिवेश ही जीतने के लिये अवशिष्ट रह गये थे। इनमें इस प्रायद्वीप के दक्षिणी भाग में स्थित उपनिवेश बहुत ही महत्वपूर्ण थे। २७२ ई० पू० तक इन सब को जीत कर रोम-राज्य में सम्मिलित कर दिया गया। इस प्रकार सम्पूर्ण इटली के ऊपर रोम का आधिपत्य स्थापित हुआ। इस विशाल साम्राज्य के स्वामित्व के फलस्वरूप रोम की सैनिक शक्ति बहुत अधिक बढ़ गई। २७२ ई० पू० के उपरान्त इसके सैनिकों की संख्या ७ लाख ५० हजार हो गई। इस समय रोम-साम्राज्य के नागरिकों की संख्या ३ करोड़ के लगभग थी।

(दूसरी अवस्था—२७२ ई० पू०—२०१ ई० पू०) इटली के जीत लेने के आठ वर्ष उपरान्त (२६४ ई० पू० में) रोम का कार्थेज के साथ युद्ध हुआ, जिसके फलस्वरूप संपूर्ण भूमध्यसागरीय जगत् में इसकी धाक फैली। यह घटना पाश्चात्य विश्व के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखती है[१]। इस काल के भीतर कार्थेज के साथ रोम के दो प्रसिद्ध युद्ध हुये—(१) प्रथम प्यूनिक युद्ध (२६४ ई० पू० से लेकर २४० ई० पू० तक) तथा (२) द्वितीय

---

१ "The Roman conquest of the Meditreranean is one of the most astounding stories in all history." —Caldwell

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्यूनिक युद्ध (२१८ ई० पू० से लेकर २०१ ई० पू० तक)। इसके अतिरिक्त प्रथम मैसीडन युद्ध (२१५ ई० पू० से २०५ ई० पू०) भी इसी अवधि के बीच हुआ था।

प्रथम प्यूनिक-युद्ध—कार्थेज अफ्रीका के उत्तर में भूमध्य सागर के तट पर स्थित एक नगर था, जिसकी नींव नवीं शताब्दी ई० पू० के पूर्वार्द्ध में फीनीशिया के लोगों ने डाली थी। कालान्तर में भौगोलिक स्थिति के प्रभाव के कारण इसने एक समृद्ध एवं शक्तिशाली नगर का रूप धारण किया। यहाँ के औपनिवेशियों ने सैनिक शक्ति बढ़ा कर क्रमशः कई प्रदेश जीते। आगे चल कर कार्थेज राज्य में सिसली का पश्चिमी भाग, सार्डिनिया, कार्सिका तथा पश्चिमी भूमध्यसागर के छोटे द्वीप सम्मिलित थे। रोम कार्थेज की बढ़ती हुई शक्ति से जलता था। वह उस समय तक चुप था, जब तक कि उसकी स्थिति सुदृढ़ नहीं हुई थी। इटली के आधिपत्य के कारण अपनी स्थिति के सुरक्षित होते ही उसे कार्थेज की शक्ति को कुचलने के लिये एक अच्छा अवसर उपलब्ध हुआ। विशेष रूप से भूमध्य सागर में कार्थेज की बढ़ती हुई शक्ति रोम के लिये असह्य हो उठी। उसको युद्ध का अवसर उस समय मिला, जब कार्थेज ने मसेना पर आधिपत्य स्थापित किया। यह सिसली के समुद्र-तट पर स्थित था तथा इटली के बहुत समीप था। यह घटना रोम को अपने ही अस्तित्व के लिये घातक प्रतीत होने लगी। जब मसेना के लोगों ने कार्थेज के विरुद्ध रोम से सहायता माँगी, उस समय कार्थेज के साथ युद्ध करना अनिवार्य हो गया। रोम की सेना का नेतृत्व रेगलस नामक व्यक्ति ने किया तथा कार्थेज की सेना का नेतृत्व हैमिलकर ने। कार्थेज की शक्ति से डरने के कारण रोम ने इस युद्ध में विजयी होने का सक्रिय प्रयास किया। इस युद्ध में विजय-श्री प्रारम्भ से ही रोम की ओर रही, पर उसकी सेना का नायक रेगलस बंदी बनाया गया। बाद में वह संधि का प्रस्ताव लेकर इस शर्त पर रोम भेजा गया कि यदि रोम के लोग उसे न माने तो वह कार्थेज लौट आये। संधि की शर्तें बहुत कड़ी और रोम के प्रतिकूल थीं, अतएव रोमवासियों ने उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। रेलगस अपने वचन का पालन कर कार्थेज लौट आया। कहा जाता है कि रेगलस के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साथ कार्थेज वालों ने बड़ी निर्दयता का व्यवहार किया। इन लोगो ने उसका सोना रोक दिया, जिसके परिणामस्वरूप वह तड़प कर मर गया। रेगलस के परिवार वालों ने इसका बदला निकाला। उसके पुत्रों ने कार्थेज के दो सरदारों को बन्दी बनाया और उनको इसी रूप में मार डाला। अंत में दोनों सेनाओं में नये सिरे से संधि हुई, जिसकी शर्तों के अनुसार रोम को सिसली, सार्डिनिया तथा कार्सिका प्राप्त हुये। कार्थेज को रोम को ३२०० टैलेंट दस किश्तों में समर्पित करने के लिये बाध्य किया गया। रोम के सभी कैदी वापस लौटा दिये गये।

द्वितीय प्यूनिक युद्ध—कार्थेज प्रथम प्यूनिक युद्ध में अपनी पराजय भूल नहीं सका था। सिसली, सार्डिनिया तथा कार्सिका के निकल जाने के कारण कार्थेज के हाथ से महत्वपूर्ण बाजारें निकल गईं। वह अपनी लुप्त शक्ति की पुनः प्राप्ति के लिये प्रयत्न करने लगा। इसने अब स्पेन में राज्य-विस्तार करना प्रारम्भ किया। स्पेन में इसकी बढ़ती हुई शक्ति के कारण रोम को ईर्ष्या हुई। जब रोम ने कार्थेज की इस नीति का विरोध किया, उस समय दोनों में संधि हुई। इसके अनुसार कार्थेज एब्रो नदी के उत्तर की ओर नहीं बढ़ सकता था। पर कालान्तर में इसने इस शर्त को भंग कर दिया। इससे रोम के लोगों की क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी। जब कार्थेज ने स्पेन के सैगंटम नामक नगर पर आक्रमण किया, उस समय रोम के लोगों ने तलवार उठा लिया। सैगंटम रोम का मित्र था। दोनों के बीच एक संधि हुई थी, जिसकी शर्तों के अनुसार आपत्ति-काल में सैगंटम की रक्षा करना रोम का कर्तव्य था। रोम ने प्रतिज्ञा का पालन किया। फलस्वरूप रोम और कार्थेज के बीच पुनः एक युद्ध छिड़ा, जिसे द्वितीय प्यूनिक युद्ध की संज्ञा दी जाती है।

हैनीबाल—कार्थेज की सेना का नेतृत्व हैनीबाल नामक व्यक्ति कर रहा था। वह सेनानायक हैमिलकर का पुत्र था। कहा जाता है कि जिस समय हैनीबाल एक नववर्षीय बालक था, उसी समय हैमिलकर ने देवी के मन्दिर में उससे यह प्रतिज्ञा ली थी कि वह कार्थेज के शत्रुओं का मानमर्दन करने के निमित्त सर्वदा कटिबद्ध रहेगा। उसे बचपन से ही आदर्श सैनिक शिक्षा प्रदान की गई थी। अपने पिता के जीवन-काल में ही वह अनेक युद्धों में भाग ले

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चुका था, अतएव उसे बहुत अच्छा सैनिक अनुभव प्राप्त था। उसका जीवन संयमित एवं अनुशासित था। वह सर्वदा कठिन से कठिन कष्टों को सहने के निमित्त प्रस्तुत रहता था। वह सचमुच ही एक लौह पुरुष था। इतिहासकार लिवी कहता है कि हैनीबाल सबसे पहले युद्ध-भूमि में उतरता था और सबसे अंत में समरांगण से वापस लौटता था। उसके व्यक्तित्व में हैमिलकर की मधुर स्मृति छिपी हुई थी, अतएव कार्थेज के पुराने सैनिक उसे श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। जब हैनीबाल कार्थेज की सेना का नायक चुना गया, उस समय उसकी अवस्था केवल २६ वर्ष की ही थी। तथापि उसने बड़ी ही योग्यता के साथ अपने उत्तरदायित्व को निभाया। अपनी सैनिक प्रतिभा के द्वारा वह कभी-कभी सिकन्दर और नैपोलियन का स्मरण दिलाता है। उसे सैनिकों की सुविधा का सर्वदा ध्यान बना रहता था, अतएव वे उसे अधिक मानते थे। हैनीबाल जननेता था। एवं संगठन-शक्ति से भरा हुआ था। वह अपने एवं शत्रुसेना के सैनिकों के मनोविज्ञान को भली भाँति जानता था तथा युद्धकला का मर्मज्ञ था। लड़ाइयों की योजना बनाने तथा उन्हें लड़ने में वह शायद ही कभी भूल करता था। उसकी अध्यक्षता में कार्थेज को विजय की पूर्ण आशा थी। रोम के साथ युद्ध में सबसे अधिक उसी ने अपनी निपुणता का परिचय दिया था, इसीलिये कभी-कभी द्वितीय प्यूनिक युद्ध को हैनीबालिक युद्ध की संज्ञा प्रदान की जाती है। विश्व के विरले ही सेना-नायकों का उसके समान अपने सैनिकों पर नैतिक प्रभाव था। वह नीतिनिपुण, उदार और सदाशय व्यक्ति था। वह पन्द्रह वर्षों तक अपनी सेना के साथ विदेशी भूमि में लगातार पड़ा रहा, परन्तु उसके सैनिकों ने उसकी सतत युद्ध-क्रिया का कोई भी विरोध नहीं किया। यह इस बात का प्रमाण है कि उसके प्रति कार्थेज के सिपाहियों की अपनत्व की भावना थी। वह एक शिष्ट व्यक्ति था तथा लैटिन एवं ग्रीक भाषाओं को वह धड़ाके के साथ बोल लेता था। उसका संकल्प अटूट था। उसके राजनीतिक दावों से उसके शत्रु कभी-कभी घबड़ा उठते थे। रोम के लेखकों ने उसके ऊपर नृशंसता एवं विश्वासघात का लांछन लगाया है। इस आरोप का कारण उसके प्रति रोम की शत्रुता थी। उसके पूरे जीवन-चरित्र में इस प्रकार के दोष का कोई भी उदाहरण उपलब्ध नहीं होता। कुछ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इतिहासकारों का तो यहाँ तक कहना है कि हैनिबाल को चाहे किसी भी मापदण्ड से क्यों न देखा जाय, वह निस्संदेह अपने काल का सबसे महान् पुरुष तथा प्राचीन पाश्चात्य विश्व के विशिष्ट व्यक्तियों में एक था।[१]

सैगंटम के प्रश्न को लेकर आठ महीने तक कार्थेज और रोम के बीच युद्ध चलता रहा। इस बीच हैनीबाल ने रोम के ऊपर सीधा आक्रमण करने के लिये एक नई योजना बनाई। वह जानता था कि इटली के उत्तर में बसने वाली गाल जाति रोम से असंतुष्ट है, अतएव वह इसके विरुद्ध उसकी अवश्य सहायता करेगी। उसने ५०,००० पैदल सिपाहियों तथा ९,००० अश्वारोहियों के साथ सैगंटम से स्थल-मार्ग के द्वारा रोम के विरुद्ध प्रयाण किया। बीच में उसे आल्पस पर्वत को पार करना था। इस कार्य की कठिनता को देखकर उसके सैनिकों ने जवाब दे दिया। पर हैनीबाल अपने निश्चय पर अटल था। उसने सैनिकों को वीरोचित कार्य के लिये उत्तेजित करते हुये कहा कि जीतने पर उसके देश के निवासी इटली के सुवर्णभूमि का उपभोग करेंगे। सेना किसी भाँति आल्पस को पार करने के लिये राजी हुई। सैनिकों ने मार्ग में बहुत कठिनाइयों का सामना किया। आल्पस को पार करने में सत्रह दिन लग गये। आधे से अधिक सैनिक मार्ग में ही समाप्त हो गये। इटली के लोग कार्थेज के सैनिकों को अपनी भूमि में देखकर आश्चर्यचकित हो उठे।

रोम ने ऐसी परिस्थितियों में बड़ी शीघ्रता के साथ एक विशाल सेना एकत्र की, जिसमें तीन लाख पैदल सिपाही तथा चौदह हजार घुड़सवार सम्मिलित थे। हैनीबाल ने उत्तरी इटली को रौंद डाला। गाल लोगों ने उसका साथ दिया। रोम बहुत समय तक उसकी सेना की बाढ़ को रोकने में असफल सिद्ध हुआ। ऐसा प्रतीत हुआ कि हैनीबाल संपूर्ण इटली पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लेगा पर उसके मार्ग में बहुत बड़ी रुकावटें थीं। दूरी

---

१ "Measured by any standard he was the greatest man of his time and one of the greatest men of the ancient world."
—Van Sickle.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के कारण कार्थेज के लोग उसे समय पर सहायता नहीं कर पाते थे। फलतः उसकी सेना में अब बहुत कम सैनिक अवशिष्ट रह गये थे। अंत में रोम तथा कार्थेज की सेना में दस एवं एक का अनुपात रह गया था। रोम को भी स्किपियो नामक एक सुयोग्य सेनापति उपलब्ध हो गया था। उसने यहाँ की सेना का पुनर्संगठन किया। युद्ध ने पलटा खाया। रोम की स्थिति कार्थेज की समता में अब सुधरने लगी। २०२ ई० पू० तक कार्थेज की सेना पूर्णरूप से पराजित हो गई। हैनीबाल भी कुछ काल पश्चात् पकड़ा गया। उसे रोम वालों ने मृत्युदण्ड दिया। इस युद्ध के फलस्वरूप संपूर्ण स्पेन के ऊपर रोम का आधिपत्य स्थापित हो गया। संधि की शर्तों के अनुसार कार्थेज रोम को प्रतिवर्ष २०० टैलेंट देने को बाध्य किया गया। रोम पश्चिमी भूमध्य सागर का स्वामी बन गया। इसके उपरान्त इसने पूर्व में हेलेनिस्टिक प्रदेशों पर अपना अधिकार-क्षेत्र विस्तृत करना प्रारम्भ किया। इस युद्ध में रोम को काफी आर्थिक क्षति उठानी पड़ी। हजारों व्यक्ति लड़ते हुये मारे गये। दक्षिणी इटली के बहुत से ग्राम नष्ट हो गये। यहाँ के यूनानी नगर ध्वस्त कर दिये गये। परन्तु सबसे अधिक हानि कार्थेज को उठानी पड़ी। उसकी पूर्व समृद्धि विलुप्त हो गई।

प्रथम मैसीडन युद्ध (२१५-२०५ ई० पू०)—इसी काल के भीतर रोम ने मैसीडन के विरुद्ध युद्ध किया। इसका कारण यह है कि मैसीडन नरेश फिलिप पंचम ने रोम के विरुद्ध कार्थेज की सहायता की थी। रोम ने नीति-निपुणता का अवलंबन करते हुये मैसीडन के विरुद्ध यूनान के कुछ नगर-राज्यों को मिला लिया, उदाहरणार्थ एन्थेंस तथा स्पार्टा। युद्ध में मैसीडन पराजित हुआ। परन्तु इस लड़ाई से कोई स्थायी निर्णय नहीं हो सका। इसके उपरान्त भी रोम का मैसीडन के साथ युद्ध जारी रहा।

तीसरी अवस्था (२०१ ई० पू०-१४६ ई० पू०)—इस काल के भीतर रोम ने छः युद्ध किये। इनमें से प्रथम तीन मैसीडन के विरुद्ध लड़े गये—(१) द्वितीय मैसीडन युद्ध (२०० ई० पू० से १९६ ई० पू० तक), (२) तृतीय मैसीडन युद्ध (१७१ ई० पू० से १६७ ई० पू० तक), (३) चतुर्थ मैसीडन युद्ध (१४९ ई० पू० से १४६ ई० पू० तक), (४) कोरिन्थ युद्ध (१४६ ई० पू०),

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(५) तृतीय प्यूनिक युद्ध (१४९ ई० पू० से लेकर १४६ ई० पू० तक) तथा (६) सीरिया युद्ध (१९२ ई० पू०–१८९ ई० पू०)। द्वितीय मैसीडन युद्ध इस देश की शक्ति को कुचलने के निमित्त हुआ। इस युद्ध में रोम ने रोड्स और एथेंस को मैसीडन के विरुद्ध मिला लिया। इस लड़ाई में हार और जीत का कोई भी निर्णय नहीं हुआ। तृतीय मैसीडन युद्ध फिलिप पंचम के पुत्र पर्सियस के साथ हुआ। इसने रोम से बदला लेने के निमित्त एक शक्तिशालिनी सेना एकत्र की, जिसमें छः हजार टैलेंट का व्यय हुआ। परन्तु यह सेना रोम से परास्त हो गई। इस विजय के फलस्वरूप रोम ने मैसीडन के विशाल साम्राज्य को चार भागों में विभक्त किया। प्रत्येक में स्वाधीन गणतंत्र राज्य था। इन सभी राज्यों के ऊपर रोम का नियंत्रण था। १४९ ई० पू० के लगभग मैसीडन के सभी राज्यों ने रोम के विरुद्ध एक सम्मिलित मोर्चा बनाया। यह लड़ाई चतुर्थ मैसीडन युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। इस युद्ध के फलस्वरूप संपूर्ण मैसीडन साम्राज्य के ऊपर रोम का अधिकार स्थापित हो गया।

कोरिन्थ-युद्ध के फलस्वरूप रोम ने संपूर्ण यूनान को जीत लिया। तृतीय प्यूनिक युद्ध में भी रोम विजयी हुआ। इस विजय के कारण उत्तरी अफ्रीका में स्थित कार्थेज-साम्राज्य, कार्सिका एवं सार्डिनिया रोम में सम्मिलित हो गये। सीरिया-युद्ध द्वितीय मैसीडन युद्ध के उपरान्त हुआ था। सीरिया के नरेश अन्तियोक ने रोम के विरुद्ध मैसीडन की सहायता की थी। इसी कारण यह युद्ध छिड़ा था। इसमें विजय के कारण रोम को एशिया माइनर प्राप्त हुआ। १४६ ई० पू० तक रोम संपूर्ण भूमध्यसागर का अधिपति बन गया। उसके साम्राज्य में स्पेन, उत्तरी अफ्रीका, कार्सिका, सार्डिनिया, माल्टा, सिसली, इटली, मिश्र, मैसीडन, यूनान, एशिया माइनर तथा पर्गेमम सम्मिलित हो गये। पाश्चात्य विश्व में इस समय रोम की शक्ति सर्वोपरि थी। यह साम्राज्य विश्व के अनेक महान् साम्राज्यों से भी विशाल माना जाता था।

साम्राज्य-स्थापना का प्रभाव—रोम के इस अभ्युदय ने उसके इतिहास को कई दृष्टियों से प्रभावित किया। इतिहासकारों ने इसके विस्तार-काल को परिवर्तन का युग माना है। रोम ने विजित देशों के सभ्य नागरिकों के ऊपर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शासन के निमित्त अपनी सभ्यता को विकसित एवं समृद्ध करना प्रारंभ किया। युद्ध-काल में बाहरी देशों से प्राप्त धन ने वहाँ के निवासियों की जीवनधारा एवं उनके दृष्टिकोण को बदल दिया। विशेषतः यूनानी सभ्यता के साथ इसके निकट संपर्क ने यहाँ के नैतिक एवं आर्थिक जीवन में महान् क्रान्ति उत्पन्न की।[१] इस साम्राज्य-विस्तार के कारण रोम में महत्वपूर्ण राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तन हुये। ये परिवर्तन इस प्रकार हैं :—

सैनिक प्रभाव—रोम के निवासी सामरिक प्रवृत्ति के थे। रोम का साम्राज्य-विस्तार उसके सैनिक संगठन के कारण ही संभव हो सका था। प्रारंभ में रोम की युद्ध-शैली परंपरागत एवं अप्रभावित थी। परन्तु बाहरी जातियों से युद्ध करने के उपरान्त उसे अपना मौलिक सैन्य संगठन बदल देना पड़ा। उसने इनकी युद्ध-सम्बन्धी बारीकिओं को अपना लिया। पहाड़ी जातियों के संपर्क से उसने पर्वतीय युद्ध सीखा। सैनिक अनुशासन अब पहले से अधिक बढ़ा दिया गया। आवश्यकता पड़ने पर सत्रह से लेकर छियालिस वर्ष की अवस्था के भीतर के किसी भी नागरिक से सैनिक कार्य लिया जा सकता था। वाह्य अनुकरण के अनुसार सैनिक शिविर को चारों ओर से खाईं तथा मिट्टी की दीवाल के द्वारा घेर दिया जाता था। इस प्रकार यह शत्रुओं के लिये दुर्लंध्य हो जाता था। उच्च सैनिक पदों पर अब केवल वे ही नियुक्त किये जाते थे, जिन्हें कम से कम दस युद्धों में लड़ने का अनुभव प्राप्त हो। साम्राज्य-विस्तार के उपरांत रोम की सेना अधिक सुसंगठित एवं युद्ध-क्रिया में अत्यंत प्रवीण थी।

कृषि पर प्रभाव—प्रारंभ में रोम का आर्थिक जीवन विशेषतः कृषि-मूलक था। खेती का ढंग बहुत साधारण था। लोगों के पास छोटे फार्म हुआ करते थे, जिनमें परंपरागत विधि के द्वारा वे अनाज उत्पन्न करते थे। परन्तु

---

१ "The influx of wealth and the spread of Hellenic culture during the period of great wars had combined to effect a profound revolution in the moral and economic life of the Roman community."
—Burg.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
रोम के युद्धों के उपरांत यहाँ छोटे फार्मों के स्थान पर खेत के लम्बे खत्ते (लैटीफंडिया) बनाये गये। इसका कारण यह था कि विभिन्न लड़ाइयों में सैनिकों के बहुसंख्या में मारे जाने के कारण ग्राम-जनसंख्या में कमी आ गई। जो सैनिक युद्ध के उपरान्त ग्रामों में लौटे, उनकी रुचि खेती में नहीं रह गई। उनकी प्रवृत्ति लूट खसोट में अधिक हो गई। हैनीबाल के ध्वंसात्मक युद्धों के कारण दक्षिणी इटली के ग्राम उजड़ चुके थे। कुछ भागों में अधिक जोती जाने के कारण भूमि की उर्वरा-शक्ति घट चुकी थी। इस कारण साधारण जनता जमीन को धनिक व्यक्तियों के हाथ बेचने लगी। इन लोगों ने अधिक भूमि खरीद कर लम्बे फार्म बनाये और उनमें पशु-पालन प्रारंभ किया। कैटो लिखता है कि युद्ध-काल के उपरान्त रोम में पशुपालन से लोगों को बहुत बड़ी आमदनी थी। मदिरा एवं तेल का उत्पादन इस समय अधिक होने लगा। इस नवीन परिवर्तन के कारण साधारण कृषकों की दशा पहले से अधिक शोचनीय हो गई। लम्बी खेती वाले धनी मानी कुलीन अपने पशुओं को छोटे किसानों के खेत में छोड़ देते थे। इस पर न तो कोई रोक-थाम थी और न तो कोई कानूनी सुनवाई। इस ग्रामीण आर्थिक परिवर्तन ने नागरिकों को और भी संपन्न तथा दीन जनता को और भी गरीब बनाने में सहयोग प्रदान किया। इससे शोषण और उत्पीड़न और भी बढ़ने लगा। समकालीन लेखकों ने इस दुर्दशा पर मार्मिक क्लेश प्रगट किया है।

दास-प्रथा का प्रचार—इस घटना के कारण दास-प्रथा का शीघ्रता के साथ प्रचार हुआ। रोम ने अपनी युद्ध-क्रिया में बहुत से लोगों को बंदी बनाया। प्रथम प्यूनिक युद्ध में पचहत्तर हजार तथा द्वितीय प्यूनिक युद्ध में इससे कई गुना अधिक बन्दियों को दास बनाया गया। एपिरस से डेढ़ लाख बन्दी पकड़े गये। इनमें से कुछ गृहकार्यों, कुछ उद्योग-धन्धों, कुछ स्पेन एवं सार्डिनिया की खानों तथा कुछ खेती के काम में लगाये गये। इस समय दास खरीदे भी जाते थे। कैटो के अनुसार फार्म में काम करने वाले दास का मूल्य पाँच सौ सुवर्ण मुद्रायें तथा नृत्य-सुन्दरी का मूल्य तीन हजार सुवर्ण मुद्रायें थीं। दास स्वामी की व्यक्तिगत संपत्ति समझे जाते थे। इनके साथ बर्बरता का व्यवहार किया जाता था। उनका जीवन एक तरह से पशुतुल्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

था । उनका शोषण तथा उत्पीड़न किया जाता था । वे घर की चहारदीवारी में कैदी के समान रखे जाते थे तथा स्वामी उन्हें कठिन दण्ड देता था । कैटो के अनुसार वे प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक कठिन परिश्रम करते थे । त्यौहार के दिनों में भी उन्हें छुट्टी नहीं दी जाती थी ।

वैरो (११६ ई० पू०—२७ ई० पू०) के वर्णन में दासों के विषय में जो उल्लेख मिलते हैं, उनसे भी यही निष्कर्ष निकलता है कि उस समय के दास पालतू जानवर अथवा स्वामी की चल सम्पत्ति के तुल्य थे । उनके कोई भी व्यक्तिगत अधिकार नहीं थे । उनके बच्चे जन्म के समय से ही दास समझे जाते थे । उनके लिये कोड़े की सजा तो बड़ी ही साधारण सी बात थी । अगर घर के भीतर स्वामी की हत्या हो जाती थी, तो उसके सभी दासों को मृत्यु की सजा मिलती थी । निर्दय लोग अपने दास से शक्ति से अधिक कार्य लेकर उसे मार डालते थे । प्रत्येक धनिक नागरिक के घर के प्रधान द्वार पर दो दास जंजीर में बँधे हुये कुत्तों के तुल्य बराबर खड़े रहते थे । जिन दासों को खान में काम करना पड़ता था, वे एक तरह से अपना पूरा काल उसके भीतर ही व्यतीत करते थे । कहावत प्रसिद्ध थी कि ऐसे दासों की मृत्यु खान के अन्दर ही होती थी । पशुचारक दास को धूप, गर्मी, बरसात सभी ऋतुओं में खुले आकाश के नीचे रहना पड़ता था । इस समय के कुछ लेखकों ने दास-प्रथा में सुधार का प्रचार अवश्य किया, पर उसका कोई व्यावहारिक प्रभाव नहीं पड़ सका था ।

शोषित वर्ग का आविर्भाव—युद्ध के पश्चात् बेकारी अधिक बढ़ गई । जिन लोगों ने सैनिक का काम किया था, वे लोग जीविका की खोज में मारे मारे घूमने लगे । जो लोग कृषि-विरत थे, वे भी शहरों में रोजी के लिये चक्कर लगाने लगे । पूँजी की कमी के कारण वे तिजारत भी नहीं कर सकते थे । विशेष रूप से रोम का नगर इस प्रकार के लोगों का केन्द्रबिन्दु बन गया । यही कारण है कि इतिहासकार ट्रेवर ने रोम को जीविका खोजने वालों का केन्द्र ('मक्का ऑफ फार्चून हंटर्स') कहा है । ऐसे लोगों को नगरों में बड़ी कठिनाई के साथ नौकरी मिलती थी । इनको अल्प वेतन दिया गया, पर काम अधिक लिया गया । इस रूप में इनका बुरी तरह शोषण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
हुआ। इनको इतिहासकारों ने नगर-शोषित वर्ग (अर्बन प्रालीटैरियट) कहा है। वे लोग कालान्तर में समाज के लिये बहुत भार सिद्ध हुये। ये लोग अधिकतर "पापुलरेस" के नाम से प्रसिद्ध थे। निर्वाचन के अवसर पर इनका वोट खरीद लिया जाता था। समाज में इनकी स्थिति ने आगे चलकर जटिल प्रश्नों को जन्म दिया, जो कि एक नई क्रान्ति के लिये पृष्ठभूमि सिद्ध हुई।

आप्टीमेट्स वर्ग का अभ्युदय—यह समाज का एक नवीन वर्ग था, जो रोम के गणतन्त्र-कालीन युद्धों का परिणाम था। इस वर्ग के लोग सेनेट के सदस्य थे तथा समाज में अधिक सम्मानित थे। इनकी धन-वृद्धि के तीन प्रमुख कारण थे—(१) इन्हें रोम के युद्धों में मात्रातीत धन की प्राप्ति हुई, (२) इनके पास विस्तृत भूमि-खंड थे तथा (३) ये लोग प्रान्तीय राज्यपाल नियुक्त किये जाते थे। ये वैधानिक दृष्टि से व्यापार नहीं कर सकते थे। सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से रोम के इतिहास में इस वर्ग का स्थान महत्व-पूर्ण है। इस वर्ग ने यूनानी सभ्यता का सहर्ष स्वागत किया, जिसे रोम की प्राचीनता के पुजारी घृणा की दृष्टि से देखते थे। परन्तु राजनीतिक दृष्टि से यह वर्ग असफल था। इसका कारण यह था कि ये लोग अपने व्यक्तिगत एवं वर्गहित को राष्ट्रहित की अपेक्षा अधिक महत्ता प्रदान करते थे। ये लोग शासन-कार्य उत्तरदायित्व के साथ सुसंचालित करने में असफल सिद्ध हुये।

पूँजीपतियों का उद्गम—इस काल में कई कारणों से पूँजीपतियों का विकास हुआ। व्यापारिक प्रगति के फलस्वरूप धनिक व्यापारियों की संख्या बढ़ने लगी। राजमार्ग, पुल तथा राजकीय भवनों के निर्माण का कार्य ठीकेदारों को दिया गया। इससे इनके पास बहुत अधिक धन हो गया। दास-प्रथा के कारण इनको अत्यल्प वेतन पर काम करने वाले मिल जाते थे। इनको और तरह का सरकारी ठीका भी सरलतापूर्वक उपलब्ध हो जाता था। प्रसिद्ध व्यापारिक मार्गों एवं सड़कों पर उनकी अपनी सवारियाँ चलती थीं और इन साधनों से उनको काफी आमदनी हुआ करती थी। वे अपना मत-लब सीधा करने के लिये सरकारी कर्मचारियों को घूस दिया करते थे और इस प्रकार शासन के क्षेत्र में वे भ्रष्टाचार फैलाते थे। इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने अपने धन का काफी दुरुपयोग किया। प्रायः ये लोग श्रमिकों से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बेगार लिया करते थे। कभी-कभी इस काल के व्यापारी अपना संगठन बनाकर साझेदारी के सिद्धान्त पर लम्बा व्यापार करते थे। इस प्रकार के संगठन को "सोसाइटीज़" कहा जाता था। इसके सदस्यों के पास बहुत अधिक द्रव्य होता था। इस काल के पूँजीपतियों को "इक्वेस्ट्रियन" कहा जाता था। यह वर्ग आप्टीमेट्स का प्रतिस्पर्द्धी था। दोनों वर्गों के झगड़े से रोम में महान् विवाद उत्पन्न हो गया। इसका परिणाम इसके राजनीतिक इतिहास के ऊपर भी पड़ा।

सेनेट का शक्ति-विस्तार—इसमें लवलेश भी सन्देह नहीं कि इन युद्धों के कारण सेनेट की शक्ति का अभूतपूर्व विकास हुआ। युद्ध की गतिविधि के निर्देश और नियंत्रण में सेनेट ने अपनी राजनीतिक मेधा, उत्साह और कूटनीति का परिचय दिया। हैनीबाल के साथ युद्ध के अवसर पर उसने कुशलता के साथ पथ-प्रदर्शन किया। सुयोग्य सेनापतियों की नियुक्ति में इसके सदस्यों ने बुद्धिमत्ता दिखाई। परिणामस्वरूप विजित भूमिखंडों के प्रबंध का पूर्ण अधिकार सेनेट को प्राप्त हुआ। इसी प्रकार इन भूमिखंडों से संबन्धित झगड़ों के निर्णय का अधिकार भी सेनेट को दिया गया। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि यह संस्था अपने अधिकारों का प्रयोग ठीक रूप में न कर सकी। नवविजित प्रान्तों का शासन-प्रबंध उसने समुचित प्रकार से नहीं किया। उसने समय समय पर मजिस्ट्रेट के पद पर अयोग्य व्यक्तियों को अवैधानिक ढंग से नियुक्त किया। सेनेट प्रान्तीय राज्यपालों पर नियंत्रण नहीं स्थापित कर सकी। इसने उच्च पदों पर नियुक्तियाँ पक्षपात की दृष्टि से कीं, जिसके फलस्वरूप शासन में भ्रष्टाचार फैला।

मुद्रा तथा बैंक—साम्राज्य-विस्तार के पूर्व रोम में मुद्राओं की कमी थी। विशेष रूप से चाँदी के सिक्कों की अधिक न्यूनता थी। पर युद्धों में रोम को असंख्य सोने तथा चाँदी की प्राप्ति हुई। केवल एशिया माइनर से ही रोम को छः करोड़ स्वर्ण मुद्रायें उपलब्ध हुईं। स्पेन की खानों में असंख्य चाँदी के सिक्के मिले। मुद्रा के व्यवहार के विकास के कारण बैंक-प्रथा का आविर्भाव हुआ। बैंक में जमा किये हुए द्रव्य के ऊपर सूद मिलता था। इनसे ऋण भी साधारण ब्याज पर उपलब्ध हो जाता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यावसायिक प्रभाव—रोम के लोगों का अब उद्योगधंधों की ओर झुकाव कम रह गया। इसका कारण यह था कि रोम को इस समय द्रव्य बहुत अधिक उपलब्ध हो गया था। विजित देशों से इसे भेंट मिलती थी। स्पेन की खानों से अधिक द्रव्य आता था। युद्ध की लूटों में भी पर्याप्त धन प्राप्त हो गया था। परिणामस्वरूप आमोद-प्रमोद की सामग्री बाहरी देशों से लोगों को प्राप्त हो जाती थी। अतएव देशीय उत्पादन कम हो गया। रोम के लोग अब विजित देशों पर दिन प्रति दिन की वस्तुओं के लिये आश्रित रहने लगे। अब रोम की स्थिति भोक्ता की हो गई तथा वह उत्पादक के रूप में अब बहुत कम रह गया।

सामाजिक प्रभाव—धनराशि के संचय का प्रभाव लोगों के आचार के ऊपर पड़ा। समसामयिक लेखकों का कथन है कि इस समय रोम के निवासियों का महान् नैतिक पतन हुआ। भ्रष्टता बढ़ने लगी। आमोद-प्रमोद तथा भोग-विलास की वस्तुओं की माँग बढ़ी। परिणामस्वरूप रोम के लोग अपनी प्राचीन जातिगत विशेषता को भूल बैठे। समाज में तड़क-भड़क के बढ़ जाने के कारण स्त्री-दशा में भी परिवर्तन हुआ। उनमें स्वातंत्र्य-भावना बढ़ने लगी। अब पर्दे की प्रथा समाप्त हो गई। स्त्रियाँ घर के बाहर आवश्यक कार्यों से बाजारों और सड़कों पर आ सकती थीं। उन्होंने राजनीति में भी भाग लेना आरंभ किया। वे चुनाव लड़ सकती थीं तथा समाज में अपने स्थान को पुरुषों से कम नहीं मानती थीं।

सांस्कृतिक प्रभाव—कवि होरेस का कथन है कि रोम ने यूनान को नहीं जीता, अपितु यूनान ने रोम को जीत लिया।[१] वास्तव में यूनान के ऊपर रोम की केवल राजनीतिक विजय ही थी। सांस्कृतिक दृष्टि से रोम यूनान की महत्ता के समक्ष नतमस्तक हो गया। साम्राज्य-विस्तार के उपरान्त रोम-संस्कृति के विभिन्न अंगों पर यूनानी प्रभाव बहुत अधिक पड़ा। युद्ध-काल में रोम के सैनिक यूनानी कला, साहित्य तथा दर्शन आदि की विशेषताओं से परिचित हुये। यूनान के बन्दियों से रोम के निवासियों ने अपने देश में काम

१ "Captive Greece took her barbarian conqueror captive."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लेना प्रारंभ किया। इनमें से कुछ प्रवीण शिक्षक, वैज्ञानिक, चिकित्सक तथा दार्शनिक भी थे। उदाहरणार्थ पॉलिबियस जो कि एक कुशल यूनानी इतिहासकार था, स्किपियो का परम सुहृद तथा शिक्षक था। कार्नीडिज अपने व्याख्यानों के द्वारा दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रसार कर रहा था। रोम के ऊपर यूनानी सभ्यता के प्रभाव को रोम का यूनानीकरण "हेलेनाइज़ेशन ऑफ रोम" कहते हैं। रोम-सभ्यता के जिन अंगों पर यूनानी प्रभाव पड़ा, उनका विवेचन कुछ निम्न ढंग पर किया सकता है :—

कला—इस समय रोम ने यूनानी कला की विशेषताओं को अपना लिया। यहाँ के देवालय यूनान के मन्दिरों के आधार पर निर्मित किये गये। इनमें प्रतिष्ठापित मूर्तियों में अधिकांश यूनानी नगरों से लाई गईं थीं। रोम के धनाढ्य नागरिकों ने यूनान के अनुकरण के आधार पर यहाँ अनेक चित्रशालाओं को तैयार कराया। इस काल के बर्तन, आभूषण एवं कलात्मक सामग्री की निर्माण-विधि के ऊपर स्पष्ट यूनानी प्रभाव परिलक्षित होता है। यूनान के कारीगरों के प्रयत्न के कारण रोम नगर ने एक नवीन रूप धारण किया।

साहित्य—इस समय के रोम-साहित्य ने यूनान से प्रेरणा ली। लिवियस ऐंड्रोनिकस ने ओडिसी नामक यूनानी ग्रन्थ का लैटिन भाषा में अनुवाद किया। उसने यूनानी दुःखान्त एवं सुखान्त नाटकों का भी अपनी भाषा में अनुवाद प्रस्तुत किया। ग्रेयस नेवियस ने प्रथम प्यूनिक युद्ध पर महाकाव्य लिखा। उसने प्रमुख यूनानी दुःखान्त नाटकों का लैटिन भाषा में अनुवाद किया। उसकी रचनाओं का प्रभाव वर्जिल की कृतियों के ऊपर भी पड़ा था। प्लेटस ने मेनेन्डर के सुखान्त नाटकों को आदर्श मानकर अपने ग्रन्थों की रचना की। टेरेन्स को यूनानी साहित्य के मूल स्वरूप का वास्तविक ज्ञान था। इसके अनूदित ग्रन्थ लोकप्रिय थे। यूनान से प्रेरणा लेने वाले रोम के लेखकों में क्विन्टस एनियस सबसे प्रसिद्ध था। लैटिन और यूनानी भाषाओं को वह समान रूप से जानता था। वह द्वितीय प्यूनिक युद्ध में रोम की सेना में काम भी कर चुका था। यूनानी साहित्य एवं दर्शन का उसे प्रगाढ़ ज्ञान था। उसका सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ "एनाल्स ऑफ रोम" था। यह एक ऐति-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हासिक महाकाव्य था। इसकी ख्याति कालान्तर में भी विशेष थी। इसके अठारह भाग थे, जिसमें उसने प्रारम्भ से लेकर अपने समय तक का रोम का इतिहास लिखा। इस लेखक की बहुत सी उक्तियाँ उद्धरण के रूप में प्रचलित थीं। रोम के निवासियों को इतिहास लिखने की प्रेरणा उस समय उपलब्ध हुई, जब कि प्रथम प्यूनिक युद्ध के उपरान्त वे अपनी महत्ता से परिचित हुये। ऐसे इतिहासकारों में फैबियस पिक्टर का नाम लिया जा सकता है। उसने यूनानी भाषा में रोम का इतिहास लिखा। कैटो ने लैटिन भाषा में रोम का इतिहास लिखा। इसने रोम के निवासियों को राष्ट्रीयता की भावना से परिचित कराया तथा कालान्तर के इतिहासकारों के लिये प्रेरणा प्रदान की। कहा जाता है कि लिवी भी इसकी कृतियों से प्रभावित था।

दर्शन—इस समय हेलेनिस्टिक पृष्ठभूमि में दर्शन का भी विकास हुआ। रोम के 'स्किपियोनिक' वर्ग के दार्शनिकों ने स्टोइक दर्शन से प्रेरणा ली। इस प्रकार के विचारकों में स्किपियो, एमिलिनौस तथा लेलियस उल्लेखनीय हैं। इन लोगों ने यूनानी इतिहास तथा दर्शन का अध्ययन किया। इन्होंने यूनान के स्टोइक दार्शनिक पेनिटियस को रोम में आमन्त्रित किया। इसके प्रयत्न से स्टोइक दर्शन इस समय रोम का सबसे प्रमुख दर्शन बन गया। इस विचारधारा के फलस्वरूप प्राचीन रूढ़ियाँ तथा संकीर्णतायें यहाँ के निवासियों के मस्तिष्क से हट गईं। उनका दृष्टिकोण अब अधिक व्यापक एवं विवेचनात्मक हो गया।

धर्म—यूनानी दर्शन ने रोमवासियों की श्रद्धा को यहाँ के परम्परागत देवताओं की ओर से हटा दिया। हैनीबाल की विजयों के कारण रोम के जनसाधारण में यह विश्वास फैलने लगा कि उनके प्राचीन देवताओं ने उनका परित्याग कर दिया है। परिणामस्वरूप इन्होंने यूनान के नवीन देवताओं की उपासना का सहर्ष अभिनन्दन किया। इस समय कई रोम और यूनानी देवताओं में तादात्म्य स्थापित हुआ, उदाहरणार्थ जूपिटर का ज़ियस के साथ तथा जूनों का हेरा के साथ। नवजागरण के कारण रोमवासियों ने यूनान की कई धार्मिक प्रथाओं को अपना लिया। रूढ़िवादिनी सेनेट ने इस प्रवृत्ति को रोकना चाहा पर इसमें वह सफलीभूत न हो सकी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आमोद-प्रमोद—रोमवासियों ने यूनानियों से आमोद-प्रमोद के विभिन्न प्रकारों को सीखा। रोम के लोग पहले त्यौहारों के अवसर पर उत्सव मनाया करते थे। पर अब धनाधिक्य के कारण अधिक समारोह मनाये जाने लगे। उत्सवों के अतिरिक्त खेल-कूद के द्वारा भी ये लोग आमोद-प्रमोद करते थे। इनमें रथ-दौड़, वन्य पशुओं का आखेट, सर्कस तथा मल्ल-युद्ध उल्लेखनीय हैं। नाटकों का अभिनय भी इस समय मनोरंजन का एक प्रिय साधन था। लोगों के आमोद-प्रमोद की सुव्यवस्था के निमित्त राज्य की ओर से कर्मचारी नियुक्त किये जाते थे, जिन्हें "एडाइल्स" कहा जाता था। ये लोग विशेष रूप से नगरों में सामूहिक मनोविनोद का आयोजन करते थे, क्योंकि वहाँ की मानसिक-श्रम से आक्रान्त जनसंख्या को इसकी आवश्यकता थी।

रोम के इतिहास के ऊपर उसके साम्राज्य-विस्तार का एक घातक परिणाम भी पहुँचा। पॉलिवियस के अनुसार विजय-क्रिया की समाप्ति के उपरान्त रोम की राजनीतिक संस्थायें नवीन आवश्यकताओं के उपयुक्त नहीं सिद्ध हुईं। सेनेट ने युद्ध के अवसर पर जिन अयोग्य पदाधिकारियों को नियुक्त किया था, उनमें अधिकांश निकम्मे सिद्ध हुये। इस समय का आर्थिक परिवर्तन सदोष था। यदि एक ओर पूँजीवादी दल अपरंपार धन संचित कर रहा था, तो दूसरी ओर दलितों का एक ऐसा वर्ग था जो दरिद्रता के कारण असंतुष्ट था। नवीन विचारों के समावेश ने रोम की मौलिकता को विनष्ट कर दिया।[१] अधिकांश जनसंख्या अब ग्राम छोड़कर नगरों में बसने लगी। इसने शोषितों के एक नवीन वर्ग को जन्म दिया, जो कि दरिद्रता के कारण पीड़ित था। युद्ध-काल के उपरान्त सेनेट न तो शासन को सुचारु रूप से संचालित कर सकी और न तो सामाजिक एवं आर्थिक कुरीतियों को ही हटा सकी। इसके परिणामस्वरूप रोम में एक ऐसी क्रान्ति का उद्गम हुआ, जिसने गणतंत्र के स्थान पर एकतंत्र को जन्म दिया।

रोम की क्रान्ति—(१३३-३१ ई० पू०)—रोम की क्रान्ति उन युग-

1 "Hellenistic ideas, destroyed the spiritual and social bases, upon which the traditions rested" —Caldwell.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रवर्तक वृत्तान्तों का परिणाम थी, जिन्होंने गणतंत्र का विनाश कर सीजर नामधारी सम्राटों के एकतंत्रीय शासन को जन्म दिया। रोम का गणतंत्रकालीन संविधान उसके विशाल साम्राज्य को सुसंगठित करने एवं सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं को सुलझाने में असमर्थ सिद्ध हुआ। इस समय वर्गगत संघर्ष अपने पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था। विशेषतः आप्टिमेट्स तथा 'इक्वेस्ट्रियन' में पारस्परिक स्पर्द्धा थी। 'इक्वेस्ट्रियन' वर्ग के पास अतुल धनराशि होने पर भी अधिकारों की कमी थी। इस कारण इसके सदस्य असन्तुष्ट थे। विशाल भूमि के अधिपतियों के आविर्भाव के कारण छोटे कृषक असन्तुष्ट थे। युद्ध के उपरान्त रोम की सेना से बहुत से सैनिक छाँट दिये गये, जिनके लिये जीविका का अब कोई भी सहारा नहीं था। विजित देशों के जिन बन्दियों को दास बनाया गया था, वे रोम की दुःखावह परिस्थितियों में परतंत्रता का अनुभव कर रहे थे। उन्होंने स्वदेश में सुख और स्वतंत्रता का उपयोग किया था। इनमें घोर असन्तोष तथा शासकवर्ग के प्रति अश्रद्धा की भावना विद्यमान थी। छोटे कृषकों में अधिकांश ग्राम छोड़कर नगर में बस गये थे। इन्होंने एक नवीन जीविका-विहीन एवं दलित पुर-वर्ग (अर्बन प्रॉलिटैरियट) को जन्म दिया, जिसके कारण अनेक राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओं का आविर्भाव हुआ।

टाइबेरियस ग्रेकस---इस क्रान्ति का प्रारम्भ कुछ सुधारकों के प्रयत्न के रूप में हुआ। इनमें सर्वप्रथम टाइबेरियस ग्रेकस उल्लेखनीय है। इसे सामान्यतः ग्रेकस कहा जाता है। १३३ ई० पू० में वह ट्रिब्यून चुना गया। उसने यूनानी आचार्यों से शिक्षा ली थी, अतएव उसके दृष्टिकोण बहुत उदार थे। इसने भूमि-सम्बन्धी एक नया कानून बनाया, जिसे "ग्रेकस लॉ" कहा जाता है। उसने यह सुझाव रखा कि विशाल भूमिखंडों को छोटे भागों में वितरित कर दिया जाय। यूनान में इस प्रकार का वितरण स्पार्टा में किया जा चुका था। ३६७ ई० पू० में "सेक्सटियन लॉज़" के द्वारा रोम में भी इस आधार पर भूमि-वितरण के निमित्त चेष्टा की गई थी। परन्तु आप्टीमेट्स वर्ग के सदस्यों ने, जो बड़े भूमिपति हुआ करते थे, इसे कार्यान्वित न होने दिया था। ग्रेकस के काल में उपर्युक्त कानून के द्वारा भूमि-वितरण-संबन्धी इस दोष को दूर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया गया। विशाल भूमिखंड, जो धनाढ्यों के हाथ में थे, छोटे छोटे टुकड़ों में विभक्त कर दिये गये। उसके एक दूसरे सुधार के द्वारा एक ही व्यक्ति पुनः ट्रिब्यून नहीं नियुक्त किया जा सकता था।

गेयस ग्रेकस—१२३ ई० पू० में उसका छोटा भाई (गेयस ग्रेकस) ट्रिब्यून चुना गया। उसके सुधारों के अनुसार शासन ट्रिब्यून के हाथों में केन्द्रित किया गया। सेनेट के राजनीतिक अधिकार पहले से कम कर दिये गये। इटली के सभी निवासियों को नागरिकता दी गई। रोम के निर्धन व्यक्तियों को आर्थिक सुविधायें दी गईं। बिना अभियोग के किसी को भी मृत्यु-दण्ड नहीं दिया जा सकता था। इक्वेस्ट्रियन वर्ग के लोग भी जूरी नियुक्त किये जाने लगे। आंतरिक व्यापार के विकास के निमित्त राजमार्गों का निर्माण किया गया। जो अनाज कर के रूप में वसूल किया जाता था, उसे सस्ते भाव पर दरिद्र व्यक्तियों को बेंच दिया जाता था। गेयस ग्रेकस ने टैरेन्टम, कार्थेज तथा क्रोन्टन में व्यापारिक उपनिवेशों की स्थापना कराई। इसकी कार्याविधि १२१ ई० पू० में समाप्त हुई। कुछ इतिहासकारों ने ग्रेकस भाइयों की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। उनके अनुसार ये दोनों वीर और शहीद थे। यदि ये कुछ दिन और जीवित रहते, तो इनके प्रयत्नों के फलस्वरूप रोम का विलक्षण विकास होता।

गेयस मैरियस—गेयस ग्रेकस के उपरान्त गेयस मैरियस का अभ्युदय हुआ। यह रोम के कई युद्धों में सफलतापूर्वक भाग ले चुका था। इस कारण यहाँ के निवासियों की उसके प्रति श्रद्धा थी। उसका विवाह सीजर वंश की जुलिया नामक राजकुमारी के साथ हुआ था। इस कारण कुलीन वंश के लोगों में भी वह पर्याप्त प्रसिद्धि में आ चुका था। वह १०६ ई० पू० में रोम का सेनापति चुना गया। उसने इस रूप में कई महत्वपूर्ण सैनिक सुधार किये। उसने धन-संबन्धी योग्यताओं को हटाकर सैनिकों की नियुक्ति की। प्रत्येक सैनिक को सेना में कम से कम सोलह वर्ष तक कार्य करना अनिवार्य था। वह अपनी सैनिक सेवाओं के कारण रोम का संरक्षक समझा जाता था। कुछ लोग उसे रोम का तृतीय संस्थापक भी मानते थे। प्रथम दो संस्थापक रोमलस तथा केमिलस माने जाते थे। गेयस मैरियस को १०० ई० पू० में कौंसल चुना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया। इस रूप में उसने कई राजनीतिक सुधार किये। उसने तत्कालीन आर्थिक समस्याओं को भी सुलझाने की पर्याप्त चेष्टा की। परन्तु यह उतना सफल राजनीतिज्ञ नहीं माना जाता। यही कारण है कि वह पुनः इस पद पर निर्वाचित नहीं हो सका।

लिवियस ड्रूसस—गेयस मैरियस के उपरान्त लिवियस ड्रूसस नामक सुधारक का अभ्युदय हुआ। ९१ ई० पू० में वह ट्रिब्यून चुना गया। उसने जूरी-प्रथा को प्रोत्साहित किया। उसने व्यापारिक विकास के निमित्त नवीन उपनिवेश स्थापित किये। उसने सुधारों की एक नवीन योजना बनाई, परन्तु उसे कार्यान्वित करने के पूर्व ही वह मार डाला गया। इसकी मृत्यु के रूप में वैधानिक एवं शान्तिमय ढंग से रोम-संविधान के सुधार की अन्तिम चेष्टा विलीन हो गई।

सुला—इसका अभ्युदय ८८ ई० पू० के लगभग हुआ। वह इस समय के लगभग अनिश्चित काल के लिये डिक्टेटर निर्वाचित किया गया। उसे रोम-संविधान को संशोधित एवं परिवर्द्धित करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त था। उसने सेनेट की शक्ति को बढ़ाने की चेष्टा की तथा कौंसल का अधिकार कम कर दिया। उसने प्रायटर की संख्या बढ़ाकर आठ कर दी। उन्हें विभिन्न प्रकार के न्याय-संबन्धी अधिकार प्रदान किये गये। सेनेट में इक्वेस्ट्रियन वर्ग के सदस्यों को भी स्थान प्रदान किया गया। उसने क्वेस्टर की संख्या भी बढ़ा दी। उसने प्रोकौंसल, प्रायटर तथा क्वेस्टर के अधिकारों को स्पष्ट रूप से निर्धारित कर दिया, ताकि किसी प्रश्न के ऊपर इनके बीच किसी प्रकार का विवाद न उपस्थित हो। यदि ये लोग अपने अधिकारों से बाहर जाने की चेष्टा करते थे, तो उन्हें पदच्युत किया जाता था। क्वेस्टर के लिये कम से कम ३०, प्रायटर के लिये ४० तथा कौंसल के लिये ४३ वर्ष की अवस्था अनिवार्य थी। उसने ट्रिब्यून का अधिकार कम कर दिया तथा सेनेट का अधिकार बढ़ा दिया। सुला की गणना रोम के प्रसिद्ध विधान-दाताओं में की जाती है। रोम को उसने एक संगठित संविधान प्रदान किया था। ७९ ई० पू० में उसने डिक्टेटर के पद से त्यागपत्र दे दिया।

पाम्पी—सुला के उपरान्त पाम्पी का अभ्युदय हुआ। वह एक ऊँची

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

योग्यता का सेनानायक था। सुला के काल में उसने अपनी सैनिक योग्यता का विलक्षण परिचय दिया था। उसकी कृतियों में सबसे महत्वपूर्ण घटना स्पेन के विरोध का दमन है। इसी प्रकार सिसली और अफ्रीका में भी वह विरोधमयी प्रवृत्तियों के दमन में सफलीभूत हुआ। जिस समय पाम्पी इन बाह्य शक्तियों को दबाने में संलग्न था, उस समय इटली में दासों की क्रान्ति हुई। इसको शान्त करने के निमित्त उसने क्रेसस नामक व्यक्ति को भेजा। वह इस क्रान्ति के दमन में सफल हुआ। इस घटना के कारण क्रेसस प्रसिद्धि में आ गया। पाम्पी ने अपने आर्थिक सुधारों के द्वारा रोम की आय बढ़ा दी। उसने जूरी की शक्ति को भी बढ़ाने की चेष्टा की। पाम्पी की महत्ता इस समय कुछ काल के लिए सिसरो के अभ्युदय के द्वारा तिरोहित हो गई।

सिसरो—इसका अभ्युदय ७० ई० पू० के लगभग हुआ। उसने प्रान्तीय पदाधिकारियों के भ्रष्टाचार को दूर करने का प्रयास किया। इस समय सिसली का राज्यपाल वेरेस भ्रष्टाचारी सिद्ध हो रहा था। कुशल प्रवक्ता होने के कारण उसने अपने शासन-क्षेत्र में काफी प्रभाव पैदा कर लिया था। इस दृष्टि से उसे पदच्युत करना क्लिष्ट कार्य था। सिसरो ने उसके दुष्कार्यों को प्रकाश में लाया। उसने इस विषय पर "ओरेशन्स अगेन्स्ट गेयस वेरस" नामक पुस्तक की रचना की, जिसके फलस्वरूप जनमत वेरेस के विरुद्ध हो गया। इसकी गुरुता को देखते हुये वेरेस ने स्वयं पदत्याग कर दिया। प्रान्तीय भ्रष्टाचारों को दूर करने के कारण सिसरो पहले से अधिक प्रसिद्धि में आ गया। इस समय सिसरो की उन्नति के चार प्रतिस्पर्द्धी थे—सीज़र, क्रेसस, मैरियस तथा कैटीलाइन। सीज़र क्रेसस की सहायता द्वारा कैटीलाइन को सिसरो के विरुद्ध कौंसल निर्वाचित कराना चाहता था। इस समय सिसरो का सहायक एँटोनियस था। सीज़र अपने प्रयत्न में सफलीभूत नहीं हो सका। अपनी सेवाओं के कारण सिसरो ६३ ई० पू० के कौंसल के पद पर निर्वाचित किया गया। इस समय सीज़र ने एक नया चक्र रचा। उसने अपने प्रभाव को बढ़ाने के निमित्त अपने आप को रोम के धर्म का संरक्षक (पोंटीफेक्स मैक्सीमस) घोषित कराया। इसी बीच कैटीलाइन ने सिसरो के विरुद्ध एक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

षडयन्त्र आयोजित किया। उसने कुछ कुलीनों की सहायता से उसकी हत्या कर शासन को आत्मसात करने की योजना बनाई। पर सिसरो की राजनीतिक चालों के कारण इस षडयन्त्र का भेद खुल गया। कैटीलाइन पर अभियोग चलाया गया। दोष के सिद्ध हो जाने पर उसे मृत्यु की सजा दी गई।

प्रथम त्रिगुट—६२ ई० पू० के लगभग रोम के राजनीतिक इतिहास के रंगमंच पर पाम्पी पुनः अवतरित हुआ। सीज़र ने उसे तथा क्रेसस को अपने साथ मिलाकर एक दल बनाया, जो कि प्रथम त्रिगुट (फर्स्ट ट्रायम्विरेट) के नाम से प्रसिद्ध है। इसका उद्देश्य सिसरो का विनाश कर अधिकार को छीन लेना था। इस त्रिगुट में अपनी स्थिति को अधिक सुदृढ़ करने के निमित्त सीज़र ने अपनी पुत्री जुलिया का विवाह पाम्पी से कर दिया। यह त्रिगुट स्थायी नहीं रह सका। इसका कारण यह है कि इसके सदस्यों में आपसी मतभेद था, जो कि थोड़े ही समय के उपरान्त प्रकट होने लगा। इनमें से प्रत्येक स्वार्थलाभ तथा अधिक से अधिक अधिकारों को प्राप्त करना चाहता था। परिणामस्वरूप यह त्रिगुट तीन शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वियों का अस्वाभाविक समुदाय सिद्ध हुआ। जुलिया की मृत्यु के अनन्तर पाम्पी और सीज़र में संघर्ष अधिक बढ़ गया। ५३ ई० पू० में क्रेसस के देहावसान के अनन्तर पाम्पी तथा सीज़र में साम्राज्य के शासन की बागडोर को अपने हाथों में लेने के लिए एक युद्ध छिड़ा, जो कि रोम के इतिहास में द्वितीय गृहयुद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। इस युद्ध में सेनेट ने पाम्पी का साथ दिया। रोम की सेना सीज़र की सहायता कर रही थी। पाम्पी पराजित हुआ। उसे बाध्य होकर मिश्र भागना पड़ा। वहाँ टालमी के द्वारा नियुक्त व्यक्तियों ने उसे मार डाला। सीज़र ने ४६ ई० पू० तक पाम्पी के समर्थकों को पूर्णरूप से परास्त कर सेनेट को अपने वश में कर लिया। अपने प्रभाव के बल पर वह सेनेट के द्वारा रोम का डिक्टेटर निर्वाचित किया गया।

जूलियस सीजर का शासन-काल (४६ ई० पू०—४४ ई० पू०)

उपाधियाँ एवं अधिकार—सीज़र ने विश्व के निरंकुश सम्राटों की भाँति उच्च उपाधियों को धारण करना एवं अपने अधिकारों को बढ़ाना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रारम्भ किया। इंपरेटर उपाधि को धारण करने के कारण उसे सर्वोच्च सैनिक अधिकार प्राप्त हो गये। अपने नवीन अधिकारों के अनुसार वह युद्ध एवं सन्धि का निर्णय कर सकता तथा संविधान में सुधार कर सकता था। उसे सेनेट ने पेटर पेट्रीआई (देश का पिता) घोषित किया। उसे (पोंटिफेक्स मैक्सीमस) पद प्रदान किया गया, जिसके कारण धार्मिक मामलों में उसका पूर्ण नियन्त्रण स्थापित हो गया। उसकी मूर्ति देवालयों में स्थापित की जाने लगी। रोम के सम्राटों की प्रतिमाओं की पंक्ति में उसकी प्रतिमा भी स्थापित की गई। धार्मिक अवसरों पर जलूस में देवमूर्तियों के साथ उसकी मूर्ति भी निकाली जाती थी। डियो के अनुसार एक मन्दिर में उसकी प्रतिमा के ऊपर 'अजेय देव' शब्द अंकित किये गये थे। रोम के कई नगरों में उसकी मूर्तियाँ स्थापित की गई थीं। उसकी जन्म-तिथि के अवसर पर बलिदान एवं विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानों का सम्पादन किया जाता था। रोम की मुद्राओं के ऊपर उसकी आकृति अंकित मिलती है। यहाँ तक कि वह रोम-सम्राटों का लाल चोगा तथा लाल जूतों को पहन सकता था। वह अब राष्ट्रपिता समझा जाने लगा। उसके सम्मान में क्विंटिलस महीने का नाम जुलाई (जूलियस) रखा गया।

सुधार—जूलियस सीज़र के सुधारों का उद्देश्य अपने निरंकुश शासन के अन्तर्गत साम्राज्य को सुसंगठित एवं सुव्यवस्थित रूप प्रदान करना था। उसने विजित प्रान्तों के लोगों को भी सेनेट का सदस्य बनाया। इस प्रकार अब इस संस्था के सदस्यों की संख्या ६०० के लगभग थी। उसने अपने विरोधी सदस्यों को इससे वहिष्कृत किया। इस प्रकार सेनेट इस समय गणतंत्र शासन के स्थान पर साम्राज्यवादी शासन का समर्थक बन गई। यह संस्था अब सम्पूर्ण रोम साम्राज्य का प्रतिनिधित्व करती थी। उच्च पदों पर नियुक्ति का अधिकार उसने अपने हाथों में कर लिया। इस प्रकार प्रान्तीय राज्यपाल, उच्च केन्द्रीय कर्मचारी तथा सैनिक पदाधिकारी उसके विरुद्ध नहीं जा सकते थे। उसने स्पेनिश तथा गाल लोगों को नागरिकता का अधिकार प्रदान कर उनकी सहानुभूति प्राप्त कर ली। शासन को अधिक सुदृढ़ करने के निमित्त उसने कानूनों को लेखबद्ध कराया। रोम को अधिक सुन्दर नगर बनाने के लिये उसने एक नवीन योजना बनाई, जिसकी कार्यान्विति के पूर्व ही उसका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
देहावसान हो गया। उसने बेगारी की समस्या को भी दूर करने का प्रयास किया। उसका सबसे महत्वपूर्ण कार्य जूलियन कैलेंडर का निर्माण है। भूमध्य-सागरीय देशों में उसने उपनिवेशों की स्थापना की। वाणिज्य के उपयुक्त केन्द्रों का उसने विकास किया। प्रान्तीय राज्यपालों, कर्मचारियों तथा सैनिक पदाधिकारियों के ऊपर उसने कठोर नियन्त्रण स्थापित किया। इसके अनुसार साल में ३६५$\frac{१}{४}$ दिन माने गये। प्रत्येक चौथे वर्ष १ दिन और बढ़ाकर चतुर्थ ($\frac{१}{४}$) दिन की कमी पूर्ण की जाती थी। यह कैलेंडर काफी लोकप्रिय था। कालान्तर में पोप ग्रिगरी तेरहवें ने १५८२ ई० में इसमें कुछ सुधार किया। इस कैलेंडर का प्रचार यूरोप में १५७२ ई० तक था। रूस तथा पूर्वी यूरोप में यह १९२० ई० तक प्रचलित था।

षडयन्त्र—जूलियस सीज़र के विरोधियों की संख्या अधिक थी। प्रजातंत्र-वादियों का विश्वास दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा था कि वह रोम-साम्राज्य में पूर्वी निरंकुश शासन की स्थापना करना चाहता है। उसकी राजकीय उपाधियों एवं दैवी सम्मान से लोग जलते थे। ४४ ई० पू० में उसके विरोधियों ने, जो कि संख्या में ६० के लगभग थे, उसके विरुद्ध एक षडयन्त्र का आयोजन किया। इसमें ब्रूटस भी सम्मिलित था, जिसकी नियुक्ति सीज़र ने प्रायटर के पद पर की थी। एक दिन सेनेट में अपना व्याख्यान देने के निमित्त जाते समय वह षडयन्त्रकारियों के द्वारा मार डाला गया।

सीज़र के चरित्र का मूल्यांकन—सीज़र विश्व-इतिहास में एक असाधारण प्रतिभा वाला व्यक्ति माना जाता है। विद्वानों के लिये उसका सम्पूर्ण जीवन कुतूहल तथा अभिरुचि का विषय है। संसार के विजेताओं ने उसके युद्धों तथा विजय के रहस्य को समझने की चेष्टा की है। उसके अधिकार विश्व के अनेक सम्राटों के लिये स्पर्धा के स्रोत सिद्ध हुये। उसका नाम सम्राट शब्द का बोधक माना जाने लगा। वह अदम्य उत्साह, विलक्षण आत्मविश्वास तथा अपूर्व शक्ति वाला व्यक्ति था। उसके स्वभाव में दया-लुता कूट-कूट कर भरी हुई थी। यही कारण है कि वह अपने विरोधियों को समय-समय पर क्षमा प्रदान कर देता था। उसका प्रतिद्वन्द्वी पाम्पी भी उसकी क्षमाशीलता की प्रशंसा करता था। उसका व्यक्तित्व आकर्षक था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह एक सफल वक्ता, सेनानायक, राजनीतिज्ञ तथा विद्वान् व्यक्ति था। उसके राजनीतिक एवं सैनिक गुणों की समता विश्व के कतिपय महान् पुरुष ही कर सकते हैं।[१] रोम के प्राचीन गणतन्त्रवादी लेखकों ने उसे अहंकारी, अवसरवादी तथा स्वार्थी कहा है। उसके अनुसार केसियस तथा ब्रूटस आदि सदाशय देशभक्त थे। परन्तु यह कथन वास्तविक नहीं माना जा सकता। रोम-साम्राज्य का सर्वांगीण विकास उसका उद्देश्य था। इसको दृष्टि में रखते हुये उसे निम्न पुरुष कहना तर्क-संगत नहीं है। उसकी नीति समय की माँग थी। उससे प्रभावित होने के कारण रोम-सम्राटों ने सीजर उपाधि गर्व के साथ धारण करना प्रारम्भ किया। यूरोप के कैसर तथा ज़ार नरेशों की उपाधियाँ सीजर के नाम पर आधारित हैं।

(४४ ई० पू० से ३१ ई० पू०)—यह काल रोम के इतिहास में राजनीतिक उथल-पुथल का काल माना जा सकता है। सीज़र की हत्या करने वाले षडयंत्रकारी अपने उद्देश्य में सफलीभूत न हो सके। इस समय लेपिडस तथा ऐन्टोनी ने, जो कि सीजर के साथी रह चुके थे, दूरदर्शिता के साथ कार्य किया। सीजर के अन्त्येष्टि संस्कार के अवसर पर ऐन्टोनी ने एक ऐसा जोशीला भाषण दिया, जिसके फलस्वरूप रोम के निवासी षडयंत्रकारियों के विरुद्ध हो गये। केसियस तथा ब्रूटस अपने जीवन को असुरक्षित देखकर रोम नगर से हट गये। इस बीच रोम के राजनीतिक मंच पर आक्टेवियन नामक एक अष्टादशवर्षीय नवयुवक का पदार्पण ऐन्टोनी के प्रतिद्वन्दी के रूप में हुआ। वह सीजर का भ्रातुष्पौत्र होने के अतिरिक्त उसका दत्तक पुत्र भी था। सिसरो ने ऐंटोनी के विरुद्ध आक्टेवियन की सहायता की। इस प्रकार ऐंटोनी तथा आक्टेवियन के बीच एक गृहयुद्ध प्रारम्भ हो गया, पर ऐंटोनी ने अंत में चलकर अपनी राजनीति के बल पर आक्टेवियन को अपनी ओर मिला लिया।

द्वितीय त्रिगुट की स्थापना—इस समय ऐन्टोनी, लेपिडस तथा आक्टे-

१ "He was the Greatest genius Rome produced, and in the combined fields of war and politics few have been his equal in World History."

—Trever.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वियन के बीच द्वितीय त्रिगुट (सेकेंड ट्रायम्विरेट) की स्थापना हुई। इस त्रिगुट का प्रथम उद्देश्य केसियस तथा ब्रूटस का विनाश करना था। ऐन्टोनी तथा आक्टेवियन ने मिलकर केसियस तथा ब्रूटस को पूर्ण रूप से पराजित किया। परिस्थितियों को प्रतिकूल देखकर पहले केसियस तथा उसके उपरान्त ब्रूटस दोनों ने आत्महत्या कर ली। आक्टेवियन के साथ अपने संबन्ध को सुदृढ़ करने के निमित्त ऐन्टोनी ने उसकी बहिन आक्टेविया के साथ अपना विवाह कर लिया।

ऐन्टोनी तथा आक्टेवियन के बीच संघर्ष तथा क्रान्ति-काल का अन्त—प्रथम त्रिगुट की भाँति द्वितीय त्रिगुट भी क्षणभंगुर सिद्ध हुआ। ऐन्टोनी तथा आक्टेवियन दोनों महत्वाकांक्षी थे तथा अपने हित के संरक्षण में संलग्न थे। इस कारण दोनों में प्रगट वैमनस्य शीघ्र प्रारम्भ हो गया। यह पारस्परिक विरोध उस समय पराकाष्ठा पर पहुँचा, जिस समय (३६ ई० पू० में) ऐन्टोनी ने क्लिओपात्रा के साथ अपना विवाह किया। वह मिश्र की सुयोग्य शासिका तथा परम सुरूपा तरुणी थी। सीजर के समान ऐन्टोनी भी उसके लावण्य पर मुग्ध था। आक्टेवियन इस वैवाहिक संबन्ध से जल उठा। परिणामस्वरूप ३१ ई० पू० में ऐन्टोनी के साथ उसका युद्ध प्रारम्भ हो गया। इस बार रोमवासियों ने आक्टेवियन का साथ दिया। क्लिओपात्रा के साथ ऐन्टोनी के वैवाहिक संबन्ध से वे भी रुष्ट थे। ऐन्टोनी तथा क्लिओ-पात्रा के सम्मिलित दल को आक्टेवियन की सेना ने जल एवं स्थल-युद्धों में पराजित कर दिया। इन दोनों ने आक्टेवियन को आत्मसमर्पण न कर बारी बारी से आत्म-हत्या कर ली। आक्टेवियन की विजय-तिथि (३१ ई० पू०) रोम के क्रान्ति-काल की अंतिम तिथि थी। इस तिथि से सीजर-नामधारी सम्राटों के शासन-काल के अन्तर्गत रोम-साम्राज्य का काल प्रारम्भ होता है।

आगस्टस-काल (३० ई० पू०—१४ ई०)—३० ई० पू० से रोम के इतिहास में आगस्टस-काल का सूत्रपात होता है। आगस्टस आक्टेवियन का नवीन नाम था। इसके शासन ने रोम के इतिहास में शांति तथा ऐश्वर्य को जन्म दिया। उसके संरक्षण में रोम में इतना विलक्षण-राजनीतिक तथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सांस्कृतिक उत्थान हुआ कि उसका राज्यकाल रोम के इतिहास के पृष्ठों में आगस्टस-काल के नाम से प्रसिद्ध है।[१]

उपाधियाँ एवं अधिकार—आगस्टस सूक्ष्मदर्शी तथा राजनीतिज्ञ था। उसने डिक्टेटर होने से इन्कार करते हुये अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया। वह इस बात को भली भाँति जानता था कि निरंकुशता का अवलंबन करने पर वह जूलियस सीज़र की भाँति हत्या एवं षड्यंत्र का भाजन बन सकता था। इस कारण उसने गणतंत्रवादियों को अपने साथ मिला रखने का प्रयास किया तथा लोकप्रिय संस्थाओं को सुरक्षित रखा। उसने अपने अधिकारों को क्रमशः बढ़ाना प्रारंभ किया। २७ ई० पू० से लेकर २३ ई० पू० तक वह सेनेट के द्वारा प्रतिवर्ष प्रथम कौंसल निर्वाचित किया गया। इस रूप में उसे सेना का नेतृत्व, साम्राज्य की बाह्यनीति के ऊपर नियंत्रण तथा प्रान्तीय मामलों में सर्वोच्च अधिकार प्राप्त हुये। इम्परेटर उपाधि के अनुसार उसकी वैधानिक स्थिति पहले की अपेक्षा अधिक सुदृढ़ हो गई। उसकी सेवाओं से प्रसन्न होकर सेनेट ने उसे सेबैस्टोस की उपाधि प्रदान की। इस शब्द का प्रयोग केवल देवताओं के लिए ही किया जाता था। साम्राज्य के लोग उसे (पैटर पैट्रीआई) देश का पिता कहने लगे। २३ ई० पू० में सेनेट ने उसे कुछ नवीन अधिकार प्रदान किये, जिन्हें 'ट्रिब्यूनीशियन पावर्स' कहा जाता है। इनके अनुसार उसे सेनेट की बैठक को बुलाने का पूर्ण अधिकार प्राप्त हो गया। युद्ध और सन्धि का निर्णय अब केवल वही कर सकता था। उसने अपने इन अधिकारों का प्रयोग इतनी पटुता के साथ किया कि लोगों की श्रद्धा उसके प्रति उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। यहाँ तक कि वे अब उसमें देवत्व की कल्पना करने लगे। कुछ नागरिकों में विश्वास उत्पन्न हुआ कि देवताओं ने उसे रोम की सुरक्षा के निमित्त वहाँ भेजा था। मिश्र में उसे 'फेरो' तथा 'टालमी' का उत्तराधिकारी माना गया। उसे दैवी विभूति मानने के कारण उसकी पूजा का प्रारंभ हुआ तथा इस प्रकार 'आग-

---

१ "Because of his achievements his generation has been called the Age of Augustus." —Caldwell.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्टस-कल्ट' की उत्पत्ति हुई। उसकी पूजा के निमित्त मूर्तियाँ स्थापित की जाने लगीं। कुछ लोगों ने उसकी पूजा के हेतु वेदी तथा मन्दिर का निर्माण किया। आगस्टस के ४४ वर्षों का शासन-काल उसके विविध सुधारों के लिए सुप्रसिद्ध है। उसके सुधारों का वर्गीकरण ४ भागों में किया जा सकता है—(१) राजनीतिक सुधार, (२) सामाजिक सुधार, (३) आर्थिक सुधार तथा (४) सैनिक सुधार।

राजनीतिक सुधार—उसने सर्वप्रथम अपनी राजधानी रोम में सुधार करना प्रारंभ किया। वह उसे विश्व का सबसे सुंदर नगर बनाना चाहता था। वह अनेक सार्वजनिक गृहों तथा भव्य प्रासादों के निर्माण द्वारा इस नगर की कायापलट करना चाहता था। उसने यहाँ के दासों को जीविका प्रदान कर उनकी स्थिति में सुधार लाने की चेष्टा की। उसने रोम को २६५ लघुमंडलों में विभाजित कर दिया। प्रत्येक मंडल के शासन के निमित्त ४ स्थानीय मजिस्ट्रेट निर्वाचित किये जाने लगे। राजधानी में शांति-स्थापना के निमित्त उसने पुलिस की संख्या बढ़ा दी। प्रत्येक मंडल में तीन सिपाही नागरिकों के जानमाल की सुरक्षा के निमित्त नियुक्त किये गये थे। इसके अतिरिक्त प्रत्येक मंडल में तीन राजकीय रक्षक (प्रायटोरियन गार्ड) भी हुआ करते थे, जिनकी नियुक्ति का उद्देश्य शांति-स्थापन था। नगर में आग लगने से बचाव के निमित्त उसने एक विभाग की नियुक्ति की, जिनमें ६०० व्यक्ति कार्य करते थे। टाइबर नदी की सामयिक बाढ़ से रोम की रक्षा के निमित्त उसने बाँध बनवाये। उसने नगर में जलवितरण की भी उचित व्यवस्था कर दी। बाजार में वस्तुओं का क्रय-विक्रय निश्चित भाव के अनुसार किया जाता था। तौल में किसी प्रकार की बेईमानी नहीं हो सकती थी। उसको रोकने के लिए राजकीय पदाधिकारी नियुक्त किये गये। अकाल-पीड़ितों को अन्न का वितरण किया जाता था। २२ ई० पू० के दुर्भिक्ष के अवसर पर आगस्टस की आज्ञा के अनुसार नगर के विभिन्न भागों में अन्न का प्रचुर मात्रा में वितरण किया गया। उसके प्रयत्न के फलस्वरूप रोम ने नवीन रूप धारण किया। वह स्वयं गर्व के साथ कहता था कि मेरे शासन-काल के पूर्व रोम ईंटों का नगर था, मैंने इसे संगमरमर का नगर बनाया।

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

उसने न्यायशासन को सरल बनाने की चेष्टा की। दीवानी तथा फौजदारी के मुकदमों में जूरी की संख्या बढ़ा दी गई। न्यायालयों में अब कार्य अधिक शीघ्रता के साथ होने लगा। यदि वादी निश्चित तिथि पर न्यायालय में उपस्थित नहीं होता था, तो प्रतिवादी अपराधमुक्त घोषित किया जाता था। न्यायाधीश को ईमानदारी के साथ कार्य करना पड़ता था। घूसखोरी अथवा किसी प्रकार के भी भ्रष्टाचार में पकड़े जाने पर कर्मचारियों को कठिन दण्ड दिया जाता था। उसने सेनेट के सदस्यों की एक नवीन सूची बनाई। इस प्रकार अयोग्य एवं अवांछित व्यक्तियों को इस संस्था से बहिष्कृत किया गया। उसने अपनी अध्यक्षता में सेनेट के १५ प्रतिनिधि सदस्यों की एक समिति बनाई। इस समिति में विचार कर लेने के उपरांत ही कोई प्रस्ताव विमर्श के निमित्त सेनेट में भेजा जा सकता था। इस प्रकार उसने सेनेट के ऊपर पूर्ण रूप से आत्मनियंत्रण स्थापित किया। आगस्टस ने प्रान्तों को दो भागों में विभक्त कर दिया—(१) सेनेट के द्वारा शासित प्रान्त (सेनेटोरियल प्राविंसेज़) तथा (२) अपने द्वारा शासित प्रान्त (इम्पीरियल प्राविंसेज़)। पहले वर्ग में वे प्रान्त आते थे, जो पहले से ही रोम-साम्राज्य में सम्मिलित थे। इनकी संख्या कम थी। सेनेट इनका शासन (प्रोमजिस्ट्रेट) के द्वारा करती थी। दूसरे वर्ग के प्रान्तों के शासन के लिये आगस्टस स्वयं राज्यपाल नियुक्त करता था। इन्हें 'लिगैटी' कहा जाता था। इस पद पर केवल उन्हीं व्यक्तियों की नियुक्ति की जाती थी, जो कि सैनिक तथा शासन-सम्बन्धी सेवाओं के लिए विख्यात हुआ करते थे। इस वर्ग में नवविजित तथा साम्राज्य की सीमाओं पर वर्तमान प्रान्त सम्मिलित थे। इन प्रान्तों के शासन में आगस्टस व्यक्तिगत रुचि लेता था। इन्हें अपने नियन्त्रण में रखने का कारण यह था कि इनमें अशान्ति तथा विप्लव का भय बना रहता था। शान्ति-स्थापना के निमित्त प्रत्येक प्रान्त में एक स्थानीय सेना (लिजनरी फोर्स) हुआ करती थी। प्रान्तीय कर्मचारी अनुचित प्रकार से द्रव्योपार्जन नहीं कर सकते थे। गुप्तचर विभाग के द्वारा वह इनके कार्यों के विषय में पूर्ण सूचना रखता था। जूलियस सीज़र के शासन-काल में बहुत से व्यक्तियों को नागरिकता का अधिकार प्रदान किया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
गया था। आगस्टस ने रोम की नागरिकता को सीमित कर दिया। उसने अपने समय में नवीन लोगों में केवल उन्हीं को नागरिकता प्रदान की, जिन्होंने साम्राज्य के लिये कोई विशिष्टि सैनिक सेवा की हो।

सामाजिक सुधार—आगस्टसकालीन समाज भ्रष्टाचार-पूर्ण था। उसके समय में व्यभिचार, विवाहहीनता, सन्तानहीनता, तलाक तथा अन्य सामाजिक दोष फैले हुये थे। उसके सामाजिक सुधारों का लक्ष्य इन दोषों को दूर कर रोम के आचार-स्तर को उच्च करना था। उसने १६ ई० पू० के उपरांत कई कानून बनाये, जो कि जूलियन धारा (जूलियन लाज़) के नाम से प्रसिद्ध हैं। प्रथम जूलियन धारा के अनुसार विवाह प्रत्येक नागरिक के लिये अनिवार्य कर दिया गया। पुरुष के लिये २५ वर्ष तथा स्त्री के लिये २० वर्ष की अवस्था विवाह की अधिकतम सीमा मानी गई। जो नागरिक इसके भीतर अपना विवाह नहीं कर लेते थे, उन्हें कर देना पड़ता था तथा कई रूपों में क्षति उठानी पड़ती थी। उदाहरणार्थ अविवाहित व्यक्ति अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त उसकी सम्पत्ति का अधिकारी नहीं हो सकता था। जिस नागरिक की तीन सन्तानें होती थीं, उन्हें राजकीय सुविधायें प्राप्त होती थीं। इस प्रकार सन्तानहीनता को निरुत्साहित किया गया। द्वितीय जूलियन धारा के अनुसार व्यभिचारिणी स्त्री के साथ विवाह करना अथवा उसे तलाक न देना दण्डनीय घोषित किया। अपने शासन-काल के अन्तिम वर्षों में आगस्टस ने व्यक्तिगत उदाहरण के द्वारा भी सामाजिक भ्रष्टाचारों को रोकने की चेष्टा की। वह अपने सामाजिक कानूनों के पालन में सचेष्ट था। उसने ८ ई० के लगभग अपनी पुत्री जूलिया तथा दरबारी कवि (ओविड) को व्यभिचार के अपराध में स्थायी देशनिष्कासन का दण्ड दिया। उसने स्क्रिबो-निया नामक अपनी दुराचारिणी पत्नी को निकाल दिया था। उसने अपने एक अन्य कानून के द्वारा नागरिकों की फजूलखर्ची रोक दी थी। इन कानूनों ने विशेषतया कुलीनों के हृदय में उसके विरुद्ध दुर्भावना की चिनगारी सुलगा दी थी।

आर्थिक सुधार—आगस्टस का पूर्वकालीन आर्थिक शासन दोषपूर्ण था। राजकीय व्यय आय से अधिक हुआ करता था। कर ठीक रूप में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं लगाये जाते थे। उनके वसूल करने का ढंग भी ठीक नहीं था। आर्थिक शासन को उत्कृष्ट बनाने के लिये सबसे पहले करों की व्यवस्था ठीक की गई। प्रधान रूप से दो प्रकार के कर लगाये गये—(१) भूमिकर (ट्रिब्यूटम सोली) तथा (२) वाणिज्य-कर (ट्रिब्यूटम कैपिटीज़)। भूमिकर धन तथा अनाज दो रूपों में वसूल किया जाता था। वाणिज्य-कर का प्रतिशत आय के अनुसार विभिन्न हुआ करता था। खानों, जंगलों तथा चरागाहों के ऊपर भी कर लगाये गये। कर-व्यवस्था अधिक ठीक करने के लिये कर के योग्य संपत्ति का विवरण प्रस्तुत किया गया एवं जनसंख्या की गणना की गई। कर वसूल करने के लिये राजकीय पदाधिकारी नियुक्त किये गये। वे नियत कर से अधिक नहीं वसूल कर सकते थे तथा अनुचित ढंग से उनकी आमदनी रोक दी गई। इस रूप में लोगों का शोषण तथा उत्पीड़न नहीं हो सकता था। कर-प्रणाली में इस सुधार के कारण उसका राजकीय कोष काफी संपन्न हो गया। उसने जनकल्याण में इस धन का उपयोग कर अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया। सैनिकों को उनकी सेवाओं के लिये वह दिल खोल कर पुरस्कार देता था। रोम के एक प्राचीन लेखक का कथन है कि प्लेबियन वर्ग के लोगों की आन्तरिक दशा में सुधार लाने के हेतु उसने एक ही समय एक सौ पचास करोड़ सुवर्ण मुद्रायें लगा दी थीं। कभी कभी वह व्यक्तिगत खर्चे में कटौती कर लोगों को पुरस्कार प्रदान करता था। एक आँकड़े के अनुसार उसने जनसाधारण की सहायता में छह सौ करोड़ सुवर्ण मुद्राओं को खर्च कर दिया था।

सैनिक सुधार—आगस्टस के पूर्व रोम में कोई स्थानी सेना नहीं थी। अधिकांश सैनिक समय समय पर भर्ती किये जाते थे। साम्राज्य के प्रति इन सैनिकों की कोई भी भक्ति नहीं थी। आगस्टस ने एक स्थायी सेना नियुक्त की, जिसमें एक लाख पचास हजार सैनिक सम्मिलित थे। उसने सैनिकों की भर्ती, नौकरी की शर्त, निश्चित वेतन तथा अवकाश-ग्रहण के अवसर पर उन्हें पारिश्रमिक आदि के विषय में नियम निर्धारित किये। उसने सेना को कई भागों में विभक्त किया—(१) लिजनरी फोर्स, (२) आक्ज़िलियरी फोर्स तथा (३) प्रायटोरियन गार्ड। प्रायटोरियन गार्ड में सम्राट के अंगरक्षक सम्मिलित थे। लिज-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नरी फोर्स में वे सनिक आते थे, जिन्हें रोम की नागरिकता प्राप्त थी। उनकी कार्य-अवधि २२ वर्ष थी। इनको वेतन के अतिरिक्त समय-समय पर पुरस्कार तथा भूमिखंड मिलता था। आक्ज़िलियरी फोर्स में सैनिकों की संख्या समान थी। इसमें विजित प्रान्तों के निवासी सैनिक नियुक्त किये गये। २५ वर्ष की अवस्था तक सेना में कार्य कर लेने के उपरांत इन्हें रोम की नागरिकता प्राप्त हो जाती थी। सेना के उच्च पदाधिकारियों को लिगैटी कहा जाता था। इनकी नियुक्ति सम्राट स्वयं करता था। उसके समय में जल-सेना भी बहुत सुदृढ़ थी।

आगस्टस का सनिक अनुभव अच्छा था। कुछ लेखकों ने उसके ऊपर कायरता का आरोप लगाया है। पर यह लांछन सत्य नहीं है। ऐसे लेखकों की सूचना के आधार आगस्टन के प्रतिस्पर्द्धियों के पत्र एवं लेख आदि हैं। शासनसूत्र के ग्रहण के पूर्व वह कई गृह-युद्ध लड़ चुका था और विषम परिस्थितियों का उसने धैर्य एवं बहादुरी के साथ सामना किया था। अतएव सैनिकों के साथ उसकी नैसर्गिक सहानुभूति थी। अच्छा वेतन और इनाम आदि की व्यवस्था के कारण उसे सुयोग्य सिपाही प्राप्त हो गये। उसने साम्राज्य के सीमा-प्रान्तों एवं खतरों के मोर्चों पर सेनायें नियुक्त कीं। राइन, डैन्यूब तथा दजला नदियों के तट पर यथास्थान उसने सेना की टुकड़ियाँ तैनात कर दीं। अफ्रीका और स्पेन आदि भागों में मजे हुए सेनाध्यक्ष भेजे गये। उसने रोम-साम्राज्य के केन्द्रीय भाग में सुरक्षा के निमित्त स्थायी सेना के सिपाहियों की संख्या बढ़ा कर अब तीन लाख कर दी। उसने जहाजी बेड़े को भी सुदृढ़ किया। समुद्री डाकुओं के खतरों को दूर करने की उसने चेष्टा की। समकालीन लेखकों ने उसके सैनिक शासन की प्रशंसा की है। डायो केसियस लिखता है कि आगस्टस की वास्तविक शक्ति का स्रोत उसकी सेना थी।

सार्वजनिक कार्य—अपने शासन को अधिक लोकप्रिय बनाने के निमित्त उसने सार्वजनिक कार्य किया। उसने साम्राज्य के विभिन्न भागों में कई सड़कों का निर्माण किया। सड़कों के किनारे दूरी-सूचक प्रस्तर-स्तंभों का निर्माण किया गया। व्यापारिक मार्गों पर चोरों एवं डाकुओं के खतरे दूर किये गए। उसने डाक ले जाने की उत्कृष्ट व्यवस्था स्थापित की। व्यापार की प्रगति के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निमित्त नदियों के ऊपर पुल बनवाये गये। आगस्टस ने समुद्री डाकुओं के दमन का भी सफल प्रयास किया।

आगस्टस-कालीन संस्कृति

साहित्य—आगस्टस-काल प्रेरणा का काल था। पेरिक्लीज़ तथा एलिज़-बेथ-काल की भाँति इस काल में भी उत्कृष्ट कोटि के साहित्य की रचना हुई।[१] इस काल के साहित्यकारों ने जो महाकाव्य, गद्य तथा इतिहास-संबन्धी ग्रन्थ लिखे, वे विश्व-साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं।

काव्य—(१) वर्जिल(७०-१६ ई० पू०)—इसकी गणना रोम के महान् काव्यकारों में होती है। इसका जन्म मंटुआ नामक ग्राम में एक कृषक परिवार में हुआ था। यही कारण है कि ग्रामीण जीवन की सरलता तथा प्रकृति-सौन्दर्य में उसका नैसर्गिक प्रेम था। साधारण कुल का होने पर भी उसे काव्य तथा दर्शन की उच्च कोटि की शिक्षा दी गई थी। मंटुआ, मिलान एवं तत्पश्चात् रोम में रह कर उसने विद्योपार्जन किया था। उच्च कवि की सहज प्रतिभा उसे प्रारंभ से ही उपलब्ध थी। ४१ ई० पू० के लगभग एक गृह-युद्ध के कारण उसकी पैतृक संपत्ति छिन गई। परिणामस्वरूप उसे जीविका की खोज में कष्टमय जीवन बिताना पड़ा। ३६ ई० पू० के लगभग आगस्टस के परम स्नेहभाजन तथा काव्य-संरक्षक मेसिनस के साथ उसका संपर्क हुआ। मेसिनस उसके काव्यगुणों से अत्यंत प्रभावित हुआ। उसने वर्जिल को आगस्टस का आश्रित कवि बनाने में सहयोग प्रदान किया। इस समय से लेकर २० वर्षों (१६ ई० पू०) तक वह आगस्टस के संरक्षण में रोम में रहने लगा। उसने इसकी कुशाग्रता पर मुग्ध होकर जीविकोपार्जन के निमित्त नेपुल्स में उसे भूमिखंड प्रदान किया था। दरबारी वातावरण में रहते हुये भी वह उसकी राजनीति से दूर था। १६ ई० पू० में वह यूनान-यात्रा करता हुआ

१ "Like the Periclean and Elizabethan eras, the Augustan Age was a time when the patriotic pride of the whole nation in its great achievement and cultural world misson found expression in a literature of outstanding genius" —Trever.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रुंदिसियम नामक स्थान पर पहुँचा। उसकी मृत्यु यहीं पर हुई। उसकी समाधि नेपुल्स में सुरम्य सागर-तट पर बनाई गई थी। उसका यश तीन ग्रंथों पर आधारित है—(१) एक्लोग्स, (२) जिआर्जिक्स तथा (३) ईनीड।

एकलोग्स उसकी प्रथम विशिष्ट रचना है। इसको उसने ३८ ई० पू० में लिखा। यह उसकी सुन्दर कविताओं का एक सुष्टु संग्रह है। इस ग्रंथ में वह थिआक्रिटस की शैली से प्रभावित है। इसमें इटली के प्राकृतिक दृश्य का सुन्दर वर्णन उपलब्ध होता है। इस ग्रंथ में उसने एक ऐसी महान् विश्व-विभूति की उत्पत्ति के विषय में भविष्यवाणी की, जिसकी कृतियों के फलस्वरूप स्वर्णयुग की स्थापना होती। लोगों की धारणा थी कि यह पूर्वकथन ईसा मसीह के जन्म की ओर संकेत करता है। यही कारण है कि ईसाई मतावलंबी इस ग्रंथ को बहुत श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। आगस्टस ने इस ग्रंथ से प्रभावित होने के कारण उसे भूमिखंड प्रदान किया था। कतिपय समालोचकों का कहना है कि वर्जिल के यश को अक्षुण्ण बनाने के लिये यह ग्रंथ पर्याप्त है।

जिआर्जिक्स उसकी द्वितीय रचना है। उसने अपने प्रथम ग्रन्थ के प्रति सम्मान तथा आगस्टस से प्राप्त प्रेरणा के कारण इस महाकाव्य की रचना आठ वर्षों में की। इसका संपादन ३० ई० पू० तक पूरा हो चुका था। इसमें कृषक-जीवन का चित्रण मिलता है। इस ग्रंथ में भूमि जोतने, अनाज बोने और काटने तथा मधुमक्खी पालने का मनोरम विवरण उपलब्ध होता है। यही कारण है कि इस ग्रन्थ को कृषक-पर्यवेक्षक (फार्मर्स गाइड) कहते हैं। ड्राइडन ने इसी ग्रन्थ को वर्जिल की सर्वोत्कृष्ट रचना मानी है। इसमें मनोरम एवं गेय पद उपलब्ध होते हैं। इस ग्रन्थ में उसकी धार्मिक भावनाओं के उद्‌गार मिलते हैं। वह इसमें एक स्थान पर लिखता है कि ईश्वर जल, थल, नभ आदि में सर्वत्र ही विद्यमान् है। मनुष्य व्यर्थ ही उसे इसके बाहर पाने का स्वप्न देखता है। विश्व के सभी जीवों के प्रति प्रेम, दया एवं करुणा धर्म का मूल है। जगत् में शान्ति एवं व्यवस्था वास्तव में एक ईश्वरीय अनुकम्पा है, जिसे समझना मनुष्य का कर्त्तव्य है।

पर अधिकांश विद्वानों का मत है कि उसका सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ ईनीड है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आगस्टस के कहने पर उसने २६ ई० पू० में इसकी रचना प्रारम्भ की थी। इस ग्रंथ के द्वारा वह रोम का होमर बनना चाहता था। इस महाकाव्य की रचना का अन्य उद्देश्य रोम का राष्ट्रीय गुणगान था। यह ग्रन्थ उसके दस वर्षों के अथक परिश्रम का परिणाम था। वह अगले तीन वर्षों में इसकी भाषा एवं भाव में सुधार लाना चाहता था, पर उसकी यह इच्छा पूरी न हो सकी। दुर्भाग्यवश इसको पूर्ण करने के पूर्व ही उसका निधन हो गया। मृत्यु के समय उसने इच्छा प्रकट की कि इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि नष्ट कर दी जाय। पर आगस्टस ने इसे नष्ट न होने दिया। उसने इस अमूल्य ग्रन्थ को विश्व-साहित्य के लिये सुरक्षित रखा। इस रचना में आगस्टस एवं उसके साम्राज्य की विशेषताओं का वर्णन भी उपलब्ध होता है। इस ग्रन्थ के आदर्श होमर के महाकाव्य ईलियड तथा ओडिसी हैं। इस ग्रन्थ के ६ भाग ओडिसी के आधार पर रचे गये हैं तथा अंतिम ६ भाग ईलियड के आधार पर। इसमें रोम के तत्कालीन युग की राष्ट्रीय झाँकी मिलती है। यद्यपि इसकी रचना यूनानी महाकाव्यों के आधार पर हुई, तथापि इसकी भावनायें एवं अभिव्यक्तियाँ पूर्ण रूप से रोम की ही हैं। इस ग्रन्थ में देशभक्ति की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। वर्जिल की मृत्यु के अनन्तर उसका यश-विस्तार दिन-प्रतिदिन द्विगुणित होता गया। महाकवि होरेस उसे 'सरल तथा आकर्षक' कवि कहता था। मध्यकालीन ईसाई मतावलम्बी उसे महान् कवि (मास्टर पोयेट) कहते थे। दाँते इससे अत्यधिक प्रभावित था। पुनर्जागृति काल के ह्यूमनिस्ट उसे होमर से भी महान् कवि समझते थे। मैकेल के अनुसार वर्जिल अपनी कतिपय विशेषताओं के कारण रोम का ही नहीं, अपितु विश्व का सबसे महान् कवि माना जा सकता है।

उसके कुछ समालोचकों ने यह आरोप लगाया है कि यह महाकाव्य वास्तव में एक अन्योक्ति है। इसके नायक के रूप में एक तरह से आगस्टस का व्यक्तित्व-वर्णन एवं उसकी चाटुकारिता यहाँ उपलब्ध होती है। इस रचना के संपादन द्वारा वह उसे अमर यश प्रदान करना चाहता था। ग्रन्थ-निर्माण का यह उद्देश्य उसके विचारों की संकीर्णता का प्रतिनिधित्व करता है। परन्तु इस प्रकार का लांछन ऐतिहासिक तथ्यों से रहित है। उसने एक पुनीत एवं उदात्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लक्ष्य को लेकर इसकी रचना की थी और निश्चय ही यह ग्रन्थ काव्य के आदर्श गुणों का महाभंडार है। इसमें वह शान्ति तथा भूतसंघ के प्रति दया के सन्देश को लेकर अवतरित होता है। इसमें संसार की क्षणभंगुरता एवं मानव-जीवन की निस्सारिता को प्रकाश में लाते हुये जनकल्याण, पारस्परिक सौहार्द एवं अनावश्यक संघर्ष के परित्याग आदि का सन्देश बड़े ही श्लाघनीय ढंग से किया गया है। इस कृति में उसकी विद्वत्ता की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है। यह राजकवि (पोएट लारियेट) निस्संदेह अपनी उपाधि को चरितार्थ करता था।

(२) होरेस (६५–८ ई० पू०)—वर्जिल के उपरांत रोम के महाकवियों में होरेस का नाम लिया जाता है। उसका जन्म दक्षिण इटली में ६५ ई० पू० में हुआ था। उसका पिता एक साधारण व्यक्ति था, तथापि उसने अपने पुत्र को रोम और एथेन्स में रखकर उच्च कोटि की शिक्षा दी थी। उसने कुछ दिनों तक सेना में भी कार्य किया था। पैतृक सम्पत्ति के विनष्ट हो जाने के कारण उसने कुछ दिनों तक साधारण नौकरी की तथा इस रूप में वह अपनी जीविका का निर्वाह करने लगा। उसकी काव्य-प्रतिभा प्रारम्भ से ही स्फुटित होने लगी थी। वर्जिल की मित्रता के कारण उसे मेसिनस की कृपा प्राप्त हो गई। इसकी जीविका-निर्वाह के निमित्त मेसिनस ने आगस्टस से इसे भूमिखंड रोम के समीप दिलवाया। वह यहाँ जिस स्थान पर रहता था, उसकी पहचान हो चुकी है। उसके घर की नींव वहाँ अब भी द्रष्टव्य है। यहाँ पर उसने अपना जीवन सुखपूर्वक व्यतीत किया था। उसकी मृत्यु इसी स्थान पर ८ ई० पू० में हुई। आगस्टस ने इसे काफी संरक्षण प्रदान किया था। वह बड़े ही स्वच्छन्द प्रकृति का साहित्यकार था। जब आगस्टस ने इसे अपना वैयक्तिक सचिव नियुक्त करना चाहा, उस समय उसने इस पद को अस्वीकार कर दिया। तथापि अपने आश्रयदाता के प्रति उसकी आन्तरिक श्रद्धा थी। जब कभी कोई राजकीय उत्सव होता था, वह दरबार में आकर बड़े ही चाव के साथ अपनी कविताओं को सुनाता था।

उसने सर्वप्रथम इपोड्स की रचना की। इस ग्रंथ में उसकी शैली उतनी प्रभावशालिनी नहीं है, जितनी बाद की रचनाओं में। इस कृति में यूनानी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कवियों की शैली का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इसमें उसने अपने आश्रय-दाता की प्रशंसा तथा देशभक्ति की भावना का परिचय दिया है। इसमें ग्रामीण जीवन का निरूपण मिलता है। जिस समय उसने 'सैटायर्स' की रचना की, उस समय उसकी प्रतिभा विशेष रूप से प्रकाश में आई। इस ग्रंथ में व्यंग एवं हास्य का पुट मिलता है तथा शैली रोचक और सुमधुर है। इस कृति में आगस्टस-कालीन सामाजिक जीवन, नागरिक की दिनचर्या तथा रीतिप्रथाओं का प्रतिबिम्ब उपलब्ध होता है।

इसकी सर्वोत्कृष्ट रचना ओड्स है। इस पर यूनानी पद्य-शैली का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। उसकी प्रेरणा एवं दृष्टिकोण पूर्ण रूप से राष्ट्रीय हैं। इस ग्रंथ में रोमवासियों की सम्मिलित भावनाओं तथा आगस्टसकालीन वैभव एवं ऐश्वर्य का प्रतिबिम्ब मिलता है। उसके विषयनिरूपण में साम्राज्य के प्रति भक्ति तथा आगस्टस के शासन के प्रति श्रद्धा का प्रतिपादन उप-लब्ध होता है। इसके अतिरिक्त उसने कतिपय अन्य ग्रंथ भी लिखे, उदा-हरणार्थ 'सेकुलर हिम', 'आर्ट ऑफ पोएट्री' तथा 'एपिस्टिल्स'। 'एपिस्टिल्स' में तत्कालीन सामाजिक दोषों की निन्दा मिलती है। इस ग्रन्थ में साहित्यिक आलोचना के सिद्धान्त तथा जीवन के प्रति उसके दृष्टिकोण का निरूपण मिलता है।

होरेस के समसामयिक ओड्स को रोम का सर्वोत्कृष्ट गीतिकाव्य मानते थे। क्विन्टिलियन का कहना है कि गीतिकाव्य के लेखकों में होरेस ही ऐसा था, जिसकी कृतियाँ पढ़ने योग्य थीं।[१] अठारहवीं शताब्दी में इंग्लैंड के समालोचक होरेस को वर्जिल से महान् कवि मानते थे। कई अंग्रेजी कवियों के लिये होरेस आदर्श था। वालपोल, बर्क, पिट, फाक्स तथा ग्लैड्स्टन आदि इंग्लैंड के राजनीतिज्ञ होरेस की कृतियों से उद्धरण दिया करते थे। ग्लैड्स्टन ने तो ओड्स का अनुवाद भी किया था। उसके उपरांत रोम ने उसकी समता का कोई भी गीतिकाव्य का लेखक नहीं उत्पन्न किया। वह

१ "Of our lyric poets, Horace is almost the only one worth reading".

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वयं अपनी कृतियों की ओर लक्ष्य करते हुआ कहता था कि मैंने एक ऐसे स्मारक का निर्माण किया है, जो कि कांस्यधातु से भी अधिक चिरस्थायी सिद्ध होगा।[१] इस रचना में वह नैतिकता का समर्थन करता है। उसके अनुसार समाज का उत्थान राजकीय कानूनों के द्वारा उतना संभव नहीं है जितना कि सरल जीवन, सौहार्द, धैर्य, विवेक, श्रद्धा एवं आदर आदि के द्वारा।

प्रणय-गीति—आगस्टस-काल में प्रणय-गीति की भी रचना हुई। इस कोटि के ग्रन्थों में तत्कालीन भ्रष्ट समाज का प्रतिबिम्ब मिलता है। इनमें व्यभिचारिणी स्त्रियों तथा हृदयहारिणी वेश्याओं के वासनामय प्रेम एवं उनकी निर्दयता और विश्वासघात का प्रचुर निरूपण उपलब्ध होता है। लेखकों ने कहीं कहीं अपनी प्रेमिका के सौन्दर्य-निरूपण तथा प्रणय-साधना की सफलता एवं विफलता के वर्णन में भाषा को सजाने का प्रयास किया है। इन ग्रंथों का तत्कालीन समाज पर दूषित प्रभाव पड़ा। इन्द्रियजन्य सुख एवं गर्हित भावनाओं के कारण ये ग्रंथ निम्न कोटि के माने जाते हैं।

(१) ऐल्बियस टिबुलस—(५४-१६ ई० पू०)—आगस्टस-कालीन प्रणय-गीति के लखकों में सर्वप्रथम ऐल्बियस टिबुलस उल्लेखनीय है। वह होरेस का मित्र था। उसकी पंक्तियों में डेलिआ नामक प्रेयसी के प्रति सरस एवं रोचक शैली में उसके प्रेम का निरूपण मिलता है। इनमें स्थान-स्थान पर पौराणिक विवरण, दन्त-कथाओं तथा जनसाधारण के जीवन से संबन्धित घटनाओं का निरूपण आदि प्राप्त हैं। स्वदेश-प्रेम, महत्वाकांक्षाओं से रहित स्वच्छन्द जीवन, युद्ध-निरोध एवं शान्तिमार्ग के अवलंबन आदि का भी उसकी पंक्तियों में वर्णन उपलब्ध होता है। उसकी शैली सरल एवं वर्णनात्मक गुणों से संपन्न है। पर भाव की दृष्टि से उसकी रचनायें उत्तम कोटि की नहीं मानी जाती हैं। समालोचकों ने उसके ऊपर लांछन लगाया है कि उसकी रचनाओं में विचारगांभीर्य, उदात्त आदर्श तथा स्थायी एवं स्वस्थ प्रभाव डालने वाले स्थल नहीं प्राप्त होते।

---

१ "I have built me a monument more lastng than bronze"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(२) सेक्सटस प्रापर्टियस—(५०—१५ ई० पू०)— इसकी प्रारम्भिक कृतियों में सिंथिया नामक एक वेश्या के प्रति उसके प्रेम का वर्णन मिलता है। पर बाद की रचनाओं में उसकी शैली संयत हो जाती है। इनमें देशभक्ति की भावना, आगस्टस की प्रशंसा, मृत्युभय तथा संसार की क्षणभंगुरता आदि का विवरण मिलता है। कतिपय विद्वानों के अनुसार आगस्टस के काल में वह प्रणय-गीति का सर्वोत्कृष्ट लेखक था। शब्द-चयन तथा विषय-विवेचन की उत्कृष्टता के कारण रोम-साहित्य में उसका स्थान विशिष्ट है। उसकी पंक्तियों में यदा कदा सुन्दर कल्पनायें मिलती हैं, जिनसे इसकी शैली सजीव एवं मार्मिक हो उठती है। यह साहित्यकार भी आगस्टस का स्नेह-भाजन रह चुका था। होरेस के समान वह भी मेसिनस के मित्र-मंडल का अंतरंग सदस्य था। पर यद्यपि दोनों साहित्यकार एक ही समुदाय के सदस्य थे, तथापि दोनों में स्पर्द्धा थी। यही कारण है कि होरेस ने जहाँ अपने समसामयिक छोटे बड़े सभी लेखकों का उल्लेख किया है, वहाँ वह प्रापर्टियस के विषय में मौन हैं। प्रापर्टियस ने भी अपनी कृतियों में वर्जिल की उच्च शब्दों में प्रशंसा की है, पर उसने होरेस की कोई भी चर्चा नहीं की है।

(३) ओविड—(४३ ई० पू०—१७ ई०)—अधिकांश विद्वानों का मत है कि ओविड रोम का सर्वोत्कृष्ट प्रणय-गीति-लेखक था। उसका जन्म केन्द्रीय इटली में ४३ ई० पू० में हुआ था। प्रारंभ में उसने कई पदों पर नौकरी एवं तदनन्तर वकालत भी की थी पर उसका मन कहीं भी न रमा। काव्य की ओर उसका नैसर्गिक झुकाव था। शीघ्र ही वह आगस्टस के सम्पर्क में आ गया तथा उसका कृपाभाजन बन गया। तदुपरान्त उसने अपने जीवन का अधिकांश भाग रोम में ही व्यतीत किया। उसका व्यक्तिगत जीवन शुद्ध नहीं था। कहा जाता है कि उसने तीन बार विवाह किया था। उसके ग्रंथों में ऐमोरेस, हेरोइड्स, आर्स ऐमेटोरिया, क्योर ऑफ लव, फास्टी तथा मेटैमारफोसेज़ प्रसिद्ध हैं। ऐमोरेस में उसने कोरिना नामक एक परम सुन्दरी की कल्पना की है। इस ग्रंथ में लेखक की शैली सरल है। इसके द्वारा उसकी प्रतिभा का प्रथम परिचय उपलब्ध होता है। उसका द्वितीय ग्रंथ हेरोइड्स है। इसके कुछ ही अंश मिले हैं जो कि रोम के सामाजिक इतिहास के अध्ययन के लिये उप-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
योगी हैं। इसके उपरान्त उसने आर्स ऐमेटोरिया की रचना की। इस ग्रंथ में सुन्दरियों के प्रेम को जीतने के विविध उपायों का वर्णन मिलता है। इसके अनुसार वे पद, ऐश्वर्य एवं बहुमूल्य उपहारों के द्वारा व्यक्ति पर नहीं रीझतीं। उनका प्रेम प्राप्त करने के लिये आकर्षक व्यवहार एवं चाल ढाल की आवश्यकता है। 'क्योर ऑफ लव' नामक ग्रंथ में प्रणय से सम्बन्धित विविध विषयों पर लेखक के विचार उपलब्ध होते हैं। इस रचना में उसकी शैली सरस तथा रोचक है। रोम के त्यौहारों के ऊपर उसने फास्टी नामक ग्रंथ की रचना की। उसने इसका समर्पण आगस्टस को किया था। इसमें उसने उसकी एवं उसके साम्राज्य की प्रचुर प्रशंसा की। वह इसकी रचना के द्वारा आगस्टस का विशेष स्नेह प्राप्त कर वर्जिल की भाँति राजकवि बनना चाहता था। पर उसका यह स्वप्न पूर्ण नहीं हो सका। उसकी सर्वोत्कृष्ट रचना मेटैमारफोसेज़ है। इसमें व्यंग और हास्य का सुन्दर सामंजस्य उपलब्ध होता है। इस कृति में उसने यूनान की पौराणिक कथाओं का निरूपण किया। इसके माध्यम से ये कालान्तर में यूरोप के अन्य भागों में काफी लोकप्रिय हो सकी थीं। इस ग्रंथ की रचना के उपरान्त ८ ई० के लगभग आगस्टस ने उसे तथा अपनी पुत्री जुलिया को व्यभिचार-दोष के कारण काला सागर के तट पर स्थित टोमी नामक असभ्य प्रदेश में देश-निष्कासन का दण्ड दिया।

यहाँ पर उसने अपने जीवन के शेष दस वर्ष बहुत संकट में बिताये। उसने अपने कई पत्रों में आगस्टस से क्षमा-याचना करते हुये स्वदेश लौट आने के निमित्त आज्ञा माँगी, पर उसका यह प्रयत्न निष्फल सिद्ध हुआ। उसके ये पत्र 'लेटर्स फ्राम दी पोंटुस' के नाम से प्रसिद्ध हैं। उसने यहाँ पर 'पोएम्स ऑफ सैडनेस' की रचना की, जिसमें उसके संकटपूर्ण जीवन का वर्णन मिलता है। देशनिष्कासन-काल में उसने जो पंक्तियाँ लिखीं, उनमें पूर्वकाल की प्रेरणा तथा काव्यशैली की उत्कृष्टता नहीं दृष्टिगोचर होती। उसकी शैली पर चॉसर तथा बोकैशियो मुग्ध थे। मिल्टन, शेक्सपियर तथा अंग्रेजी के कई प्रसिद्ध कवि इसकी कला से प्रभावित थे।

गद्य—(१) लिवी (५६ ई० पू०—१७ ई०)—यद्यपि आगस्टस-काल प्रधानतः पद्य की रचना का काल था, तथापि इस समय गद्य का भी निर्माण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुआ। इस युग का सबसे प्रसिद्ध गद्यकार लिवी था। यह इतिहासकार अपनी विशेषताओं के कारण विश्व के महान् गद्यकारों की समकक्षता में आता है।[१] वह पडुआ का नागरिक था। उसके प्रारम्भिक जीवन के विषय में बहुत ही कम ज्ञात है। तीस वर्ष की अवस्था में वह रोम आया और वहाँ उसका प्रथम परिचय मेसिनस के साथ हुआ। उसके माध्यम से उसे आगस्टस का संरक्षण उपलब्ध हो गया। वह क्लाडियस का शिक्षक नियुक्त किया गया, जो बाद में चलकर सम्राट हुआ था। उसने स्थापना-काल से लेकर ८ ई० पू० तक रोम का एक बृहत् इतिहास लिखा, जिसको "हिस्ट्री ऑफ दी रोमन इम्पायर" कहते हैं। इसकी रचना में उसने अपने जीवन के ४० वर्ष लगा दिये थे। इस ग्रन्थ में १४२ भाग थे। इनमें केवल ३५ भाग उपलब्ध हैं। यह ग्रन्थ इतना प्रामाणिक माना जाता था कि बाद में किसी लेखक को इससे उत्कृष्ट पुस्तक लिखने का कोई साहस नहीं हो सका। लिवी के विषय-विवेचन में आधुनिक वैज्ञानिक इतिहासकार का दृष्टिकोण मिलता है। उसने घटनाओं का आलोचनात्मक उल्लेख बड़ी बुद्धिमत्ता के साथ किया है। रोम की महत्ता में उसका पूर्ण विश्वास था। इसको गरिमा का गान उसकी पंक्तियों में बहुशः उपलब्ध होता है।

कहा जाता है कि लिवी ने रचना-कार्य बड़ी ही विषम परिस्थितियों में आरम्भ किया था। अपने काल की यातनाओं से बचने के हेतु उसने रोम की प्राचीन गरिमा का आश्रय लिया था। इसमें उसने निर्देश किया है कि टाइबर नदी के तट पर बसे हुये एक छोटे से नगर ने किस प्रकार एक विश्व-साम्राज्य का रूप धारण किया। इस दृष्टि से हम उसे रोम का राष्ट्रीय इतिहासकार कह सकते हैं। इसकी ऐतिहासिक विशेषताओं के कारण उसका नाम हेरोडोटस, थ्यूसीडाइड्स तथा पॉलिबियस के साथ लिया जाता है। यह ग्रन्थ उच्च गद्य-साहित्य का उदाहरण माना जाता है। लिवी अपनी विशद,

---

[१] "In Livy, the age produced a historian who for literary artistry ranks with the greatest masters of his craft in the world."

—Van Sickle.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्पष्ट तथा कलात्मक शैली के कारण विशेष रूप से प्रसिद्ध है। उसकी भाषा में प्रवाह तथा ओजस्विता उपलब्ध होती है। जहाँ पर उसने हैनीबाल के युद्धों का वर्णन किया है, वहाँ पर उसकी शैली मार्मिक तथा सजीव हो उठी है। उसकी रचनाओं में नीरस पृष्ठ बहुत ही कम हैं। रोम के गद्य में उसकी रचना का वही स्थान है, जो कि पद्य में ईनीड का। यही कारण है कि उसकी कृति को गद्य का ईनीड (ईनीड इन प्रोज़) कहा जाता है। समकालीन जगत् में उसकी पर्याप्त ख्याति थी। प्लिनी (प्लिनी दी यंगर) लिखता है कि कैडिज़ का एक नागरिक रोम केवल लिवी को देखने के उद्देश्य से आया था। कालांतर में रोम के अनेक लेखकों ने इसकी कृति को आदर्श मानकर अपने ग्रन्थों की रचना की थी। गद्य में लिवी उस प्रकार अवचनीय है, जिस प्रकार पद्य में वर्जिल।

लिवी के कुछ समालोचकों ने आरोप लगाया है कि एक गद्यकार के रूप में वह भले ही सफल था, पर इतिहासकार के रूप में नहीं। उसने रोम के द्वारा विजित जातियों के विषय में कुछ नहीं लिखा। रोम की सफलता के वास्तविक कारणों पर भी उसने कोई प्रकाश नहीं डाला। उनके अनुसार लिवी ने रोम के इतिहास के आकार को उलट दिये गये हुये पिरेमिड के रूप के तुल्य कर दिया था। पर इस प्रकार की निन्दा ठीक नहीं है। एक सच्चे एवं आदर्श इतिहासकार के सभी गुण उसमें मौजूद थे, इसमें कोई भी सन्देह नहीं।

(२) पाम्पियस ट्रोगस—यह लिवी का समकालीन लेखक था। इसने 'हिस्टोरियाई फिलिपिकाई' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इसमें ४४ भाग थे। यह लिवी के ऐतिहासिक ग्रन्थ का परिपूरक है। रोम की विजयों का विवरण इसमें मनोरम भाषा में उपलब्ध होता है।

(३) वेरियस फ्लेकस—इसका ग्रन्थ भी ऐतिहासिक दृष्टि से उपयोगी है।

पारिभाषिक ग्रन्थ

(१) जूलियस हाईजिनस—इसने खगोल शास्त्र के ऊपर ग्रन्थों की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रचना की थी जो कि अनुपलब्ध हैं।

(२) **विट्रूवियस**—इसने शिल्पशास्त्र के ऊपर 'ऑन आर्किटेक्चर' नामक ग्रन्थ की रचना की। इसमें दस भाग हैं। इस ग्रन्थ को उसने आगस्टस को समर्पित किया था। प्राचीन वास्तुशास्त्र पर यह रोम का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ माना गया है।

यूनानी भाषा में लिखे हुये ग्रन्थ

(१) **डिओडोरस**—यह आगस्टस का समकालीन था। उसने अपने जीवन के कई वर्ष रोम में बिताये। उसने यूनानी भाषा में 'हिस्टारिकल लाइब्रेरी' नामक ग्रन्थ की रचना की। इसमें चालीस भाग हैं तथा इसकी ऐतिहासिक महत्ता अधिक है।

(२) **डिओनिसियस**—उसने अपने जीवन के बीस वर्ष रोम में बिताये। वह अधिकतर कुलीन व्यक्तियों के घर पर शिक्षक का कार्य करता था, अतएव वह मूलतया उन्हीं के विचारों का प्रतिनिधित्व करता है। ८ ई० पू० में उसने 'रोमन ऐंटिक्वीटीज़' नामक ग्रन्थ की रचना बीस भागों में की थी। यह ग्रन्थ प्रामाणिक नहीं माना जाता। उसकी भाषा आलंकारिक तथा अतिशयोक्ति-पूर्ण है। इसमें उसने रोमलस के काल से लेकर प्रथम प्यूनिक युद्ध तक रोम का इतिहास लिखा है। इसमें उसने प्राचीन विचारधारा के पोषक कुलीनों की चाटुकारिता की है। लिवी की कृति की समता में यह रचना बहुत पीछे छूट जाती है। इसमें न तो वैसी सन्तुलित सामग्री है और न तो प्रभाव उत्पन्न करने वाली शैली ही। इसके दूसरे ग्रन्थ का नाम "ऑन दी सब्लाइम" है। इसकी यह रचना अधिक महत्वपूर्ण मानी जाती है।

(३) **निकोलस**—उसके ग्रन्थ का नाम 'यूनिवर्सल हिस्ट्री' है। इस ग्रन्थ के कुछ ही भाग उपलब्ध हैं, जिनमें आगस्टस की प्रशंसा प्राप्त होती है।

(४) **स्ट्रेबो**—उसने 'जिआग्रैफिका' नामक एक भौगोलिक ग्रन्थ की रचना की। इसमें आगस्टस के साम्राज्य के विभिन्न स्थानों का भौगोलिक वर्णन मिलता है। स्ट्रेबो बड़ी कुशाग्र बुद्धि का लेखक था। स्पेन, यूनान एवं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
उत्तरी अफ्रीका के विविध देशों की नदियों, पर्वतों एवं वनस्पतियों के विषय में इस ग्रन्थ से महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध होती है। इसमें उसने रोम-साम्राज्य के लाभदायक परिणामों का विवेचन किया है। वह एक सफल इतिहासकार भी था। उसने पॉलिबियस के बाद के इतिहास को अपने समय तक पूरा करने की चेष्टा की।

वास्तुकला—आगस्टस-काल की शांति एवं समृद्धि ने जिस प्रकार साहित्यिक विकास के लिये पृष्ठभूमि प्रस्तुत की, उसी प्रकार कला के विकास के लिये भी। इस काल की कला राष्ट्रीयता के साँचे में ढाली गई, जिस कारण इसमें पर्याप्त नूतनता एवं मौलिकता दृष्टिगोचर होती है। इस कला में रोम के नागरिकों की साम्राज्य-भक्ति, स्वाभिमान तथा दृष्टिकोण एवं आगस्टस-कालीन सुख एवं ऐश्वर्य के रूप का प्रतिबिम्ब मिलता है। इस काल के रोम के कारीगर देशी थे, न कि विदेशी। उदाहरणार्थ यहाँ पर विट्रूवियस विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उसने "ऑन आर्किटेक्चर" नामक ग्रन्थ में वास्तुकला के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। इसमें भवन के प्रकार, निर्माण के उपकरण तथा गृहनिर्माण-सम्बन्धी सिद्धान्तों का विवेचन सुन्दर ढंग से मिलता है। इस ग्रन्थ की उत्कृष्टता से पुनर्जागृति काल के सुप्रसिद्ध कलाकार लियोनार्दो तथा माइकेलेंजिलो प्रभावित थे।

आगस्टस नवनिर्माण के द्वारा रोम को कलात्मक स्वरूप प्रदान करना चाहता था। उसने वास्तुकला के विकास में पर्याप्त अभिरुचि ली थी। उसने भवन-निर्माण में संगमरमर का प्रचुर प्रयोग कराया। आगस्टस ने इसी कारण गर्वोक्ति की थी कि मैंने रोम को ईंटों का नगर पाया, पर उसे संगमरमर का नगर बना दिया। उसने ट्यूरिन तथा आगस्टोडनम नामक नगरों का भी पुनर्निर्माण किया। उसने राजमार्गों के विन्यास की एक नवीन पद्धति को जन्म दिया जिसका अनुकरण अफ्रीका में भी किया गया था।

आगस्टस के काल में मन्दिरों का निर्माण भी प्रचुर संख्या में किया गया। इस समय प्राचीन मन्दिरों का जीर्णोद्धार भी हुआ। यही कारण है कि लिवी ने आगस्टस को "रोम के देवालयों का निर्माता एवं पुनरुद्धारक" कहा है। आगस्टस-कालीन मन्दिरों में कादकार्ड सैटर्न, कैस्टर, डिवाइन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जूलियस, जेनस, जूपिटर कैपिटोलिनस तथा मार्स अल्टोर के मन्दिर उल्लेखनीय हैं। २८ ई० पू० में उसने एपोलो के मन्दिर का निर्माण किया। यह मन्दिर संगमरमर का बना हुआ था। इसमें एक पुस्तकालय भी था, जिनमें धार्मिक ग्रन्थ रखे गये थे। आगन्टस-कालीन मन्दिरों में मार्स के मन्दिर की भी गणना की जाती है। इसका निर्माण एक ऊँचे चबूतरे पर किया गया था। इस मन्दिर में खंभों का निर्माण कोरिन्थ शैली में किया गया था। आगस्टस ने कतिपय प्रेक्षागृहों का भी निर्माण कराया। यहाँ पर बेलबस का नाट्यगृह विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसका निर्माण १३ ई० पू० में हुआ था। इसमें ७७०० दर्शक बैठ सकते थे। उसने पाम्पी के द्वारा बनवाये हुये नाट्यगृह का जीर्णोद्धार मिया। इसमें १७,५०० व्यक्ति बैठ सकते थे। उसने मार्सेलस में एक प्रेक्षागृह का निर्माण कराया। इसमें २०,५०० व्यक्तियों के बैठने की व्यवस्था की गई थी। इसमें सम्मानित दर्शकों के बैठने के निमित्त विशेष प्रबन्ध किया गया था। इसके समय में स्थान-स्थान पर जनता-स्नानगृह, सार्वजनिक गृह तथा व्यायामगृह बनवाये गये, जो कि उस काल के आर्थिक विकास के द्योतक हैं। आगस्टस का राजप्रासाद बहुत ही सुन्दर था। ओविड ने इसकी बहुत ही प्रशंसा की है। उसका कहना है कि अपने विलक्षण सौन्दर्य के कारण यह भवन देवता के निवास के योग्य था।

तक्षणकला—आगस्टस-काल में मूर्तिकला का नवीन विकास हुआ।[१] इस काल की मूर्तियों का वर्गीकरण दो भागो में किया जा सकता है—(१) पहले भाग में वे मूर्तियाँ आती हैं, जों कि आकृतिविशेष का प्रतिनिधित्वमात्र करती हैं (पोर्ट्रेचर)। (२) दूसरे वर्ग की मूर्तियाँ घटनाविशेष के स्मारक के रूप में बनवाई गईं (मानुमेन्टल रिलीफ)। आगस्टस की प्रथम वर्ग की कई मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध 'प्राइमा पोर्टा स्टैचू ऑफ आगस्टस' नामक है। यह वैटिकन के संग्रहालय में सुरक्षित है। इसमें आगस्टस अपने सैनिक वेष में प्रदर्शित किया गया है। द्वितीय वर्ग की मूर्तियों में 'आल्टर ऑफ दी

१: "Augustan sculpture reached new levels of perfection"

—Van Sickle.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आगस्टन पीस' (एरा पेसीज़) सबसे प्रसिद्ध है। इसका निर्माण ६ ई० पू० में हुआ था। इसमें आगस्टस अपनी विजय-यात्रा के उपरांत गाल तथा जर्मनी से लौटता हुआ अंकित किया गया है। इसमें वेदी के चतुर्दिक एक चौकोर संगमरमर की दीवाल का निर्माण किया गया था। आगस्टस की मूर्ति के अतिरिक्त उसमें एक तरुणी की मूर्ति भी अंकित की गई है, जो कि अपने दोनों पार्श्वों में दो शिशुओं को लिये हुये है। इसमें बलिदान के निमित्त जाते हुये एक जलूस का दृश्य भी अंकित किया गया है। इस जलूस में आगस्टस, उसके पुरोहित, राजकुल के सदस्य तथा सभासद आदि सम्मिलित हैं। कहा जाता है कि इसके निर्माण का आदर्श यूनान के पार्थेनन के मन्दिर का जलूस है। यूनानी प्रभाव के होते हुये भी इसमें मौलिकता पर्याप्त मात्रा में दृष्टिगोचर होती है।

चित्रकला—आगस्टस-काल में चित्रकला का कोई विशेष विकास नहीं हुआ। इस समय के कुछ ही चित्रों के उदाहरण उपलब्ध हुये हैं, जिनके ऊपर यूनानी प्रभाव परिलक्षित होता है। भित्तिचित्र के उदाहरण पाम्पी तथा प्राइमा पोर्टा से उपलब्ध हुये हैं। अन्य कलाओं की भाँति चित्रकला का भी विकास राजकीय संरक्षण में संपन्न हुआ।

आर्थिक जीवन—साहित्य तथा कला के समान आर्थिक जीवन के क्षेत्र में भी आगस्टस-काल स्वर्णयुग था।[१] इस समय कृषि का विकास हुआ। युद्ध-काल में अधिक जमीन जोती नहीं गई थी। आगस्टस-काल में ऐसी जमीन को पुनः जोता गया, जिससे अन्न का उत्पादन सहसा बढ़ गया। खेती के लिये लम्बे फार्म बनाये गये। इटली में सामंत वर्ग के लोगों ने खेत के बड़े खत्ते बनाये। इनसे उनकी आमदनी अधिक होती थी। स्पेन में कृषि-योग्य भूमि का बाहुल्य था। यहाँ पर रोम के लोगों ने जानवर पाले तथा

---

१. "In material prosperity the Augustan era was just as truly a golden age as in art and literature, and it was this prosperity that furnished their necessary basis." —Trever.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उनके द्वारा जुताई कर अनाज उपजाने लगे। गाल जाति के लोग अधिक अनाज पैदा कर लेते थे। ये रोम-सेना को खाद्य-पदार्थ पहुँचाते थे। खेती की सिंचाई के लिये नहरों का निर्माण किया गया। भूमिकर उचित लगाया जाता था तथा अच्छी तरह वसूल किया जाता था। इस कारण खेती में रोम-वासियों की अभिरुचि और अधिक जागृत हो उठी।

यातायात के साधन ठीक किये गये। राजमार्ग तथा नदियों पर पुल का निर्माण किया गया। मार्ग में चोरी और डकैती को रोकने की व्यवस्था की गई। रोम के आस पास के सामुद्रिक प्रदेशों में डाकुओं के भय से यात्रियों, व्यापारियों तथा जहाजों के बचाव के लिये दो जहाजी बेड़े नियुक्त किये गये। इसके सैनिक समुद्री डाकुओं का पता लगाते थे। आगस्टस-काल में महत्वपूर्ण व्यावसायिक प्रगति हुई।[१] दास-प्रथा के बढ़ने के कारण मजदूरी कम देनी पड़ती थी, अतएव कारखानों में काम तेजी से बढ़ने लगा। ऊनी तथा सूती कपड़ों के निर्माण एवं जहाज बनाने की कला में विकास हुआ। व्यावसायिकों ने अपनी समितियाँ बनाईं। इन समितियों को 'काले-जिआ' कहा जाता था। अधिक धनसंपन्न होने के कारण ये समितियाँ दीन व्यक्तियों को आर्थिक सहायता प्रदान करती थीं। नवीन सुरक्षाओं के कारण व्यापारिक विकास भी संपन्न हुआ। साम्राज्य के विभिन्न भागों में आर्थिक एकता स्थापित की गई। एक प्रान्त का माल दूसरे प्रान्त में बिना कर लगे हुये जा सकता था। मुद्रा का आधिक्य था। बैंक के कारण लोगों को आर्थिक सुरक्षा प्रतीत हुई।

मनोविनोद के साधन—आगस्टसकालीन समाज मनोविनोद का प्रेमी था। इनके दिलबहलाव के साधन विविध थे; उदाहरणार्थ घुड़दौड़, तलवार-युद्ध, जंगली जानवरों का युद्ध, अभिनय एवं नृत्य तथा व्यायाम-प्रति-योगितायें। घुड़दौड़ के अवसर पर विशाल जन-समूह एकत्र होता था। दर्शकों

---

१. "Within certain limits, Italian industry reached its climax in the early principate" —Trever.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में महिलायें भी हुआ करती थीं। जो व्यक्ति बाजी जीत लेता था, उसे पुरस्कार एवं सम्मान प्रदान किया जाता था। रोम में तलवार-युद्ध की परम्परा तृतीय शताब्दी ई० पू० से ही चली आ रही थी। सेना में भर्ती के लिये इस प्रकार के आयोजन द्वारा सैनिक योग्यता की परीक्षा ली जाती थी। मेरियस, जूलियस सीज़र तथा आगस्टस इस प्रकार की प्रतियोगिता बहुधा कराते थे। एक बड़े मैदान को चारो ओर से घेर दिया जाता था। सेम्नाइट तथा थ्रेसियन वीरवरों का तलवार-युद्ध बड़ा ही मनोरंजक हुआ करता था। सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि इसमें कभी-कभी स्त्रियाँ भी भाग लेती थीं। आगस्टस के द्वारा आयोजित इस प्रकार की एक प्रदर्शिनी में दो लाख से भी अधिक की भीड़ थी। अभियुक्त, दास तथा कैदियों के तलवार-युद्ध का आयोजन तो एक साधारण सी बात थी। उस समय ऐसे स्कूल हुआ करते थे, जहाँ लोगों को इस कला में मर्मज्ञ बनाया जाता था। पशु-युद्ध की प्रथा तो और भी व्यापक थी। चतुर्दिक भली भाँति घिरे हुये मैदान में हाथी, भालू, शेर तथा तेंदुये आदि भयंकर वन्य पशु छोड़ दिये जाते थे। जंगली जानवरों को पकड़ कर इस प्रकार उनका युद्ध दिखाने वाले पेशेवर लोग भी हुआ करते थे। पशुओं को पकड़ना और उन्हें युद्ध-शिक्षा देना आगस्टस के समय में काफी लोकप्रिय था। नाट्यशालाओं में अभिनय की प्रथा व्यापक तो थी, पर इस क्षेत्र में रोम के लोग उतनी उत्कृष्टता पर नहीं पहुँच सके थे जितना कि यूनानी। इनकी खेलकूद-प्रतियोगिताओं में यूनानी भी भाग लेते थे।

समाज—धनसंपन्नता के कारण आगस्टस-कालीन समाज में आमोद-प्रमोद एवं विलासिता बढ़ने लगी। इसका प्रतिबिम्ब इस काल के साहित्य में मिलता है। इस समय का समाज धनलोलुप, भौतिकवादी, सुखप्रेमी तथा द्रव्यांध था। व्यभिचार, आचरणविच्छृंखलता तथा स्वार्थप्रियता बढ़ती जा रही थी। मानवजीवन का उद्देश्य आनंद का लूटना था। धनिक वर्ग के लोग खेल-कूद के संगठन, दावत, उपहार एवं मित्रों के स्वागत में अपरंपार धन अनावश्यक बहा देते थे। नाटक तथा विशेष उत्सवों में लोगों के बैठने के लिये उनके द्रव्य एवं सामाजिक प्रतिष्ठा के अनुसार विशेष प्रकार की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुर्सियाँ लगी रहती थीं। वे कीमती पक्षियों का आहार करते थे। उनके घरों की दीवालें भव्य चित्रों से सुसज्जित हुआ करती थीं। सेनेटरों का जीवन फजूलखर्ची से भरा हुआ था। वे अपव्यय को आत्मसम्मान समझते थे। उनकी मेज एवं कुर्सियों में कीमती धातुयें जड़ी रहती थीं। वे घर के बाहर जब भी निकलते थे, उस समय सजी सवारी में बैठकर अपने दलबल के साथ चलते थे। वे कुछ लोगों को केवल इसी बात के लिये नियुक्त करते थे, जिनका कार्य सेनेट में उनके व्याख्यान के समय हर्षध्वनि तथा तालियाँ बजाना था। वे उनके चुनाव, षड्यंत्र एवं उपद्रवों में सक्रिय सहायता करते थे और इसके लिये मुँहमाँगा इनाम पाते थे। आगस्टस के पूर्वकालीन रोम-सम्राटों का जीवन अपव्यय का उदाहरण था। जब वे सैनिक अभियान के लिये भी निकलते थे, उस समय उनके शिविर में लगाने के लिये उनके अनुचर मोज़ेक की फर्श लेकर चलते थे। ऐंटोनी की एक ऐसी गाड़ी थी, जो शेरों के द्वारा खींची जाती थी। अपव्यय की यह प्रथा आगस्टस के उपरान्त भी प्रचलित थी। टाइबेरियस के समय में एक सेनेटर ने अपने व्यय को जब नियंत्रित करने की चेष्टा की, उस समय उसने उसे पदच्युत कर दिया था। कुलीन महिलायें शृङ्गार पर काफी धन बहाती थीं। सुवर्णजटित आभूषण, अनुलेप एवं सुगन्धित द्रवों का उपयोग वे प्रचुर मात्रा में करती थीं। स्त्री-समाज से पवित्रता की भावना विलुप्त होती जा रही थी, जिसके कारण तलाकादि बढ़ता जा रहा था। इन सामाजिक दोषों के दूरीकरण के निमित्त आगस्टस ने नये कानून बनाये, जिनके अनुसार व्यभिचार महान् अपराध घोषित किया गया तथा विवाह प्रत्येक के लिये आवश्यक कर दिया गया। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि आगस्टस के इन सामाजिक कानूनों से उपर्युक्त दोष कम ही दूर हो सके थे। तत्कालीन साहित्य में इस समय के समाज की बुराइयों का प्रतिबिम्ब मिलता है।

धर्म तथा दर्शन—धर्म के क्षेत्र में इस समय नवीन परिवर्तन हुये। लोगों का विश्वास सम्राट्-पूजा में हुआ। अगस्टस की पूजा के निमित्त मन्दिर, मूर्ति तथा वेदी आदि का निर्माण किया गया। कुछ लोगों ने उसे ईश्वर के द्वारा भेजा हुआ रक्षक माना। उसमें आधिभौतिक शक्ति की कल्पना की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
गई। कुछ लोगों ने उसे अर्द्ध-देवता तथा कुछ ने उसे एपोलो का अवतार माना। इस काल में कुछ लोग स्टोइक दर्शन से प्रभावित हुये। ये लोग व्यक्तिवाद को प्रधान मानकर चलने लगे। समाज की समता में व्यक्ति को प्रधान माना गया है। कुछ लोग भौतिकवादी विचारधारा (एपिक्यूरियन मत) से प्रभावित हुये। इनके अनुसार मानव-जीवन का लक्ष्य खाना, पीना तथा मस्त रहना है। रोम में सर्वप्रथम आगस्टस-काल में आत्मा की अमरता में लोगों को विश्वास हुआ। लोगों ने पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया। इस समय कुछ लोग 'निओ पाइथागोरियन मत' में विश्वास करते थे। इस विचार-धारा के लोग शक्ति, मंत्र, आत्मा, मुक्ति तथा पुनर्जन्म में विश्वास करते थे। आगस्टस दार्शनिकों का पर्याप्त सम्मान करता था। उसने अपने दरबार में एरियस नामक दार्शनिक को आश्रय दिया था। शासन के प्रत्येक महत्वपूर्ण विषय में आगस्टस उसकी मन्त्रणा लिया करता था। उसके राज्यकाल में रोम के प्रसिद्ध दार्शनिक सेनेका का आविर्भाव हुआ, जिसकी ख्याति कालान्तर में नीरो के काल में उत्कर्ष पर पहुँची। सेनेका पर अनेक विचारधाराओं का थोड़ा बहुत प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। विशेषतया स्टोइक दर्शन से वह अधिक प्रभावित था। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि कहीं-कहीं स्टोइक दर्शन तथा सेनेका के विचारों में अन्तर भी मिलता है। उदाहरणार्थ स्टोइक लोगों के समान वह अधिक सुखार्थी नहीं था। वह क्षमा, दयालुता, न्याय तथा सत्य को प्रधान मानकर चलता था।

नगर-जीवन—इसके समय में रोम एक विश्व-नगर था, जिसमें विविध देशों एवं जातियों के लोग एकत्र थे। इसका वर्णन करता हुआ सेनेका लिखता है—"जरा रोम के विशाल जनसमूह को तो देखो। इसमें अधिकांश लोग हैं जिनका जन्म रोम में नहीं हुआ है। जैसे एक स्थान पर कई नदियाँ आकर मिल जाती हैं वैसे ही यहाँ देश-देश, द्वीप-द्वीप, नगर-नगर, यहाँ तक कि पूरे विश्व के लोग एकत्र हो गये हैं। यहाँ कुछ लोग विद्या, कला, भाषा एवं सभ्यता सीखने के लिये आये हैं। यहाँ के कुछ निवासी अपनी प्रतिभा को प्रकाश में लाने के लिये बसे हुये हैं। सुहृद्-गोष्ठियाँ, विद्वन्मंडली एवं कलाकारों के समुदाय यहाँ मौजूद हैं। इस नगर में बुद्धि की भी सौदा-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गीरी खूब हो रही है। विलासिता का भी वातावरण चतुर्दिक दृष्टिगोचर हो रहा है। धन एवं लौकिक सुखों के प्रेमी तथा सौन्दर्य का सौदा करने वाले यहाँ पर विद्यमान हैं। जितने ऊँचे मूल्य पर गुण एवं अवगुण का क्रय-विक्रय यहाँ हो रहा है, उतना विश्व में अन्यत्र कहीं भी संभव नहीं है।" लगता है मानों यहाँ पर उपर्युक्त लेखक ठाट-बाट एवं विलास की सामग्री से सुसज्जित किसी आधुनिक पुर का वर्णन कर रहा हो। नये पुर-भागों के बसाने एवं रहने की सुविधा के कारण रोम की जनसंख्या इस समय काफी अधिक बढ़ गई थी। एक गणना के अनुसार वहाँ इस समय बारह लाख के लगभग लोग रहते थे। आगस्टसकालीन विशिष्ट नगरों की तालिका में रोम के अनन्तर सिकन्दरिया तथा अन्तियोक का नाम लिया जा सकता है। एक इतिहासकार ने इन तीनों नगरों को आगस्टस के साम्राज्य का क्रमशः लन्दन, न्यूयार्क तथा पेरिस कहा है। पश्चिमी भूमध्यसागरीय क्षेत्र में कार्थेज की भी प्रतिष्ठा अधिक थी। कोरिन्थ एवं थेस्सैलोनिका यूनान के विशिष्ट पुर थे। भूमध्य-सागर के एशियाई तट पर इफेसस और पर्गेमम के नगर विख्यात थे। रोड्स पश्चिमी एवं पूर्वी विश्व का एक सन्धि-स्थल था।

कानून—आगस्टस के पूर्व रोम में कानून की कोई ठीक व्यवस्था नहीं थी। संपूर्ण साम्राज्य को सुसंगठित करने के लिए कानून की व्यवस्था ठीक कर लेना परम अनिवार्य था। इस निमित्त उसने कानून के विशेषज्ञों (जूरिस्ट) की सहायता ली। इनकी मंत्रणा से उसने 'जूलियन ला' बनाये। ये कानून प्रधानतया व्यभिचार, भ्रष्टाचार, घूसखोरी, विलासप्रियता, विवाह-हीनता, संतानहीनता तथा तलाक आदि को दूर करने के निमित्त बनाये गये थे। नगरों में भवन आदि के संबन्ध में भी उसने कुछ कानून बनाये। कोई भी अपने घर की ऊँचाई ७० फीट से अधिक नहीं रख सकता था। खर्चीले दावत रोक दिये गए। पुराने कानूनों को क्रमबद्ध कर ९ ई० के लगभग उन्हें प्रकाशित किया गया। इस पुस्तक का नाम 'लेक्स पैपिआ पोपिआ' रखा गया। इन कानूनों के बन जाने से साम्राज्य का अधिक लाभ हुआ। विद्वानों का कथन है कि रोम के कानूनों के वास्तविक रूप का निर्धारण वास्तव में आगस्टस-काल में ही संपन्न हुआ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विज्ञान—इस काल में विज्ञान के क्षेत्र में भी उन्नति हुई। सेनेका ने वर्षा, तूफान, आँधी, उल्कापात, इन्द्रधनुष, भूकम्प, नदियों तथा अन्य प्राकृतिक विषयों के उद्गम पर प्रकाश डाला। उसने इस बात का निर्देश किया कि अटलांटिक समुद्र के आगे एक द्वीप है। नक्षत्रों की बहुसंख्या के ऊपर उसने प्रकाश डाला। वह कहता था कि अभी ज्ञान के क्षेत्र में मनुष्य को बहुत काम करना है। प्लिनी रोम का सबसे बड़ा वैज्ञानिक था। उसने "हिस्टोरिया नैचुरालिज़" नामक एक ग्रंथ लिखा। यह रचना ज्ञान का कोष है। वह प्रकृति को वास्तविक देवता मानता था। इस बहुमुखी राजनीतिक एवं सांस्कृतिक विकास के कारण आगस्टस-काल रोम के इतिहास का स्वर्ण-युग माना जाता है। आगस्टस की कृतियों के फलस्वरूप उसकी गणना विश्व के प्रधान राजनीतिज्ञों में की जाती है।[१]

आगस्टस की मृत्यु के उपरांत १४ ई० से लेकर १८० ई० तक का काल रोम-साम्राज्य के इतिहास का महान् काल माना जाता है। इस काल में आगस्टस के उत्तराधिकारियों के नेतृत्व में रोम साम्राज्य पल्लवित एवं विकसित होता रहा। इस काल का वर्गीकरण तीन भागों में किया जा सकता है—(१) जूलिओक्लाडियन काल (१४ ई०-६८ ई०), (२) फ्लेवियन काल (६८ ई०-९६ ई०) तथा (३) ऐंटोनाइन काल (९६ ई०-१८० ई०)।

जूलिओ क्लाडियन काल

(१) टाइबेरियस—(१४ ई० ३७ ई०) आगस्टस की मृत्यु के अनन्तर उसके दत्तक पुत्र टाइबेरियस के हाथों में रोम के शासन की बागडोर आई। वह इस समय (१४ ई० में) ५६ वर्ष का हो चुका था। उसमें एक उत्कृष्ट शासक के समस्त गुण विद्यमान थे। उसने प्रान्तीय शासन को सुसंगठित किया। उसने सीमान्त प्रदेशों की सुरक्षा की संतोषजनक व्यवस्था की। भ्रष्ट एवं निर्दय राज्यपाल पदच्युत कर दिये गये। उसने विद्रोहों का दमन कर साम्राज्य के विभिन्न भागों में शांति स्थापित किया। इस काल की सबसे

---

१ "Augustus, therefore, must always occupy a place in the front rank of the statesmen of the world" —Caldwell.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उल्लेखनीय घटना ईसा मसीह का प्राणदंड है। उस समय उन लोगों को यह आभास नहीं हो सका था कि यह घटना विश्व-इतिहास में दूरतर प्रभाव डाल सकेगी। अपने राज्य-काल के अन्तिम भाग में टाइबैरियस का संबन्ध सेनेट के साथ ठीक न था। इसका सबसे महान् कारण उत्तराधिकार का प्रश्न था। जिस समय आगस्टस ने टाइबेरियस को गोद लिया, उसी समय टाइबेरियस को जर्मेनिकस को गोद लेना पड़ा था। जर्मेनिकस टाइबेरियस का भतीजा था। टाइबेरियस इसे हटाकर अपने पुत्र ड्रूसस को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। इस कारण जर्मेनिकस की पत्नी अग्रिपिन्ना टाइबेरियस से जलती थी। १६ ई० में जर्मेनिकस अन्तियोक में अकस्मात बीमार पड़ गया, जिस कारण उसकी मृत्यु हो गई। अग्रिपिन्ना तथा उसके समर्थकों ने यह अफवाह उड़ा दिया कि टाइबेरियस ने पिसो के द्वारा जर्मेनिकस को विष दिला दिया था। इस अफवाह ने सेनेट में टाइबेरियस के विरुद्ध एक बहुत बड़े झगड़े का वातावरण उत्पन्न कर दिया। इससे ऊबकर उसने सेजेनस नामक विश्वासपात्र कर्मचारी के हाथ रोम का शासन सौंप दिया तथा स्वयं कैप्री में रहने लगा।

सेजनस रोम का शासन पाँच वर्षों तक करता रहा। इस बीच उसने अपनी स्थिति बहुत सुदृढ़ कर ली। उसने टाइबेरियस का स्थान लेने के लिये षड्यंत्र रचना प्रारम्भ किया। उसने अपनी गुप्त चाल से ड्रूसस को विष देकर मरवा डाला तथा राजद्रोह के अपराध में अग्रिपिन्ना तथा उसके दो पुत्रों को देशनिष्कासन का दण्ड दिलवाया। इस समय अब केवल दो ही ऐसे व्यक्ति बच सके, जो कि टाइबेरियस के उत्तराधिकारी हो सकते थे—(१) गेमेलस—यह ड्रूसस का पुत्र था तथा (२) गेयस—यह जर्मेनिकस का अग्रिपिन्ना से उत्पन्न पुत्र था। टाइबेरियस को सेजेनस के षड़यंत्र का पता चल गया। इससे क्रुद्ध होकर उसने सेजनस तथा उसके पुत्रों को मरवा डाला। अपने विषय में अधिक सशंकित हो जाने के कारण उसने राजद्रोह-कानून (लेक्स मैजेस्टैटिज़) बनवाया। इसके अनुसार कोई भी व्यक्ति जो कि टाइबेरियस का विरोधी सिद्ध होता, मार डाला जाता। इस कानून के बन जाने के उपरान्त कई व्यक्तियों को प्राणदण्ड दिया गया। इतिहास-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कार टैसिटस ने इस रक्तरंजन का वर्णन अपने लेख में किया है। लोग इस समय टाइबेरियस के भयावह शासन से ऊब चुके थे। टाइबेरियस का देहावसान ३७ ई० में हुआ। उसने मृत्यु के पूर्व गेमेलस तथा गेयस दोनों को अपना सम्मिलित उत्तराधिकारी चुना। सेनेट के सदस्य तथा रोम के नागरिक टाइबेरियस की मृत्यु से बहुत प्रसन्न हुये। उन्हें विश्वास हुआ कि उसकी मृत्यु के साथ उसके रक्तरंजित शासन का भी अंत हो गया। सेनेट ने गेमलस को हटाकर राजपद गेयस को सौंपा।

(२) गेयस सीज़र (३७ ई०—४१ ई०)—वह इतिहास में कालिगुला के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। उसने प्रारम्भ में बड़ी उदारता दिखाई। देश-निष्कासित रोम वापस बुलाये गये। उसने कई कर माफ कर दिया। वह सेनेट के सदस्यों का आदर करता था। अपने समर्थकों को उसने ऊँचे पद दिये। ऐसा लगता था, मानों आगस्टसकालीन स्वर्णयुग पुनः अवतरित होने जा रहा हो। पर इसी बीच वह अकस्मात् बीमार पड़ गया, जिस कारण उसका मस्तिष्क विकृत हो गया। वह एक पागल की भाँति व्यवहार करने लगा। उसमें निर्दयता एवं स्वाभिमान की भावना बढ़ने लगी। वह मनमाने जब जो चाहता था कर बैठता था। उसकी आज्ञा के अनुसार कर बढ़ा दिये गये। उसकी अपव्ययता के फलस्वरूप कोष रिक्त हो गया। उसने अपने आपको देवता घोषित किया। उसने जेरुस्लम के देवालय में अपनी प्रतिमा स्थापित कराई। उसने रोमवासियों को अपनी पूजा के लिए बाध्य किया। उसके व्यवहारों से ऊब कर इसके विरुद्ध ४१ ई० में एक षड़यंत्र रचा गया। षड़यंत्रकारियों ने उसकी हत्या के लिये एक सैनिक कर्मचारी को नियुक्त किया। वह उसे मारने में सफलीभूत हुआ।

(३) क्लाडियस (४१ ई०—५४ ई०)—वह एक सफल शासक था। यह जर्मेनिकस का भाई तथा गेयस का पितृव्य था। उसने यातायात की सुविधा के लिये राजमार्गों का निर्माण किया तथा नवीन बन्दरगाह बनवाये। मुकदमों का निर्णय शीघ्रता के साथ होने लगा। उसने एक मंत्रि-मंडल बनाया, जिसके कई सदस्य थे। प्रत्येक सदस्य अलग विभाग का अध्यक्ष था। उसने प्रत्येक प्रान्त में बराबर कर लगाये। उसने रोम की नागरिकता बढ़ा दी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दक्षिणी इंग्लैंड तथा थ्रेस को जीतकर उन्हें रोम का प्रान्त बनाया गया।

पर उसके पारिवारिक जीवन की असफलताओं ने उसकी शासन-सम्बन्धी सफलताओं के ऊपर आवरण डाल दिया। उसने मसेलिना से विवाह किया, जिससे ब्रिटैनिकस नामक एक पुत्र तथा आक्टेविया नामक पुत्री उत्पन्न हुई। मसेलिना एक भ्रष्ट आचरण की महिला थी। कहा जाता है कि उसका अनुचित सम्बन्ध गेयस सिलुइस नामक एक सेनेट-सदस्य के साथ था। दोनों ने मिलकर क्लाडियस की हत्या के लिये एक षड्यंत्र का आयोजन किया, पर इसके विषय में क्लाडियस को पहले ही सूचना मिल गई। मसेलिना तथा उसके प्रेमी गेयस सिलुइस को इस अपराध के लिये प्राणदण्ड दिया गया। इस बार उसने अपनी भतीजी (अग्रिपिन्ना दी यंगर) से विवाह किया। अग्रिपिन्ना जर्मेनिकस की पुत्री थी। वह मसेलिना से भी अधिक नीतिनिपुण तथा व्यभिचारिणी सिद्ध हुई। उसने क्लाडियस को ब्रिटैनिकस के स्थान पर अपने पुत्र डोमिशियस को अपना उत्तराधिकारी घोषित करने के लिये बाध्य किया। डोमिशियस अग्रिपिन्ना का पहले विवाह से उत्पन्न पुत्र था। इसके उपरान्त ५४ ई० में क्लाडियस की मृत्यु हो गई। कहा जाता है कि अग्रिपिन्ना ने उसे विष दिला दिया था। अब उसका पुत्र डोमिशियस रोम का शासक बना, जो कि इतिहास के पृष्ठों में नीरो के नाम से प्रसिद्ध है। इतिहासकारों के अनुसार क्लाडियस शक्ति एवं दुर्बलता तथा दूरदर्शिता और असूक्ष्मदर्शिता आदि विरोधी गुणों का विलक्षण समन्वय था।

नीरो (५४—६८ ई०)—इसने अपने शिक्षक सेनेका तथा परामर्शदाता बुरस के निर्देश में शासनारम्भ किया। उसके काल में मुद्रा—नीति में महत्व-पूर्ण परिवर्तन किये गये। कृषि को प्रोत्साहित किया गया। प्रान्तों में योग्य राज्यपालों की नियुक्ति की गई। पर यह अच्छाई केवल कुछ ही दिनों के लिये थी। उसके दोष क्रमशः प्रत्यक्ष होने लगे। उसका व्यक्तिगत जीवन भ्रष्टाचार से परिपूर्ण था। जब अग्रिपिन्ना ने उसकी विलासिता के ऊपर नियन्त्रण स्थापित करने के लिये चेष्टा की, उस समय वह बहुत ही कुपित हुआ। अपनी एक प्रेयसी के प्रभाव में आकर उसने अग्रिपिन्ना को ५६ ई० में मरवा डाला। अपनी पत्नी आक्टेविया को मरवा कर उसने पोपिया सेबिना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नामक एक परम सुन्दरी के साथ अपना विवाह किया। ६२ ई० में बुरस की मृत्यु के अनन्तर वह और स्वतन्त्र हो गया। इस समय वह शासन-कार्य को उपेक्षित कर संगीत में समय व्यर्थ गवाने लगा। अपने आप को कलाकार घोषित करने के निमित्त वह नाना चेष्टाओं में रत हो गया। जिस समय ६४ ई० में रोम अग्निदाह के कारण भस्म हो रहा था, उस समय वह वीणावादन में संलग्न था। इससे रोम की जनता उसके ऊपर कुपित हो उठी। अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के निमित्त उसने नागरिकों का खून चूसना प्रारम्भ किया। इस समय तक लोग उससे बहुत ही ऊब चुके थे। ६५ ई० में इसके विरुद्ध एक षड़यन्त्र आयोजित हुआ, जिसमें सेनेका भी सम्मिलित था। पर यह षड़यन्त्र सफल नहीं हुआ। बीच में भेद खुल जाने के कारण षड़यन्त्र-कारी पकड़ लिये गये। इनके साथ उसने बड़ी निर्दयता का व्यवहार किया। ६६ ई० में विचित्र धुन में आकर उसने यूनान के राष्ट्रीय खेल (आलिम्पिया) में भाग लिया। रोम के लोगों को प्रसन्न करने के निमित्त उसने ईसाइयों का वध करना प्रारम्भ किया। परम्परा के अनुसार सेंट पीटर तथा सेंट पाल इसी समय मारे गये थे। इस समय उसके क्रूर व्यवहार तथा असंतुलित निर्णयों के कारण साम्राज्य के विभिन्न भागों में विद्रोह की चिनगारियाँ फूट उठीं। राज्य-पालों ने संबन्ध-विच्छेद स्थापित किया। सेनेट ने उसे जनशत्रु घोषित किया। परिस्थितियों को इस प्रकार प्रतिकूल देखकर उसने ६८ ई० के जून में आत्म-हत्या कर ली। इस घटना के अनन्तर कुछ ही महीनों के भीतर तीन व्यक्तियों को क्रमशः रोम का सम्राट बनने का सुअवसर उपलब्ध हुआ—(१) गल्बा, (२) ओथो तथा (३) विटोलियस। पर अपनी अयोग्यता के कारण तीनों को पदच्युत होना पड़ा। इसके उपरान्त वैस्पेसियन के नेतृत्व में रोम में फ्लेवियन वंश का उद्‌गम हुआ।

फ्लेवियन-काल (६९—९६ ई०)

(१) वेस्पेसियन (६९—७९ ई०)—वह एक योग्य शासक था। उसने साम्राज्य को सुसंगठित तथा शान्तिपूर्ण बनाने के लिये प्रयत्न करना प्रारम्भ किया। उसने आर्थिक शासन को सुव्यवस्थित किया। उसके काल में प्राचीन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मन्दिरों का जीर्णोद्धार किया गया। इस समय कुछ नवीन मन्दिर एवं प्रेक्षा-गृह भी बनाये गये। उसने साहित्यकारों को आश्रय प्रदान कर रोम में एक बौद्धिक वातावरण उत्पन्न किया। इसके काल में यहूदियों के साथ रोम का युद्ध हुआ। उसके पुत्र टिटस ने यहूदियों का दमन किया।

(२) **टिटस (७६ ई०—८१ ई०)**—वह एक अधिक ऊँची योग्यता वाला व्यक्ति था। वह लोकप्रिय तथा शासन-कार्य में परम निपुण था। इसका राज्य अल्पकालीन था। ८१ ई० में अकस्मात् ज्वर-पीड़ित हो जाने के कारण उसकी मृत्यु हो गई।

(३) **डोमिशियन (८१ ई०-९६ ई०)**—यह टिटस का भाई था। वह स्वभाव से रूढ़िवादी होने के कारण प्राचीन परंपराओं का भक्त था। वह रोम के प्रारंभिक आचार एवं धर्म के पुनरुज्जीवन के पक्ष में था। उसने अश्लील ग्रंथों को जलवा दिया। ईसाई मतावलम्बी काट डाले गये। उसने कृषि को प्रोत्साहन प्रदान किया। उसके समय में इंग्लैंड-विजय को पूर्ण किया गया। डोमिशियन एक स्वेच्छाचारी शासक था। इस कारण सेनेट के साथ उसका बहुत बड़ा झगड़ा था। वह चाहता था कि सेनेट-सदस्य उसे 'सम्राट एवं देव' (डोमिनस एट डिअस) कह कर संबोधित करें। परिणामस्वरूप उसका शासन-काल टाइबेरियस के राज्यकाल का स्मरण दिलाने लगा। टैसिटस तथा डिओ केसियस ने डोमिशियन के अत्याचारों का वर्णन किया है। ९६ ई० में एक षड्यंत्र के द्वारा उसकी हत्या कर दी गई। कहा जाता है कि इसमें उसकी पत्नी ने भी भाग लिया था। फ्लेवियन-काल में रोम में स्वेच्छाचारी शासन का विकास हुआ। वंशानुगत राज्याधिकार, शासन का सैनिक आधार तथा डोमिशियन के राजनीतिक विचार इस बात का स्पष्ट परिचय देते हैं कि इस काल में सम्राट रोम-साम्राज्य का वास्तविक अधीश्वर था।

ऐंटोनाइन-काल (९६ ई०-१८० ई०)—इस काल के नरेश योग्य एवं लोकप्रिय थे। इन्होंने सेनेट को अपने साथ मिलाकर कार्य किया। इस काल के भीतर पाँच नरेशों ने राज्य किया—(१) नर्वा, (२) ट्रेजन, (३) हैड्रियन, (४) ऐंटोनिनस तथा (५) मार्कस आरेलियस।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नर्वा (९६-९८ ई०)—उसने साम्राज्य का आर्थिक शासन अधिक सुव्यवस्थित किया तथा कृषकों को प्रोत्साहन प्रदान किया। खेती को बढ़ाने के लिये कृषकों को कम सूद पर ऋण दिया गया। इस सूद से दीन व्यक्तियों की संतान के पालन-पोषण में आर्थिक सहायता दी गई। उसने अपना उत्तराधिकारी ट्रेजन को चुना जो कि उसके काल का सबसे सुयोग्य सैनिक पदाधिकारी था।

ट्रेजन (९८-११७ ई०)—वह कुशल सैनिक होने के अतिरिक्त कुशाग्र एवं व्यावहारिक बुद्धि का भी था। अपने राज्यपाल प्लिनी को उसने जो पत्र लिखे थे, उनसे ज्ञात होता है कि वह प्रान्तीय शासन में कितनी रुचि रखता था। उसके काल में सार्वजनिक गृह, मन्दिर तथा पुस्तकालय आदि बनवाये गये। यातायात की सुविधा के निमित्त उसने कई राजमार्ग तथा नदियों के ऊपर पुल बनवाये। उसने डैन्यूब नदी पर भी एक पुल का निर्माण किया। उसके काल में संपूर्ण आर्मेनिया तथा बैबीलोनिया के कुछ नगर जीते गये। उसका देहावसान ११७ ई० में हुआ।

हैड्रियन (११७-१३८ ई०)—ट्रेजन ने मृत्यु के पूर्व उसे अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया था। उसकी रुचि शासन-कार्य में थी, न कि विजयों में। उसने साम्राज्य को बहुत अधिक सुसंगठित करने की चेष्टा की। इसके समय में सीमान्त प्रदेशों की सुरक्षा की उचित व्यवस्था की गई थी। उसने सैनिक शासन को भी अधिक सुदृढ़ किया। साम्राज्य के विभिन्न भागों में चिकित्सालय बनवाये गये। केन्द्रीय शासन को वैज्ञानिक रूप प्रदान किया गया। टाइबर नदी के किनारे उसने एक भव्य राजप्रासाद बनवाया। उसने ऐंटोनियस नामक व्यक्ति को अपना उत्तराधिकारी चुना।

ऐंटोनियस (१३८-१६१ ई०)—उसके राज्यकाल में साम्राज्य शांति तथा वैभव के चरमोत्कर्ष पर पहुँचा। इसके समय में सीमान्त प्रदेशों से संबन्धित कई कठिनाइयाँ उत्पन्न हुईं, जिनको इसने दूर किया। दण्डविधान सरल किया गया। उसने मार्कस आरेलियस नामक व्यक्ति को अपना उत्तराधिकारी चुना।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मार्कस आरेलियस (१६१ ई०-१८० ई०)—इसने भी बहुत ही सफलता के साथ शासन किया। इसके समय में १६६ ई० में रोम में एक प्लेग आई, जिसके कारण रोम की बहुत बड़ी जनसंख्या समाप्त हो गई। १६७ ई० में एक जर्मन जाति ने रोम-साम्राज्य पर आक्रमण कर दिया। आक्रमणकारी डैन्यूब नदी को पार करते हुये इटली तक बढ़ आये। इसने आक्रमणकारियों का सामना बहादुरी के साथ किया। कुछ ही काल में ये बाहर खदेड़ दिये गये। इसके उपरांत वह बोहिमिया के विजय में संलग्न हुआ, पर बीच ही में १८० ई० में उसकी मृत्यु हो गई। उसके निधन के साथ रोम-साम्राज्य के महान् काल का भी अंत हो गया।

सैनिक शासन का काल (१८० ई०-२८५ ई०)

रोम के इतिहास में १८० ई० से लेकर २८५ ई० तक का काल सैनिक शासन का काल माना जा सकता है। १८० ई० तक रोम-साम्राज्य में शांति एवं सुव्यवस्था पर्याप्त रूप में विद्यमान थी। पर इस काल के अनन्तर यहाँ रक्तपात, आपत्ति, दौर्बल्य, निरंकुशता तथा विनाश की प्रवृत्तियाँ शीघ्रता के साथ बढ़ने लगीं। इस काल का वर्गीकरण दो भागों में किया जा सकता है—(१) सैनिक राजतंत्र का काल (१८० ई०-२३५ ई०) तथा (२) सैनिक अराजकता का काल (२३५ ई०-२८५ ई०)। प्रथम काल में सेनेट का पूर्व अधिकार समाप्त हो गया। इस काल के सम्राटों के अधिकार सैनिक बल पर सुरक्षित थे। इस समय के इतिहास के पृष्ठों में राजाओं की हत्या, सैनिकों के उत्पात तथा जनसाधारण का शोषण आदि ही दृष्टिगोचर होते हैं। द्वितीय काल इससे भी बुरा था। इसमें प्रारंभ से अंत तक गृह-युद्ध, बाह्य आक्रमण, विद्रोह तथा दैवी एवं मानवी आपत्तियों का इतिहास मिलता है।

सैनिक राजतन्त्र (१८० ई०-२३५ ई०)

कमोडियस (१८० ई०-१९३ ई०)—वह मार्कस आरेलियस का पुत्र था। वह भ्रष्टाचारी, अयोग्य एवं निकम्मा शासक सिद्ध हुआ। शासनकार्य को उपेक्षित कर वह विलासिता में संलग्न हो गया। इसका लाभ उठाकर रोम साम्राज्य के शत्रु बलवान् होने लगे। केन्द्रीय शासन क्षीण हो गया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
१८२ ई० में इसको मारने के लिये एक षड्यन्त्र रचा गया, पर बीच ही में भेद खुल जाने के कारण यह सफल न हो सका। इसके उपरांत यह नरेश अपने जीवन के विषय में अत्यन्त सशंकित हो उठा। जिसके ऊपर थोड़ा भी संदेह उत्पन्न होता था, उसको यह मरवा डालता था। १८२ ई० से लेकर १९२ ई० तक उसके शासन ने सेनेट तथा जनता को पूर्ण रूप से आतंकित कर दिया। १९३ ई० में इसकी परम प्रेयसी को मिलाकर षड्यन्त्रकारियों ने उसे मार डाला। इस घटना के उपरान्त उन्होंने पर्टिनैक्स को रोम की गद्दी पर बिठाया। पर वह भी अपनी अयोग्यता के कारण मार डाला गया। उसके हत्यारों ने साम्राज्य को जूलियैनस नामक व्यक्ति के हाथों बेंच दिया। इस कार्य से साम्राज्य में खलबली मच गई। रोम की प्रान्तीय सेनाओं ने विद्रोह कर दिया। प्रान्तीय सेनायें तीन दलों में बट गईं। प्रत्येक दल अपने नायक को रोम का सम्राट बनाना चाहता था। इस उद्देश्य से तीनों दलों में एक गृह-युद्ध छिड़ा, जो द्वितीय गृह-युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें डैन्यूब का सेनानायक सेप्टिमस सेवरस अंतिम विजयी हुआ। १९३ ई० के अंत तक इसके हाथों में रोम-साम्राज्य की बागडोर पूर्णतः आ गई।

सेप्टिमस (१९३ ई०-२११ ई०)—इसके राज्यकाल में सैनिक शासन को अधिक पनपने का अवकाश मिला। उसने वास्तव में साम्राज्य को एक सैनिक संस्था बना दिया। वह स्वयं इक्वेस्ट्रियन दल का था। अतएव उसने इस वर्ग के लोगों को उच्च सैनिक पदों पर नियुक्त किया। उसने सैनिकों का वेतन बढ़ा दिया। उन्हें नाना प्रकार की सुविधायें दी गईं। उसने सैनिकों को विवाह का अधिकार प्रदान किया। इस प्रकार उसने सेना की पूर्ण सहानुभूति प्राप्त कर ली। उसने सेनेट के अधिकार कम कर दिये। उसकी पत्नी जूलिया डोम्ना एक विदुषी स्त्री थी। उसके संरक्षण में कई विद्वान रहते थे, उदाहरणार्थ फिलास्ट्रेटस, डायोजिनीज़, लायरटिअस, एथेनियस तथा डायोकेसिअस ने प्रारंभ से लेकर अपने समय तक का रोम का इतिहास लिखा।

कैरेकेल्ला (२११ ई०-२१७ ई०)—उसने अधिकार पाते ही रोम की नागरिकता अधिक बढ़ा दी। उसने सबको बराबर कर लगाये। इस प्रकार वह साम्राज्य को एकरूपता प्रदान करना चाहता था। उसके काल में एक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महान् आर्थिक संकट उत्पन्न हुआ, जिसे वह दूर न कर सका। उसने कम तौल के सिक्के चलाये। २१७ ई० में वह मार डाला गया। उसके उपरांत मैक्रिनस तथा एलेगेबेलस ने क्रमशः थोड़े वर्षों तक राज्य किया। एलेगेबेलस बहुत ही भ्रष्ट था। २२२ ई० में वह मार डाला गया।

अलेक्ज़ेंडर सेवेरस (२२२ ई०–२३५ ई०)—वह बहुत ही कम अवस्था में गद्दी पर बैठा। अतएव शासन-कार्य के संचालन के निमित्त एक परिषद् नियुक्त किया गया, जिसमें सेनेट के कुछ चुने सदस्य सम्मिलित थे। इस समय सेनेट का स्थान अधिक महत्त्वपूर्ण था। पर इसकी युवावस्था के प्राप्त होते ही सेनेट की महत्ता समाप्त होने लगी। उसने सेनेट में नवीन सदस्य उन लोगों को नियुक्त किया, जो अपने ऐश्वर्य तथा राज्य-भक्ति के लिये विख्यात थे। उसकी साम्राज्य-सीमाओं पर बाह्य शत्रु पनपने लगे। पूर्व में पारसीक साम्राज्य शक्ति-सम्पन्न होने लगा। बड़ी कठिनता के साथ वह पारसीक आक्रमण को रोकने में सफलीभूत हुआ। २३५ ई० में उसके विरुद्ध एक सैनिक विद्रोह खड़ा हुआ, जिसमें वह मार डाला गया।

सैनिक अराजकता का काल (२३५ ई०–२८५ ई०)—२३५ ई० के उपरांत ५० वर्षों तक रोम के इतिहास में अशांति एवं अराजकता का भयंकर तांडव नृत्य देखने को मिलता है। २३५ ई० में मैक्सिमस नामक व्यक्ति रोम का सम्राट बना। उसने क्रूरता के साथ शासन करना प्रारम्भ किया। अपने सैनिक योजनाओं की कार्यान्विति के निमित्त उसने दरिद्रों का शोषण कर द्रव्य संकलित किया। एक सामयिक इतिहासकार के अनुसार सहस्रों व्यक्तियों को धनिक से रंक बनाना उसका प्रतिदिन का कार्य था। इसके राज्यकाल में साम्राज्य में चतुर्दिक रक्तपात तथा हत्या का वातावरण उत्पन्न हो गया। उसके सैनिकों ने विद्रोह कर उसे २३८ ई० में मार डाला। उसके उपरांत चारो ओर अव्यवस्था बड़ी शीघ्रता के साथ फैली। साम्राज्य की एकता क्रमशः छिन्न भिन्न होने लगी। २३४ ई० से लेकर २६८ ई० तक केवल ३४ वर्षों में १३ नरेश गद्दी पर बैठे। जनता के जानमाल की कोई भी सुरक्षा नहीं रह गई। इसी बीच कई बाह्य आक्रमण भी हुये, जिनमें पारसीक आक्रमण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पारसीकों ने रोम-साम्राज्य से आर्मेनिया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
को जीत लिया। २६८ ई० के उपरान्त दो योग्य नरेशों ने राज्य किया— (१) क्लाडिअस गोथिअस (२६८ ई०–२७० ई०) तथा (२) आरेलियन (२७० ई०–२७५ ई०)। इन दोनों ने अपने समय में साम्राज्य की बिगड़ी हुई स्थिति को सुधारने की चेष्टा की, पर इन्हें अपने कार्य में बहुत थोड़ी सफलता मिली। बाह्य आक्रमणों से रोम की सुरक्षा के निमित्त आरेलियन ने इस नगर के चतुर्दिक एक ऊँची दीवाल खड़ी कर दी। २७५ ई० में आरेलियन मार डाला गया। २७५ ई० से लेकर २८५ ई० तक रोम में चार नरेशों ने राज्य किया। इनके काल में भी सैनिक अराजकता के कारण साम्राज्य निरंतर पतनोन्मुख होता गया। २८५ ई० में डिओक्लिशियन रोम की गद्दी पर बैठा। इसके समय में रोम-साम्राज्य का पुनरुज्जीवन प्रारम्भ हुआ। इस दृष्टि से उसका शासन-काल रोम-इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। सैनिक अराजकता के काल में रोम-साम्राज्य को महान् क्षति पहुँच चुकी थी। अनेक नगर ध्वस्त हो चुके थे। इसको सुव्यवस्थित करने का कार्य डिओक्लिशियन तथा तदुपरान्त कांस्टेन्टाइन के द्वारा संपन्न किया गया।

रोम-सभ्यता (१४ ई० पू०–२८५ ई०)—आगस्टस की मृत्यु के काल (१४ ई० पू०) से लेकर डिओक्लिशियन के आविर्भाव-काल (२८५ ई०) तक २७१ वर्षों में रोम में नवीन सांस्कृतिक विकास हुये। इसे प्रारंभिक रोम-साम्राज्य की सभ्यता कहते हैं। इस समय रोम की संस्कृति का यूनानी तथा प्राच्य सांस्कृतिक धाराओं के साथ सम्मिश्रण हुआ। इसके फलस्वरूप नवीन राजनीतिक एवं सामाजिक संस्थाओं का उद्‌गम हुआ, जिसका निरूपण निम्नांकित ढंग से किया जा सकता है—

शासन

सम्राट—इस काल के सम्राट स्वेच्छाचारी थे। शासन-सम्बन्धी पूर्ण अधिकार रोम-सम्राट में केन्द्रीभूत थे। उसके दैवी अधिकारों में लोगों की आस्था उत्पन्न हुई। सम्राट-पूजा का प्रचार अधिक बढ़ने लगा। लोग उसकी प्रतिमा को पूजा चढ़ाते थे। सेनेट के अधिकार कम कर दिये गये। अब यह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

केवल परामर्श-दायिनी संस्था थी, न कि शासन-सम्बन्धी संस्था। इस समय के सम्राट इम्परेटर, सीज़र तथा प्रिंसेप की उपाधियाँ धारण करते थे। सेनेट के द्वारा प्रदान किये हुये अधिकारों के अनुसार वे इम्परेटर तथा सीज़र की उपाधि धारण करते थे। उसकी इम्परेटर उपाधि उसके सैनिक अधिकारों का द्योतक है। वे स्थल एवं जल-सेना के प्रधान थे। वह "पोंटिफेक्स मैक्सीमस" की भी उपाधि धारण करता था। इसके अनुसार धार्मिक मामलों में उसका पूर्ण नियन्त्रण स्थापित हो गया। साम्राज्य में सभी महत्वपूर्ण नियुक्तियाँ उसी के द्वारा की जाती थीं। प्लिनी लिखता है कि इस समय के सम्राट पूर्ण रूप से स्वेच्छाचारी थे। एक लेख के अनुसार इस काल का सम्राट युद्ध-निर्णय, शांति-स्थापन तथा सेनेट की बैठक आदि बुलाने का पूर्ण अधिकार रखता था। नागरिक को किसी प्रकार का विचार-स्वातंत्र्य नहीं प्राप्त था। सम्राट के कार्यों की आलोचना की गणना भयंकर अपराधों में की जाती थी।

सहायक पदाधिकारी—सम्राट की सहायता के निमित्त कई कर्मचारी हुआ करते थे। सेनेट के सदस्य कौंसल तथा प्रो-कौंसल के पदों पर नियुक्त किये जाते थे। इस समय सचिवों की नियुक्ति की गई, जिनकी संख्या ५ थी। ये सचिव पृथक विभागों के अध्यक्ष थे। सचिव की अधीनस्थता में कई प्रो-क्यूरेटर हुआ करते थे। इक्वेस्ट्रियन वर्ग के लोग प्रिफेक्ट के पद पर नियुक्त किये जाते थे। प्रिफेक्ट सम्राट की अंगरक्षक सेना के अध्यक्ष, जलसेना के नायक तथा अन्य उच्च पदों पर नियुक्त किये जाते थे।

आर्थिक शासन—राजकीय आय के प्रधान साधन कर थे। कर व्यापारिक वस्तु, खनिज पदार्थ तथा भूमि की उपज पर लगाये जाते थे। पैतृक सम्पत्ति पर अधिकार पाने के लिये ५ प्रतिशत कर लगाया जाता था। नीलाम की गई हुई वस्तुओं के ऊपर भी कर देना पड़ता था। दासों के विक्रय के ऊपर ४ प्रतिशत कर लगाया जाता था। प्रति पाँचवें वर्ष जन-संख्या की गणना की जाती थी। कर-योग्य संपत्ति का विवरण प्रस्तुत किया जाता था। व्यावसायिक वस्तुओं के ऊपर भी कर लगाया जाता था। राजकीय संपत्ति अलग हुआ करती थी। इस संपत्ति से बहुत बड़ी आमदनी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुआ करती थी। इस काल के नरेश विश्व के सबसे धनिक व्यक्ति थे। राजकीय भूमि के शासन के निमित्त एक विशेष प्रोक्यूरेटर तथा अलग विभाग नियुक्त किया गया था।

कानून—इस समय का सबसे महत्वपूर्ण कार्य कानूनों का निर्माण था। सेनेट का वैधानिक अधिकार कम हो गया। कुछ इतिहासकारों का कथन है कि रोम की सब से विशिष्ट देन उसकी विधानसंहिता थी। वहाँ के कानून क्रमिक विकास के परिणाम थे। पहले इस बात का निर्देश किया जा चुका है कि ४५० ई० पू० में 'ट्वेल्व टेबुल्स' के रूप में रोम का प्रथम कानून-संग्रह प्रकाशित किया गया था। पूर्व पंक्तियों में यह भी उल्लेख किया जा चुका है कि आगस्टस के स्वर्ण-काल में वहाँ की विधान-संहिता का कलेवर-विस्तार किया गया। उसके पश्चात् भी इस दिशा में काफी कार्य जारी रहा। नये कानून सम्राट की इच्छा के अनुसार बनाये गये थे। इनको 'ओरेशनेस प्रिंसिपिज़' कहते हैं। सम्राट की घोषणा (इडिक्टा), निर्णय (डेक्रिटा) तथा आज्ञा (मैनडेटा) आदि ने भी कानून का रूप धारण किया। इन्हें 'कांस्टीट्यूशनेस प्रिंसिपम' कहते हैं। न्यायालयों की सम्पूर्ण कार्य-पद्धति सम्राट एवं उसके प्रतिनिधियों के हाथ में केन्द्रित थी। इस समय के कानून-विशेषज्ञों (जूरिस्ट) ने राजकीय संरक्षण में कानून-सम्बन्धी पुस्तकों की रचना की। इनमें डोमिशियस उल्पियनस तथा जूलियस पालस आदि उल्लेखनीय हैं। इन लोगों की रचनाओं ने भी कानून के क्षेत्र में सम्राट को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया। इस समय के कानूनों का वर्गीकरण तीन भागों में किया जा सकता है—(१) दीवानी कानून (जूस सिविले), (२) जन-कानून (जूस गेंटियम) तथा (३) प्राकृतिक कानून (जूस नैचुराले)। दीवानी कानून (जूस सिविले) रोम तथा इसके नागरिकों के लिये बनाये गये थे। इनका लिखित रूप प्रस्तुत हो चुका था। जन-कानून (जूस गेंटियम) बिना किसी राष्ट्रीय भेद भाव के सभी लोगों पर ही लागू थे। इसने दास-प्रथा तथा व्यक्तिगत संपत्ति को वैधानिक रूप प्रदान किया। सहभागिता एवं ठीकेदारी के विषय में नियम निश्चित कर दिये गये। क्रय-विक्रय के सिद्धान्तों को इनके द्वारा निर्धारित किया गया। प्राकृतिक कानूनों (जूस नैचुराले) में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दर्शन की छाप मिलती है। इनके अनुसार स्वभाव से सभी मनुष्य बराबर हैं तथा उनके कुछ प्राकृतिक अधिकार हैं। जो सम्राट् उन्हें छीनता है, वह आततायी एवं विधर्मी है। दुर्बल नागरिक की रक्षा राज्य का उत्तर-दायित्व है। इस काल के नवीन कानून के अनुसार परिवार में पिता के अधिकार कम कर दिये गये। दासों की स्थिति में सुधार किया गया। स्त्री को अपनी सम्पत्ति के ऊपर पूर्ण अधिकार प्राप्त हुआ। अपराध के बिना प्रमाणित हुये अभियुक्त को दण्ड नहीं दिया जा सकता था। विजित प्रान्तों के निवासियों को भी नागरिकता प्रदान की गई।

सैनिक शासन—रोम-साम्राज्य के संगठन में उसकी सेना का स्थान विशेष था। प्रत्येक सैनिक को रोम की नागरिकता प्रदान की गई। सैनिकों को कठिन अभ्यास के द्वारा निपुण बनाया गया। प्रान्तों में शान्ति-स्थापना एवं सीमान्त प्रदेशों की सुरक्षा सेना का कर्त्तव्य था। सेना से अवकाश पाने पर सैनिकों को पेंशन तथा भूमिखंड प्रदान किया जाता था। शांति के अव-सर पर सैनिकों को राजमार्ग तथा पुल के निर्माण एवं सार्वजनिक कार्यों में लगाया जाता था। रोम की जल-सेना भी शक्तिशालिनी थी। इसके द्वारा समुद्री डाकुओं का भी दमन किया गया।

आर्थिक जीवन—इस काल में आर्थिक क्षेत्र में भी नवीन विकास हुये। इस समय के नगर वैभव एवं समृद्धि के निमित्त एक दूसरे से स्पर्द्धा करने लगे। प्रत्येक पुर में स्थान-स्थान पर व्यायामशालायें, नाट्यगृह, प्रयोगशालायें, चिकित्सालय तथा पाठशालायें बनी थीं। एक ही प्रकार के नाप, तौल तथा सिक्कों का प्रयोग किया जाने लगा। पूर्वी रोम-साम्राज्य की भाषा यूनानी थी तथा पश्चिमी रोम-साम्राज्य की भाषा लैटिन। इस समय कई नवीन राजमार्ग बनाये गये, जिनमें मजबूती के लिये पत्थरों की चुनाई की गई थी। प्रत्येक मील पर एक पत्थर लगाया गया। इन दूरी-सूचक प्रस्तर-खंडों के ऊपर उनके निर्माणकर्ता सम्राटों के नाम उत्कीर्ण किये गये। इन राजमार्गों के ऊपर घोड़ागाड़ियाँ ८ मील प्रतिघंटा की चाल से सरलता के साथ चल सकती थीं। दूर तक के यात्रियों के पास सुविधा के निमित्त इन राजमार्गों का नक्शा रहता था। यात्रियों के विश्राम के लिये इनके किनारे सरायों का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निर्माण किया गया। डाक ले जाने की व्यवस्था को पहले से अधिक सुगम किया गया। जहाजों को लूटने वाले समुद्री डाकुओं का दमन किया गया। एक ही साथ काफी बोझ और यात्रियों को ले जाने वाले जहाज बनाये गये। जिस जहाज में बैठकर सेंट पाल ने रोम-यात्रा की थी, उसमें लगभग २७६ यात्री विद्यमान थे। आर्थिक विकास के कारण इस समय कई व्यापार-केन्द्र पहले की अपेक्षा अधिक समृद्धिशाली हो गये थे, उदाहरणार्थ सिकन्दरिया, कार्थेज, इफेसस तथा कोरिन्थ। इनमें से प्रत्येक रोम का प्रतिस्पर्द्धी नगर बनने लगा। इस समय महाजनी प्रथा का भी खूब प्रचार था। आवश्यकता पड़ने पर व्यापारियों को सम्राट् से भी ऋण मिल जाता था। उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये बैंक-प्रथा का प्रचुर विकास हुआ। नागरिक अपने व्यावसायिक उत्पादन के द्वारा ग्रामवासियों से खाद्यान्न प्राप्त करते थे। व्यावसायिक वस्तुओं के ऊपर कर हल्के कर दिये गये। जीविका का प्रधान साधन खेती थी। कृषकों की दशा संतोषजनक थी।

सामाजिक दशा—इस समय के रोम-समाज का वर्गीकरण ४ भागों में किया जा सकता है—(१) अभिजात वर्ग, (२) व्यापारी, (३) जनसाधारण तथा (४) दास। अभिजात वर्ग का स्थान समाज में सबसे उच्च था। इसके पास बड़े भूमिखंड थे, जिनसे इसकी आय प्रचुर मात्रा में हुआ करती थी। इनके घर आकार में बड़े थे। इनके खंभों एवं फर्शों में संगमरमर लगे थे। कमरों की दीवालों के ऊपर चित्रकारी की गई थी। इन्हें गृह-उद्यान लगाने का शौक था। इनके आहार एवं वेशभूषा में काफी तड़क-भड़क था। ये लोग मदिरा-पान एवं मांसाहार के प्रेमी थे। मछली, मोर तथा विविध पशुपक्षियों के पालन की प्रथा इनमें खूब प्रचलित थी। इनकी दावतों में द्रव्य पानी की तरह बहाया जाता था। इनका जीवन विलासप्रिय था। ये लोग नर्तकियों एवं सुन्दरियों के हाव-भाव में आचरण की पवित्रता को भूल चुके थे। इनके लिये बहुविवाह एवं तलाक साधारण बात थी। पर ये लोग सुशिक्षित तथा बौद्धिक जीवन से प्रेम रखने वाले थे। साम्राज्य के प्रति भक्ति की भावना इनमें कूट कूट कर भरी हुई थी। रोम-सम्राट् इनकी सैनिक एवं शासन-सम्बन्धी सेवाओं के कारण इनका ऋणी था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यापारी वर्ग एक धनिक वर्ग था। समाज में इसका स्थान अभिजात वर्ग के उपरांत आता था। इन्हें अपनी संपत्ति का गर्व था। सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ाने के निमित्त ये अभिजात वर्ग से प्रतिस्पर्द्धा रखते थे। जन-साधारण वर्ग अपनी स्थिति से असंतुष्ट था। इसके सदस्य परिश्रमी थे, पर इनकी आय कम थी। इनमें सामाजिक क्रान्ति की भावना भरी थी, पर उसे राज्य ने काफी कुचल दिया था। उनकी बैठक एवं समितियों के ऊपर सरकार बराबर देख रेख रखती थी। इस समय दास-प्रथा वैधानिक थी। दास का जीवन बहुत कुछ उसके स्वामी के व्यवहार पर निर्भर था। समकालीन ग्रंथों से ज्ञात होता है कि स्वामी उससे हर प्रकार के कार्य ले सकता था।

कला—इस समय के स्थापत्यकारों ने यूनानी एवं एट्रूस्कन कला की विशेषताओं को अपनाया तथा उन्हें राष्ट्रीय साँचे में ढाल कर एक मौलिक स्वरूप प्रदान किया। कोरिन्थियन शैली में बने हुये यूनानी खंभों का इन लोगों ने अनुकरण किया। एट्रूस्कन कला से इन्होंने तोरण का निर्माण करना सीखा। पूर्वी कला के आधार पर इन लोगों ने गुम्बद का निर्माण करना प्रारम्भ किया। यहाँ पर चौकोर निर्माण के ऊपर गोलाकार गुम्बद बनाया जाता था, जो कि अपनी कोटि का उत्कृष्ट उदाहरण माना जाता है। इस समय मन्दिर, नाट्यशालायें तथा स्नान-गृह आदि का निर्माण प्रचुर संख्या में किया गया। कलाकारों ने इस समय 'थर्मेई' नामक एक विशेष प्रकार का निर्माण किया, जिसमें वस्त्र पहनने के कमरे, शीत ऋतु में ताप को बढ़ाने वाले कमरे, उष्णस्नान एवं शीतस्नान की व्यवस्था से संबन्धित कमरे विद्यमान थे। इनकी मूर्ति-निर्माण-कला भी यूनानी कला से प्रभावित थी। उन्होंने कालान्तर में यूनान से अपनाई हुई विशेषताओं को राष्ट्रीय साँचे में ढाल कर उन्हें एक मौलिक स्वरूप प्रदान किया। उन्होंने यूनानी पद्धति पर उत्कीर्ण-भास्कर (रिलीफ स्कल्पचर) का निर्माण किया। टिटस के उत्कीर्ण-भास्कर में एक जलूस का दृश्य अंकित किया गया है, जो कि इस कोटि की कला का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। तत्कालीन रोम की मूर्तिकला के विषय मनुष्य के ऐहिक जीवन से लिये गये हैं। इस दृष्टि से उनमें यूनानी आदर्शवादिता के विरुद्ध यथार्थवाद का पुट मिलता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साहित्य—इस काल में महत्वपूर्ण साहित्य की रचना हुई। यह युग लैटिन-साहित्य का 'रजत काल' माना जाता है। ग्रंथकारों ने इतिहास, संस्मरण, लेख, काव्य तथा नाटक आदि पर लेखनी उठाई। इस समय के आदि भाग में सेनेका (४ ई० पू०-६५ ई०) ने जो कि मूलतः एक दार्शनिक था आलंकारिक शैली में नाटकों की रचना की। उसके इस कोटि के ग्रंथों में व्यंग तथा चुटकुले प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। पेट्रोनियस ने कहानी एवं उपन्यास लिखे। पर्सियस (३४ ई०-६२ ई०) ने स्टोइक दर्शन को पद्यबद्ध किया। क्विन्टिलियन (३५ ई०-६५ ई०) ने ललित शैली में वक्तृत्व-कला के ऊपर ग्रन्थ लिखा। इस काल के इतिहासकारों में टैसिटस (५५-१२० ई०) उल्लेखनीय है। उसने 'ऐनाल्स' नामक ग्रंथ में रोम का इतिहास लिखकर अपनी विलक्षण प्रतिभा का सुन्दर परिचय दिया। इसमें आगस्टस के मृत्यु-काल से लेकर नीरो के मृत्यु-पर्यन्त तक की घटनाओं का मनोरम वर्णन किया गया है। उसका 'हिस्टरीज़' नामक दूसरा ग्रंथ भी इतिहास का एक सुन्दर उदाहरण माना जा सकता है। उसकी जर्मैनिका नामक एक अन्य पुस्तक में केन्द्रीय यूरोप की वर्बर जातियों का सबसे प्रारंभिक विवरण प्राप्त होता है। स्यूटोनियस (७५ ई०—१५० ई०) भी इसी काल के भीतर आता है। वह जीवनी-लेखक था। इसके ग्रंथ का नाम 'लाइव्ज़ ऑफ दी ट्वेल्व सीज़र्स' है। इसमें उसने जूलियस के काल से लेकर डोमिशियन के काल तक के राजाओं की कृतियों का गुणानुवाद किया है। उनकी उपलब्धियों के संबन्ध में यह सूचना का एक प्रधान साधन है। इस काल के भीतर मार्शल (४०-१०२ ई०) नामक काव्यकार का आविर्भाव हुआ। उसकी पंक्तियों में व्यंग एवं हास्य का पुट मिलता है। वह इस शैली का मर्मज्ञ था। जुवेनल (५०-१३० ई०) के काव्य में प्रधानतः रोम की समृद्धि तथा यहाँ के नागरिकों के विलासमय जीवन का चित्रण मिलता है। उसका सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ 'दी वैनीटी ऑफ़ ह्यूमन विशेज़' नामक है। इसमें शक्ति, सौंदर्य एवं समृद्धि के निमित्त मनुष्य की महत्वाकांक्षा का परिहास किया गया है। उसकी अन्य कृतियों में दीन व्यक्तियों की दयनीय दशा का करुण चित्रण मिलता है। ये ग्रंथ लैटिन भाषा में लिखे गये थे। इसके अतिरिक्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुछ ग्रंथों की रचना यूनानी भाषा में भी हुई। इस काल के यूनानी भाषा में लिखने वाले साहित्यकारों में प्लूटार्क (४६ ई०-१२० ई०) तथा लूसियन (१५० ई०-१८० ई०) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्लूटार्क के 'लाइव्ज़' नामक ग्रंथ का स्थान विश्व-साहित्य में महत्वपूर्ण है। उसने इस ग्रन्थ में यूनान तथा रोम के महापुरुषों की कृतियों का तुलनात्मक वर्णन किया है। लूसियन की शैली अपनी आलंकारिकता के लिये प्रसिद्ध है। इसकी कृतियों में मानव-जीवन की क्षणभंगुरता पर खेद प्रकट किया गया है तथा सच्चरित्र जीवन को महत्ता प्रदान की गई है। उसका सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ 'आक्शन ऑफ फिलासफर्स' नामक है। इसमें यूनानी दर्शन की प्रधान शाखाओं का मूल्याङ्कन मिलता है। हैड्रियन के समय में एथेंस में एक विश्वविद्यालय की स्थापना हुई, जिसमें यूनानी दर्शन एवं साहित्य की शिक्षा दी जाती थी। मार्कस आरेलियस इसे रोम-साम्राज्य का एक विशिष्ट बौद्धिक केन्द्र बनाना चाहता था। प्लेटो एवं अरस्तू के दार्शनिक सिद्धान्त तथा स्टोइक एवं एपिक्यूरियन दर्शन की शिक्षा के लिये उसने यहाँ पर आचार्यों की नियुक्ति की थी।

उत्तर कालीन रोम-साम्राज्य (२८४-४७६ ई०)—रोम साम्राज्य के इतिहास के अंतिम काल को उत्तर रोम साम्राज्य का काल कहा जाता है। इसकी अवधि २८४ ई० से लेकर ४७६ ई० तक मानी जाती है। २८४ ई० से लेकर ३३७ ई० तक के काल के बीच रोम-साम्राज्य का संचालन डिओक्लिशियन तथा कांस्टेन्टाइन महान् नामक सम्राटों के द्वारा किया गया। इनका काल साम्राज्य के पुनर्संगठन के लिये सुप्रसिद्ध है। ये दोनों सुयोग्य शासक थे। इन्होंने नवीन परिवर्तनों एवं सुधारों के द्वारा लड़खड़ाते हुये रोम-सामाज्य में शक्तिदान के निमित्त चेष्टा की। यही कारण है कि इनका राज्य-काल रोम के इतिहास में सीमा-चिह्न के समान प्रमुख माना जाता है।[१] आगस्टस-काल की भाँति यह काल भी गृह-युद्ध एवं ह्रास के उपरान्त शक्ति, समृद्धि तथा संगठन का सूत्रपात करने वाला स्वीकार किया जाता है। इस

---

१ "The period of Diocletian and Constantine is epochal in the history of the Roman Empire." —Trever.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काल के भीतर आन्तरिक अराजकता को दूर कर चिरस्थायिनी शान्ति तथा बाह्य आक्रमण से साम्राज्य की सुरक्षा के निमित्त पृष्ठभूमि प्रस्तुत करने के लिये स्तुत्य प्रयास किया गया।

डिओक्लिशियन (२८४-३०५ ई०)—वह एक परम अध्यवसायी तथा शासन-कार्यों में अभिरुचि रखने वाला व्यक्ति था। उसने अथक परिश्रम के कारण निम्न स्थिति से उठकर सम्राट्-पद को प्राप्त किया था। उसमें आगस्टस की भाँति शासन-संगठन की विलक्षण क्षमता वर्तमान थी। एक सैनिक पदाधिकारी रह चुकने के कारण वह अनुशासन का समर्थक था। उसने आगस्टस-कालीन वैधानिक शासन का अन्त कर एक स्वेच्छाचारी शासन को जन्म दिया, जिसका आदर्श पूर्वी निरंकुश शासन था। उसके शासन ने यह सिद्ध कर दिया कि वह पूर्वकालीन रोम सम्राटों की भाँति सेनेट के द्वारा नियुक्त इस संस्था का एक अनुचर नहीं था, अपितु वह साम्राज्य का एक ऐसा निरंकुश शासक था जिसे जनता ने समस्त अधिकार समर्पित कर दिया था।[१] पारसीक नरेशों की भाँति वह अपने दैवी अधिकारों का प्रतिपादन करने लगा। जिस समय वह जनता के समक्ष आता था, उस समय वह पूर्वी शासकों की भाँति बहुमूल्य आभूषण एवं वस्त्रादि से सुसज्जित रहता था। ऐसे अवसरों पर वह समस्त राजकीय चिन्हों को धारण किये रहता था। उसके दरबार का वातावरण पारसीक आदर्शों पर आधारित था। उसके समक्ष आने पर लोगों को फर्शी सलामी लेनी पड़ती थी। ईरानी सम्राटों की भाँति उसकी सेवा के निमित्त हिजड़े नियुक्त किये गये थे। अपने स्वेच्छाचारी शासन को सुदृढ़ करने के लिये उसने सम्राट्-पूजा की भावना का दूरतर प्रचार किया। आरेलियस की भाँति उसने एक शक्तिशाली राज्यधर्म के राजनीतिक लाभों की उपयोगिता का अनुभव किया। उसने जूपिटर कैपिटो-

१. "No longer was the doctrine advanced that the ruler was the mere agent of the senate and the people, he was now held to be absolutely soverign on the assumption that the people had surrendered all power to him." —Burns.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिनस को राज्यधर्म का केन्द्रविन्दु घोषित किया। इस घोषणा के अनुसार वह सर्वशक्तिमान् था तथा अन्य देवता उसके अधीनस्थ थे। उसकी इस भावना ने उसे बहुत से नवीन मतों के विरुद्ध कर दिया। उसने मनीच मतावलम्बियों को विधर्मी घोषित किया। ईसाइयों के दमन के लिये उसने कठोर नीति अपनाई। रोम की पुरानी विचारधारा के अनुसार उसका विश्वास था कि उसके साम्राज्य का स्थायित्व ईश्वरेच्छा पर निर्भर था। इसका अधःपतन रोम के प्राचीन देवताओं के कोप से ही सम्भव हो सकता था। अतएव अपने शासन की चिरन्तनता के लिये उन्हें प्रसन्न रखना आवश्यक था। इस विचार के कारण वह ईसाइयों के प्रति असहिष्णु हो गया।

विभिन्न भागों में कठोर नियंत्रण स्थापित करने के लिए उसने रोम साम्राज्य को चार प्रादेशिक भागों में विभक्त किया। पहले प्रदेश में थ्रेस, एशिया के प्रान्त तथा मिश्र सम्मिलित थे। इसकी राजधानी निकोमिडिया में स्थापित की गई। यहाँ पर डिओक्लिशियन स्वयं रहता था। दूसरे प्रदेश में इटली, अफ्रीका तथा स्पेन सम्मिलित थे। इसकी राजधानी मिलान में स्थापित की गई। यहाँ पर मैक्सिमियन नामक व्यक्ति उसका प्रतिनिधि नियुक्त किया गया। वह एक ऊँची योग्यता का कर्मचारी था। तीसरे प्रदेश में बाल्कन प्रायद्वीप तथा डैन्यूब नदी के पार्श्ववर्ती प्रान्त सम्मिलित थे। उसने यहाँ गैलेरियस नामक व्यक्ति को अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। इस प्रदेश की राजधानी सर्मियम में प्रतिष्ठित की गई। गैलेरियस को अपने साथ सर्वदा के लिये मिलाने के हेतु उसके साथ उसने अपनी पुत्री का विवाह-संबन्ध स्थापित किया। चौथे प्रदेश का प्रतिनिधि कांस्टैन्टियस था। इसकी राजधानी ट्रेव्स नामक नगर में स्थापित की गई। इसमें साम्राज्य के पश्चिमी प्रान्त सम्मिलित थे। वह एक महान् सेनानायक तथा निपुण कूटनीतिज्ञ था। रोम के स्थान पर इन चार नवीन राजधानियों की स्थापना के कारण इस नगर की महानता पर महान् कुठाराघात पहुँचा। इसकी समृद्धि विलीन होने लगी तथा पूर्वकालीन राजनीतिक प्रधानता समाप्त हो गई। वह अपने राज्यकाल के अंतिम वर्ष में जुबली समारोह के अवसर पर केवल एक बार रोम गया था। इस प्रकार के प्रादेशिक विभाजन के कारण साम्राज्य के प्रत्येक भाग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में शासन-सूत्र को सुदृढ़ किया गया। साम्राज्य का केन्द्रीय सूत्र डिग्रोक्लिशियन के हाथ में था। शासन-संबन्धी समस्त नीतियों एवं सुधारों की रूपरेखा वह स्वयं निर्धारित करता था। राजकीय कर्मचारियों के द्वारा वह प्रत्येक प्रान्त में अपना पर्यवेक्षण स्थापित रखता था। उसके समय में आंतरिक विद्रोह कुचल डाले गये। गृह-युद्ध पैदा करने वाली परिस्थितियों को समाप्त कर दिया गया। २९६ ई० में ऐचिलियस नामक व्यक्ति ने मिश्र में विद्रोह किया। उसने अपनी सत्ता को घोषित करने के निमित्त राजकीय उपाधि धारण की। डियोक्लिशियन ने इस विद्रोह का दमन किया। ऐचिलियस के समर्थकों को कड़ा दंड दिया गया।

उसने साम्राज्य को अधिक सुसंगठित करने के निमित्त सैनिक सुधार किये। उसने सैनिकों की संख्या बढ़ाकर ५० लाख कर दी। सेना को उसने ५० टुकड़ियों में विभाजित किया। प्रत्येक प्रान्त में कम से कम दो टुकड़ियाँ विद्यमान थीं। साम्राज्य की सीमाओं पर भी सेना की टुकड़ियाँ विभिन्न स्थानों पर नियुक्त की गईं। इस प्रकार की व्यवस्था के कारण बाहरी आक्रमण का भय समाप्त हो गया। सीमान्त प्रदेशों की दूरतर सुरक्षा के निमित्त उसने एक शक्तिशालिनी चल सेना नियुक्त की। इस सेना को 'कमिटाटेन्सेज़' कहते थे। जहाँ इसकी आवश्यकता पड़ती थी, वहाँ इसे शीघ्रता के साथ भेजा जाता था। आवश्यकता पड़ने पर साम्राज्य के प्रत्येक नागरिक के लिये सैनिक सेवा अनिवार्य थी। प्रान्तीय शासन को सुदृढ़ करने के लिये उसने नवीन कानून बनाये। प्रान्तीय कर्मचारियों के कार्यों की देख रेख के लिये उसने गुप्तचरों की नियुक्त की। उसने कई राजकीय भवनों का निर्माण किया। अपनी नवीन राजधानी निकोमिडिया से उसे विशेष प्रेम था। यहाँ पर उसने अपने लिये एक नवीन राजप्रासाद का निर्माण कराया। अपनी पत्नी एवं पुत्री के लिये भी उसने इस नगर में पृथक् प्रासादों का निर्माण किया। इस पुर को व्यायामशाला तथा स्नानगृह आदि विभिन्न प्रकार के निर्माणों से सुशोभित किया गया। उसने मिलान तथा कार्थेज आदि नगरों को भी भव्य रूप देने की चेष्टा की। उसने रोम के कुछ ध्वस्त भवनों का पुनरुद्धार किया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्य सुधार—उसने मुद्रा-नीति में सुधार किया। ३०१ ई० में उसने 'एडिक्ट ऑफ प्राइसेज़' नामक राजाज्ञा घोषित की। इसके अनुसार वस्तुओं का विक्रय-मूल्य निर्धारित कर दिया गया। निश्चित मूल्य से अधिक पर बेचने वाले व्यापारी को कठोर दंड दिया जाता था। उसने श्रमिकों का वेतन भी निश्चित कर दिया। राजकीय आय को बढ़ाने के लिये उसने करों की संख्या बढ़ा दी। कर केवल कृषक वर्ग तक ही सीमित नहीं था। व्यावसायिकों, दूकानदारों तथा सौदागरों के लिये कर-दान आवश्यक कर दिया गया। विशाल भूमिखंड के अधिपतियों के ऊपर एक विशेष कर लगाया गया, जिसे 'कोलैशियो ग्लेबैलिस' कहते थे। हर पाचवें वर्ष प्रत्येक नागरिक को सम्राट के लिये एक विशेष प्रकार की भेंट चढ़ानी पड़ती थी। उसने व्यवसाय को वंशानुगत घोषित किया। पुत्र को पिता के ही व्यवसाय का अवलंबन करना पड़ता था। डिओक्लिशियन के समस्त सुधार साम्राज्य-हित को दृष्टि में रखते हुये किये गये थे। उसकी दृष्टि में राज्यहित प्रधान था। इसकी समता में व्यक्तिगत हित नगण्य था। नागरिक राज्य के लिए था, न कि राज्य नागरिक के लिये। इसी कारण उसने क्रूरता के साथ अपनी नीतियों को कार्यान्वित किया। उसने कृषि-भूमि का एक नवीन लेखा प्रस्तुत कराया। भूमि की उपज के अनुसार उनका वर्गीकरण करते हुए कर निर्धारित किये गये। नवीन करों को वसूल करने के लिये कर्मचारियों ने जनता को सताया। उसके शासन की कोई आलोचना नहीं कर सकता था। उसके राज्यकालीन इतिहास के पृष्ठों में रक्तरंजन के उदाहरण मिलते हैं। उसकी यह नीति पूर्ण निरंकुशता के आदर्शों पर आधारित थी।

अवकाश-ग्रहण—३०३ ई० में उसके बीस वर्षीय शासन का जुबली समारोह रोम में मनाया गया। इस समय तक वह काफी वृद्ध एवं क्षीण हो चुका था। ३०४ ई० में बीमारी के कारण उसका शरीर जर्जरित हो उठा। इस कारण उसने ३०५ ई० में अवकाश ग्रहण किया। उसने ऐड्रियाटिक तट पर वर्तमान सलोना नामक स्थान पर पहले से ही एक प्रासाद का निर्माण कराया था। उसने अपने जीवन के शेष दिनों को यहीं व्यतीत किया। लगभग ११ वर्षों के शांतिमय जीवन के उपरांत ३१६ ई० में उसका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देहावसान इसी स्थान पर हुआ। डिओक्लिशियन की स्वेच्छाचारी नीतियों के कारण कुछ इतिहासकारों ने उसकी कटु आलोचना की है। पर इस आरोप के सत्य होने पर भी जिन विपरीत परिस्थितियों में उसने साम्राज्य को सुसंगठित किया, उसके लिये वह प्रशंसा का भागी है। इसमें कोई भी संदेह नहीं कि रोम-साम्राज्य की सुरक्षा के निमित्त उसने बहुमूल्य सेवायें कीं। उसके सुधारों ने इसे पुनरुज्जीवित करने में निश्चयात्मक रूप से महत्वपूर्ण योगदान किया था।

कांस्टैन्टाइन महान् (३०५ ई०—३३७ ई०)—डिओक्लिशियन की मृत्यु के अनन्तर एक उत्तराधिकार-संबन्धी गृह-युद्ध छिड़ा। इसका कारण यह था कि उसने अपने उत्तराधिकार की जो व्यवस्था निर्धारित की थी, वह असफल सिद्ध हुई। इस गृह-युद्ध में कांस्टैन्टाइन अन्ततोगत्वा सफलीभूत हुआ। वह कांस्टैन्टियस का पुत्र था। इतिहास में वह कांस्टैन्टाइन महान् के नाम से प्रसिद्ध है। कुछ इतिहासकारों ने उसकी गणना विश्व के युगान्तरकारी. महापुरुषों में की है। सिकन्दर के तुल्य उसने भी इतिहास के पृष्ठों में एक नये काल का प्रवर्तन किया। इसका पिता कांस्टैन्टियस प्रारंभ में एक सिपाही था। उसकी हेलेना नामक रखेलिन के गर्भ से कांस्टैन्टाइन का जन्म २७० ई० में आधुनिक युगोस्लाविया में स्थित निशा नामक स्थान में हुआ था। उस समय इसके साधारण स्थिति वाले पिता को क्या विदित था कि उसका पुत्र विश्व का इतना महान् पुरुष होने वाला था। क्रमशः जब उसके पिता की पदोन्नतियाँ हुई उस समय उसने इसकी माता को छोड़ दिया और थिओडोरा नामक एक महिला से अपना नवीन विवाह किया। अपनी सौतेली माता के दुर्व्यवहारों का उसके विचारों के ऊपर दुष्परिणाम पहुँचा। पिता की उपेक्षा के कारण उसकी शिक्षा साधारण कोटि की ही हो सकी थी। यही कारण है कि यद्यपि वह दृढ़ संकल्प एवं महान् शक्तियों वाला व्यक्ति था, तथापि उसका भाषा एवं साहित्य-ज्ञान अत्यल्प था। वह यूनानी भाषा बड़ी कठिनता के साथ बोल पाता था। जब उसे डिओक्लिशियन के दरबार में प्रवेश मिला, उस समय प्रारम्भ में वह काफी दबा कर रखा गया। उसने बड़ी कठिनाइयों में अपना मार्ग तैयार किया था। उसके जीवन-चरित पर दृष्टिपात करते हुये

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुछ लोगों ने उसे राज्य के अपहारक की संज्ञा प्रदान की है।

पूर्वी निरंकुशता—उसने डिओक्लिशियन के द्वारा चलाई हुई पूर्वी निरंकुशता की नीति का पूर्ण रूप से अवलंबन किया। उसके दरबार का शिष्टाचार पूर्वी आदर्शों पर आधारित था। सम्राट को सबसे श्रेष्ठ मानना, उसके समक्ष नतमस्तक होना तथा उसका अन्ध अनुकरण करना जनता का पुनीत कर्तव्य समझा गया। रोम साम्राज्य में प्रविष्ट पूर्वी भावनाओं को इतिहासकारों ने 'बाइज़ेंटियम' की संज्ञा दी है। आगस्टस-कालीन सेनेट के अधिकार समाप्त कर दिये गये। उसकी विशेष सुविधायें छीन ली गईं। 'मजिस्ट्रेट' की नियुक्ति अब चुनाव के द्वारा नहीं होती थी। उन्हें अब सम्राट के अनुग्रह पर निर्भर रहना पड़ता था तथा उनका कार्य चाटुकार दरबारी के तुल्य हो गया। सभी उच्च पदाधिकारी सम्राट के द्वारा मनोनीत किये जाते थे। उसने दीवानी तथा सैनिक शासन को पूर्णतया पृथक कर दिया। प्रान्तों में प्रिफेक्ट सर्वोच्च दीवानी कर्मचारी था। सैनिक अधिकारों को प्रिफेक्ट के हाथ से छीन लिये गये। इसका परिणाम यह हुआ कि वह सैनिक बल पर प्रान्तों में सम्राट के विरुद्ध विद्रोह नहीं कर सकता था। प्रान्तीय कर्मचारियों को वह अपनी इच्छा के अनुसार पदच्युत कर सकता था।

उसने डिओक्लिशियन के राजनीतिक सुधारों को जारी रखा। डिओक्लिशियन के समय में किये गये हुये साम्राज्य के चार भागों में विभाजन को उसने कायम रखा। प्रान्तीय शासन पर अपना कठोर नियंत्रण और अधिक बढ़ाने के लिये उसने केन्द्रीय विभागों एवं कर्मचारियों के अधिकार को बढ़ा दिया। उसने रोम की प्राचीन उपाधियों एवं राजकीय चिन्हों को, जो मिथ्र धर्म से संबन्धित थे, छोड़ दिया एवं उनके स्थान पर ईसाई उपाधियों एवं प्रतीकों को अपना लिया। उसके चित्रों में ईसाई सन्तों के प्रभामंडल को दिखाया जाता था।

उसने क्वेस्टर नामक कर्मचारी के अधिकारों को सबसे अधिक बढ़ा दिया। वह सम्राट का परम भक्त आज्ञापालक पदाधिकारी था। वह राजकीय आज्ञा एवं कानून की घोषणा करता था। ईरानी दरबार के तुल्य सुन्दरियों एवं हिजड़ों का प्रभाव बढ़ने लगा। राजमहल के षड्यन्त्र तथा राजनीतिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
दाँवपेंच में वे भाग लेने लगे। गुप्तचर चतुर्दिक नियुक्त किये गये। साधारण सुबहे पर लोगों को कड़ी कैद की सजा और यहाँ तक कि मृत्युदण्ड भी दिया जाने लगा। उत्तराधिकार के लिये अपने पुत्रों के संभावित प्रतिस्पर्द्धियों को वह मरवा डालता था। सासामनीष प्रथा की भाँति सेवकों की संख्या बढ़ा दी गई। नाई, रसोइये, साईस एवं परिचारिकाओं आदि पर खर्चा बढ़ा दिया गया।

अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिये नैतिकता के सिद्धान्तों को भूल जाना तथा भीषण रक्तपात उसके लिये बड़ी साधारण सी बात थी। उसने अपने श्वसुर मैक्सिमिअन को आत्महत्या के लिये बाध्य किया था। उसने अपने बहनोई लिसिनस को मरवा डाला था, यद्यपि इसके पहले उसे क्षमा प्रदान करने की प्रतिज्ञा वह कर चुका था। यहाँ तक कि अपनी पत्नी फास्ता एवं पुत्र क्रिसिपस को प्राणदंड देने में उसका हृदय द्रवीभूत नहीं हो सका था। उसका दृष्टिकोण डिओक्लिशियन से एक दृष्टि से विभिन्न भी था। डिओक्लिशियन मूलतया रूढ़िवादी था। वह प्राचीन प्रथाओं को अधिकांश रूप में स्थापित करने की चेष्टा करता था, पर कांस्टैन्टाइन परिवर्तनों के पक्ष में था। समय एवं आवश्यकता के अनुसार वह पुरानी राजनीतिक एवं सामाजिक संस्थाओं को विना किसी हिचक के ठुकराने को प्रस्तुत था।

सैनिक सुधार—उसने अपने सैनिक शासन को अधिक सुदृढ़ किया। वह इस बात को भली भाँति जानता था कि विना सेना के बल पर उसकी निरंकुशता का पनपना असंभव है। उसने सैनिकों की संख्या वही रखी, जो कि डिओक्लिशियन के काल में थी। उसने एक केन्द्रीय सेना नियुक्त की, जिसमें साम्राज्य के चुने सैनिक सम्मिलित थे। इस सेना को उच्च कोटि की शिक्षा तथा अभ्यास का अवसर दिया गया। युद्धों में बहुधा यही सेना भेजी जाती थी। उसने अश्वारोहिणी सेना को मजबूत किया। इसमें जर्मन, सर्मेटियन, इलीरियन तथा विभिन्न जातियों के सैनिक सम्मिलित थे। अश्वारोहिणी सेना पदाति सेना से पूर्णतया पृथक कर दी गई। यह अश्वसेना उसकी पैदल सेना से निश्चयात्मक रूप के बढ़कर थी। कांस्टैन्टाइन बर्बर जातियों के लोगों को भी सेना में रखने के पक्ष में था। उसका विचार था

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
कि इससे सेना और अधिक शक्तिशालिनी होती है। दूर की लड़ाइयों में समय पर सैनिक सहायता पहुँचाने के लिये उसने एक अलग सेना नियुक्त की। डिओक्लिशियन के काल की चल सेना को इसने कायम रखा। इस समय सीमान्त प्रदेशों में कई स्थानों पर सुरक्षा के निमित्त लघु सेनायें रखी गईं। सैनिक बल पर उसने विरोधी प्रवृत्तियों का दमन किया। इस समय कई महत्वपूर्ण विजयें भी की गईं। उदाहरणार्थ ३२८ ई० में उसने राइन नदी के तट पर अलमनी लोगों को परास्त किया। ३३२ ई० में उसके पुत्रों ने गोथ जाति को परास्त किया। उसने अपने इक्कीस वर्षीय शासन में साम्राज्य की सैनिक मर्यादा का प्रचुर विस्तार किया।

अन्य सुधार—कांस्टैन्टाइन ने साम्राज्य की मुद्रा-नीति पर कठोर नियंत्रण स्थापित किया। उसने सम्पूर्ण प्रान्तों में अपनी नवीन मुद्राओं को प्रचलित कर साम्राज्य में आर्थिक एकता स्थापित की। उसकी सुवर्ण (सोलिडियस) तथा रजत मुद्रायें (सिलिका) शुद्ध बनावट के लिये प्रसिद्ध थीं। ये मुद्रायें व्यापार-सम्बन्ध में फारस तक प्रचलित थीं। उसके सैनिक सुधारों तथा पूर्वी आदर्शों पर दरबार की तड़क-भड़क को स्थापित करने की आवश्यकता के कारण राजकीय व्यय अधिक बढ़ गया। इसकी पूर्ति के निमित्त उसने करों को बढ़ा दिया। अभिजात वर्ग के लोगों से उनकी आय के अनुसार 'कोलैशियो ग्लेबेलिस' नामक वार्षिक कर वसूल किया गया। व्यापारियों के ऊपर सामयिक कर लगाये गये। उसने नागरिकों की स्वातन्त्र्य-भावना को समाप्त कर दिया। कृषकों को विविध प्रकार के कर देने पड़ते थे। उन्हें एक ही क्षेत्र में बँधकर खेती करनी पड़ती थी। अपनी इच्छा के अनुसार वे एक भाग से दूसरे भाग में कृषि करने के निमित्त नहीं जा सकते थे। उसके द्वारा किये हुये परिवर्तनों के कारण श्रमिक भूमिपतियों के दास बन गये। कुलीनों की समता में गरीब जनता को कर अधिक देना पड़ता था। इस प्रकार यद्यपि कांस्टैन्टाइन के काल में बाह्य आक्रमण तथा आंतरिक कलह की संभावनाओं को दूर कर साम्राज्य की सुरक्षा की व्यवस्था की गई, तथापि प्रजा को सुख नहीं मिला। उसे राज्य की दासता की बेड़ियों में जकड़ दिया गया। इससे लोग निराश एवं निरुत्साहित हो गये। कर्मचारी इनको सताते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसीलिये आलोचकों का कहना है कि इस सम्राट् का शासन क्रूर पूर्वी निरंकुशता का प्रतिनिधित्व करता है।

धार्मिक नीति—उसने ईसाई धर्म को राजकीय धर्म घोषित किया। यह उसका सबसे बड़ा क्रांतिकारी परिवर्तन था। उसने अपनी राजधानी को वर्जिन मेरी को समर्पित किया। यह नगर स्थापना-काल से ही ईसाई नगर था। उसने राज्य की ओर से प्राचीन देवताओं की प्रतिमाओं की स्थापना तथा उनकी पूजा से सम्बन्धित अनुष्ठान आदि रोक दिये। नागरिकों के ऊपर भी इस विषय में नियंत्रण लगा दिया गया। ईसाई मतावलम्बियों को विशेष सुविधायें दी जाने लगीं। उनके लिये अविवाहित अवस्था तथा सन्तानहीनता दंडनीय नहीं थी। वह उनकी धार्मिक सभाओं में अध्यक्षता का कार्य भी करने लगा। इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि गरीब जनता इस धर्म को अपनाने लगी। कतिपय इतिहासकारों का कथन है कि उसने राजनीतिक कारणों से ईसाई धर्म को अपनाया था। वह इस क्रिया के द्वारा साम्राज्य के प्रति ईसाई मतावलम्बियों की सहायता एवं सहानुभूति को प्राप्त करना चाहता था। रविवार को छुट्टी दी जाने लगी। वह गिरजाघरों को प्रचुर दान देता था। रोम में उसने लैटरन राजप्रासाद को पोप को दे दिया था। कई शताब्दियों तक यह उनका निवासगृह था। नये गिरजाघरों की स्थापना की गई। पुराने गिरजाघरों का जीर्णोद्धार किया गया। उसने संत पीटर तथा संत पाल की पुण्य स्मृति में दो गिरजाघरों की स्थापना कराई। उसकी माता हेलेना का भी झुकाव ईसाई धर्म की ओर विशेष रूप से था। उसने पैलेस्तीन की धार्मिक यात्रा की थी। उसने जेरुस्लम तथा बेथलेहेम में गिरजाघरों का निर्माण कराया। कांस्टैन्टाइन के द्वारा अपनी राजधानी में स्थापित गिरजाघरों में दो विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं:—(१) बारह देवदूतों का गिरजाघर (चर्च ऑफ़ दी ट्वेल्व एपास्टिल्स—इसमें कांस्टैन्टाइन का शव दफनाया गया था) तथा (२) चर्च ऑफ़ होली विज़डम। वह गिरजाघरों के झगड़ों का निर्णय करता था। कभी कभी इस उद्देश्य से वह बिशपों की सभाओं को भी आयोजित करता था। ३२५ ई० में निकाइया की धार्मिक सभा में, जिसमें तीन सौ बिशपों ने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भाग लिया था, उसने अध्यक्षता की थी तथा इसके निर्णय को कार्यान्वित करने की चेष्टा भी की थी। वह गिरजाघरों में संगठन तथा एकता का पक्षपाती था। इसके लिये वह शक्ति के प्रयोग के लिये भी प्रस्तुत था। पूर्वी चर्च के लोग उसकी गणना देवदूत के रूप में करते थे।

कांस्टैन्टिनोपुल की स्थापना—इस नरेश की महत्वपूर्ण कृतियों में कांस्टैन्टिनोपुल की स्थापना उल्लेखनीय है। इस स्थान पर पहले बाइज़ेंटियम का नगर वर्तमान था। वह रोम की राजनीतिक प्रधानता को दूर करने के हेतु साम्राज्य के पूर्वी भाग में अपनी नवीन राजधानी स्थापित करना चाहता था। इस योजना की पूर्ति के निमित्त उसने इस नगर की नींव डाली तथा यहाँ पर रोम से राजधानी को स्थानांतरित किया। इस नगर की भौगोलिक स्थिति इसके सर्वाङ्गीण विकास के लिये पूर्णतया अनुकूल थी। यहाँ पर वह रोम की प्राचीन परंपराओं से दूर होकर पूर्वी आदर्शों के अनुसार भली भाँति शासन करना चाहता था। राजधानी के इस परिवर्तन ने पश्चिमी साम्राज्य तथा रोम नगर के वैभव का ह्रास अवश्यम्भावी कर दिया।[१] यह नगर प्राकृतिक साधनों के द्वारा बाह्य आक्रमणों से सुरक्षित था। यह तीन ओर जल के द्वारा परिवेष्टित था। इससे व्यापार के लिये बहुत बड़ी सुविधा थी। कुछ इतिहासकारों के अनुसार जिस स्थान पर यह नगर बसाया गया, वह यूरोप में सबसे रमणीक स्थान था। शत्रुओं के लिये यह एक दुर्गम प्रदेश सिद्ध हुआ। कई शताब्दियों तक बाह्य आक्रमणकारी इसे जीतने में असफल सिद्ध हुये। १४५३ ई० में यह पहली बार तुर्कों के द्वारा जीता गया। यूरोप, पश्चिमी एशिया तथा सुदूर पूर्व के व्यापारिक मार्ग इस नगर से होकर जाते थे। गिबन के शब्दों में यहाँ सुरक्षा, ऐश्वर्य तथा सौंदर्य एक स्थान पर केन्द्रित थे। उसने यहाँ पर सेनेट-भवन तथा विभिन्न राजकीय एवं सार्वजनिक गृह बनवाये। भाषा, सभ्यता एवं रीति प्रथाओं की दृष्टि से यह नगर बहुत कुछ

१. "Thus the founding of Constantinople sealed the doom of Rome and the Western Mediterranean lands of the empire"

—Breasted.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यूनानी था। उसने इस नगर को कलात्मक वस्तुओं से सुशोभित करने की चेष्टा की। इसे सजाने के निमित्त एशिया माइनर तथा यूनान से चित्र एवं मूर्तियाँ लाई गईं। यहाँ पर बाहर से लाई हुई मूर्तियों में फिडियस के द्वारा निर्मित ज़ियस, लिंडोस की एथेना देवी तथा लिसिपस के द्वारा निर्मित हेलन की मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं। यूनान के मन्दिरों से संगमरमर निकाल कर इस नगर के भवनों को अलंकृत करने के लिये लाये गये। यहाँ के भवनों में कांस्टैन्टाइन का राजमहल सबसे अधिक सुन्दर था। यह लगभग १५० एकड़ की भूमि में बना हुआ था। इसमें गिरिजाघरों का भी निर्माण किया गया। यह नगर सात पहाड़ियों पर बना हुआ था तथा इसके चौदह बड़े भाग थे। कांस्टैन्टाइन इसे नया रोम कहता था। स्थापना-काल के पश्चात् एक हजार वर्षों तक यह यूरोप की सभ्यता का एक विशिष्ट केन्द्र था। कुछ विद्वानों ने पाश्चात्य विश्व के इतिहास को प्रभावित करने वाले प्राचीन विशिष्ट नगरों में जेरुस्लम, एथेन्स एवं रोम के अनन्तर इसी पुर को स्थान प्रदान किया है। इस नगर का उत्तरकालीन इतिहास भी महत्वपूर्ण है। यहाँ पर १४५३ ई० तक बाइज़ेन्टाइन साम्राज्य की राजधानी तथा १६१८ ई० तक तुर्क-साम्राज्य की राजधानी वर्तमान थी। ट्रेवर के शब्दों में विश्व के कम ही नगर मानव सभ्यता के इतिहास में इतना अधिक महत्व रखते हैं।

कांस्टैन्टाइन का राज्य-काल ३३७ ई० में समाप्त हुआ। ३३७ ई० से लेकर ४७६ ई० तक रोम-साम्राज्य में कई नरेशों ने राज्य किया। इनमें जूलियन (३६०-३६३ ई०) तथा थिओडिसियस प्रथम (३७८-३६५ ई०) उल्लेखनीय हैं। इस काल का अंतिम नरेश रोमलस आगस्टलस था। वह ४७६ ई० में पदच्युत किया गया। सांस्कृतिक दृष्टि से इस काल का कोई भी महत्व नहीं है। निरंकुश शासन की स्थापना के कारण इस समय साम्राज्य की रचनात्मक प्रतिभा नष्ट हो गई। इस काल में किसी श्रेष्ठ ग्रंथ का सम्पादन अथवा कोई उल्लेखनीय विकास हमें दृष्टिगोचर नहीं होता।

रोम-साम्राज्य के दर्शन एवं धर्म

दर्शन—यहाँ पर उल्लेखनीय हो जाता है कि रोम में किसी स्वतंत्र दर्शन का उद्गम नहीं हुआ। वहाँ के विचारकों ने अधिकतर यूनानी तथा हेले-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निस्टिक दार्शनिकों के सिद्धान्तों का लैटिन भाषा में विवेचन तथा इसके माध्यम से उनका प्रचार किया। इन दार्शनिक विचारधाराओं में कुछ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं :—(१) निओ पाइथागोरियन मत, (२) एपिक्यूरियन मत, (३) निओप्लेटोनिक मत तथा (४) स्टोइक मत।

निओ पाइथागोरियन मत—यह दर्शन यूनानी एवं पूर्वी विचारों के सम्मिश्रण से निकला था। इसके अनुसार विश्व पदार्थ एवं तत्त्व में बटा हुआ है। संसार में जीवन एवं मरण का चक्र एक शाश्वत घटना है। आत्मा एवं परमात्मा चिरन्तन सत्य हैं। इन दोनों के बीच दो प्रकार की योनियाँ होती हैं—देव एवं पिशाच। पिशाच-योनियाँ मनुष्य को पीड़ा पहुँचाती हैं तथा देव-योनियाँ उसे बुद्धि एवं विवेक प्रदान करती हैं। इस विचारधारा के पोषक साधु-जीवन, शकुन, अपशकुन तथा चमत्कार आदि में विश्वास करते थे। सिसरो के ऊपर पोसीडोनियस के प्रभाव के कारण इसका प्रथम प्रवेश रोम में संभव हुआ। इस दर्शन के अनुयायी रोम-साम्राज्य के ग्रामों एवं नगरों में घूम कर इसका प्रचार करते थे। रोम के दार्शनिक भी इस विचारधारा से प्रभावित थे।

एपिक्यूरियन मत—रोम में इसका सबसे प्रमुख उन्नायक ल्यूक्रिटस नामक व्यक्ति था। उसने सामाजिक उत्थान के सिद्धान्त का विस्तार किया। इसके अनुयायियों का भाई चारे में विश्वास था तथा ये कोई ऐसा कार्य नहीं करते थे, जिससे दूसरों के मन की शान्ति भंग हो। अन्य व्यक्तियों के कार्य में हस्तक्षेप से वे दूर रहते थे। कुछ धनिक व्यक्तियों ने, जो राजनीति के पचड़े से अलग रहना चाहते थे, इस दर्शन को अपना लिया।

निओप्लेटोनिक मत—इसके अनुसार उच्चतम ज्ञान तर्क के द्वारा अग्राह्य है। इसका जन्मदाता ऐमोनियस सैकास (२४० ई०) सिकन्दरिया में जहाज पर कार्य करता था। इसका प्रमुख उन्नायक प्लोटिनस (२०५ ई०-२७० ई०) मिश्र का निवासी था। पर वह कालान्तर में रोम आकर वहाँ रहने लगा। यह दर्शन प्लेटो एवं अरस्तू की विचार-परम्परा एवं पूर्वी विचार-धाराओं के संपर्क का परिणाम था। इसके अनुसार धार्मिक विश्वास धर्म तथा अविश्वास पाप-तुल्य है। ईश्वर की सत्ता को सिद्ध करना वाणी एवं लेखनी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दोनों से ही असंभव है। वह अनुभूतियों के द्वारा प्राप्य है।

स्टोइक मत—प्रारंभ में रोम में इसका विरोध हुआ। पर साम्राज्यकाल में इसे राजकीय संरक्षण उपलब्ध हुआ और परिणामतः प्रथम शताब्दी के अन्त तक इसका प्रचार रोम में पर्याप्त अंशों में हुआ। इस समय यह रोम के नागरिकों का न केवल दर्शन अपितु धर्म भी था। सम्राटों में सर्वप्रथम मार्कस आरिलियस ने इसे प्रोत्साहन प्रदान किया। सेनेका इस दर्शन का पुजारी था। उसने स्टोइक सिद्धान्त का समर्थन किया कि मनुष्य को प्रकृति से दूर रहने की चेष्टा नहीं करनी चाहिये। वह भवनों में संगमरमर के प्रयोग का विरोधी था। उसके अनुसार अधिक आरामदेह तकिया का प्रयोग लज्जाजनक था। सूर्य की किरणों से सिर का बचाव करना कायरता का लक्षण है। गर्मियों में घर को ठंढा रखना तथा जाड़े में उसे गरम रखना प्राकृतिक नियमों की अवहेलना करना है। एपिक्टेटस ने इस दर्शन का प्रचार रोम में किया था। उसके शिष्यों ने उसकी शिक्षाओं को पुस्तकाकार किया था। इस ग्रंथ का प्रभाव ईसाइयों के ऊपर भी पड़ा था। रोमन स्टोइक मत के अनुसार विश्व प्राकृतिक नियमों के द्वारा संचालित है। ईश्वर विश्व का नियामक एवं पोषक है। संयम, गंभीरता, विवेक, उत्साह एवं न्याय आदि सद्गुणों का जागृत करना मानव धर्म है। सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिये आर्थिक स्वतंत्रता आवश्यक है। कृषक एवं शिक्षक का कार्य सर्वोत्तम जीविका है। सरल ग्रामीण जीवन आडंबरपूर्ण नागरिक जीवन से कहीं अधिक श्रेयस्कर है। बालक, अनाथ, लूले, लँगड़े, दास एवं वृद्ध के प्रति दया एवं उदारता दिखानी चाहिये। शिक्षा का उद्देश्य स्वार्थ का परित्याग तथा बन्धुत्व का भावना का सृजन है। अनावश्यक द्वेष का तिरस्कार शान्ति एवं सुख की जड़ है।

धर्म—रोम-साम्राज्य एक ऐसा विशाल भूखंड था, जिसमें विविध भाषा-भाषी एवं नाना जातियों के लोग रहते थे। सामान्य विशेषता केवल एक ही थी—वह थी रोम के प्रति राज्यभक्ति। उल्लेखनीय बात यह है कि इतने विशाल साम्राज्य में राष्ट्र तथा जाति के प्रश्न को लेकर कोई भी झगड़ा नहीं था। अमुक देश केवल अमुक जाति के लिये ही है, ऐसा कोई भी विवाद उस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समय नहीं था। इसी प्रकार भाषा के प्रश्न को भी लेकर कोई संघर्ष नहीं था। पश्चिमी साम्राज्य की भाषा लैटिन तथा पूर्वी साम्राज्य की भाषा ग्रीक थी। इसी प्रकार प्रारंभ में धार्मिक झगड़े के प्रमाण भी वहाँ नहीं दृष्टिगोचर होते। कुछ सामान्य बातों में प्राय: सभी विश्वास करते थे; उदाहरणार्थ विश्व का कल्याण देवताओं की कृपा के द्वारा ही संभव है। रोम-गणतंत्र का विनाश उनके अभिशाप के फलस्वरूप हुआ तथा आगस्टस के साम्राज्य की स्थापना उसके वरदान के कारण हुई। सम्राट की पूजा होती थी। इससे साम्राज्य का लाभ था। जनता की राजभक्ति इससे स्वाभाविक रूप में उपलब्ध हो जाती थी। जूपिटर तथा मार्स प्रधान देवता थे। उनके मन्दिर भी उस समय मौजूद थे। उनके पुजारियों को राज्य की ओर से प्रचुर सुविधायें उपलब्ध थीं। ज्योतिष में भी लोग विश्वास करते थे। फर्मिकस मैटर्नस ने लिखा है कि यह 'देव विद्या' है। टालमी ने भी अपने विवरण में मनुष्य के जीवन पर नक्षत्रों के प्रभाव को स्वीकार किया है; उदाहरणार्थ सूर्य का प्रभाव मस्तिष्क, नेत्र, हृदय एवं स्नायुओं पर; मार्स का प्रभाव कान, गुर्दे तथा शिराओं पर; चन्द्र का प्रभाव जिह्वा, उदर एवं स्त्री-प्रजननेन्द्रिय पर; जूपिटर का प्रभाव फेफड़े एवं पुरुषेन्द्रिय पर।

लोगों के धार्मिक जीवन में अन्धविश्वास और रूपों में भी अधिक था। लोग जादू मन्त्र के द्वारा रोगों का निदान करते थे। डिओस्कोराइड्स ने नग एवं मणियों के निदान-शक्ति का उल्लेख किया है। साँप काटे मनुष्य का उपचार लोग अनुष्ठानों के द्वारा करते थे। अरिस्टाइड्स ने इसका वर्णन किया है। वह कहता था कि मनुष्य का स्वास्थ्य नक्षत्रों एवं उसके शरीर की अनुरूपता से संबन्धित हुआ करता है। पुजारी झाड़ फूँक के द्वारा काफी आमदनी किया करते थे। जूलियस सीजर प्रस्थान के समय तीन बार मंत्रविशेष का उच्चारण करता था। द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व से रोमवासियों के इस धार्मिक जीवन में परिवर्तन होने लगे। पूर्वी देशों, मिश्र, पैलेस्तीन तथा ईरान आदि के धर्मों ने रोम में प्रवेश किया। इन धर्मों का विवरण कुछ निम्न ढंग से किया जा सकता है :—

आइसिस की पूजा—इस मातृदेवी की पूजा रोम में १०० ई० पू० में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिश्र से आई थी। इसका प्रचार विशेषतः महिलाओं में हुआ। सुख दुख को इसके वरदान एवं अभिशाप से संबन्धित किया गया। डोमिशियन के समय में इस देवी की पूजा काफी लोकप्रिय थी। रोम की मुद्राओं के ऊपर भी इस देवी की आकृति उत्कीर्ण मिलती है।

सरपिस-पूजा—इसका भी प्रचार रोम में लगभग प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व में ही हुआ था। जिस समय क्लिओपात्रा रोम पहुँची, जूलियस सीजर ने इसे सहिष्णुता प्रदान की थी। कालिगुला के समय में इसकी आराधना के लिये पूजा एवं अनुष्ठान आदि होते थे।

यहूदी धर्म—यहूदी रोम में सबसे पहले द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व में आये। पर इस समय वे यहाँ से भगा दिये गये थे। उनका यहाँ आना शीघ्र ही पुनः प्रारंभ हो गया। जूलियस सीज़र के समय में वे यहाँ बहुसंख्या में वर्तमान थे। ईसा की प्रथम शताब्दी में रोम-साम्राज्य के प्रत्येक प्रमुख नगर में उनकी सामूहिक पूजा हुआ करती थी। इस धर्म के एकेश्वरवाद का लोगों ने स्वागत किया। रोम के कुछ विशिष्ट लोग इस धर्म में अभिरुचि रखते थे। कतिपय लेखकों के अनुसार नीरो तथा उसकी प्रेयसी पोप्पिया भी इस धर्म के प्रति श्रद्धा रखती थी।

मिथ्र धर्म—इसकी गणना जरथुस्ट्र धर्म के एक महत्त्वपूर्ण शाखा के रूप में की जाती है। रोम-साम्राज्य में इस धर्म का व्यापक प्रचार कई कारणों से संपन्न हो सका था। रोम के सिपाहियों का पश्चिमी एशिया में इस धर्म के साथ परिचय हुआ। वे इससे प्रभावित हुए और अपने साथ इसे रोम ले आये। रोम-सेना के एशियाई सैनिकों में अधिकांश इस धर्म को मानने वाले थे। इनके माध्यम से इसका प्रचार रोम में संभव हुआ। एशिया माइनर से, जो इस धर्म का एक विशिष्ट केन्द्र था, दास पकड़ कर रोम लाये गये। ये कुलीनों एवं धनी-मानी व्यक्तियों के घर में गृहदास के रूप में कार्य करते थे। मिथ्र धर्म को इनके द्वारा रोम में पहुँचने का एक साधन उपलब्ध हो गया। यही कार्य साइलेसियन डाकुओं के द्वारा भी संपन्न किया गया, जो पाम्पी के समय में पकड़ कर रोम लाये गये थे। पूर्वी देशों के व्यापारियों के माध्यम से भी इस धर्म का रोम में प्रचार हुआ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रोम के लोगों को यह धर्म अच्छा लगा। मिथ्र देवता रक्षक तथा प्रकाश का दाता था। अंधकार एवं बुराइयों (चाहे वे शारीरिक हों या नैतिक) के विरुद्ध लड़ने की उसमें विलक्षण शक्ति होती है, ऐसा समझा जाता था। अतएव विशेष रूप से रोम के सेनानायकों एवं वीरवर सैनिकों ने इसे अपना लिया। रोम-साम्राज्य के विभिन्न भागों में यह शीघ्रतापूर्वक फैलने लगा। फ्रांस, स्पेन, इंगलैंड, यूनान, उत्तरी अफ्रीका का समुद्र-तटीय भाग एवं डैन्यूब घाटी के चतुर्दिक यह पर्याप्त रूप में ग्रहण कर लिया गया। यही कारण है कि जहाँ कहीं भी रोम का अधिकार था, वहाँ इस देवता के स्मारक मौजूद थे। यह ईसाई धर्म का सबल प्रतिद्वन्द्वी सिद्ध हुआ था। उगते हुये सिथ पके गेहूँ की बाल, सूर्य एवं वृषभ इस धर्म के प्रतीक माने जाते थे। पौधे, के अधिकांश स्मारकों में इस देवता के द्वारा वृषभ-हनन् दृश्य प्रदर्शित किया गया है। अवेस्ता में वर्णन मिलता है कि अहुरमज़्द ने वृषभ की सृष्टि की, जिसकी मृत्यु के फलस्वरूप पशुओं एवं वनस्पतियों का जन्म हुआ। लगता है कि वृषभ-हनन् दृश्य के द्वारा इस देवता को सृष्टि के रचयिता के रूप में अंकित किया गया है। रोम में मिथ्र-पूजा के प्रचार की लोकप्रियता का अनुमान हम इससे लगा सकते हैं कि वहाँ से इस देवता से संबन्धित पचहत्तर मूर्तियाँ तथा लगभग एक सौ उत्कीर्ण लेख उपलब्ध हुए हैं।

यहाँ पर उल्लेखनीय है कि जरथुस्ट्र धर्म की काफी प्रथायें मिथ्र धर्म में प्राप्य थीं—(१) मिथ्र धर्म के अनुयायी भी अग्नि को पवित्र मानते थे और इसे बराबर जलाते थे। मंत्र पढ़ने वाला व्यक्ति सूर्याभिमुख हुआ करता था। रात्रि में वह जलते हुये प्रकाश की ओर देखता रहता था। (२) मिथ्र-धर्मानुयायी भी आत्मा की अमरता में विश्वास करते थे। वे इस बात को स्वीकार करते थे कि मनुष्य के अच्छे-बुरे कार्यों का प्रभाव उसके लोकोत्तर जीवन में अवश्य पड़ता है। अतएव आचरण की पवित्रता तथा मन एवं वाणी की शुद्धता अनिवार्य है। भक्ति, सच्चाई, सच्चरित्र जीवन तथा बन्धुत्व की भावना को इस धर्म में महत्व प्रदान किया गया। (३) मिथ्र धर्म ने भी सर्वशक्तिमान् देवता का सन्देश दिया। रोम में एकेश्वरवाद के प्रचार का इसे बहुत कुछ श्रेय था। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि पाश्चात्य सभ्यताओं में मिथ्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्म की कतिपय परंपरायें अब भी विद्यमान हैं; उदाहरणार्थ नक्षत्रों के नाम पर दिन का नाम रखना तथा २५ दिसम्बर को रक्षक-देवता की जन्म-तिथि स्वीकार करना।

ग्नास्टिक धर्म—यह धर्म उस समय की नाना धार्मिक एवं दार्शनिक विचारधाराओं के सम्मिश्रण से निकला था। इसकी कई शाखायें एवं उप-शाखायें विद्यमान थीं, जिनमें लगभग तीस के नाम ज्ञात हैं। इस धर्म का उद्गम द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व में हुआ। द्वितीय शताब्दी ईसवी में यह काफी विकास पर था। इसका सबसे प्रधान केन्द्र पूर्वी भूमध्य सागरीय क्षेत्र था, जहाँ पश्चिमी एवं पूर्वी धर्मों तथा विचारों का संघर्ष विशेष रूप से हो सका था। इसके प्रवर्तकों का यह दावा था कि उन्हें दैवी प्रेरणा उपलब्ध थी। इस धर्म की विभिन्न शाखाओं में कतिपय विशेषतायें उपलब्ध थीं—(१) मुक्ति में ये सभी विश्वास करते थे। (२) वे आत्मा को अजर अमर मानते थे। उनके अनुसार पिंजड़े में बन्द पक्षी की भाँति यह मानव शरीर में कैद रहता है। लौकिक जीवन सारहीन तथा विषयों में आसक्ति दुखमूलक है। (३) उन्होंने अपने सिद्धान्तों को लेखबद्ध किया। उनके अनुसार उनके ग्रन्थ ईश्वरीय इच्छा के अनुसार लिखे गये थे। (४) स्वर्ग एवं नरक में उनका विश्वास था। इस धर्म के प्रमुख आचार्यों में वलेन्टियस (१३५ ई०–१६० ई०) उल्लेखनीय है। उसके मत में उपर्युक्त विशेषतायें उपलब्ध थीं।

रोम-साम्राज्य में ईसाई धर्म का सूत्रपात एवं विस्तार

रोम-साम्राज्य में ईसाई धर्म की उत्पत्ति—रोम-साम्राज्य में ईसाई धर्म का सूत्रपात एवं विकास एक विशेष महत्व रखता है। इस धर्म के प्रवर्तक ईसा मसीह का जन्म रोम-साम्राज्य के अन्तर्गत जुडिया की राजधानी जेरुस्लम के समीप बेथलेहेम नामक स्थान में हुआ था। कालान्तर में उनके परिवार के लोग गेब्रिली में नज़ारेथ नामक स्थान में हट आये। उनके पिता साधारण स्थिति के आदमी थे। उन्होंने अपने पुत्र को हीन आर्थिक दशा के कारण साधारण शिक्षा दी थी। उनके जीवन का प्रारम्भिक काल नगरों से दूर ग्रामीण वातावरण में बीता। वे कुछ काल तक पैतृक व्यवसाय (बढ़ई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का काम) का ही पालन करते रहे। उनके क्षेत्र के आस-पास यहूदी बहुसंख्या में बसते थे, अतएव उनके विचारों का प्रभाव युवक ईसा के मस्तिष्क पर पड़ा। यही कारण है कि जीवन के प्रारम्भिक दिनों में वे यहूदी धर्म के कट्टर पालक थे। यहूदी सामूहिक पूजा में विश्वास करते थे। स्वर्ग और नरक में उनका विश्वास था। उनके धार्मिक विचारों में धर्मसापेक्ष्य राज्य, एकेश्वर-वाद, अनुष्ठान तथा कर्मकाण्डों का बहुत बड़ा स्थान था। उनका विश्वास एक ऐसे भविष्य में था, जिसमें पूर्ण रूप से शान्ति, समृद्धि तथा ऐश्वर्य की स्थापना होगी। इनके धार्मिक ग्रन्थ का नाम "ओल्ड टेस्टैमेन्ट" है। यहूदी होने के कारण उनके पूर्वज इसी धर्म का पालन करते थे। इस कुलपरम्परा तथा अपने निवास-स्थान के धार्मिक वातावरण के प्रभाव के कारण ईसा ने इसी धर्म का पालन किया।

परन्तु कालान्तर में यहूदी धर्म के प्रति उन्हें घृणा हो गई। इसका कारण यह था कि उनके मन में एक नवीन चेतना तथा जागृति उत्पन्न हुई। सत्य के वास्तविक रूप के अनुसन्धान के निमित्त वे अग्रसर हो उठे। इस दृष्टि से जब उन्होंने यहूदी धर्म को टटोला, तो यह उन्हें सारहीन प्रतीत हुआ। इसमें उन्हें बाह्य आडम्बर तथा दिखावट की प्रधानता प्रतीत हुई। परिणामस्वरूप उन्होंने यहूदी धर्म का परित्याग करते हुए इसकी कटु आलोचना प्रारम्भ कर दी। इस घटना के कारण यहूदी उनसे रुष्ट हो गये। उन्होंने इनको समाज की मर्यादा का विनाशक घोषित किया। यहूदियों ने इनका प्रबल विरोध उस समय किया, जब इन्होंने यहूदी धर्म के विरुद्ध स्वतंत्र मत का प्रवर्तन किया। इस मत में ईश्वर की सत्ता, न्यायपूर्ण समाज, मानवता, नैतिकता, आडम्बर-विरोध, विश्वबंधुत्व, स्वार्थ-निरोध, भौतिकता का बहिष्कार, पाप के भयंकर परिणाम, अनुष्ठान एवं कर्मकाण्डों के परित्याग तथा सदाचार को प्रधानता दी गई। उन्होंने उदारता, शान्ति एवं क्षमाशीलता का सन्देश दिया। उनके कुछ उपदेश इस प्रकार थे :—(१) अपने शत्रुओं से स्नेह करो, (२) जो तुमसे घृणा करे, उससे तुम प्रेम करो तथा (३) जो तुम्हें अभिशाप दे, उसकी भलाई के लिये तुम प्रार्थना करो। ईसा मसीह के इन विचारों के कारण यहूदियों की कोपाग्नि प्रज्वलित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
हो उठी। उन्होंने इनके अस्तित्व को मिटा देना ही अपने धर्म के लिये उपयुक्त समझा। अधिकारियों ने उन्हें क्रान्तिकारी समझा, अतएव वे जेरुस्लम में बन्दी बनाये गये। उनके ऊपर यहूदियों ने अभियोग चलाया। इस अभियोग में निर्णायक यहूदियों के पुरोहित थे। उन्होंने ईसा मसीह को मृत्युदण्ड का अनुमोदन किया। पर यह सजा तब तक नहीं दी सकती थी, जब तक कि जेरुस्लम में नियुक्त रोम का सर्वोच्च पदाधिकारी इसके लिये अनुमति प्रदान न कर दे। कहा जाता है कि रोम के इस पदाधिकारी ने यथार्थता का बिना परीक्षण किये ही मृत्यु की इस सजा को सुदृढ़ कर दी। यहूदियों ने ईसा मसीह को जेरुस्लम नगर के बाहर एक पहाड़ी पर कठिन यातनाओं के द्वारा मार डाला। इतिहासकारों का मत है कि ईसा मसीह का यह दुखद अन्त ३० ई० के लगभग हुआ।

गिरजाघर की स्थापना तथा धर्म-प्रचार—धर्म-प्रवर्तक की मृत्यु के उपरांत उनके अनुयायियों ने इस धर्म को अक्षुण्ण बनाने के निमित्त जेरुस्लम में गिरजाघर की स्थापना की तथा प्रचार का काम करना प्रारंभ किया। सबसे पहले इस धर्म का प्रचार केवल यहूदियों में हुआ। उन्होंने इस मत को स्वीकार करना प्रारम्भ किया। इस प्रकार यहूदी ईसाइयों का आविर्भाव हुआ। यहूदियों में इसके प्रचार को रोकने के लिये यहूदी धर्म के नेताओं ने इन नवीन मतावलंबियों का संहार करना प्रारम्भ किया। इस अत्याचार से बचने के लिये यहूदी ईसाइयों में अधिकांश ने स्वदेश छोड़ दिया तथा वे विभिन्न भागों में जाकर बस गये। इनमें से कुछ लोगों ने सीरिया में जाकर इस नवीन मत का प्रसार किया। ३० ई० के उपरान्त रोम-साम्राज्य के विभिन्न भागों में इस धर्म का प्रसार बढ़ने लगा।

प्रसार की प्रथम अवस्था (३० ई०-६५ ई०)—इस काल में ईसाई धर्म के प्रसार-कार्य का वास्तविक श्रेय कुछ प्रचारकों को है। इनमें पीटर, पाल तथा जान विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन लोगों का ईसा मसीह के के पुनरागमन में दृढ़ विश्वास था। उनकी धारणा थी कि पृथ्वी पर स्वर्ग की स्थापना के लिये इनका पुनः अवतार होगा। इन लोगों ने प्रारम्भ में ईसा के सिद्धान्तों का प्रचार यहूदियों में किया। इन लोगों में जन-सेवा की बहुत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बड़ी भावना थी। ये दरिद्र एवं रुग्ण व्यक्तियों के उपचार तथा उनकी सहायता में सक्रिय अभिरुचि लेते थे। प्रारम्भ में यहूदी अधिकारियों ने इस मत के प्रचार को उपेक्षा की दृष्टि से देखा, पर कालान्तर में इसके अनुयायियों की संख्या उत्तरोत्तर जैसे जैसे बढ़ती गई, वैसे वैसे वे सशंकित हो उठे। केवल नज़ारेथ में ही ईसाई मतावलंबियों की संख्या आठ हजार से ऊपर हो गई। पीटर तथा उसके सहयोगी प्रचारक बन्दी बनाये गये। उन्हें कारागार में कठोर यातना दी गई। पीटर ने प्रचार का कार्य सीरिया से लेकर रोम तक किया। उसकी सेवा से रोगी चामत्कारिक ढंग से अच्छे हो जाते थे। कुछ लोगों को भ्रम हुआ कि वह जादू के बल पर उपचार करता था। जेरोम के अनुसार वह ४२ ई० में प्रचारार्थ रोम गया था। उसके प्रयत्न के फलस्वरूप रोम में बहुत से लोग ईसाई मतावलंबी बन गये। उसके इस कार्य से रोम-सम्राट बहुत अप्रसन्न हुआ। वह ६४ ई० में बुरी तरह मार डाला गया।

इस काल के प्रचारकों में सबसे प्रसिद्ध पाल था। उसका जन्म साइलेसिया में टर्सस नामक स्थान में एक फारसी कुल में हुआ था। उसने जेरुस्लम में में विद्योपार्जन किया था। उसमें आध्यात्मिक रुचि प्रारंभ से ही थी। वह अपने आप को ईश्वर द्वारा उत्तेजित व्यक्ति मानता था। उसके संपर्क में रहने वाले लोग भी उसे देव-प्रेरित व्यक्ति कहने लगे। वह अपने अनुयायियों को सिखाता था कि जो तुम्हारे विनाश का मार्ग प्रस्तुत करे उसका तुम भला करो। वह सर्वदा लोगों के कल्याण के लिये प्रार्थना करता था तथा सबके प्रति सहानुभूति रखता था। इस कारण लोग उसके व्यक्तित्व से आकर्षित होकर उसके अनुयायी बन जाते थे। उसने यूनान में भी धर्म-प्रचार के लिये प्रयत्न किया। यहाँ कुछ लोगों को उसके विचार समसामयिक धार्मिक भावनाओं से मेल न खाने के कारण विनाशकारी प्रतीत होने लगे। इस कारण उसके ऊपर कोरिंथ के एक न्यायालय में अभियोग चलाया गया। पर इसमें वह दण्ड पाने से साफ बच गया।

इसके अनन्तर वह कुछ वर्षों तक जेरुस्लम में प्रचार-कार्य में संलग्न था। यहाँ के यहूदी, जो कि अपने परम्परागत धर्म में विश्वास रखते थे, उसके विरुद्ध हो गये। उन्होंने उसे पकड़कर बुरी तरह पीटा। किसी तरह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसने अपनी जान बचाई । कालान्तर में उन्होंने उसके ऊपर यहूदी समाज की शांति के विनाशक का आरोप लगाया । उसे कारावास का दण्ड दिया गया । छूटने के अनन्तर ६१ ई० में वह रोम आया । वहाँ के अधिकारी इसके कार्यों के ऊपर कड़ी दृष्टि रखने लगे । उसने नागरिकों को पारस्परिक सहानुभूति तथा ईश्वर-प्रेम की भावना का संदेश देते हुये कहा—"सहानुभूति की भावना को अधिकाधिक जागृत करो । यह मानव का पुनीत कर्तव्य है । तुम विवेक के द्वारा सन्मार्ग का अवलंबन करो । ईसा मसीह तुम्हारे हृदय में निवास करें । अपने अन्दर उनके प्रति तुम आदर एवं उपासना के दीपक को जलाओ ।"

उसकी कुछ सदुक्तियाँ आज भी उद्धरण के रूप में चली आ रही हैं । उदाहरणार्थ, पुण्यात्मा के लिये सभी वस्तुयें पवित्र हैं । लक्ष्मी की तृष्णा समस्त बुराइयों की जड़ है । वह कहता था कि मैंने सबको अधिक से अधिक जीत लेने के लिये अपने आप को प्रत्येक व्यक्ति का दास बना लिया है । उसका कहना था कि विश्व में निष्ठा, आशा तथा प्रेम ही शाश्वत है तथा इनमें प्रेम सबसे महान् है । वह आचरण की पवित्रता का घोर पक्षपाती था । उसने रोम-साम्राज्य के भ्रष्टाचार तथा विलासिता की कटु आलोचना की । वह ईश्वर को सर्वशक्तिमान् मानता था । उसने लोगों को सिखाया कि भूलोक में ईसा मसीह का पुनः अवतार होगा तथा वे मानव की रक्षा करेंगे । उसके इन विचारों से रोम-सम्राट् कुपित हो उठा । उसके मन में विश्वास उत्पन्न हुआ कि पाल इस प्रकार के विचारों के प्रतिपादन के द्वारा लोगों के मन में रोम-सम्राट के विरुद्ध विद्रोह की भावना जागृत कर रहा है । इस कारण उसे मृत्यु की सजा दी गई । ओरिजेन के अनुसार नीरो की आज्ञा से उसे रोम में मृत्यु-दण्ड दिया गया था ।

जान—उसने लोगों को संदेश दिया कि पृथ्वी पर ईश्वर के राज्य के पूर्व दानव के राज्य की स्थापना होगी । दानव बुरी शक्ति का प्रतिनिधि है । उसने नीरो के शासन को दानव का शासन घोषित किया । उसने रोम-साम्राज्य की तुलना एक परम सुन्दरी से की, जिसके रूप के आकर्षण के कारण सम्राट अपने वास्तविक स्वरूप को भूल चुके हैं । उसने रोम को भ्रष्टाचार का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

केन्द्रविन्दु घोषित किया। उसके अनुसार रोम-साम्राज्य का संहार आवश्यक था। इस कार्य के संपादन के हेतु ईसा मसीह का पुनरागमन निश्चित था। इन प्रचारकों की चेष्टाओं के फलस्वरूप ६० ई० तक ईसाई मतावलंबियों की संख्या प्रचुर होने लगी। इस समय तक इस धर्म के दूरतर विकास के निमित्त एक सुंदर पृष्ठभूमि प्रस्तुत हो चुकी थी।

द्वितीय अवस्था (६६ ई०-३०५ ई०)—रोम के लेखकों के अनुसार कठोर विरोध होते हुये भी यह धर्म रोम-साम्राज्य के विभिन्न भागों में बड़ी शीघ्रता के साथ फैलता जा रहा था। प्लिनी ने इसकी लोकप्रियता का उल्लेख करते हुये लिखा है कि यह धर्म एक संक्रामक रोग की भाँति नगर-नगर तथा ग्राम-ग्राम में फैलता जा रहा था। इसके कारण परंपरागत धर्म से लोगों की श्रद्धा समाप्त होती जा रही थी। टैसिटस ने भी लिखा है कि ईसाई मत का अवलंबन लोग बहुसंख्या में करते जा रहे थे। मार्कस आरेलियस के काल में वह पूर्व का सबसे व्यापक धर्म बनता जा रहा था। इटली तथा अफ्रीका में यह मिश्र मत का सबसे प्रतिद्वन्द्वी धर्म था। एशिया माइनर की आधी जनसंख्या चतुर्थ शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ईसाई मतावलम्बी बन गई थी।

प्रचार के कारण—(१) गिरजाघर का संगठन—तत्कालीन अनेक धार्मिक संप्रदायों में गिरजाघर सबसे अधिक सुसंगठित था। गिरजाघर इस समय तक साम्राज्य के प्रत्येक भाग में विद्यमान थे। इनके शासन-संबन्धी नियम एक केन्द्रीय सूत्र के द्वारा निर्धारित किये जाते थे। इस समय तक ईसाइयों ने पृथक धार्मिक समुदायों में रहना बन्द कर दिया। वे अधिकाधिक एकबद्ध होने लगे। साम्राज्य के विभिन्न भागों के गिरजाघर परस्पर कई रूपों में संबद्ध थे। ईसा की दूसरी शताब्दी तक इनके बीच पत्र-संप्रेषण तथा विशपों का आदान-प्रदान खूब चलने लगा। **(२) विशपों की सभायें**—प्रति वर्ष प्रत्येक प्रान्त में स्थित गिरजाघरों के विशपों की सभा का आयोजन किया जाता था। इन सभाओं का उद्देश्य पारस्परिक आर्थिक सहायता की व्यवस्था करना तथा धर्म के क्षेत्र में अवांछनीय परिवर्तनों का रोकना था। कालान्तर में अन्तर्प्रान्तीय विशप-सभायें आयोजित होने लगीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार की पहली सभा ३१४ ई० में आर्लेस में हुई। दूसरी ऐसी सभा ३२५ ई० में कांस्टैन्टाइन के काल में निकाई नामक स्थान पर हुई थी। इस सभा में एक केन्द्रीय गिरजाघर की स्थापना का प्रस्ताव पास किया गया। (३) **प्रचार**—ईसाई धर्म के प्रचारक अपने धुन के पक्के थे। ये लोग अपने प्राणों की बाजी लगाकर सुदूर भागों में ईसा मसीह के सिद्धान्तों का प्रकाश फैलाने में संलग्न थे। इनमें से अनेक को मार्ग में नाना प्रकार के कष्टों को भोगना पड़ा तथा विभिन्न स्थानों पर घोर यातनायें सहनी पड़ीं, तथापि इन्होंने अपने संकल्प को पूरा किया। (४) **ईसाई धर्म का साहित्य**—इस काल तक ईसाई धर्म से संबन्धित कई रचनायें तैयार हो चुकी थीं। उदाहरणार्थ न्यू टेस्टैमेंट नामक ग्रन्थ में इस धर्म के सिद्धान्तों की व्याख्या की गई। इसके अतिरिक्त प्रचार के निमित्त कुछ और ग्रन्थ लिखे गये। इनमें सेंट पाल की एपिस्टिल्स विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस धर्म के सिद्धान्तों के समर्थन में आक्टेवियस नामक ग्रंथ लैटिन भाषा में लिखा गया। इस धर्म के शहीदों के जीवनपर एक पुस्तक की रचना की गई, जिसका नाम 'ऐक्ट्स ऑफ़ मार्टायर्स' है। गिरजाघर की परंपराओं के ऊपर 'एक्लेसिआस्टिकल हिस्ट्री' नामक एक रचना प्रस्तुत की गई। इन ग्रंथों के द्वारा लोगों को इस धर्म की विशेषताओं से परिचित कराया गया। (५) **सादगी**—इस धर्म में किसी प्रकार का आडंबर नहीं था। इसके पालन की क्रिया में धन की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। इसमें सरल जीवन तथा आचरण की पवित्रता को प्रधानता दी गयी थी। इस कारण लोग इसकी ओर आकर्षित हो उठते थे। इस धर्म के प्रवर्तक के उपदेशों में इनकी आस्था उत्तरोत्तर बढ़ने लगी।

पर इस उन्नति के साथ ईसाई धर्म को रोम-साम्राज्य में इस समय एक बहुत बड़ी आपत्ति का सामना करना पड़ा। इसका कारण यह था कि रोम के वे नागरिक, जो परम्परागत धर्म में विश्वास रखते थे, इस धर्म के विरुद्ध हो गये। उनको इस मत के प्रचारकों का भावुकतापूर्ण औत्सुक्य, अन्य धर्मानुयायियों के प्रति असहिष्णुता, अन्य धर्मों की आलोचना तथा रोम के परंपरागत देवताओं की पूजा का कटु खंडन बहुत बुरा लगा। कुछ लोगों ने उन्हें नास्तिक समझा। कुछ ने इनकी सामाजिक एकता की भावना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को सामाजिक क्रान्ति की भावना से संबद्ध किया। रोम के कतिपय साहित्यकारों, दार्शनिकों तथा व्याख्यान-दाताओं ने इस मत की तीव्र आलोचना की। रोम का सम्राट भी ईसाइयों से क्रुद्ध था। ईसाई सम्राट-पूजा में विश्वास नहीं करते थे। वे साम्राज्य की एकता के स्थान पर गिरजाघर की एकता को प्रधानता देते थे। रोम के राष्ट्रीय तथा राजकीय त्यौहारों के वे विरोधी थे। उनमें साम्राज्य के प्रति कोई भक्ति नहीं थी। वे अच्छे नागरिक नहीं समझे जाते थे। उनके ऊपर असहयोग का आरोप लगाया गया। उनकी अनेक सभाओं से रोम-सम्राट और भी सशंकित हो उठे।

परिणाम यह हुआ कि रोम-नरेशों ने ईसाई धर्म के मूलोच्छेदन की नीति अपनाई। यह दमन-नीति नीरो के काल से ही प्रारंभ हो गई। इस शासक के काल में ईसाई धर्म का पालन अपराध माना गया। इनके उत्तराधिकारियों के काल में यह नीति कुछ शिथिलता के साथ अपनाई गई। उनके काल में जो ईसाई सम्राट की मूर्ति को पूजा चढ़ा देता था वह अपराधमुक्त घोषित किया जाता था। पर जो ऐसा नहीं करता था, उसे कारावास अथवा बेंत की सजा दी जाती थी। कभी-कभी उसे प्राणदण्ड भी दिया जाता था। डोमिशियन के काल में ईसाईयों को रोम से बहिष्कृत किया गया। कालान्तर में ट्रेजन नामक नरेश के काल में ईसाई और भी कुचले गए। इसका स्पष्टीकरण प्लिनी और ट्रेजन के पत्रों से हो जाता है। इस नरेश ने बहुतों की हत्या भी कराई। जेरुस्लम के गिरजाघर के प्रधान सिमिअन तथा अन्तियोक के विशप इग्नैशियस इसके प्रमाण हैं। यह रक्तपात आरेलियस के काल में भी जारी रहा। डिओक्लिशियन नामक नरेश ने भी इस दमन-नीति को जारी रखा। उसने ३०३ ई० में एक आज्ञापत्र निकाला। इसके अनुसार गिरजाघर की संपत्ति छीन ली गई। ईसाई नौकरी से निकाल दिये गये। उनके विशिष्ट राजनीतिक और सामाजिक अधिकार छीन लिये गये। गिरजाघरों का विनाश किया गया। जो रोम के देवताओं की पूजा नहीं करते थे, उनको कठोर दण्ड दिया जाता था। परंतु इस रक्तपात के बावजूद भी ईसाई धर्म का प्रचार बढ़ता ही गया।

तृतीय अवस्था (३०६ ई०-३२५ ई० —यह काल रोम-साम्राज्य में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ईसाई धर्म के विजय का काल माना गया है। इस काल के बीच कांस्टैन्टाइन नामक नरेश ने ईसाई धर्म के प्रति सहिष्णुता दिखाई। ३१२ ई० में उसने एक घोषणा की, जो 'मिलान डेक्री' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके द्वारा ईसाइयों को धार्मिक सहिष्णुता प्रदान की गई। कालान्तर में कांस्टैन्टाइन ने ईसाई धर्म को स्वीकार कर लिया। इसका कारण राजनीतिक था। साम्राज्य की एकता को स्थापित करने के लिये व्यापक धर्म की आवश्यकता उसे प्रतीत हुई। इसके लिये उसे ईसाई धर्म सर्वथा उपयुक्त दीख पड़ा। ३२० में ईसाइयों के हित में उसने कुछ कानून बनाये। इसके अनुसार विशपों को न्यायालयों में स्थान दिया गया तथा इस मत के अनुयायियों को अनेक सुविधायें प्रदान की गईं। ३२५ ई० में उसने ईसाइयों की एक धार्मिक सभा बुलाई। उसने अनेक गिरजाघरों का निर्माण किया। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में उसने ईसाई धर्म को राज्य-धर्म भी बना लिया। इस रूप में ईसाई धर्म की रोम में पूर्ण विजय स्थापित हो गई।

ईसाई धर्म के स्वरूप में परिवर्तन—कुछ काल के उपरान्त रोम के स्थानीय वातावरण के प्रभाव के कारण ईसाई धर्म के मौलिक स्वरूप में काफी परिवर्तन हुआ। इसका आदि स्वरूप जितना ही सरल था, अब वह उतना ही आलंकारिक एवं आडंबरों से परिपूर्ण हो गया। ईसा मसीह के द्वारा प्रवर्तित धर्म मूलतः व्यक्तिगत था। वह आध्यात्मिकता के जागरण तथा नैतिकता के विकास के द्वारा ईश्वर के पास पहुँचने का एक मार्ग था। पर इसने अब एक प्रामाणिक सांप्रदायिक रूप धारण किया। गिरजाघरों में पहले पूजा साधारण ढंग से की जाती थी। उनमें धर्म-ग्रन्थों से प्रार्थनायें पढ़ी जाती थीं तथा नैतिक शिक्षायें दी जाती थीं। पर अब पूजापाठ में विभिन्न आलंकारिक अनुष्ठान किये जाते थे। गिरजाघर के प्रांगण में महात्माओं के चित्र एवं मूर्तियाँ स्थापित की गईं। पादरियों की संख्या बढ़ने लगी। आंतरिक संस्कार के स्थान पर धर्म के बाह्य रूप को प्रधानता दी गई। चतुर्थ शताब्दी के आरंभ में गिरजाघर के अधिकारिमंडल का विकास हो चुका था। ये अधिकारी कई वर्गों में विभक्त थे। इनमें "प्रेस्बीटरोई" तथा "एपिस्कोपोई" उल्लेखनीय हैं। ये साधारण पादरियों से ऊपर थे। ये विशप गिरजा-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

घरों में राजा की भाँति शासन करते थे। रोम के गिरजाघर का विशप सर्वोच्च था। यह विशप समस्त गिरजाघरों के ऊपर महान् प्रभाव रखता था। चर्च का यह संगठन निरंकुश रोम-साम्राज्य के राजनीतिक आदर्श पर आधारित था।

रोम-साम्राज्य के अधःपतन के कारण—रोम-साम्राज्य के अधःपतन के कारणों का विवेचन विश्व-इतिहास की एक जटिल समस्या है। इसका कारण यह है कि यह घटना किसी आकस्मिक ढंग से संपन्न नहीं हुई थी। यह कोई संहारक उथल-पुथल नहीं था, अपितु एक क्रमिक विकास था। रोम के विनाश की क्रिया वास्तव में लगभग ३०० वर्षों का इतिहास है। इतने दीर्घकाल तक विश्व के अनेक साम्राज्य जीवित न रह सके थे।[१] इस प्रश्न के ऊपर विभिन्न विद्वानों के द्वारा अलग अलग कारण गिनाये गये हैं, जो कि निम्नांकित पंक्तियों में आलोचित हैं —

रोम-साम्राज्य में ईसाई धर्म का प्रचार—गिबन तथा नीत्से ने रोम-साम्राज्य के अधःपतन का सबसे महान् कारण ईसाई धर्म के अभ्युदय को माना है। इस धर्म के प्रचारकों ने युद्ध-निरोध का समर्थन किया। इन्होंने उग्र नीति का विरोध किया। ईसाई धर्म ने रोम के उस प्राचीन धर्म के ऊपर महान् कुठाराघात पहुँचाया, जिसने रोमवासियों को शक्ति, संबल तथा रोम-साम्राज्य को नव जीवन एवं स्थायित्व प्रदान किया था। विल ड्यूरेंट के शब्दों में इसने रोम की प्राचीन सभ्यता के विभिन्न अंगों (उदाहरणार्थ कला, दर्शन, साहित्य एवं विज्ञान) को विनष्ट करने की चेष्टा की। इसने लोगों की राष्ट्रीय भावनाओं तथा परंपरागत मर्यादा के आधार को धराशयी कर दिया। इसने नागरिकों को सामूहिक भक्ति के द्वारा साम्राज्य के उत्थान के स्थान पर व्यक्तिगत आध्यात्मिक लाभ का पाठ पढ़ाया। लोग राष्ट्र-रक्षा एवं उसकी मर्यादा की अभिवृद्धि की चेष्टा से विमुख होकर लोकोत्तरपरायणता में संलग्न हो उठे। इस धर्म ने रोम के सैनिकों में

---

१. "Some nations have not lasted as long as Rome fell."
—Will Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विश्वास उत्पन्न कर दिया कि परराष्ट्रों का विजय पाप है तथा युद्ध, जिसमें असंख्य निरपराध व्यक्तियों की हत्यायें होती हैं, भयंकर अपराध है। इस धर्म ने साम्राज्य की एकता को नष्ट कर दिया। जिस समय साम्राज्य के हित में युद्ध की आवश्यकता थी, उस समय इसने लोगों को शांति एवं अविरोध का संदेश दिया।

कुछ इतिहासकारों का कथन है कि ईसाई धर्म को रोम-साम्राज्य के अधःपतन का कारण मानना ठीक न होगा। उनके अनुसार इस धर्म का प्रसार रोम के विनाश का प्रभाव था, न कि उसका एक कारण। रोम के प्राचीन परंपरागत धर्म का विनाश ईसाई धर्म के प्रचार के पूर्व ही आरम्भ हो गया था। यूनान के विजय के कारण रोम का नैतिक अधःपतन प्रारम्भ हो गया था। यह नीरो के काल में अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था। ईसाई धर्म का नैतिक प्रभाव रोमवासियों के जीवन पर अच्छा पड़ा था। इसने रोम को उस समय चारित्रिक उत्थान का संदेश दिया, जब कि वह भ्रष्टाचार के गर्त में उत्तरोत्तर मग्न हो रहा था। वास्तव में पूर्व काल से आती हुई रोम की विनाश-क्रिया ने इस धर्म के शीघ्र विकास को संभव किया था। इसके प्रचार के पूर्व रोम-साम्राज्य खोखला हो चुका था।[१] पर इस प्रकार के मत का प्रवर्तन ठीक नहीं है। इसमें लवलेश भी संदेह नहीं कि ईसाई धर्म के स्वीकरण के फलस्वरूप रोमवासियों की सामरिक प्रवृत्ति नष्ट हो गई थी। इसने लोगों में उत्साहहीनता, अकर्मण्यता तथा कर्तव्य-परांगमुखता जाग्रत किया था। गिबन के शब्दों में ईसा मसीह की विजय निस्संदेह रोम-साम्राज्य के विनाश का कारण थी।[२]

साम्राज्य की विशालता—कुछ इतिहासकारों का कहना है कि रोम-साम्राज्य इतना विशाल था कि चिरकाल तक उसका एकसूत्र में बद्ध रहना नितांत असंभव था। इसमें स्पेन, उत्तरी अफ्रीका, मिश्र, माल्टा, कार्सिका,

---

१. "It was an empty shell, when Christianity rose to influence" —Will Durant.

२. "Christ's victory had been Rome's death." —Gibbon.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सार्डिनिया, सिसली, इटली, मैसीडन, जूडिया, यूनान, एशिया माइनर तथा पर्गेमम आदि सम्मिलित थे। साम्राज्य की यह विशालता स्वयं एक बहुत बड़ा दोष है। इसके स्थायित्व की आशा एक कल्पना थी, न कि वास्तविकता। सुदूर प्रान्तों के ऊपर कठोर नियन्त्रण स्थापित रखना दुष्कर था। इनके राज्यपालों ने अवसर पाकर रोम-सम्राट से अपना सम्बन्ध-विच्छेद घोषित किया। दूरवर्ती भागों में विद्रोह हुये। वे क्रमशः रोम-साम्राज्य से निकलने लगे। कालान्तर में समीपवर्ती प्रान्त भी स्वतन्त्र होने लगे। फलस्वरूप रोम का राज्य-विस्तार आकार में लघु हो गया। इस घटना ने उसकी शक्ति को क्षीण कर उसके अधःपतन को अवश्यंभावी बना दिया।

रोम-सम्राटों की निरंकुशता—रोम के सम्राट स्वेच्छाचारी एवं निरंकुश थे। इससे लोगों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं नागरिकता की भावनाओं के ऊपर महान् कुठाराघात पहुँचा। लोकतंत्रात्मक संस्थायें निर्जीव होने लगीं। सेनेट का गणतंत्रकालीन प्रभाव पूर्णतः विनष्ट हो गया। वह रोम-सम्राट की चेरी बन गई। स्थानीय शासन में उच्च प्रतिभा वाले व्यक्ति नहीं जा पाते थे। वे लोग जन-शासन में राज्य-पदाधिकारियों के हस्तक्षेप का सहन नहीं कर सकते थे। लोग अपने विचारों को प्रकट नहीं कर पाते थे। जनता रोम-सम्राट की दमन-नीति के कारण भयभीत हो चुकी थी। साम्राज्य के प्रति लोगों की भक्ति विनष्ट हो गई थी। शासन में अब उनकी कोई भी अभिरुचि नहीं थी। ऐहिक जीवन के प्रति उदासीनता के कारण लोग पारलौकिक जीवन के विषय में चिन्तन करने लगे। बहुत से व्यक्ति साधु-जीवन व्यतीत करने लगे। करों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ने लगी। उन्हें जनता से बड़ी कड़ाई के साथ वसूल किया जाता था। राज्य की ओर से सम्मान पाने के निमित्त सम्राट को उपहार चढ़ाना अनिवार्य था। कृषकों की दशा शोचनीय होने लगी। नागरिक अपनी इच्छा के अनुसार व्यवसाय का चयन नहीं कर पाते थे। कांस्टैन्टाइन के काल में व्यक्ति एकमात्र अपने पिता के ही व्यवसाय का अवलंबन कर सकता था। इससे लोगों में निराशा की भावना अधिकाधिक बढ़ने लगी। रोम-सम्राटों की इस निरंकुश नीति ने उनके साम्राज्य के मूल पर महान् आघात पहुँचाया। जनता के मन में शासक के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
विरुद्ध असंतोष एवं असहयोग की ऐसी भावना वर्तमान थी, जो कि अनुकूल समय पाकर किसी समय में भी उभड़ सकती थी। उसने इस बात को पहले ही सिद्ध कर दिया था कि रोम-साम्राज्य का स्थायित्व इन परिस्थितियों में असंभव है।

विजिगीषु नीति—कुछ इतिहासकारों के अनुसार रोम-साम्राज्य के अधःपतन का सबसे महान् कारण रोम-सम्राटों की विजिगीषु नीति थी।[१] साम्राज्य में जितने उपद्रव खड़े हुये, उनका समस्त मूल रोम की साम्राज्य-वादी नीति में केन्द्रित था। विजित देशों के निवासियों के साथ बड़ी क्रूरता का व्यवहार किया गया। युद्ध में बन्दी बनाये गये हुये व्यक्तियों को कारावास की सजा तथा कठोर यातनायें दी गईं। उनमें से अधिकांश दास बनाये गये। इसमें कोई भी संदेह नहीं कि विजित प्रान्तों में शासन बड़ा ही क्रूर था। रोम की विजिगीषु नीति के कारण उसके शत्रुओं की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। इसी कारण बदला लेने के लिये उसके ऊपर बाह्य आक्रमण भी हुए। दूसरे देशों को जीतने की अभिलाषा के कारण रोम के सैनिकों की संख्या बढ़ा दी गई। सेना की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के निमित्त जनता को खूब चूसा गया। कुछ विद्वानों का कथन है कि विजयों के उपरांत रोम पहले की अपेक्षा अधिक सभ्य न हो सका था। विजिगीषु नीति के कारण रोम के नरेश लालची हो गये। उन्होंने विजित देशों के साधनों का बहुत बड़ा शोषण किया। वहाँ के नगर लूटे गये। यूनान के नगरों से सुन्दर मूर्तियाँ तथा प्राचीन कलात्मक वस्तुयें लूटकर रोम के संग्रहालयों को सजाने के लिए लाई गईं। इन युद्धों के कारण रोम को आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से महान् क्षति पहुँची।[२] इनसे दास-प्रथा का प्रचार तथा शोषित

---

१. "If there was one primary factor which operated more than others to accomplish the downfall of Roman civilization, it was imperialism." —Burns.

२. "Imperial expansion also brought with it the germs of decay, economically and socially." —Trever.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्ग का उद्गम हुआ। इससे कठिन सामाजिक समस्यायें उत्पन्न हुईं। युद्ध के वातावरण के कारण व्यवसाय एवं व्यापार का स्वस्थ विकास अवरुद्ध हो गया। इसीलिये रोम के इन युद्धों को विनाशक युद्ध कहा गया है। यदि युद्ध-क्रिया को कुछ काल तक स्थगित कर आन्तरिक संगठन के ऊपर ध्यान दिया जाता, तो वह साम्राज्य के हित में होता। इसमें कोई भी संदेह नहीं कि सतत् अधिकांश भूभाग को जीतने की भावना ने रोम के भावी विनाश के निमित्त एक पृष्ठभूमि तैयार कर दी।

उत्तराधिकार-संबन्धी नियमों का अभाव—उत्तराधिकार के सम्बन्ध में रोम में कोई निश्चित नियम नहीं थे। जब सम्राट की मृत्यु होती थी, उस समय गृहयुद्ध होता था। रोम के इतिहास के पृष्ठों में राज्य की बागडोर को पाने के निमित्त भीषण संघर्ष तथा रक्तपात के उदाहरण भरे पड़े हैं। फ्लेवियन काल में केवल २७ वर्षों के लघु समय के भीतर उत्तराधिकार-संबन्धी युद्ध के अनेक दृष्टान्त मिलते हैं। राजदरबार में संदेह का वातावरण सर्वदा विद्यमान रहता था। सम्राट अपने जीवन के विषय में संशययुक्त रहता था। फ्लेवियन काल में शासक को मारने के निमित्त कई षडयंत्रों का आयोजन किया गया था। ऐंटोनाइन काल (९६ ई०-१८० ई०) में भी उत्तराधिकार का निर्णय युद्ध के द्वारा हुआ। इसके उपरान्त १८० ई० से लेकर २८५ ई० तक रोम में महान् अराजकता का वातावरण विद्यमान था। इन आन्तरिक झगड़ों के अवसर पर रोम के बाहरी शत्रु उसका लाभ उठाने लगते थे।

उत्तरकालीन नरेशों की अयोग्यता—आगस्टस के उपरान्त रोम-नरेशों में अधिकांश अकर्मण्य तथा निकम्मे सिद्ध हुये। उनमें साम्राज्य को सुसंगठित करने की क्षमता नहीं थी। नीरो इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। वह एक विलासी प्रकृति का व्यक्ति था। उसने अपनी काम-वासनाओं की पूर्ति के निमित्त कई सुन्दरियों के साथ अपना विवाह किया। राज-कार्य को उपेक्षित कर वह रास रङ्ग में डूबा रहता था। उसने अपरिमित द्रव्य का अपव्यय किया तथा इसके लिये जनता के रक्त को चूसा। जिस समय भयङ्कर अग्निदाह के कारण रोम भस्मीभूत हो रहा था, उस समय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
वीणावादन के द्वारा वह अपना मनोविनोद कर रहा था। इसी प्रकार कमोडियस (१८० ई०-१८३ ई०) बहुत भ्रष्टाचारी एवं अयोग्य था। उसकी विलासिता से लाभ उठाकर रोम के शत्रु बलवान् होने लगे। मैक्सिमस (२३५ ई०-२३८ ई०) भी बड़ी क्रूरता के साथ शासन करता था। उसने दरिद्र नागरिकों के रक्त का शोषण कर द्रव्य संकलित किया था। उसका एक समकालीन लेखक लिखता है कि प्रतिदिन सहस्रों व्यक्तियों को धनिक से रङ्क बनाना उसके बायें हाथ का खेल था। इसके समय में साम्राज्य में चतुर्दिक रक्तपात तथा हत्या का वातावरण उत्पन्न हो गया था। इनके अतिरिक्त और भी बहुत से नरेश थे, जिनमें न तो सहिष्णुता एवं विशालहृदयता थी और न सैन्य सङ्गठन की योग्यता ही। फलस्वरूप प्रजा में घोर असन्तोष तथा साम्राज्य-भक्ति की भावना का ह्रास बढ़ने लगा। साम्राज्य में सामान्य असंतुष्टि की यह भावना रोम-सम्राट के लिये घातक सिद्ध हुई।

पूर्वी आदर्शों का पालन—कुछ इतिहासकारों के अनुसार रोम-साम्राज्य में पूर्वी आदर्शों का सूत्रपात उसके लिये विनाशकारी सिद्ध हुआ। एशियाई देशों की पद्धति पर यहाँ श्रमिकों की सहायता से खेती की जाती थी। इसको इतिहासकारों ने "दास-पद्धति कृषि" (सर्फ सिस्टम ऑफ़ अग्रिकल्चर) कहा है। पूर्वी प्रथा के आधार पर यहाँ भी परम्परागत व्यवसाय सभी नागरिकों के लिये अनिवार्य कर दिया गया। इस कारण प्रवृत्ति के अनुसार व्यवसाय-चयन की प्राचीन रोम-परम्परा समाप्त हो गई। एशियाई देशों के आधार पर रोम-साम्राज्य में पूर्वी निरंकुशता का प्रचार बढ़ने लगा। डिओक्लिशियन तथा कांस्टैन्टाइन ने अपने दरबार का अनुशासन पारसीक पद्धति पर आधारित किया। सम्राट की दैवी उत्पत्ति का प्रचार बढ़ने लगा। इसके अनुसार नागरिक साम्राज्य के लिये था, न कि साम्राज्य नागरिक के लिये। शासक उसके ऊपर मनमाने अत्याचार कर सकता था और उसे बिना किसी विरोध किये सह लेना उसका परम धर्म समझा गया। यूनानी साहित्यिक आदर्शों के अनुकरण की क्रिया में रोम ने अपनी प्राचीन साहित्यिक विशेषताओं को तिलांजलि दे दी। यही कारण है कि चौथी शताब्दी के अनन्तर रोम में मौलिक साहित्य का अभाव दृष्टिगोचर होता है। इसी प्रकार कला

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के क्षेत्र में भी यूनानी प्रभाव के कारण इस समय मौलिकता की न्यूनता उपलब्ध होती है। पूर्वी धर्मों के प्रभाव के कारण इन लोगों का तर्क से विश्वास उठ गया। अब वे क्रमशः रहस्यवादी बनने लगे। स्टोइक दर्शन का प्रभाव रोम के लोगों पर उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। चाल्डिया के ज्योतिष-शास्त्र तथा जादू, मन्त्र एवं टोने आदि में लोगों की आस्था उत्पन्न होने लगी। चतुर्थ शताब्दी में रोम में निओप्लेटोनिक दर्शन का प्रचार बढ़ा, जिसमें अनेक पूर्वी धर्म एवं दर्शन का समन्वय मिलता है। पूर्वी प्रभाव के कारण लोगों में निराशावादिता, लोकोत्तरपरायणता, निरीहता, लौकिक जीवन के प्रति उपेक्षा, सहनशीलता तथा कर्त्तव्यविमुखता आ गई, जिनके फलस्वरूप राष्ट्र की आन्तरिक शक्ति क्षीण हो गई।

आर्थिक दुर्व्यवस्था—उत्तर काल के नरेशों के समय में रोम-साम्राज्य की आर्थिक अवस्था शोचनीय हो गई थी। प्रजा करों के बोझ से लद गई। बाह्य आक्रमणों तथा सैनिक अराजकताओं एवं उपद्रवों ने साम्राज्य के आर्थिक ढाँचे पर कठोर आघात किया। इससे व्यापार के ऊपर निश्चयात्मक रूप से बहुत बड़ा धक्का लगा। आगस्टस के कुछ उत्तराधिकारियों के काल में उनकी मुद्रा-नीति दोषपूर्ण थी। वे रोम के बाहर बहुमूल्य धातुओं के बने हुये सिक्कों को भेजने के विपक्ष में थे। परिणामस्वरूप उनके काल में मुद्राओं में निम्न धातुओं का सम्मिश्रण किया गया। नीरो के काल में मुद्राओं में ९८-५ प्रतिशत निम्नधातुओं का सम्मिश्रण किया गया। फलतः मुद्राओं का व्यापक प्रसरण समाप्त हो गया। लोग अधिकतर वस्तुविनिमय के द्वारा व्यापार करने लगे। इस समय कर्मचारियों को वेतन भोजन एवं वस्त्र के रूप में दिया जाने लगा। मुद्राओं की न्यूनता का घातक प्रभाव उत्पादन के ऊपर पड़ा। नवीन कानूनों के कारण कृषक अपनी भूमि के साथ बँध गये। वे किसी दूसरे व्यवसाय का चयन नहीं कर सकते थे। साम्राज्य के क्षुब्ध वातावरण के कारण अधिकांश समृद्धिशाली नगर उजड़ने लगे। अर्थ के क्षेत्र में राजकीय हस्तक्षेप के कारण नगर-वासियों की स्वतन्त्रता बहुत कुछ छिन चुकी थी। वे निराशा एवं असुरक्षा का अनुभव करने लगे। कृषकदास-प्रथा (सर्फडम) के विकास के कारण सामन्तवाद बढ़ने लगा। निर्धनता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और बेगारी फैलने लगी। इन सब कारणों से जनता में घोर असन्तोष एवं विद्रोह की भावना पैदा हो गई।

सामाजिक दोष—नवीन परिवर्तनों के कारण महान् सामाजिक दोष भी उत्पन्न हुए। नव सम्पर्क ने रोम के सामाजिक संस्थाओं के मूलाधार को हिलाने में योग दिया। उच्च वर्ग में घोर भ्रष्टाचार फैला हुआ था। इसके सदस्य ऐश्वर्य के मद में कार्यशीलता को भूल गये। यह वर्ग दिन प्रति दिन विलासी एवं आमोद-प्रमोद का प्रेमी होने लगा। इन लोगों ने समाज-सेवा एवं राष्ट्रीय भावनाओं का परित्याग कर दिया। विदेशी तत्वों ने इनमें पर-निर्भरता भी जाग्रत की। इतिहासकारों का कथन है कि इस परिवर्तन के कारण रोम में जातीय हत्या उत्पन्न हुई। अनेक सभ्यताओं के प्रवेश के कारण रोम का मौलिक सामाजिक संगठन बदलने लगा। वासना-तृप्ति, तलाक तथा बहुविवाह का पर्याप्त प्रचार हुआ। प्राचीन नैतिक आदर्श प्रायः सभी सामाजिक वर्गों से समाप्त होने लगे। नीति-उपदेशकों के अनुसार इस चारित्रिक अधःपतन ने साम्राज्य की शक्ति को छिन्न-भिन्न कर दिया।[१]

सैनिक शक्ति का ह्रास—सेनेट की विद्रोह-प्रवृत्ति को नष्ट करने के लिये गैलीनस ने एक नया नियम बनाया, जिसके अनुसार सेनेट-वर्ग का कोई भी व्यक्ति सेना में भर्ती नहीं किया जा सकता था। अन्य नवीन नियमों के अनुसार अब इटली के बाहर के लोग सेना में भर्ती किये जाने लगे। इस प्रकार यह रोम-सेना नहीं रह गई। यह इस समय प्रधानतः प्रान्तीय निवासियों से भरी थी। इस समय बर्बर जातियों के लोग भी भर्ती किये जाने लगे। इनकी रोम के प्रति कोई भक्ति नहीं थी। ये अपने वेतन की वृद्धि तथा लूट-खसोट में विश्वास करते थे। सेना के अधिकांश सैनिक कृषक-परिवारों के थे। ये लोग नगर के धनिक समाज से जलते थे। इनका विचार था कि नगर-वासी ग्राम की दरिद्र जनता को चूसते हैं। इस भावना के कारण ये नगरों को खूब लूटते थे। रोम की नई सेना में साम्राज्य-सुरक्षा की

---

१ "Moral decay contributed to the dissolution."—Will Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राचीन शक्ति नहीं थी। यही कारण है कि बाहरी आक्रमण की बाढ़ को यह रोकने में असमर्थ सिद्ध हुई। विकेन्द्रीकरण के फलस्वरूप भी रोम का सैनिक ह्रास हुआ। प्रान्तीय सेनायें अवसर पाने पर विद्रोह कर देती थीं। प्रान्तीय राज्यपाल इनकी सहायता से अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर देते थे। इन प्रान्तीय सेनाओं के ऊपर कठोर केन्द्रीय नियन्त्रण नहीं रह गया था। गैलीनस के काल में साम्राज्य में इस प्रकार की ३० प्रान्तीय सेनायें थीं। रोम-साम्राज्य प्रारम्भ में सैनिक बल पर टिका हुआ था। उत्तर काल की सैनिक दुर्बलताओं के कारण इसका स्थायित्व असम्भव हो गया था।

बाह्य आक्रमण—बाह्य आक्रमण रोम-साम्राज्य के अधःपतन का एक बहुत बड़ा कारण था। बाहरी आक्रमणकारियों में जर्मन, वंडाल, गोथ तथा हूण उल्लेखनीय हैं। जर्मन जाति के लोग ऊँचे कद के तथा शक्ति-सम्पन्न थे। ये लोग प्रकृति के रौद्र रूप का सहन कर सकते थे। इनकी विशेष अभिरुचि युद्ध तथा लूट में थी। ये अपनी निर्भीकता के लिये प्रसिद्ध थे। इन लोगों में जातीय अभिमान कूट-कूट कर भरा हुआ था। इनके आक्रमण को रोकना एक कठिन कार्य था। जब उत्तरकालीन रोम-सम्राट उनके आक्रमण की बाढ़ को रोकने में असमर्थ सिद्ध हुये, उस समय उन्होंने उन्हें साम्राज्य-सीमा के भीतर बसने की आज्ञा दे दी। उन्होंने जर्मन लोगों को अपनी सेना में भर्ती करना भी प्रारम्भ किया, जो कि एक मौलिक भूल सिद्ध हुई। उनमें से कुछ को उच्च पदों पर नियुक्त किया गया। रोम के इतिहास में जर्मन जाति के ये लोग फ्रैङ्क नाम से प्रसिद्ध हैं। इन लोगों के सैनिक प्रवेश का फल यह हुआ कि रोम-सेना बर्बर हो गई।[१] जर्मन जाति के सैनिकों को रोम-सम्राट के प्रति कोई भक्ति नहीं थी। अवसर पाने पर उन लोगों ने विद्रोह किये। वंडाल लोग भी अपने विनाशकारी आक्रमण के लिये विख्यात थे। इन्होंने डैन्यूब नदी के तट पर वर्तमान कुछ

---

१. "Barbarian life, customs and manners were thus introduced in to the empire, and the Rome army as a whole was barbarian."

—Breasted.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रदेशों को जीत लिया। गोथ लोगों का आक्रमण रोम-साम्राज्य के लिये भय का एक शाश्वत साधन बन गया। थिओडोसियस के काल में गोथ काफी शक्तिशाली सिद्ध होने लगे। उसने उनसे दबकर उनको अपनी सेना में भर्ती करना प्रारम्भ किया। इसके काल में उन्हें उच्च राजकीय पदों पर नियुक्त किया गया। इसके पूर्व ३७८ ई० में ऐड्रियानोपुल के युद्ध में गोथ लोगों ने रोम-सेना की समता में अपनी शक्तिशालिता को प्रमाणित कर दिया था। थिओडोसियस के काल में वंडाल जोर पकड़ने लगे। उनको अपने साथ मिलाने के लिये उसने अपनी पुत्री का विवाह वंडाल-नेता स्टिलिको के साथ कर दिया। इस घटना से विदेशी आक्रमणकारियों की तुलना में रोम की गिरती हुई शक्ति प्रमाणित हो गई। विदेशी आक्रमणकारियों में सबसे शक्तिशाली हूण थे।[१] इन लोगों ने गोथ तक को परास्त किया था। जिस प्रकार भारतीय इतिहास में गुप्त-साम्राज्य के अधःपतन में हूण-आक्रमण का हाथ था, उसी प्रकार रोम-साम्राज्य के अधःपतन में भी हूणों का एक बहुत बड़ा योगदान था।

अन्य कारण—रोम-साम्राज्य के अधःपतन के कतिपय अन्य कारण भी माने जाते हैं। **प्राकृतिक कारण**—स्पेंजलर का कहना है कि विश्व में प्रत्येक सभ्यता का उद्‌गम, विकास एवं विनाश होता है। विश्व का यह प्राकृतिक नियम रोम-साम्राज्य के विषय में भी चरितार्थ सिद्ध होता है। यह साम्राज्य अपने अभ्युदय की पराकाष्ठा पर पहले ही पहुँच चुका था, अतएव इसका अधःपतन भी अवश्यंभावी था। **भूमि की उर्वरा शक्ति का खिंच उठना**—चतुर्थ शताब्दी में रोम-साम्राज्य की भूमि की उर्वरा-शक्ति अकस्मात् काफी घट गई। इस कारण लोग रोम-साम्राज्य को छोड़कर अन्य भागों में बसने लगे। सेप्टिमस सेवरस के काल के एक कानून में आदमियों की कमी का उल्लेख मिलता है। विशप डायोनिसियस के अनुसार सिकन्दरिया की, जिसे अपनी जनसंख्या का महान् गर्व था, जनसंख्या २५० ई० के लगभग

---

१. "They were the most destructive of all barbarian invaders." —Breasted.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आधी हो गई। बड़े फार्मों पर खेती करने वाले उन्हें छोड़कर हटने लगे। परिश्रम की समता में उन्हें उपज कम मिल पाता था। रोम के लेखकों का कहना है कि इसे देखकर पर्टिनैक्स ने बिना किसी मूल्य के खेत के लम्बे खत्तों को लोगों को प्रदान करने के लिये घोषणा की थी। **मलेरिया तथा प्लेग का प्रकोप**—मलेरिया के प्रकोप के कारण स्वास्थ्यविकार उत्पन्न हुआ। विशेष रूप से इटली में इस रोग का प्रकोप अधिक था। १६६ ई० तथा २५२ ई० के बीच रोम-साम्राज्य में कई बार प्लेग का दौरा हुआ। इससे साम्राज्य की काफी जनसंख्या समाप्त हो गई। इतिहासकारों का कथन है कि इससे रोम को अधिक क्षति पहुँची।

रोम-सभ्यता के योगदान का मूल्यांकन

यूनानी सभ्यता के समान ही विश्व को रोम की सभ्यता की एक बहुत बड़ी देन है। इतिहासकारों का कहना है कि पाश्चात्य सभ्यतायें रोम-सभ्यता के साँचे में ढाली गई थीं। संस्कृति के क्षेत्र में पाश्चात्य देशों ने प्राचीन रोम से बहुत कुछ सीखा तथा अपनाया था। यही कारण है कि विद्वानों ने रोम-सभ्यता को यूरोपीय सभ्यता का प्रतिनिधि माना है। कुछ इतिहासकारों का कहना है कि रोम पाश्चात्य सभ्यताओं की जननी है।[१] इसने भूमध्यसागरीय देशों को लगभग २०० वर्षों तक शांति, व्यवस्था एवं उन्नति प्रदान की तथा इसके अनन्तर कई शताब्दियों तक उन्हें बर्बर जातियों के आक्रमण से सुरक्षित रखा था। कुछ समालोचकों के अनुसार रोम के इतिहास को समझना वास्तव में अपने ही इतिहास को समझना है। फ्रीमन महोदय का यहाँ तक कहना है कि अनेक ऐतिहासिक विषयों में रोम का इतिहास ही प्रधान है। इस देश का इतिहास वास्तव में विश्व का ही इतिहास है। उनके शब्दों में रोम-इतिहास विश्व-इतिहास का पर्याय है। यह सभ्यता विश्व के बहुत से राष्ट्रों को एकता के सूत्र में दृढ़बद्ध करती है। इस सभ्यता की विशिष्टता अन्य रूपों में भी आँकी जा सकती है। इस देश ने यूनानी सभ्यता के प्रकाश

---

१. "Western civilization was born out of the very matrix of the Roman Empire." —Trever.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को पाश्चात्य देशों में फैलाया था। रोम-साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् हेलेनिस्टिक सभ्यता ने रोम-सभ्यता को प्रभावित किया था। रोम ने इस प्रभाव का प्रचार स्पेन तथा राइन एवं डैन्यूब नदियों के समीपस्थ प्रदेशों में किया। ईसाई धर्म को यूरोप में फैलाने का वास्तविक श्रेय रोम को ही है। इसके अतिरिक्त रोम-सभ्यता की मौलिक विशेषताओं का भी यूरोप के ऊपर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा, जिसको रोम का योगदान (रोमन हेरिटेज) कहा जाता है।

रोम की भाषा की देन—रोम की मौलिक देनों में लैटिन भाषा की देन उल्लेखनीय है। प्राचीन काल में यूरोप के बहुत से देशों में इतिहास, दर्शन, कानून तथा शिक्षा के लिये यही भाषा अपनाई गई थी। अधिकांश लोगों के लिखने, पढ़ने एवं बोलने की भाषा यही थी। इस प्रकार इस भाषा ने व्यापक भाषा का रूप धारण किया था। प्रारंभिक मध्य युग में यूरोप में एकता का स्रोत लैटिन भाषा ही थी। इस भाषा में ईसाईयों के धार्मिक ग्रन्थ बाइबिल का अनुवाद किया गया था। रोमन कैथोलिक चर्च में यह भाषा बाइबिल के पाठ तथा पूजा के लिये पवित्र मानी जाती थी। पुनर्जागृति काल का अस्सी प्रतिशत काम इसी भाषा में किया गया। इसके प्रमुख कर्णधार ह्यूमनिस्ट लैटिन भाषा के पंडित थे। रोम के विशाल साम्राज्य की प्रधान भाषा लैटिन भाषा ही थी। रोम के विश्वविख्यात कानून इसी भाषा में लिखे गये थे। बहुत से अन्य राष्ट्रों के कानून की भाषा यही भाषा बनाई गई। इस भाषा के बोलने वाले अमेरिका, एशिया तथा अफ्रीका में पाये जाते हैं। इतिहासकारों का मत है कि अब भी लैटिन भाषाभाषियों की संख्या २० करोड़ के लगभग है। इस भाषा के बहुत से शब्द तथा मुहावरे आधुनिक पाश्चात्य भाषाओं के शब्दों एवं मुहावरों से मेल खाते हैं। भाषा-विज्ञान के पंडितों का मत है कि इटैलियन, स्पैनिश, पोर्चुगीज, फ्रेंच तथा रूमानियन भाषाओं का स्रोत लैटिन भाषा में मिलता है। अंग्रेजी भाषा में भी लैटिन भाषा के बहुत से शब्द मिलते हैं। इस भाषा के अनेक शब्दों का उद्गम लैटिन भाषा के शब्दों में मिलता है। अंग्रेजी भाषा में भी लैटिन भाषा के शब्द मिलते हैं। भाषाविज्ञान के पंडित इस बात से सर्वथा सहमत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं कि अंग्रेजी के विविध शब्दों का उद्गम लैटिन भाषा के शब्दों में मिलता है। यही कारण है कि इतिहासकार लैटिन को अंग्रेजी भाषा का द्वार मानते हैं। मनुष्य के आधे ज्ञान का आधार लैटिन है। इस भाषा को मृत कहना इसके साथ अन्याय करना है। विश्व के भाषा-जगत् में यूनानी एवं संस्कृत भाषा के समान ही लैटिन भी जीवित है। पाश्चात्य देशों में बहुत से लोगों के जीवन की प्रेरणा का वास्तविक मूल यही भाषा है। इसने जीव-विज्ञान तथा वनस्पति-विज्ञान को सुविधाजनक पारिभाषिक शब्द प्रदान किये। प्रति दिन की बोलचाल की अंग्रेजी भाषा में रोम-प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

लैटिन साहित्य की देन—लैटिन साहित्य को यूरोप के साहित्य का एक अभिन्न भाग कहा जा सकता है।[१] रोम के साहित्यकारों का प्रभाव मध्यकालीन यूरोप पर काफी पड़ चुका था। मध्ययुग के एक लेखक का कहना है कि यदि कोई व्यक्ति केवल ओविड की कृतियों को ही पढ़े, तब भी वह बहुत कुछ सीख सकता है। लैटिन साहित्य के विकास की धारा कुछ काल के लिये अवरुद्ध हो गई, पर पुनर्जागृति काल में इसका पुनरुज्जीवन हुआ। इसके उपरांत पंदरहवीं शताब्दी से लेकर सतरहवीं शताब्दी तक लैटिन साहित्य का पठन-पाठन बहुत जोरों से बढ़ा। यही कारण है कि इस काल के यूरोपीय साहित्यकारों पर लैटिन साहित्य का प्रभाव परिलक्षित होता है। इसके उपरान्त के भी यूरोपीय साहित्य पर लैटिन साहित्य का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। अंग्रेजी के लेखक सर टामस मूर, बेकन तथा मिल्टन लैटिन भाषा के मर्मज्ञ थे। यूरोप के सुखान्त साहित्य पर रोम के सुखान्त ग्रन्थों का प्रभाव पड़ा। प्लाटस तथा टेरीन आदि रोम के सुखान्त लेखकों की छाप ड्राइडन तथा शेक्सपियर आदि पर पड़ी। इसी प्रकार रोम के दुःखान्त लेखकों का प्रभाव भी अंग्रेजी तथा फ्रेंच के दुःखान्त लेखकों पर देखा जा सकता है। सेनेका के ग्रंथ प्रारंभिक काल से ही इन भाषाओं के

---

१. "It is one of the greatest among world literatures and by far the most significant in its directly formative influence upon English and European literatures." —Trever.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पंडितों के द्वारा आदर्श माने जाते थे। अंग्रेजी दुःखान्त साहित्य की शैशवास्था में ही सेनेका के नाटकों का अभिनय कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में किया जाता था। एलिजबेथकालीन दुखान्त नाटकों में सेनेका के ग्रन्थों के बहुत से पात्र दास, भूत तथा अन्य रूपों में अभिनय करते हुये पाये जाते हैं। इसी प्रकार रोम के काव्य का भी प्रभाव यूरोप के काव्यकारों के ऊपर पड़ा। इटली, फ्रांस तथा इंग्लैंड के काव्यकार वर्जिल से अधिक प्रभावित थे। ट्रेवर का कहना है कि इनके ऊपर जितना अधिक प्रभाव वर्जिल का पड़ा, उतना शायद ही किसी अन्य काव्यकार का पड़ा हो। इसका ईनीड नामक महाकाव्य यूरोप के काव्यकारों का बाइबिल था। दान्ते ने इस ग्रंथ को अपना मार्गदर्शक बनाया था। पुनर्जागृति काल के प्रमुख कर्णधार बोकैशियो तथा पेट्रार्क वर्जिल को सर्वश्रेष्ठ कवि मानते थे। ईनीड यूरोपीय विद्यालयों में पाठ्यपुस्तक के रूप में पढ़ाया जाता था। चॉसर, मिल्टन तथा स्पेंसर ने इस ग्रंथ को अपना आदर्श माना था। वाल्टेयर तो इस ग्रंथ को ही प्राचीन साहित्य की सर्वोत्कृष्ट कृति मानता था। ड्राइडन इसकी जिआर्जिक्स नामक कृति से बहुत अधिक प्रभावित था। वह इसी ग्रंथ को वर्जिल की सर्वोत्कृष्ट कृति मानता था। एडीसन इस काव्य को पूर्ण तथा अंतिम ग्रंथ मानता था। ड्राइडन तथा कीट्स ने ईनीड का अनुवाद किया था। वर्ड्सवर्थ तथा मैथ्यू आर्नाल्ड ने इसी ग्रंथ को अपना आदर्श माना था। आधुनिक कवियों में इसका सबसे अधिक प्रभाव टेनीसन पर पड़ा था। यही कारण है कि लोग आधुनिक कवियों में वर्जिल का सबसे बड़ा प्रशंसक उसी को मानते हैं। यह लेखक होरेस के ओड्स से भी प्रभावित था। टेनीसन इसको 'रोम के कवियों में सबसे मृदुहृदय' कहता था। रोम की प्रणयगीति का प्रभाव भी यूरोप पर कुछ कम न पड़ा। ओविड की कृतियों को मध्य युग के लेखकों ने आदर्श माना था। तेरहवीं शताब्दी में उनके ग्रंथों का अनुवाद फ्रेंच, इटैलियन तथा जर्मन भाषाओं में हुआ था। दान्ते उनको विश्व का एक महान् कवि मानता था। लिवी का ग्रंथ इतिहास तथा गद्य का अनूठा उदाहरण समझा जाता था। व्याख्यान-साहित्य के क्षेत्र में सिसरों का प्रभाव डेमोस्थनीज से भी अधिक पड़ा था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजनीतिक जीवन की देन—यूरोप के लोगों ने रोम के राजनीतिक जीवन की विशेषताओं का अनुकरण किया। विल ड्यूरेंट के शब्दों में प्राचीन विश्व में रोम का राजनीतिक तथा शासन-संबन्धी आदर्श अद्वितीय था।[१] रोम-साम्राज्य के वर्गीकरण को यूरोप में आदर्श माना गया। इसके आधार पर कालान्तर में यूरोप के अन्य विविध देशों में राज्य का वर्गीकरण प्राविंस, काउंटी तथा पेरिस नामक भागों में किया गया। आधुनिक राजनीतिक जीवन के बहुत से शब्द रोम के राजनीतिक जीवन की देन हैं, उदाहरणार्थ फिज़कल सैलेरी, म्यूनिसिपल, काउंसल, प्रोकाउंसल, सेंसस, सेंसर, ट्रिब्यून, डिक्टेटर, इम्परर, इम्पीरियलिज़्म, सेनेट, प्राविंस, कैंडीडेट, एलेक्शन, सिविक तथा सिटिज़ेन। रोम के म्यूनिसिपल शासन तथा स्थानीय शासन का प्रभाव दक्षिण-पूर्व यूरोप में विशेष रूप से पड़ा। इंग्लैंड तथा जर्मनी के निरंकुश शासक रोम-सम्राटों की स्वेच्छाचारिता को अपना आदर्श मानते थे। जर्मनी तथा रूस में निरंकुश सम्राटों के लिये कैसर तथा ज़ार नामक जो शब्द प्रयुक्त होते थे, वे वास्तव में रोम के निरंकुश राजाओं की सीज़र उपाधि के रूपान्तर हैं। कालान्तर में राजा के दैवी अधिकारों में विश्वास का जो प्रचार यूरोप में हुआ, उस भावना का मूल रोम में मिलता है। रोम के समान ही ब्रिटेन तथा फ्रांस आदि देशों में राजत्व में देवत्व की कल्पना की गई। साम्राज्य के बहुत से आदर्शों का यूरोप के लोगों के द्वारा अनुकरण किया गया, उदाहरणार्थ सहिष्णुता की नीति का अवलंबन तथा नागरिकता का अधिक प्रदान। बहुत से कालान्तर के नरेशों ने रोम के साम्राज्य-संगठन को आधार माना। शार्लेमैग्ने ने रोम-साम्राज्य को आदर्श मानकर अपने साम्राज्य का विस्तार किया था। वह अपने आप को आगस्टस, कांस्टैंटाइन तथा जस्टिनियन का उत्तराधिकारी मानता था। रोम का विशाल साम्राज्य राजनीतिक एकता का प्रतीक था। इससे इन लोगों ने व्यापक राज्य की कल्पना की। दान्ते के अनुसार रोम-साम्राज्य एक दैवी निर्माण था। वह कहता था कि इस प्रकार के साम्राज्य के अभाव में

---

१. "Rome has had no rival in the art of government."

—Will Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शांति की स्थापना दुष्कर है। बाद में चल कर नैपोलियन तथा कैसर विलियम द्वितीय ने इस प्रकार के विशाल साम्राज्य की स्थापना के लिये प्रयास किया था। मध्यकाल में धार्मिक क्षेत्र में होली कैथोलिक चर्च का संगठन रोम-साम्राज्य के आधार पर किया गया। इसको आदर्श मानकर यूरोप के विभिन्न गिरजाघरों में एकता स्थापित की गई, जिसका अध्यक्ष पोप था। कुछ लोगों का मत है कि 'फासिज़्म' का मूल भी वास्तव में रोम में मिलता है। इस शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के 'फासेज़' शब्द से हुई थी। इसके सिद्धान्त रोम की देन माने जाते हैं। राज्यहित के लिये व्यक्ति की हत्या, विरोध का दमन, परंपरा का संरक्षण तथा आतंकवाद का समर्थन आदि फासिस्ट सिद्धान्तों का मूल रोम में मिलता है।

कानून के क्षेत्र में देन—रोम की महत्त्वपूर्ण देन कानून के क्षेत्र में भी थी। लार्डब्राइस का मत है कि रोम के कानूनों के अभाव में इस साम्राज्य की स्मृति विनष्ट हो गई होती। रोम के कानून यूरोप के विश्वविद्यालयों में पढ़ाये जाते थे। पेरिस का विश्वविद्यालय 'रोमन लॉ' में विद्यार्थियों को उपाधि प्रदान करता था। रोम की कानूनी पुस्तक 'जस्टिनियन कोड' को आदर्श मानकर कालान्तर में पुस्तकें लिखी गईं। उदाहरणस्वरूप ग्रेशियन ने बारहवीं शताब्दी में इस पुस्तक के आधार पर डेक्रेटम नामक पुस्तक की रचना की थी। विश्व का अन्तर्राष्ट्रीय कानून भी रोम का ऋणी है। ग्रोशस की 'लाज़ ऑफ वार ऐंड पीस' नामक पुस्तक रोम की देन कही जा सकती है। विल ड्यूरैंट का कहना है कि रोम के कानून ने यूरोप के निवासियों को कई शताब्दियों तक प्रेरणा एवं उत्साह प्रदान किया। डिसेमविर्स के काल से लेकर नैपोलियन के काल तक के कानून रोम के कानून के आदर्श पर बनाये गये थे। रोम के लोगों से यूरोप के निवासियों ने प्राकृतिक कानून का निर्माण सीखा। रोम के जूस गेंटियम से विश्व के लोगों ने बहुत कुछ सीखा था।

दर्शन एवं धर्म की देन—रोम के दार्शनिकों का भी पाश्चात्य देशों में बहुत कुछ अंशों में प्रभाव पड़ा था। सिसरो ने यूनान की स्टोइक विचारधारा का प्रचार यूरोप में किया था। अंग्रेजी लेखक ह्यूम का मत है कि सिसरो उसके प्रत्येक विचार में विद्यमान था। सेनेका यूरोप का प्रिय दार्शनिक माना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाता था। ईसाई मतावलंबियों पर भी उसका बहुत बड़ा प्रभाव था। वे सेनेका के एकेश्वरवाद तथा नैतिकता से अधिक प्रभावित थे। चॉसर तथा मिल्टन की कृतियों में भी इसके दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। अपने ग्रन्थों में पेट्रार्क ने उन्हें अनेक स्थलों पर उद्धृत किया है। मैथ्यू आर्नाल्ड तथा वर्ड्सवर्थ उसे अंग्रेज़ी आचारशास्त्र के विकास में विशिष्ट स्थान प्रदान करते हैं। धर्म के क्षेत्र में ईसाई धर्म को रोम की एक बहुत बड़ी देन है।[१] रोम ने ही ईसाई धर्म के प्रसार को संभव किया था। साम्राज्य के भीतर यातायात की सुविधा, शांति, राजनीतिक संगठन तथा उत्तर रोम नरेशों की नीति ने ईसाई धर्म को यूरोप में फैलाने में सहयोग प्रदान किया। रोम ने ईसाई धर्म के वाह्य रूप के ऊपर भी बहुत कुछ प्रभाव डाला। इस मत में मन्दिर के भीतर प्रतिमा तथा चित्रों की स्थापना, अनुष्ठान, पूजा तथा प्रकाश आदि की व्यवस्था का नवीन समावेश रोम के परंपरागत धर्म के प्रभाव के कारण संभव हुआ।

कला की देन—यूरोप रोम की कला का कुछ कम ऋणी नहीं है।[१] रोम की कला की विशेषताओं का अनुकरण मध्यकाल में किया गया। उनके कुछ रूप आज की कला में भी विद्यमान हैं। विट्रूवियस का "ऑन आर्किटेक्चर" नामक शिल्प-ग्रन्थ यूरोप में इस विषय का सबसे प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता था। मध्यकाल के शिल्पी इस ग्रन्थ को वास्तुकला के ऊपर सर्वश्रेष्ठ कृति मानते थे। जिन सिद्धान्तों का इसमें प्रतिपादन मिलता है, वे इस विषय पर अन्तिम वाक्य स्वीकार किये जाते थे। पुनर्जागृतिकाल के वास्तुकार भी इस ग्रंथ से अधिक प्रभावित थे। इतिहासकारों का मत है कि रोम की लौकिक वास्तुकला का प्रभाव अमेरिका की भवन-निर्माण कला के ऊपर

---

१ "In religion, as in philosophy, Western civilization owes a vast debt to Rome as the great intermediary."—Trever.

२. "Roman architecture is one of the most distinctly creative and important of all phases of the Roman heritage."

—Trever.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पड़ा था। कांस्टैन्टाइन के द्वारा निर्मित स्नानागारों का अनुकरण न्यूयार्कमें किया गया। वेल्बस तथा मार्सेलस के विशाल नाट्यगृहों की गणना विश्व के सुन्दर भवनों में की जाती थी। इस देश के संग्रहालय तथा पुस्तकभवन आदर्श माने जाते थे। रोम के कलाकारों ने तोरण तथा गुम्बद के निर्माण में काफी नवीनता दिखाई। यहाँ पर बहुत विशाल तोरण तथा गुम्दब बनाये जाते थे। उनमें काट-छाँट तथा पच्चीकारी का काम सुन्दर ढंग से किया गया था। लंदन में सेंट पाल के गिरजाघर के गुम्बद की परिधि रोम के गुम्बदों की परिधि के आधार पर विशाल बनाई गई। इस देश के राज-प्रासाद अपने निर्माण की उत्कृष्टता के लिये प्रख्यात थे। ओविड ने आगस्टस के राजप्रासाद को इसके सौन्दर्य के कारण देवताओं के निवास के अनुकूल बताया था। यहाँ के सभाभवन, सड़कें, बंदरगाह, नहरें तथा पुल निर्माण की दृष्टि से आदर्श माने जाते थे। स्पेन तथा इटली में इस काल के बने हुये कुछ पुलों के उदाहरण अब भी उपलब्ध होते हैं। इन पुलों में इटली का एक पुल ६०० फीट लम्बा तथा १६० फीट ऊँचा था। इससे इसकी विशालता का अनुमान लगाया जा सकता है। मज़बूती लाने के लिये इनमें प्रस्तरखंडों का प्रयोग किया गया था। रोम के प्राचीन काल की बनी हुई सड़कें मध्ययुग में भी विद्यमान थीं। इस देश के कला-कार सुदृढ़ दुर्गों के निर्माण में भी निपुण थे। रोम में फ्रांटिनस ने विश्वकर्म (इंजीनियरिंग) के ऊपर 'ऑन दी ऐक्विटडक्टस ऑफ रोम' नामक जो रचना प्रस्तुत की, वह इस विषय पर एक प्रामाणिक कृति मानी जाती थी। रोम-सम्राटों के द्वारा बनाई हुई मूर्तियाँ सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध थीं। इस देश में स्तंभों पर जो उत्कीर्ण भास्कर (रिलीफ स्कल्पचर्स) बनाये जाते थे, उनका यूरोप में पुनर्जागृति काल में विशेष रूप से प्रचार बढ़ा। नीरो के द्वारा बनवाये हुये भित्तिचित्र चित्रकला के उत्कृष्ट नमूने माने जाते हैं।

व्यावहारिक विज्ञान की देन—रोम के लोगों ने व्यावहारिक विज्ञान को प्रधानता दी थी। उन लोगों ने जीवनोपयोगी गणित के अध्ययन में लोगों की अभिरुचि को विशेष रूप से जागृत किया था। विज्ञान के ऊपर जो पुस्तकें लिखी गईं, उनको यूरोप में प्रामाणिक माना जाता था। प्लिनी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का 'नैचुरल हिस्ट्री' तथा सेनेका का 'नैचुरल क्वेश्चंस' नामक ग्रन्थ यूरोप में विशेष रूप से प्रसिद्ध थे। सेलस ने चिकित्साशास्त्र के ऊपर लैटिन भाषा में 'डि रे मेडिका' नामक जो ग्रन्थ ३० ई० पू० में लिखा, उसका अध्ययन पंदरहवीं शताब्दी में यूरोप के विश्वविद्यालयों में पाठ्यपुस्तक के रूप में किया जाता था। रोम के लोगों ने नक्षत्रविद्या तथा भूगोल के ऊपर उत्कृष्ट पुस्तकें लिखीं। यहाँ के भूगोलवेत्ताओं ने विश्व का मानचित्र प्रस्तुत किया। स्वच्छता की व्यवस्था तथा जनस्वास्थ्य के लिये जो चिकित्सालय रोम में बनाये गये, वे पड़ोसी राष्ट्रों के द्वारा आदर्श माने जाते थे।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पाश्चात्य सभ्यताओं के विभिन्न अंगों में रोम-सभ्यता की मौलिकतायें किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं। ट्रेवर के शब्दों में आधुनिक प्रतीच्य सभ्यता अपनी विशेषताओं की दृष्टि से प्राचीन रोम-सभ्यता की आत्मा का प्रतिनिधित्व करती है।[१]

---

१. "The spirit of modern civilization is overwhelmingly Roman."
—Trever.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ३

चीन की सभ्यता

चिन वंश का राज्य-काल—चीन के संपूर्ण इतिहास में दो ऐसी उल्लेखनीय क्रान्तियाँ हुईं, जिन्होंने वहाँ के राजनीतिक एवं सामाजिक ढाँचे को सहसा पर्याप्त अंशों में परिवर्तित कर दिया था। पहली विशिष्ट क्रान्ति २२१ ई० पू० में हुई। इस समय वहाँ लगभग छह शताब्दियों से चली आने वाली सामन्तवादी प्रथा नष्ट हो गई तथा उसके स्थान पर एक सुसंगठित केन्द्रीय शासन का आविर्भाव हुआ। यही कारण है कि यह तिथि चीन के इतिहास में गौरवान्वित एवं चिरस्मरणीय है। चीन की द्वितीय क्रांति १९११ ई० में संपन्न हुई। इस समय वहाँ पर शताब्दियों से चले आने वाले राजतंत्र-शासन के स्थान पर प्रजातंत्र-शासन का प्रथम उद्‌गम हुआ। २२१ ई० पू० में वहाँ चिन् नामक एक नवीन राजवंश का आविर्भाव हुआ, जिसकी कृतियाँ राजनीतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण मानी जा सकती हैं। इसका पूर्वकाल अशांति, उपद्रव एवं राजनीतिक विसंगठन का युग था। समस्त देश अनेक लघु राज्यों में विभक्त था, जिनमें हन, चाऊ, वेई, चू, येन तथा ची विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन विभिन्न राज्यों में कोई भी इतना अधिक शक्तिशाली नहीं था, जो कि एक केंद्रीय शक्ति की स्थापना के द्वारा चीन की राजनीतिक विशृङ्खलता एवं आंतरिक दौर्बल्य को दूर कर सके। इनकी दशा वही थी, जो राजनीतिक एकता के पूर्व इटली और जर्मनी में छोटे राज्यों की थी। यह ठीक है कि चिन वंश के पूर्ववर्ती वंशों के राज्यकाल में कुछ विचारकों ने चीन के विभिन्न राज्यों के पारस्परिक फूट के दोषों को स्पष्ट किया था तथा ये राज्य आपसी संघर्ष के कुपरिणामों को समझने लगे थे; पर किसी मेधावी, कूटनीतिज्ञ एवं संगठनकर्त्ता शासक के अभाव में चीन की राजनीतिक एकता संभव न हो सकी थी।

शिह-ह्वांग-टी—चीन की राजनीतिक एकता को संभव बनाने का श्रेय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चिन वंश के संस्थापक चेंग नामक सम्राट को है। इतिहास के पृष्ठों में वह 'शिह-ह्वांग-टी' के नाम से प्रसिद्ध है। वह हमारे समक्ष एक सफल विजेता के रूप में अवतरित होता है। उसने २३० ई० पू० में हन, २२८ ई० पू० में चाऊ, २२५ ई० पू० में वेई, २२३ ई० पू० में चू, २२२ ई० पू० में येन तथा २२१ ई० पू० में ची आदि राज्यों को जीत लिया। इन विजयों के द्वारा उसने अपने समकालीन विभिन्न राज्यों की सत्ता को समाप्त कर प्रथम एक-च्छत्र राज्य की स्थापना की। कई शताब्दियों के अनन्तर पहली बार चीन में एक विशाल साम्राज्य का सृजन संभव हो सका था। इन कृतियों के कारण उसने अपनी सफलताओं के अनुरूप अपनी उपाधि 'प्रथम सम्राट्' धारण की थी। उसे चीन का बिस्मार्क कहते हैं।[१] चीन के इतिहासकारों ने उसे दृढ़ संकल्प, अदम्य उत्साह तथा अभूतपूर्व क्षमता से संपन्न व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है। वह निर्भीक तथा शत्रुओं के लिये भय का एक सबल कारण था। उसने शासन के वास्तविक अधिकारों को अपने हाथों में केन्द्रित कर लिया था। साम्राज्य का कोई भी महत्त्वपूर्ण कार्य उसकी इच्छा अथवा अनुमति के अभाव में नहीं हो सकता था। उसका इतना आतंक एवं प्रभाव था कि उसके कर्मचारी उसकी आज्ञा का पूर्ण पालन करते थे और इसमें उन्हें किसी प्रकार का हठ दिखाने का दुस्साहस नहीं हो सकता था। उसके दरबार में अनुशासन का वातावरण वर्तमान् रहता था तथा उसके मंत्री एवं पदाधि-कारी उसे श्रद्धा एवं शिष्टाचार दिखाते थे। उसकी आज्ञा के अनुसार उसके वंशज द्वितीय सम्राट्, तृतीय सम्राट् तथा इस प्रकार की उपाधियाँ क्रमशः अनन्त काल तक धारण करते। इस प्रकार वह अपनी वंश-परंपरा को अक्षुण्ण बनाना चाहता था।

शासक के रूप में—एक सफल विजेता तथा साम्राज्य-निर्माता होने के अतिरिक्त वह एक योग्य शासन-कर्ता भी था। वह चीन के इतिहास में एक

---

१ "He was a robust and obstinate soul, recognizing no God but himself, and pledged like some Nietzchean Bismark, to unify his country by blood and iron."

—Will Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सफल शासक के रूप में चित्रित किया गया है। उसने अपने साम्राज्य को सुसंगठित करने के लिये कई सुधार किये। उसे अपने इस कार्य में अपने सुयोग्य मंत्री लि सू से बहुत बड़ी सहायता उपलब्ध हुई थी। उसके राजनीतिक विचार सम्राट् के विचारों से मेल खाते थे। वह 'लिगलिस्ट' विचारधारा का अनुयायी था। वह राजा के निरंकुश शासन एवं प्रजा के द्वारा उसकी आज्ञा के निर्विरोध पालन में विश्वास करता था। अवस्था में वह शिह-ह्वांग-टी से बड़ा था। इस कारण सम्राट् उसकी मंत्रणा एवं सुझावों का काफी आदर करता था। कहा जाता है कि वह लि सू से इतना अधिक प्रभावित था कि उसने उसके कुल के साथ अपना वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया। लि सू ने सर्वदा एक शक्तिशाली केन्द्रीय शासन की स्थापना के निमित्त प्रयास किया था। वह स्थानीय परम्पराओं एवं रूढ़ियों का विरोधी था। वह चाहता था कि साम्राज्य का शासन एक सुलिखित एवं विचारपूर्ण संविधान के द्वारा किया जाय। उसके राजनीतिक विचार उस युग की आवश्यकताओं के सर्वथा अनुकूल थे। अधिकांश विद्वानों का कथन है कि चीन देश का नाम चिन् वंश के नाम पर पड़ा था। पाश्चात्य देशों के निवासी चीन के लोगों को चिन्-भूमि का निवासी कहते थे। चीन शब्द इसी चिन् शब्द का अपभ्रंश है। महाभारत के द्रोण पर्व में जिसकी रचना द्वितीय शताब्दी ई० पू० में हुई थी, चीन शब्द का उल्लेख मिलता है। कालिदास के अभिज्ञानशकुन्तलम् में भी चीन शब्द का उल्लेख हुआ है।

सामन्तवादी प्रथा का अन्त—उसका प्रथम क्रान्तिकारी परिवर्तन सामन्तवाद की प्रथा का अन्त था। उसके पूर्व समस्त राजनीतिक अधिकार तथा उच्च पद सामन्तों के हाथ में थे। उनमें अपने कुल एवं जाति का बहुत बड़ा अभिमान था। राज्य की ओर से उन्हें रियासतें मिली हुई थीं, जिनमें वे राजकीय कर लगा सकते थे। उन्हें विभिन्न प्रकार की सुविधायें प्राप्त थीं। वे ही प्रान्तीय राज्यपाल के पद पर नियुक्त किये जाते थे। इसके बदले में उन्हें युद्ध के अवसर पर सम्राट् को सैनिक सहायता पहुँचानी पड़ती थी। इस प्रथा में बहुत से दोष थे। सामन्त कृषकों के ऊपर मनमाने अत्याचार करते थे। वे सम्राट को दुर्बल पाकर षडयन्त्र का आयोजन करते थे। उनके

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ऊपर सम्राट् का उतना नियन्त्रण नहीं था, जितना अपेक्षित था। इस प्रथा के विनाश के कारण जनसाधारण का बहुत बड़ा लाभ हुआ। अब कृषक भूमिकर सीधे राज्य को देते थे तथा इस प्रकार वे सामन्तों के शोषण एवं मनमाने अत्याचार से बच गये। राज्य के साथ उनका संपर्क अधिकाधिक बढ़ने लगा। सामन्तवाद की प्रथा के मिट जाने के कारण राज्य की बागडोर पूर्ण रूप से सम्राट् के हाथ में थी। फिट्ज़रल्ड का कथन है कि पूर्वी एशिया में इस प्रकार का महत्त्वपूर्ण परिवर्तन इस समय तक अन्य किसी देश में नहीं हो सका था।[१] इस प्रथा के मिट जाने के कारण चीन में शासन-सम्बन्धी अनेक दोष समाप्त हो गये।

शासन का स्वरूप—वह अपने विशाल साम्राज्य को एक सुसंगठित शासन-व्यवस्था के द्वारा एकबद्ध करने की आवश्यकता से भली भाँति परिचित था। उसने सर्वप्रथम इसे विभिन्न परिमाण वाले ३६प्रान्तों (चुन) में विभक्त कर दिया। प्रान्तों का वर्गीकरण जिलों (सियेन) में किया गया। साम्राज्य के सबसे विशिष्ट पदाधिकारी दो थे—(१) प्रधान मंत्री तथा (२) सेनापति। प्रधान मन्त्री शासन के सुसंचालन के निमित्त उत्तरदायी था। सेनापति पर सैनिक कार्यों का उत्तरदायित्व था। उसके पहले केवल उच्च कुलों में उत्पन्न व्यक्ति ही महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्त हो पाते थे। इसका परिणाम यह होता था कि शासन के क्षेत्र में बहुधा अयोग्य व्यक्ति प्रवेश पा जाते थे जिनके कारण साम्राज्य में चतुर्दिक भ्रष्टाचार फैलता था और राज्य-प्रबन्ध का वास्तविक कार्य संपन्न नहीं हो पाता था। ऐसे लोग सम्राट् को अलोकप्रिय बनाते थे। शिह-ह्वांग-टी के समय में प्रान्तों और जिलों में एकमात्र सुयोग्य कर्मचारियों की नियुक्त होने लगी। उसने यह आवश्यक कर दिया कि सरकारी पदों पर नियुक्ति होने के निमित्त एकमात्र योग्यता को ही प्रधानता दी जाय। कर्मचारियों को उनके विशिष्ट कार्यों के लिये पुरस्कार, उच्च वेतन एवं उपाधियाँ दी जाने लगीं। इस सम्राट ने इस बात पर सर्वदा ध्यान रखा कि शासन का

---

[१] "So vast a change has had no parallel in Eastern Asia until our own times."—Fitzerald.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वास्तविक बागडोर उसके ही हाथों में केन्द्रित हो। वह अपने अधिकारों के अनुकूल लम्बी उपाधियाँ धारण करता था। उसने अपने सुदृढ़ शासन के द्वारा साम्राज्य की मर्यादा का निश्चयात्मक रूप से विस्तार किया। साम्राज्य का यह संगठन उसकी उच्च प्रतिभा का परिचायक था। उसने बड़े पदाधिकारियों के कार्यों के विषय में गुप्त सूचना पाने के निमित्त निरीक्षकों की नियुक्ति की। वे उसके विश्वासपात्र कर्मचारी हुआ करते थे। उनके माध्यम से वह साम्राज्य में होने वाली प्रत्येक घटना के विषय में जानकारी रखता था। राजधानी के शासन के निमित्त अलग पदाधिकारियों की नियुक्ति की गई थी।

सैन्य सुधार—उस समय तक सैन्य सुधार दो दृष्टियों से आवश्यक था, एक तो बाह्य आक्रमणों से साम्राज्य की सुरक्षा तथा दूसरे आंतरिक विद्रोहों का दमन। जिन परिस्थितियों में उसने अपने साम्राज्य का संगठन करना प्रारंभ किया, उनमें षड़यंत्र एवं विप्लव की पर्याप्त संभावना थी। उसकी दमन-नीति के कारण सामन्तों में विद्रोह की भावना छिपी हुई थी। संभावित विद्रोहों को रोकने के निमित्त चिन-सेना की आवश्यकता से जितने शस्त्र अधिक प्रतीत हुये, उनको उसने संग्रहीत कर पिघला दिया। उसने विजित राज्यों को निःशस्त्र कर उनके सैन्य-संबन्धी परम्परागत अधिकारों को छीन लिया। उसकी यह नीति उसकी सफल राजनीतिक मेधा का परिचायक है। उसकी आज्ञा के अनुसार सभी उच्च सैनिक पदाधिकारियों को उसकी राजधानी में रहना पड़ता था। इस प्रकार वह उनके ऊपर सर्वदा नियन्त्रण और देख-रेख रख सकता था। उसने सैनिकों को विभिन्न प्रकार की रण-शैलियों में दक्ष किया तथा उन्हें नवीन प्रकार के शस्त्रों के प्रयोग में निपुण बनाया।

राजधानी का परिवर्तन—सियेन यंग की भौगोलिक स्थिति से प्रभावित होने के कारण उसने अपनी राजधानी को इस नगर में स्थानान्तरित किया। यह साम्राज्य के उत्तर-पश्चिम सीमा के सन्निकट था। यहाँ से बाह्य आक्रमणकारियों से साम्राज्य की सुरक्षा स्थापित की जा सकती थी। राजधानी के भीतर उसने केवल उन शक्तिशाली व्यक्तियों को घर बनाने का आदेश दिया, जिनके पास धन की प्रचुरता थी। इस व्यवस्था के कारण प्रभावशाली व्यक्तियों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के ऊपर उसने अपनी प्रभुता स्थापित की तथा राजधानी के वैभव का विस्तार किया। अपनी राजधानी के समीप वेई नदी के तट पर उसने अपने विशाल राजप्रासाद का निर्माण किया। इसके निर्माण में साम्राज्य का अपरिमित द्रव्य लगाया गया था। यह प्रासाद २५०० फीट लम्बा तथा ५०० फीट चौड़ा था और इसमें दस हजार व्यक्ति एक साथ बैठ सकते थे। यह महल समकालीन वास्तुकला का एक ज्वलंत प्रतीक माना जाता था। उसने राजधानी के पूर्व लिशन की पहाड़ी पर अपनी अस्थियों के सुरक्षण के हेतु एक सुविशाल समाधि बनवाई, जिसकी परिधि लगभग डेढ़ मील तथा ऊँचाई ५०० फीट थी। यह सुविशाल निर्माण सात लाख श्रमिकों के सतत् कई वर्षों के परिश्रम का परिणाम था। उसके महल की दीवालों के ऊपर ग्रहमंडल के चित्र, तरह-तरह के बेल-बूटे तथा पशु-पक्षियों की विभिन्न आकृतियाँ अंकित की गई थीं। कहा जाता है कि यह नरेश कला का अत्यंत प्रेमी था। उसने इस विशाल प्रासाद के अतिरिक्त और भी महलों का निर्माण किया था। उदाहरणार्थ कुअन-चुंग में तीन सौ तथा कुअन-तुंग में चार सौ भवनों का उसने निर्माण किया था। साम्राज्य के विभिन्न भागों में वह जहाँ दौड़ा के निमित्त आता था, वहाँ उसके रुकने के निमित्त शिविर बने हुये थे। ये पत्थर की इमारतों के रूप में बने होते थे। इनकी दीवालों के ऊपर लेख उत्कीर्ण किये गये थे, जिनमें इसकी कृतियों का गुणानुवाद किया गया था। इसके समय में मूर्तिकला का भी प्रचुर विकास हुआ।

दण्ड-विधान—यह सम्राट अपने राजनीतिक जीवन में लिगलिस्ट मत से प्रभावित था। इस कारण उसके समय में दण्डविधान काफी कड़ा था। प्रायः साधारण अपराधों के लिये कड़ी सजायें दी जाती थीं। कभी-कभी व्यक्ति के अपराध के लिये उसके पूरे परिवार को दण्ड दिया जाता था। उसका दण्ड-विधान बहुत कुछ सुअन-त्सू के विचारों से प्रभावित था। सुअन-त्सू के अनुसार मनुष्य स्वभाव से बुरा हुआ करता है। समाज में शांति एवं व्यवस्था की स्थापना के निमित्त उसे आतंकित करना आवश्यक है। यदि उसके ऊपर कठोर नियंत्रण न स्थापित किया जाय, तो समाज में अव्यवस्था फैलती है। ऐसे विचारों ने शिह-ह्वांग-टी के समय में अनेक क्रूर, कठोर एवं अन्यायपूर्ण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कानूनों तथा अत्याचारों को जन्म दिया। इस प्रकार के कठोर कानूनों के द्वारा वह जनता से अपनी आज्ञा का पालन कराना तथा उनके ऊपर अपनी महानता का प्रतिपादन करना चाहता था।

आर्थिक नीति—शिह-ह्वांग-टी ने कृषकों की दशा में सुधार करने की चेष्टा की। इस दिशा में उसने दो महत्त्वपूर्ण कार्य किये। पहला कार्य भूमि के ऊपर कृषकों का व्यक्तिगत अधिकार घोषित करना था। दूसरा कार्य सिंचाई की सुविधा के निमित्त नहरों का निर्माण करना था। इन दोनों योजनाओं के कारण पहले की अपेक्षा कृषि में अधिक उन्नति हुई। कृषकों ने सुविधा का अनुभव किया, अतएव खेती के विकास में उन्होंने अधिक से अधिक योग दिया। आंतरिक व्यापार के विकास के निमित्त उसने प्राचीन राजमार्गों की मरम्मत एवं नवीन राजमार्गों का निर्माण कराया। ये सभी राजमार्ग केन्द्र को साम्राज्य के विभिन्न भागों से मिलाते थे। उसने सामन्तों के द्वारा निर्मित उन स्थानीय दीवालों को नष्ट करा दिया, जो कि साम्राज्य की आर्थिक एकता में बाधक सिद्ध हो रहे थे। उसके पूर्व विभिन्न स्थानों में विभिन्न नाप एव तौल का प्रयोग होता था। इससे लोगों को बड़ी असुविधा होती थी। उसने समस्त राज्य में एक ही प्रकार के नाप और तौल के प्रयोग की आज्ञा दी। साम्राज्य-एकता की स्थापना की क्रिया में यह दूसरा कदम था।

प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियों का विनाश—इस समय कुछ ऐसी विचार-धारायें विद्यमान थीं, जो कि इसके क्रान्तिकारी परिवर्तनों के विपरीत थीं। कन्फ्यूशियस के मतावलंबी उसके सबसे प्रबल विरोधी थे। वे उसके कठोर कानूनों के विपक्ष में थे तथा शासक के नैतिक प्रभाव में विश्वास रखते थे। मोती के अनुयायी राजा के प्रति सदेच्छा के समर्थक थे। अन्य कुछ विचारक सामंतवाद के विनाश के विरोधी तथा चीन की प्राचीन परंपराओं में आस्था रखते थे। ये लोग प्राचीन पुस्तकों के आधार पर सामंत-शासन की तुलना में चिन्-शासन को अर्द्धबर्बर घोषित कर इसकी कटु आलोचना कर रहे थे। रूढ़िवादियों ने चिन्-शासन के विरुद्ध जनता में प्रचार करना प्रारंभ किया। वे प्राचीन साहित्य के बल पर यह सिद्ध करने की चेष्टा कर रहे थे कि शिह-ह्वांग-टी ने सामंतवाद का विनाश कर गलत कार्य किया था। शिह-ह्वांग टी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने देखा कि साम्राज्यहित में इन प्रवृत्तियों का दमन आवश्यक है। उसके प्रधान मंत्री लू सी ने उसे इस कार्य में और प्रेरित किया। उसने इस सम्राट् को सुझाव दिया कि केवल 'मेम्वायर्स ऑफ चिन' को छोड़ कर सभी प्राचीन राज्यों के इतिहास को जला डाला जाय तथा जो व्यक्ति उसे छिपाने की चेष्टा करें उन्हें कटवा दिया जाय। उसके इस सुझाव को सम्राट ने मान लिया। राजकीय पुस्तकालय से ऐसे ग्रंथ निकाल कर नष्ट कर डाले गये, जो कि सामान्तों के प्रशंसकों के द्वारा रचे गये थे। अनेक प्राचीन ग्रंथों को उसने जलवा दिया। प्रतिक्रियावादियों के शरीर को खुले बाज़ार में लटका देने की धमकी दी गई। राजकीय घोषणा के उपरान्त तीस दिन के भीतर जिन लोगों ने वर्जित साहित्य को नहीं जलाया, उनसे 'महान दीवाल' ('ग्रेट वाल') के निर्माण में बेगार लिया गया। प्राचीन पुस्तकों में केवल उन्हीं को सुरक्षित रखा गया, जिनके वर्णन-विषय चिकित्साशास्त्र, ज्योतिष तथा कृषि आदि थे। इस विषय में राजकीय घोषणा का पालन कड़ाई के साथ किया गया। लगभग ४६० परंपरावादी व्यक्ति एक ही दिन में मार डाले गये। बहुत से नगरों में प्राचीन विचारधाराओं के समर्थक विद्वानों के घर जला दिये गये। अध्यापन-कार्य अब केवल वे ही व्यक्ति कर सकते थे, जो कि चिन्-शासन के भक्त थे। प्राचीन संस्थाओं से जनता की स्मृति को लुप्त करने की चेष्टा की गई।

अन्य कार्य—यह सम्राट् साम्राज्य के विभिन्न भागों में दौड़ा करता था। इससे प्रत्येक प्रान्त में होने वाली घटनाओं के विषय में उसे पूर्ण जानकारी रहती थी। वह शासन के मामलों में बड़ा ही परिश्रमी था। उसने बर्बर जातियों से चीन की सुरक्षा के निमित्त प्रसिद्ध महान् दीवाल (ग्रेट वाल) के निर्माण को पूर्ण कराया। इसके निर्माण में असंख्य मजदूर लगाये गये। यह दीवाल लगभग १५०० मील लम्बी थी। इसमें स्थान-स्थान पर असीरियन शैली में विशाल दरवाज़े लगाये गये थे। यह विश्व का एक महान् निर्माण माना जाता है। इसकी गणना संसार की आश्चर्यजनक कृतियों में की जाती है। वाल्टेयर का तो यहाँ तक कहना है कि उनकी समता में मिश्र के पिरेमिड तुच्छ एवं अनावश्यक निर्माण प्रतीत होते हैं। दस साल के घोर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिश्रम के अनन्तर इसकी रचना पूरी हुई थी। इसके बन जाने के कारण चीन सदियों तक बाह्य आक्रमणों से सुरक्षित था। हूण-आक्रमण की बाढ़ को इसने रोम की ओर मोड़ दिया था। इतिहासकारों का कथन है कि रोम के विनाश का कारण इसी दीवाल का निर्माण था।[1] उसने अपने काल में कुछ नवीन कर लगाये; उदाहरणार्थ नमक-कर तथा लोहे के ऊपर कर। इन करों के लगने के कारण उसकी लोकप्रियता के ऊपर महान् कुठाराघात पहुँचा। उसके पहले विभिन्न राज्यों में गोलाकार, वर्गाकार तथा विभिन्न आकारों के सिक्के प्रचलित थे। कुछ स्थानों पर छुरा तथा कुल्हाड़ी के लघु आकार से मिलती-जुलती शक्लों वाली मुद्रायें व्यवहार में लाई जाती थीं। उसने ऐसे सिक्कों को शीघ्र वापस ले लिया और उनके स्थान पर संपूर्ण राष्ट्र में ऐसी मुद्राओं को जारी किया जिनके बीच में एक गोल सूराख हुआ करती थी। यह कदम साम्राज्य की एकता के हित में था। इस सम्राट के पहले चीन में विभिन्न लिपियाँ प्रचलित थीं। इनमें अक्षरों की बनावट काफी जटिल थी। एक प्रान्त के निवासी दूसरे प्रान्त की लिपि को नहीं समझ पाते थे। राष्ट्र के एकीकरण के हित में इन्हें समाप्त कर देना उसे आवश्यक प्रतीत हुआ। उसने अपने मंत्री लि सू की सहायता से एक सरल लिपि का आविष्कार कर इसे प्रचलित किया। यह लिपि चीन में सर्वत्र प्रामाणिक एवं आदर्श घोषित की गई तथा इसका प्रयोग अधिकाधिक व्यापक किया गया। इसके प्रचार के कारण साम्राज्य की एकता की स्थापना में प्रचुर सहयोग मिला। उसके सेनापति मेंग तियेन ने एक नवीन लेखनी का आविष्कार किया। इसके पहले वहाँ बाँस के टुकड़ों से लेखनी का कार्य लेते थे।

साम्राज्य का आकारवर्द्धन—चीन में राजनीतिक एकता स्थापित करने के अनन्तर इस देश की सीमा के बाहर भी उसने अपने साम्राज्य को बढ़ाने की चेष्टा की। उसने २२१ ई० पू० में चेकिआंग को जीता, जो कि इंडोचीन के पास स्थित है। यहाँ पहले गीच जाति के लोगों का राज्य था। आधुनिक क्वांग तुंग के औपनिवेशीकरण का श्रेय उसी को दिया

१ "Rome fell because China built a wall"—Will Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जाता है। उससे ज़ेच्वान् में भी चीन का उपनिवेश स्थापित करने की चेष्टा की। उत्तर-पश्चिम में उसकी सेना ने सियंग नू नामक एक जाति को परास्त किया, जो कि तातार तथा तुर्कों के समान बर्बर एवं शक्तिशाली समझी जाती थी। इनको परास्त करना एक कठिन कार्य था। सियंग नू जाति को हरा कर उसने साम्राज्य की सीमा कांसू में लनचाऊ तक बढ़ा ली। कोरिया के स्थानीय राजवंश ने उसकी प्रभुता को स्वीकार कर ली। इस विशाल साम्राज्य में उसने २१० ई० पू० तक राज्य किया। साम्राज्य की घटनाओं के वास्तविक ज्ञान के निमित्त वह चतुर्दिक दौड़ा करता था और इस मामले में वह अथक परिश्रमी था। इस कारण दूर भागों के पदाधिकारियों के ऊपर भी उसका कठोर नियंत्रण रहता था। साम्राज्य में अशान्ति एवं अराजकता की संभावनाओं को दबाने के निमित्त उसने पूर्ण व्यवस्था की थी।

धार्मिक विचार—वह अपने जीवन के अन्तिम दिनों में काफी धार्मिक एवं प्रचलित अंधविश्वासों में आस्था रखने लगा था। वह विभिन्न देवी देवताओं की आराधना के निमित्त बलिदान चढ़ाता एवं विविध धार्मिक अनुष्ठान करता था। उसके अनुसार अपने कल्याण के निमित्त मनुष्य के लिये दैवी शक्तियों की आराधना आवश्यक है। वह जादू, मंत्र एवं आधि-भौतिक तत्त्वों में विश्वास रखने लगा था। वह मृत्यु से सर्वदा भयभीत रहता था। यही कारण है कि वह अपने निधन एवं अंत्येष्ठि संस्कार की बात करने से घबड़ाता था। तत्कालीन किसी प्रचलित अंधविश्वास के अनुसार वह यह समझता था कि पर्वतशृंगों पर अमर प्राणी रहते हैं तथा वे धरातल के मानव को मृत्यु पर विजय का भेद बता सकते हैं। अतएव वह नाना औष-धियों के चक्कर में पड़ा रहता था जो कि उसे अमरत्व प्रदान कर सकती थीं। उसने ५०० युवकों और ५०० युवतियों के एक मंडल को इस प्रकार की औषधि का पता लगाने के निमित्त पूर्वी समुद्र की ओर भेजा था। कहा जाता है कि वे लोग जाकर जापान में बस गये थे। उसने एक दूसरा मंडल पीत सागर में एक द्वीप का पता लगाने के निमित्त भेजा, जिसके विषय में लोगों का विश्वास था कि वहाँ मनुष्य को दीर्घ जीवन प्रदान करने वाली

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जड़ी-बूटियाँ मौजूद थीं।

शिह-ह्वांग-टी की मृत्यु तथा चिन वंश का अधःपतन—शिह-ह्वांग-टी के शासन में कुछ दोष भी थे, जिसका अनुभव वह स्वयं करने लगा था। उसकी कुछ नीतियाँ तानाशाही के सिद्धान्त पर अवलंबित थीं। इस कारण वह जीवन के अंतिम दिनों में अपनी सुरक्षा के विषय में बहुत सशंकित रहता था। चन्द्रगुप्त मौर्य की भाँति वह अपने सोने के कमरे को बदल दिया करता था। उसके काल में नागरिक की स्वतंत्रता छीन ली गई थी। राज्य-हित की समता में व्यक्तिहित नगण्य था। उसके राज्य-काल में बहुतों से बेगार लिया गया। अनेक व्यक्तियों को सेना में बलपूर्वक भर्ती किया गया। अनेक लोगों को उसने चीन छोड़ कर उपनिवेशों में बसने के लिये बाध्य किया था। उसका आतंक इतना अधिक था कि उसके शासन की तुलना यूरोप के किसी भी तानाशाही शासन से की जा सकती है। शिह-ह्वांग-टी के जीवन-काल के अंतिम वर्षों में उसकी हत्या के लिये भी चेष्टा की गई थी। कई बार षडयंत्रकारी पकड़े गये। उसने उनको अपने हाथों से बड़ी क्रूरता के साथ काट डाला। वह अपनी सुरक्षा के निमित्त तलवार एवं अन्य हथियार सर्वदा अपने पास रखता था। सिकन्दर की भाँति उसने अपनी वंश-परंपरा को स्थापित रखने के निमित्त अपनी दैवी उत्पत्ति का प्रचार किया। उसके समकालीन लेखकों का कथन है कि उसकी क्रूरता एवं विलासिता उसके जीवन के अंतिम दिनों में और भी बढ़ गई थी। जब २१० ई० पू० में उसकी मृत्यु हुई, उस समय जन-विद्रोह की आशंका के कारण अपने प्रधान मंत्री लि सू के द्वारा वह गुप्त ढंग से अपनी राजधानी में लाया गया। उसके उत्तराधिकारी पुत्र ने उसके शव के ऊपर एक बड़ी समाधि बनवाई। कहा जाता है कि उसके शव के साथ कई जीवित सुन्दरियाँ भी गाड़ दी गईं। ऐसा अंधविश्वास था कि वे लोकोत्तर जीवन में उसका साथ देंगी। समाधि की छत के ऊपर उसके साम्राज्य का एक मानचित्र भी उसकी स्मृति को अक्षुण्ण बनाने के निमित्त अंकित किया गया। उसकी मृत्यु के अनन्तर चिन् वंश का राज्य स्थायी न रह सका। उसके परिवर्तन इतने क्रांतिकारी तथा कानून इतने कड़े थे कि इस राज्य की चिरन्तनता असंभव सिद्ध हुई।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विद्रोह—२०६ ई० पू० में **चेंग-शेंग** तथा **वु-कुआंग** नामक दो व्यक्तियों ने चिन्-वंश के विनाश के निमित्त प्रयत्न करना प्रारंभ किया। उन्हें सबसे बड़ी सहायता पहले कृषकों से मिली, क्योंकि कर के बोझ तथा बेगारी लिये जाने के कारण वे चिन्-वंश के शासन से ऊब चुके थे। उन्होंने बड़ी संख्या में सेना में भर्ती होना प्रारंभ किया और इस प्रकार एक बड़ी सेना तैयार हो गई। इसी समय समान्तों ने देखा कि अपने पूर्व प्रभाव तथा अपने अधिकारों को पुनः स्थापित करने के लिये यह अच्छा अवसर था। अतएव वे भी कृषकों के साथ सम्मिलित हो गये। उन्होंने चेंग-शेंग तथा वु-कुआंग को बारी-बारी से धोखे से मार डाला, क्योंकि वे लोग इस विद्रोह को मुख्यतया जनविद्रोह बनाने के पक्ष में थे और सामन्तों की प्रधानता को इससे हटाना चाहते थे। इन दोनों नेताओं के हटते ही इस विद्रोह का वास्तविक नेतृत्व सामन्तों के हाथ में आ गया। २०७ ई० पू० तक चीन के सामन्तों ने चिन वंश का संहार कर डाला। इसके अनन्तर चीन के इतिहास में एक नवीन राजवंश के शासन का समारंभ हुआ, जो इतिहास के पृष्ठों में हन् वंश के नाम से प्रसिद्ध है।

हन् वंश (२०६ ई० पू०-२२० ई०)—चीन के इतिहास में हन्-वंश की गणना समृद्धिशाली, महत्त्वपूर्ण एवं रचनात्मक युगों में की जाती है। इस वंश के नरेशों ने लगभग ४२६ वर्षों तक राज्य किया। इतने दीर्घकालीन शासन के उदाहरण विश्व-इतिहास में कम ही उपलब्ध होते हैं। चिन् वंश के काल में चीन के उत्थान की जो क्रिया प्रारंभ हुई, वह हन्-वंश के काल में अपने अभ्युदय की पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी। इस समय सभ्यता एवं संस्कृति तथा शासन-संस्थाओं का जो विकास हुआ, वह चीन के इतिहास में स्वर्णाङ्कित है। यह काल निस्संदेह विश्व-सभ्यता का एक वैभवशाली, गौरवान्वित तथा चिरस्मरणीय युग था।[1] हन् वंश के राज्य-काल का वर्गीकरण दो भागों में किया जा सकता है। (१) पूर्व हन्-वंश का शासन-

१ "The Han dynasty marks one of the most splendid periods in Chinese History. —Burns

काल (२०६ ई० पू०-८ ई०) तथा (२) उत्तर हन् वंश का शासनकाल (२३ ई० २२० ई०)।

'पूर्व हन् वंश का काल'

ल्यू पंग (२०६ ई० पू०–१९५ ई० पू०)—इस वंश की स्थापना ल्यू पंग नामक व्यक्ति ने की थी, जिसका जन्म एक निम्न कुल में हुआ था। उसने एकमात्र अपनी योग्यता, कार्यपरता तथा विलक्षण क्षमता के बल पर अपने जीवन में आशातीत उन्नति की थी। चिन् वंश के राज्य-काल में वह अपने जिले में एक साधारण कर्मचारी था और इस कारण वह अपनी स्थिति से असन्तुष्ट था। उसमें एक सुयोग्य संगठनकर्ता के सारे गुण मौजूद थे। शिह-ह्वांग-टी की मृत्यु के ठीक पश्चात् राज्यसत्ता को आत्मसात् करने के निमित्त उसने अपने अथक परिश्रम के द्वारा एक विशाल सेना सुसंगठित की। उसके सैनिक उत्साहयुक्त, युद्धकला में परम दक्ष तथा विजय की भावना से ओत-प्रोत थे। इसी समय पूर्वी चीन में सियंग यू नामक प्रभावशाली व्यक्ति राज्यसत्ता को पाने के निमित्त अनवरत प्रयास कर रहा था। इस भाग से चिन् वंश के शासन को समाप्त कर वह सामंतवाद की पुनः स्थापना में संलग्न हो गया। वह ल्यू पंग को सबसे सशक्त प्रतिद्वन्द्वी तथा अपने उद्देश्य की पूर्ति में बाधक सिद्ध हुआ। परिणामतः दोनों में एक तुमुल युद्ध छिड़ा, जिसमें प्रारम्भिक सफलता सियंग यू को प्राप्त हुई। उसने ल्यू पंग को परास्त कर उसके पिता एवं पत्नी को बंदी बना लिया। पर ल्यू पंग अपनी इन परिस्थितियों से अधीर न हुआ। उसने साहस से कार्य लिया। उसके सैनिक भी उसके परम भक्त तथा अधिक संगठनबद्ध थे। उन्होंने अपने रणचातुर्य एवं पारस्परिक सहयोग के बल पर सियंग यू को कई युद्धों के अनन्तर पूर्ण रूप से परास्त कर दिया। उसने अपनी अंतिम विफलताओं एवं असहाय स्थिति के कारण हताश होकर आत्म हत्या कर ली। इस घटना के अनन्तर चीन-साम्राज्य की बागडोर पूर्ण रूप से ल्यू पंग के हाथों में आ गई। विश्व के इतिहास में उसकी गणना उन व्यक्तियों में की जाती है, जिन्होंने उत्साह एवं योग्यता के बल पर सम्राट्-पद प्राप्त कर उसे गौरवान्वित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किया था।

ल्यू पंग चीन के इतिहास में काओत्सू तथा काओती के नाम से भी प्रसिद्ध है। कुशल सैनिक एवं नायक होने के अतिरिक्त वह एक प्रवीण शासक भी था। निम्न स्तर से ऊपर उठने के कारण जन-साधारण के प्रति उसकी सहानुभूति का होना स्वाभाविक ही था। उसने व्यक्तिगत व्यवहार तथा शासन-नीतियों से यह सिद्ध कर दिया कि वह जनता का शासक था। वह इस बात को बराबर कहा करता था कि सम्राट् होने का उसे कोई गर्व नहीं था। उसने अपने पूर्व-विरोधियों को क्षमा-प्रदान कर उन्हें अपनी ओर मिला लिया। वह इस बात को भली-भाँति जानता था कि चिन-वंश का निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी शासन तथा लिगलिस्ट विचारधारा का समर्थन समय एवं परिस्थितियों के प्रतिकूल था। अतएव प्रारम्भ में उसने चिन् वंश के कठोर कानूनों को शिथिल कर उदार शासन की स्थापना की। उसने दरबारी शिष्टाचार के प्रतिबन्धों तथा व्यक्तिगत मामलों में राजकीय हस्तक्षेप को अधिक से अधिक हटाने की चेष्टा की। वह कन्फ्यूशियस के इस सिद्धान्त में विश्वास करता था कि शासक का वास्तविक कर्त्तव्य जनता के हित का संरक्षण है। सम्राट को अपने शासन एवं व्यक्तिगत उदाहरण से यह सिद्ध कर देना चाहिये कि प्रजा की भलाई उसकी कृतियों का प्रधान लक्ष्य है। वह कन्फ्यूशियस मतावलम्बियों का सम्मान करता था। उसका मुख्य मंत्री लू चिया कन्फ्यूशियस मत का अनुयायी था। लू चिया कहा करता था कि यदि चिन् वंश के सम्राटों ने कन्फ्यूशियस के आदर्शों के अनुसार शासन किया होता, तो इस राजवंश का इतना शीघ्र अतःपतन न होता। कहा जाता है कि अपने जीवन के अंतिम दिनों में ल्यू पंग ने कन्फ्यूशियस की समाधि पर श्रद्धांजलि अर्पित की थी।

उसने कन्फ्यूशियस मतावलम्बी विद्वानों की सहायता से दरबारी शिष्टाचार एवं शासन-सम्बन्धी नियमों की एक उदार संहिता प्रस्तुत की थी। उसने १९६ ई० पू० में यह आवश्यक कर दिया था कि उच्च पदों पर नियुक्तियाँ एकमात्र योग्यता के ही आधार पर की जायँ। वह कन्फ्यूशियस के उस सिद्धान्त में विश्वास करता था, जिसके अनुसार शासन का संचालन योग्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एवं उच्च आचरण वाले व्यक्तियों के द्वारा परम आवश्यक है।

उसने धार्मिक सहिष्णुता के सिद्धान्त का समर्थन करते हुये अपनी बुद्धिमत्ता एवं दूरदर्शिता का परिचय दिया। उसने अपनी राजधानी वेई नदी के सुरम्य तट पर स्थित चंगम के नगर में स्थानांतरित की। यह शिह-ह्वांग-टी के द्वारा स्थापित राजधानी के समीप विद्यमान था। इसमें प्रायः सभी धर्मों से सम्बन्धित देवालय एवं पुजारी वर्तमान् थे। उसने अपने साम्राज्य का विभाजन एक नवीन पद्धति पर किया, जिसके अनुसार संपूर्ण देश कई मंडलों में विभक्त कर दिया गया। प्रत्येक मंडल का सर्वोच्च पदाधिकारी राजकुल से सम्बन्धित व्यक्ति हुआ करता था, जो कि वंग की उपाधि धारण करता था। उसके कार्यों के विषय में सम्राट को गुप्त सूचना प्रदान करने के लिये राजकीय कर्मचारी हुआ करते थे। वंग की सहायता के निमित्त एक स्थानीय सेना हुआ करती थी, जिसका नायक सम्राट का कोई विश्वासपात्र व्यक्ति होता था। इस प्रकार की व्यवस्था विद्रोह तथा सम्भावित षड्यंत्रों के दमन के लिये लाभदायक सिद्ध हुई। उसने सामन्तवाद का प्रगट विरोध नहीं किया, पर भीतर से वह इसके विपक्ष में था। उसने अपने अनुयायियों को जागीरें दीं पर इन जागीरदारों के ऊपर राजकीय कर्मचारियों का बराबर नियंत्रण रहता था। अतएव वे सम्राट-हित के विपरीत कोई चेष्टा नहीं कर पाते थे। यद्यपि यह सम्राट सर्वदा सतर्क रहता था, तथापि उसके राज्यकाल के अन्तिम दिनों में विद्रोह की प्रवृत्तियाँ पनपने लगीं और इनके दमन में वह बुरी भाँति संलग्न था। यह कार्य पूर्ण करने के पूर्व ही १९५ ई० पू० में उसका देहावसान हो गया। वह अपने शासन-काल के अन्तिम वर्षों में सियंग नू नामक जाति के विरुद्ध असफल सिद्ध हुआ। इस जाति के लोग इस समय माऊ तोन नामक नेता के नेतृत्व में काफी शक्तिशाली हो चुके थे। उन्होंने शेंसी प्रान्त के उत्तरी हिस्से पर आक्रमण कर दिया। ल्यू पंग ने इस आक्रमण को रोकने की चेष्टा की पर वह पराजित हो गया। अंत में बाध्य होकर उसने माऊ-तोन के साथ समझौता किया। उसे मिलाने के निमित्त उसने उसे प्रभूत द्रव्य तथा एक सुरूपा तरुणी प्रस्तुत किया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आन्तरिक दौर्बल्य का काल (१६५ ई० पू०-१४१ ई० पू०)—ल्यू पंग की मृत्यु के पश्चात् चिन् वंश की आन्तरिक शक्ति क्षीण होने लगी। इस समय उसकी पत्नी **लू हाऊ** ने शासन की बागडोर को अपने हाथों में ले लिया। उसने अपने पुत्र हुइ टी को गद्दी पर बिठाया, जो अभी बहुत ही अल्प-वयस्क था। उसने ल्यू पंग के सबसे प्रिय पुत्र को मरवा डाला, जो कि एक वेश्या के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। हुइ टी के काल में व्यावहारिक रूप में वही शासन कर रही थी। कुछ ही काल के अनन्तर हुइ टी की मृत्यु हो गई, जिसके पश्चात् १८० ई० पू० तक शासन-सूत्र का संचालन उसी के पर्यवेक्षण में सम्पन्न होता रहा। इस समय ल्यू पंग का **वेंग टी** नामक पुत्र सिंहासनारूढ़ हुआ। उसके काल में सुधार के लिये कुछ प्रयत्न किया गया, पर कोई विशेष सफलता न प्राप्त हो सकी। उसके उपरान्त उसका पुत्र **वेन टी** सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने अपने शासन को लोकप्रिय बनाने के निमित्त करों के बोझ को हल्का कर दिया तथा दण्डविधान को सरल बनाने की चेष्टा की। पर कोई सफलता प्राप्त होने के पूर्व ही १४१ ई० पू० में उसकी मृत्यु हो गई।

वू ती (१४१ ई० पू०-८७ ई० पू०)—पूर्व हन्-वंश के नरेशों में सबसे सुयोग्य एवं प्रतिभासंपन्न वू ती माना जाता है। अन्य राजवंशों के वू ती नामधारी शासकों से इसका पृथकत्व स्थापित करने के लिये इसे हन् वू ती (अर्थात् हन्-वंशी सम्राट वू ती) कहा जाता है। इसके काल से इस वंश के इतिहास में युगान्तर का प्रवर्तन होता है। इस समय हन्-वंश की समृद्धि अपने उत्कर्ष के चरम विन्दु पर पहुँच चुकी थी। राज्याभिषेक के समय (१४१ ई० पू० में) उसकी अवस्था केवल १६ वर्ष की थी। पर इतनी कम अवस्था के होते हुये भी उसने शासन-कार्य एवं साम्राज्य का उत्तरदायित्व बड़ी योग्यता के साथ सँभाला। उसने लगभग ५४ वर्षों तक (८७ ई० पू० तक) शासन किया। इस वंश के नरेशों में सबसे अधिक समय तक शासन का सुअवसर इसी को उपलब्ध हुआ था। उसका दीर्घकालीन शासन सम्राज्य-विस्तार, शासन-संगठन तथा सांस्कृतिक विकास के लिए विख्यात है। उसने राज्य-सीमा का प्रसरण उत्तर-पश्चिम, उत्तर-पूर्व तथा दक्षिण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिशाओं में किया।

विजयें—उत्तर-पश्चिम में उसकी सबसे महत्त्वपूर्ण विजय सियंग नू नामक जाति की पराजय थी। इस जाति के लोग अर्द्ध-बर्बर तथा काफी शक्तिशाली थे। शिह-ह्वाँग-टी के समय में ये लोग कुछ काल के लिये दबा दिये गये थे, पर बाद में चलकर चिन्-वंश की घटती हुई शक्ति का लाभ उठा कर इन लोगों ने अपनी शक्ति फिर बढ़ा ली और फलतः ये लोग हन्-राज्य की सत्ता के लिये भय का एक सबल कारण सिद्ध होने लगे। इन लोगों ने यू ची जाति को परास्त कर दिया। इस पराजय के फलस्वरूप इस जाति के लोगों ने अपने मूलस्थान को छोड़ कर जीविका की खोज में पर्यटन करते हुये कई नवीन प्रदेशों को जीत लिया। इस जाति की एक शाखा ने अपनी सत्ता उत्तर-पश्चिम भारतवर्ष में स्थापित की, जो कि कुषाण-वंश के नाम से प्रसिद्ध है। वू ती ने साम्राज्य-सुरक्षा के हित में सियंग नू जाति को पराजित करना अत्यन्त आवश्यक समझा। उसने इस उद्देश्य की पूर्ति में युद्ध एवं कूटनीति दोनों से कार्य लिया। उसका चंग चियेन नामक कर्मचारी व्यवहार-कुशल एवं राजनीतिज्ञ था। चीनी साधनों के अनुसार वू ती ने इसे अपना राजदूत बना कर यूची जाति के लोगों के पास सियंग नू के विरुद्ध उनकी सहायता प्राप्त करने के निमित्त भेजा था। सियंग नू के विरुद्ध उसने तीन उल्लेखनीय युद्ध किये। पहला युद्ध १२७ ई० पू० में हुआ। इस समय हन्-सेना का नायक वेइ चिंग नामक व्यक्ति था। उसके सुयोग्य नेतृत्व में हन्-सेना ने सियंग नू को परास्त कर उसे आर्दोस की सीमा के बाहर भगा दिया। इस प्रकार उसने वू ती की राजधानी चंगम को उनके खतरे से सुरक्षित किया। इस पराजय के कारण सियंग नू की शक्ति क्षीण हो गई तथा उनके हाथों से काफी चरागाह-भूमि निकल गई। इस जाति के साथ वू ती का द्वितीय युद्ध १२१ ई० पू० में हुआ। इसमें हन्-सेना का नायक हुओ-चु-पिंग नामक व्यक्ति था। इस समय चीन की सेना में हजारों अश्वारोही सम्मिलित थे। इस युद्ध में सियंग नू लोग परास्त कर कांसू की पश्चिमोत्तर सीमा के बाहर भगा दिये गये और उनके हाथ से काफी भूमि निकल गई। तृतीय युद्ध ११६ ई० पू० में हुआ। इस समय चीन की सेना के नायक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वे चिंग तथा हुओ-चु-पिंग दोनों ही थे। इन दोनों के सुयोग्य नेतृत्व में सियंग नू पूर्ण रूप से परास्त कर दिये गये तथा इस विजय के फलस्वरूप ओर्दोस की पश्चिमी भूमि के ऊपर भी हन्-आधिपत्य स्थापित हो गया।

उत्तर-पश्चिम की दिशा में वू ती ने कतिपय और महत्त्वपूर्ण विजयें की थीं। उसने टेरिम की घाटी तथा इली में रहने वाली कुछ जातियों को परास्त कर दिया। उसकी इस विजय का सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि कुछ नये रास्ते मिल गये जिनके कारण पाश्चात्य देशों के साथ चीन का संपर्क अधिक बढ़ गया। इस समय प्रेम-संबन्ध बढ़ाने के निमित्त चीन तथा बैक्ट्रिआ, पार्थिआ एवं सोग्डियाना के बीच दूतों का आदान-प्रदान हुआ। इन देशों को चीन से कभी-कभी एक ही वर्ष के भीतर सब मिला कर दस दूत-मंडल भेजे गये थे। मार्ग में दूतों का साथ देने एवं उन्हें सहायता पहुँचाने के निमित्त सैकड़ों व्यक्ति हुआ करते थे। वे लोग इन प्रदेशों के शासकों के पास पहुँचाने के लिये सिल्क तथा धातुनिर्मित वस्तुयें लाते थे।

इस समय जैक्सार्टिज़ की घाटी में वर्तमान फर्घना का स्थानीय राजवंश काफी शक्तिशाली हो चुका था। चीन के नरेश यहाँ के घोड़ों के बड़े शौकीन थे। वू ती ने वहाँ के शासक से कुछ घोड़े भेंट के स्वरूप में माँगे, जिनको इसने देने से इन्कार कर दिया। उसने चीनी राजदूत को, जो कि यह प्रस्ताव लेकर आया था, मरवा डाला। उस पर वू ती की कोपाग्नि प्रज्वलित हो उठी। उसने **ली-कुअंग-ली** के नेतृत्व में एक सेना इस नरेश को जीतने के निमित्त भेजा, जिसमें एक लाख व्यक्ति सम्मिलित थे। फर्घना का रास्ता बहुत ही कठिन था। वहाँ पहुँचने के लिये पहाड़ों एवं रेगिस्तानों के बीच से होकर लगभग चार हजार मील की दूरी तय करनी पड़ती थी। लगभग आधे सैनिक भूख-प्यास और थकावट के कारण रास्ते में ही मर गये। इस बार ली-कुअंग-ली फर्घना के स्थानीय शासक के द्वारा हरा दिया गया। पर वू ती दृढ़ संकल्प वाला व्यक्ति था। उसने ली-कुअंग-ली को पुनः एक बड़ी सेना के साथ उसके विरुद्ध लड़ने के निमित्त भेजा। इस बार इस सेनानायक को सफलता उपलब्ध हुई। वह उसे बड़ी कठिनाई के साथ परास्त कर सका था। उसकी यह विजय काफी महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। कतिपय इतिहासकारों का तो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यहाँ तक कथन है कि इसकी तुलना रोम के किसी भी विजय के साथ की जा सकती है। इसके उपरांत वू ती ने यहाँ एक ऐसे व्यक्ति को गद्दी पर बिठाया, जिसको कि वह पहले से ही यहाँ सिंहासनारूढ़ करना चाहता था। वह व्यक्ति सर्वदा के लिये वू ती का सहायक बन गया और उसकी अधीनता में वहाँ राज्य करने लगा। उसने समय-समय पर बहुमूल्य उपहारों के साथ कई राजदूत वू ती के पास भेजे थे। इस विजय के कारण पश्चिमी देशों को जाने वाले मार्ग और खुल गये। परिणामस्वरूप वहाँ के शासकों ने चीन के साथ अपना संपर्क अधिक बढ़ाने की चेष्टा की। पार्थिआ के शासक ने वू ती के पास उसके मनोविनोद के लिये नट एवं जादूगरों के एक दल को भेजा था।

इसी समय वह उत्तर-पूर्व की दिशा में भी अपने साम्राज्य का विस्तार कर रहा था। मंचूरिया के दक्षिणी तथा कोरिया के उत्तरी भाग में शासन करने वाला राजवंश काफी शक्तिशाली हो चुका था। इसकी राजधानी पिंगयंग में विद्यमान थी जिसका एक द्वितीय नाम चाओहसियेन भी था। यह राजवंश पहले चीन की अधीनस्थता स्वीकार करता था, पर वू ती के काल में इसने अपनी यह स्थिति मानने से इन्कार कर दिया। वू ती को उभाड़ने के लिये इतना पर्याप्त था। उसकी सेना ने इसे परास्त कर उसके द्वारा शासित भू-भाग (मंचूरिया का दक्षिणी तथा कोरिया का उत्तरी हिस्सा) को हन्-साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। इस विजय के फलस्वरूप इन भागों में चीनी सभ्यता का प्रसार होने लगा। उसने १०८ ई० पू० में पिंगयंग में एक समृद्धिशाली उपनिवेश स्थापित किया। चतुर्थ शताब्दी के प्रारंभिक भाग तक यह चीन के प्रभाव-क्षेत्र के अंतर्गत था। यहाँ के उत्खनन में चीनी सभ्यता की छाप के पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हुये हैं। इतिहासकारों का कहना है कि प्राचीन काल में इसी प्रदेश के माध्यम से चीनी सभ्यता का प्रसार जापान में हुआ था।

दक्षिण में भी उसने अपने साम्राज्य को विस्तृत करने की चेष्टा की। यांगट्सी तथा अन्नाम के दक्षिण में रहने वाली जातियाँ ल्यू-पंग के काल में हन् वंश की अधीनता स्वीकार करती थीं पर उसके उत्तराधिकारियों के काल में उनकी दुर्बलता का लाभ उठा कर उन्होंने अपना संबन्ध-विच्छेद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थापित किया। फलतः वू ती ने इनके राज्यों को जीतने की योजना बनाई। सबसे पहले उसने आधुनिक चेकिआंग के दक्षिणी भाग में वर्तमान एक राज्य को जीता। उसके अनन्तर आधुनिक फुकियेन में एक छोटा सा राज्य था जिसको इसने सरलता के साथ जीत लिया। उसकी दक्षिण की विजयों में नन यूयेह की विजय विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह प्रदेश उपजाऊ एवं साधन-संपन्न था। वहाँ पर शिह-ह्वांग टी के एक पदाधिकारी ने चिन् वंश के अधः-पतन के पश्चात् एक राज्य की स्थापना की थी। कुछ काल तक यह शासक हन् वंश की अधीनता स्वीकार करता था पर कालान्तर में उसने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी। इसकी राजधानी कैन्टन में प्रतिष्ठित थी। नन यूयेह को जीतने के कारण आर्थिक दृष्टि से उसका बहुत बड़ा लाभ हुआ। इस नवविजित प्रदेश में वू ती ने नहरों का निर्माण कर कृषि का विकास किया। क्विचाऊ तथा यून्नन में वर्तमान लघु राज्य भी इसके काल में जीत लिये गये। इन विजयों के कारण चीन-साम्राज्य का आकार बहुत बड़ा हो गया। विशालता की दृष्टि से कुछ इतिहासकारों ने इसकी तुलना रोम-साम्राज्य से की है।[१] वू ती की विजयों का सबसे बड़ा रहस्य उसका सैन्य संगठन तथा नवीन रण-पद्धतियों को अपनाना था। चिन् वंश के समय में रथ-सेना को प्रधानता दी जाती थी। पर इसके समय में घुड़सवार सेना को प्राधान्य दिया जाने लगा, जो अपनी गतिशीलता एवं पैतरेबाजी के कारण शत्रु-सेना को चमत्कृत कर देती थी। वू ती के समय के कुछ पहले पश्चिम में रोम-साम्राज्य का विस्तार किया गया था तथा उसका राज्य इस साम्राज्य के आकार से कोई लघु नहीं था।

आन्तरिक नीति—इस नरेश में एक कुशल शासक के सभी अपेक्षित गुण विद्यमान थे। उसके शासन-सुधारों का प्रधान लक्ष्य केन्द्रिय शक्ति को सुदृढ़ करना था। वह सामन्तवाद एवं उच्च कुल की महत्ता का विरोधी

१. "The Han Empire was now not far from the size of that which the Roman Republic had recently been building in the Mediteranian world". — --Latourette.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था। वह कहता था कि इस प्रथा के कारण साम्राज्य की एकता, सुव्यवस्थित शासन-संचालन तथा सम्राट की शक्ति के ऊपर घातक प्रभाव पड़ता है। अतएव नियुक्तियों के विषय में जन्म को महत्ता न देकर उसने योग्यता को प्रधानता देना स्वीकार किया। उसके समय में अधिकतर निम्न कुलों के लोग अपनी योग्यता के कारण उच्च पदों पर नियुक्त किये गये। वू ती ने कर्मचारियों को उनकी सेवाओं के लिये पुरस्कार देना प्रारंभ किया। सुयोग्य कर्मचारियों को चुनने के निमित्त उसके काल में प्रतियोगिता-परीक्षायें हुआ करती थीं। चीन में यह पद्धति इस नरेश के काल में पहली बार प्रारंभ की गई थी। यदि उसके उत्तराधिकारियों ने अपने काल में भी प्रतियोगिता-परीक्षाओं को जारी रखा होता, तो इस वंश का शासन संभवतः अधिक चिरस्थायी होता। इसने अपनी राजधानी में एक प्रशिक्षण विद्यालय खोला, जिसमें चुनाव के उपरांत कर्मचारियों को शासन-विषयक व्यावहारिक शिक्षा दी जाती थी। वू ती का यह सुधार कालान्तर के नरेशों के लिये महान् आदर्श था। उसने प्रान्तीय शासन को भी सुदृढ़ करने की चेष्टा की। उसने राज्यपालों (वंग) की सहायता के लिये योग्य कर्मचारियों की नियुक्ति की। वे राज्यपाल के कार्यों के विषय में सम्राट को पूरी सूचना देते थे। उसने एक नया कानून बनाया, जिसके अनुसार पिता की मृत्यु के अनन्तर उसकी संपत्ति उसके सभी पुत्रों में विभाजित की जाती थी। इस कारण बड़ी रियासतें समाप्त हो गईं जिनकी सत्ता सम्राट् के हित में घातक सिद्ध हुआ करती थी।

उसने लिगलिस्ट विचारकों को अपने शासन में कोई स्थान नहीं दिया। उसके राजत्व-संबन्धी आदर्श कन्फ्यूशियस के सिद्धान्तों पर अवलम्बित थे। योग्यता के चयन का सिद्धान्त उसने कन्फ्यूशियस मत से अपनाया था। उसने एक कन्फ्यूशियस मतावलम्बी को जन-शिक्षा का पर्यवेक्षक नियुक्त किया। कन्फ्यूशियस के विचारों का स्वीकरण उसके शासन की सबसे प्रमुख विशेषता थी। इसके द्वारा वह अपने पदाधिकारियों की नैतिकता को जागृत करना तथा प्राचीन आचारवादी परम्पराओं के प्रति उनके प्रेम को बढ़ाना चाहता था। कन्फ्यूशियस विचारधारा के अनुयायी कुंग सुन हुंग तथा तुंग चुंग शु उसके सबसे बड़े सलाहकार थे। कुंग सुन हुंग का जन्म एक निम्न कुल में हुआ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था पर उसकी विद्वत्ता उच्च कोटि की थी तथा उसका व्यक्तिगत जीवन बहुत ही सरल एवं पवित्र था। तुंग चुंग शु घोर नैतिकवादी था। उसका मत था कि सम्राट की कृतियों का दैवी प्रभाव उसकी प्रजा पर पड़ता है। यदि शासक अन्याय एवं पाप करता है, तो उसके राज्य में दुर्भिक्ष, अग्निदाह, जलप्लावन तथा भूकम्प आदि दैवी आपत्तियाँ आती हैं। उसकी मंत्रणा के कारण वू ती ने प्रजा-हित के संरक्षण का अधिकाधिक ध्यान रखा। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि वू ती-कालीन कन्फ्यूशियसवाद में कुछ नवीन परिवर्तन हुये। इस समय इसमें ईश्वरवाद को पहले से अधिक प्रधानता दी गई। मनुष्य के जीवन में दैवी प्रभाव की महानता को स्वीकार किया गया।

आर्थिक शासन—वू ती का शासन आर्थिक विकास के लिये भी प्रसिद्ध माना जाता है। आंतरिक शांति के कारण साम्राज्य के विभिन्न भाग व्यापारिक सूत्र में दृढ़बद्ध थे। वू ती ने व्यापार के ऊपर राजकीय नियंत्रण भी स्थापित किया। उसने विक्रय की जाने वाली वस्तुओं के मूल्य को निर्धारित किया तथा साम्राज्य के विभिन्न भागों में नाप तोल की एकता को स्थापित करने के लिये चेष्टा की। उसके समय में राज्य की ओर से भी व्यापार किया जाता था। राज्य अपने कर्मचारियों के द्वारा उत्पादन के समय सस्ते मूल्य पर वस्तुओं को खरीद लेता था तथा जब उनका भाव बढ़ता था, उस समय उन्हें अधिक मूल्य पर बेच देता था। इस प्रकार सम्राट को पर्याप्त आमदनी हुआ करती थी। नमक एवं लोहे के ऊपर राज्य का एकाधिकार था। बाहरी देशों के साथ भी व्यापार-सम्बन्ध को स्थापित करने की चेष्टा की गई। सिंचाई की सुविधा के निमित्त इसके समय में कई नहरें निकाली गईं। यातायात की सुगमता के हेतु उसके समय में नवीन राजमार्गों का निर्माण किया गया। इस प्रकार की व्यवस्था के कारण साम्राज्य के आर्थिक विकास के अतिरिक्त राजनीतिक एकता में भी सहायता उपलब्ध हुई। उसने कर वसूल करने की पद्धति में सुधार किया। इससे जनता का शोषण कम होता था। उसके समय में राजकीय अर्थागम के कुछ नवीन उपाय अपनाये गये। उदाहरणार्थ अर्थदण्ड देने पर कठोर दण्ड को शिथिल कर दिया जाता था। उसने मुद्रा-नीति में भी परिवर्तन किया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बौद्धिक उत्थान—वू ती का काल साहित्य के विकास के लिये भी प्रसिद्ध माना जाता है। इसके काल का सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ शिह ची नामक एक ऐतिहासिक संग्रह है, जिसकी रचना सू-य-चियेन ने की थी। यह वू ती का एक प्रसिद्ध दरबारी था। उसने चीन के विभिन्न भागों में पर्याप्त पर्यटन किया था। इस कारण उसे संपूर्ण साम्राज्य का एक सुंदर भौगोलिक ज्ञान था। वह विभिन्न प्रान्तों की संस्कृति से पूर्ण रूप से परिचित था। उसने उपलब्ध साधनों के आधार पर प्रारंभ से लेकर वू ती के राज्यकाल तक का चीन का इतिहास लिखा। इसमें चीन के राजाओं का जीवनचरित तथा तत्कालीन सभ्यता का प्रतिबिम्ब मिलता है। उसकी मृत्यु के अनन्तर इस ग्रंथ के कई संस्करण प्रस्तुत किये गये। इस कारण इस ग्रंथ में प्रक्षेप भी मिलते हैं। यह चीन के इतिहास का एक प्रामाणिक साधन माना जाता है। बाद के लेखकों के लिये यह ग्रंथ एक आदर्श था।

धार्मिक नीति—साम्राज्य की एकता तथा सम्राट की शक्ति को सुदृढ़ करने के निमित्त उसने धार्मिक क्षेत्र में भी सुधार लाने की चेष्टा की। उसने राज्य के राजनीतिक संगठन के अतिरिक्त धार्मिक संगठन की महत्ता का प्रतिपादन किया। उसने जनता का ध्यान इस बात की ओर आकर्षित किया कि सम्राट राज्यप्रधान होने के अतिरिक्त धर्मप्रधान भी है। उसने अपने राज्य काल में दो धार्मिक अनुष्टान किये—(१) फेंग तथा (२) शन। इन दोनों अनुष्टानों का उद्देश्य सम्राट को दीर्घजीवन तथा उसके साम्राज्य को स्थायित्व प्रदान करना था। उसने शन के द्वारा पृथ्वी देवी (ती) तथा फेंग के द्वारा आकाश देवता (तियेन) की आराधना की थी। उसका ऐसा विश्वास था कि इनके संपादन के द्वारा प्रजा का कल्याण तथा सम्राट एवं प्रजा की पारस्परिक सहानुभूति अधिक दृढ़तर संभव हो सकती है। राज्यकाल के अंतिम दिनों में उसकी आस्था ताओवाद की ओर अधिक बढ़ने लगी। इस समय शिह-हांग-टी के समान उसमें भी अंधविश्वास बढ़ने लगा था। उसने भी अमरत्व प्रदान करने वाली औषधियों का पता लगाने के निमित्त लोगों को विभिन्न दिशाओं में भेजा था।

वू ती की मृत्यु तथा प्रारंभिक हन् वंश के अधःपतन का प्रारंभ—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सफलता के वातावरण में राज्य करता हुआ वू ती ८७ ई० पू० में मृत्यु को प्राप्त हुआ। उसके उपरांत लगभग १०० वर्षों (८ ई०) तक प्रारंभिक हन्-वंश के अधःपतन की क्रिया चलती रही। इस काल के भीतर सात नरेशों ने राज्य किया, पर उनमें केवल दो को छोड़कर सभी साधारण प्रतिभा के सम्राट थे। इस काल का इतिहास अराजकता, विद्रोह, षड्यन्त्र तथा बाह्य आक्रमणों का इतिहास है। आनुवंशिक उत्तराधिकार के कारण कुछ ऐसे अयोग्य व्यक्तियों ने राज्यपद प्राप्त किया, जिनकी कृतियों के फलस्वरूप प्रथम शताब्दी ईसवी के प्रारंभ में कुछ काल के लिये इस राजवंश का शासन समाप्त हो गया।

वांग मंग (८ ई०-२३ ई०)—पूर्व हन्-वंश के अधःपतन के उपरांत चीन की राज्य-सत्ता वांग मंग नामक व्यक्ति के हाथों में आई। उसने सिन-ह्वांग-टी की उपाधि धारण की, जिसका अर्थ **नव सम्राट** होता है। चीन के इतिहासकारों ने उसे राज्य के अपहारक के रूप में चित्रित किया है, जिसने अपने लाभ के निमित्त जनहित को ठुकरा दिया था। पर यह आरोप ठीक नहीं है। इस नरेश को ये लेखक घृणा की दृष्टि से देखते थे। इसका कारण यह है कि विविध षडयंत्र एवं हत्याओं के पश्चात् उसने साम्राज्य की बागडोर को प्राप्त किया था। उसके राज्याभिषेक के समय चीन की आन्तरिक दशा काफी शोचनीय हो चुकी थी। वू ती ने भूमि की जो व्यवस्था की थी, वह उसके उत्तराधिकारियों के काल में बदल दी गई थी। उनके समय में विशाल भूमिखंड के स्वामियों का उद्गम हुआ। वे अपने स्वार्थ के लिये कृषकों को चूसते थे। दासों की दशा उनसे भी बुरी थी। स्वामी उनके शरीर का अधीश्वर था। वह अपने दास को प्राणदंड दे सकता था। इस समय राजनीतिक तथा समाजिक जीवन में पर्याप्त विषमता आ चुकी थी।

उसने अपने शासन-काल के प्रथम वर्ष में ही इस बिगड़ी हुई दशा में सुधार लाने का प्रयत्न किया। उसने वस्तुओं का मूल्य निश्चित कर दिया, जिससे कृषक सौदागरों के शोषण से बच आते थे। उसने भूमि को राष्ट्रीय संपत्ति घोषित कर दी। उसके निर्देश के अनुसार बड़ी रियासतों को समाप्त कर दिया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया तथा दास-प्रथा नष्ट कर दी गई। कृषकों में भूमि का वितरण उचित ढंग से किया गया। उसने नमक एवं लोहे के ऊपर राजकीय एकाधिकार स्थापित रखा। उसने नवीन मुद्राओं को साम्राज्य के विभिन्न भागों में प्रचलित किया। दीन व्यक्तियों को राज्य की ओर से ऋण दिया गया। इसके लिये उन्हें सूद नहीं देना पड़ता था।

वह स्वयं एक विद्वान था तथा विद्वानों का आश्रयदाता भी था। उसने प्राचीन साहित्य के अध्ययन के निमित्त संतोषजनक व्यवस्था की। उसने ल्यूसिन नामक विद्वान् की सहायता से चीन के महत्त्वपूर्ण प्राचीन ग्रंथों को संपादित किया। उसने वहाँ के संपूर्ण प्राचीन पुस्तकों की एक सूची भी प्रस्तुत की। कुछ लोगों ने उसे चीन का प्रथम इतिहासकार माना है। वांग मंग ने कई शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना की तथा विद्या के प्रसार के निमित्त उसने अन्य विविध प्रयत्न किया। वह कन्फ्यूशियस के सिद्धान्तों में विश्वास करता था। इस दार्शनिक के द्वारा प्रवर्तित विचारधारा के मानने वाले विद्वानों को उसने पर्याप्त प्रोत्साहन प्रदान किया। कहा जाता है कि इसने कन्फ्यूशियस के नाम पर बने हुये चीन के प्रसिद्ध देवालयों का जीर्णोद्धार किया तथा वहाँ उसे श्रद्धांजलि अर्पित की थी।

वांग मंग के राज्यकाल के अन्तिम वर्षों में उसका विरोध बढ़ना प्रारंभ हो गया। उसके सीमान्त प्रान्तों में विद्रोह की चिनगारियाँ फूटने लगीं, जिनको बुझाने में वह बुरी भाँति संलग्न था। इसी बीच उचित अवसर देखकर सियंग नू जाति के लोगों ने उसके साम्राज्य के पश्चिमोत्तर भाग पर आक्रमण कर दिया। पुराने भूमिपतियों ने उसका विरोध करना प्रारंभ किया, क्योंकि उनकी संपत्ति छीन ली गई थी। उसके क्रान्तिकारी परिवर्तनों के कारण धनिक वर्ग भी इससे रुष्ट था। फलतः उसके विरुद्ध इनके विद्रोह प्रारंभ हो गये, जिनका दमन करने में वह असफलीभूत सिद्ध हुआ। बहुत से प्रदेशों की जनता ने उसके शासन को अस्वीकार कर दिया। दक्षिण में टांगकिंग नामक प्रदेश स्वतंत्र हो गया। लिउस नामक व्यक्ति के नेतृत्व में साम्राज्य की विरोधी प्रवृत्तियाँ संगठनबद्ध हो गईं। परिणाम-स्वरूप २३ ई० में वह चंगन में मार डाला गया। इस असफलता के बावजूद भी वांग मंग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चीन के इतिहास में अमर है। उसके परिवर्तन एवं सुधारों की छाप चीन के विचारकों के मस्तिष्क पर चिरकाल तक विद्यमान् थी। इसकी हत्या के उपरान्त चीन में हन् वंश का शासन पुनः स्थापित हो गया। हन् वंश का यह नवीन शासन-काल चीन के इतिहास के पृष्ठों में उत्तर हन् वंश के नाम से प्रसिद्ध है।

उत्तर हन् वंश (२३ ई०-२२० ई०)—उत्तर हन् वंश का आदि नरेश कुअंग वू ती नामक व्यक्ति था। उसने उन स्थानों में, जो वांग मंग के राज्यकाल के अंतिम भाग में स्वतंत्र हो चुके थे, चीन का अधिकार पुनः स्थापित किया। उसने अपने तीस वर्षीय शासन-काल (२३ ई०-५३ ई०) में साम्राज्य में आन्तरिक शक्ति स्थापित की तथा चीन की मर्यादा का विस्तार किया। उसने अपनी राजधानी पूर्व में लोयंग में स्थानान्तरित की। यही कारण है कि इस वंश को हन् वंश की पूर्वी शाखा भी कहते हैं। उसने पूर्व हन् वंश की शासन-पद्धति के आदर्श पर अपने शासन को संगठित किया। उसके शासन-काल में साम्राज्य-विभाजन का आधार तथा शासन-संस्थाओं के नाम इत्यादि वे ही थे, जो कि पूर्व हन् वंश के काल में। वह साम्राज्य के सांस्कृतिक विकास में भी अभिरुचि रखता था। उसका दरबार विद्वानों का केन्द्रविन्दु था। उसने अपनी राजधानी में उच्च शिक्षा के विकास के निमित्त एक विद्यालय भी खोल रखा था।

चीन की आंतरिक दशा ५३ ई० से लेकर १६० ई० तक उत्तरोत्तर शोचनीय होती गई। इस अवधि के भीतर बहुत से ऐसे अयोग्य व्यक्ति सिंहासनारूढ़ हुये, जिनमें से अधिकांश अल्पवयस्क थे तथा जिनमें शासन-संगठन की कोई क्षमता नहीं थी। इनके समय में राजगद्दी की प्राप्ति के निमित्त तरह-तरह के षड्यंत्र आयोजित किये गये। राजकुल की स्त्रियाँ स्वैरिणी थीं तथा उन्होंने राजनीति में भाग लेना प्रारंभ किया। उनका एवं अंतःपुर के हिजड़ों का प्रभाव शासन के क्षेत्र में बढ़ने लगा, जिनके कुपरिणाम प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर होने लगे। इन बुराइयों एवं अवनति-चिन्हों को देखते हुये आभास होता था, मानो हन् वंश के शासन का पर्यवसान समीप है। १५० ई० के उपरान्त हिजड़ों ने अपना प्रभाव इतना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिक बढ़ा लिया कि अगले चालीस वर्षों (१९० ई०) तक साम्राज्य का शासन उन्हीं के संकेत पर चलने लगा। १९० ई० में तुंगचो नामक एक सेनानायक ने सैनिक बल पर पूरी शक्ति अपने हाथ में ले ली। उसने अपना प्रभाव इतना अधिक बढ़ा लिया कि तत्कालीन चीन-सम्राट् उसके हाथ की कठपुतलीमात्र था। उसने बड़ी क्रूरता एवं आतंक के साथ शासन करना प्रारम्भ किया। फलतः उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचे गये और १९२ ई० में वह मार डाला गया। इस समय से लेकर २२० ई० तक चीन का राजनीतिक वातावरण उसी प्रकार दूषित था। २२० ई० में साओ पेई नामक व्यक्ति ने हन्-वंश के शासन को उखाड़ कर एक नवीन राजवंश की नींव डाली, जो कि वेइ वंश के नाम से प्रसिद्ध है।

हन्-कालीन (२०६ ई० पू०-२२० ई०) सांस्कृतिक विकास

सांस्कृतिक प्रभाव—हन् वंश के दोनों कालों में चीन में राजनीतिक एकता थी तथा सांस्कृतिक दृष्टि से इस देश का प्रचुर उत्थान हुआ। विभिन्न देशों के साथ संपर्क के कारण विविध सभ्यताओं का पारस्परिक आदान-प्रदान संभव हो सका। काला सागर से लेकर चीन तक विभिन्न देशों की कलायें एक दूसरे से प्रभावित हुईं। टैरिम की घाटी में किये हुये उत्खनन हन्-काल में विभिन्न संस्कृतियों के सम्मिश्रण को प्रमाणित करते हैं। मंगोलिया में स्थित उर्ग के समीप कुछ प्राचीन कब्रों में गड़ी हुई वस्तुयें (उदाहरणार्थ मिट्टी के बर्तन, कपड़े, पत्थर और धातुओं के द्वारा निर्मित चीज़ें) हाल ही में प्रकाश में लाई गईं। उनके बनावट के ऊपर प्राचीन चीनी कला का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। चीनी संस्कृति की विशेषताओं से सियंगनू जाति के लोग भी प्रभावित हुये थे। मध्य एशिया, पश्चिमी एशिया तथा रोम में चीन के सिल्क का पर्याप्त सम्मान था। इस समय चीनवासियों ने भी वाह्य देशों की सांस्कृतिक विशेषताओं का अनुकरण किया। हन्-काल में चीन की कला पर पारसीक, यूनानी तथा बैबीलोनियन प्रभाव पड़ा। इस समय के धातुनिर्मित बर्तनों के ऊपर कुछ ऐसी आकृतियाँ मिलती हैं, जो चीन के लिये सर्वथा नई थीं। हन्-कालीन मूर्तिकला के विषय मनुष्य के लौकिक जीवन से भी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संबन्धित हैं। इस प्रथा का प्रथम प्रवेश बाह्य प्रभाव के फलस्वरूप चीन में इसी समय संभव हो सका था। इस देश के निवासियों ने बाहरी देशों से शीशे का उत्पादन करना सीखा। इस काल में विभिन्न प्रकार की मदिरायें बनाई जाने लगीं। कोरिया के एक चीनी उपनिवेश के उत्खनन में प्राप्त बर्तनों के ऊपर सुनहला अनुलेप मिलता है। इतिहासकारों का अनुमान है कि चीनवासियों ने इसका भी प्रयोग बाह्य संपर्क के कारण इसी समय सीखा था। हन् नरेश मध्य एशिया के घोड़ों की सवारी के बड़े शौकीन थे। इन घोड़ों का प्रिय भोजन अल्फल्फा नामक एक विशेष प्रकार की घास थी, जो मध्य एशिया में उगती थी। हन् शासकों ने इसे लगाना प्रारंभ किया। इन लोगों ने इस समय अंगूर की खेती बढ़ा ली। इन्होंने अपने प्रासाद के प्रांगण में विविध विदेशी वृक्षों को आरोपित किया। इस समय चीनियों का भौगोलिक ज्ञान निस्संदेह काफी विस्तृत हो चुका था। इन लोगों ने यूनानी संगीत की बारीकियों को अपना लिया था। यूनानी चिकित्साशास्त्र, दर्शन, स्थापत्य, गणित तथा ज्योतिष ने भी चीनवासियों के ज्ञान को प्रभावित किया था।

शिक्षा एवं साहित्य—हन् वंश के काल में साहित्यिक विकास के लिये एक सुंदर पृष्ठभूमि प्रस्तुत हुई। एक ही भाषा एवं लिपि के प्रयोग ने साम्राज्य के विभिन्न भागों में पारस्परिक विचार-विनिमय को सरल किया। इस काल में आन्तरिक शान्ति की स्थापना के कारण शास्त्रचिन्ता में लोगों की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई। विशेषाधिकारों से युक्त वर्ग शिक्षा-प्राप्ति में संलग्न हुआ। १२५ ई० में उच्च पदों पर नियुक्ति के निमित्त लिखित परीक्षायें ली जाने लगीं, अतएव उच्च विद्योपार्जन अनिवार्य सिद्ध हुआ। उच्च शिक्षा देने के निमित्त तत्कालीन प्रसिद्ध नगरों में विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई। चंगन के विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों की सख्या तीस हजार के लगभग थी। हन् वंश के नरेश विद्या के प्रेमी थे। उनके राजकीय पुस्तकालय में विविध विषयों से संबन्धित १३ हजार महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ रखे हुये थे। इस समय विशिष्ट केन्द्रों में पारंगत आचार्य रहते थे, जो अपने घरों पर ही विद्यार्थियों को शिक्षा देते थे। शिक्षा-संस्थाओं में चीन के प्राचीन ग्रंथों का अध्यापन किया जाता था। इन पुस्तकों का प्रामाणिक संस्करण शुद्ध अनु-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाद तथा टिप्पणियाँ प्रस्तुत की जाने लगीं। यह युग इतिहासकारों एवं लेखकों का काल था तथा इसमें वैद्यक, युद्धशास्त्र, ज्योतिष तथा खगोलशास्त्र के ऊपर ग्रंथों की रचना की गई।

हन्-काल के साहित्यकार चीन के अतीत गौरव के अत्यन्त प्रेमी थे।[१] इस काल के पहले भी चीन का प्राचीन इतिहास लिखा गया, पर काल्पनिक समावेशों के कारण उनकी प्रामाणिकता में विद्वानों को संदेह है। घटनाओं के अतिरंजनविहीन तथा यथातथ्य वर्णन के निमित्त सबसे पहले हन्-काल से प्रयत्न प्रारंभ किया गया। चीन के अतीत गौरव के ऊपर लेखनी उठाने वाले तत्कालीन विद्वानों में सर्वप्रथम 'माओ चिअंग' उल्लेखनीय है। उसने 'शिह चिअंग' नामक ग्रंथ का संग्रह किया, जिसका द्वितीय नाम ओड्स भी है। इसमें चीन की प्राचीन कविताओं एवं लोकगीतों का सुन्दर संकलन मिलता है। इसमें संकलित कविताओं के ऊपर शुद्ध एवं प्रामाणिक टिप्पणी भी उपलब्ध होती है। इस काल में चीन के सबसे प्राचीन ऐतिहासिक संग्रह 'शु चिंग' का एक नवीन संस्करण प्रस्तुत किया गया। इस कृति में कथा, आख्यान एवं मनोरंजक विवरण उपलब्ध होते हैं।

हन्-वंश के काल में प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के लगभग **ल्यू सियंग** तथा **ल्यू सिन** नामक विद्वानों का उद्गम हुआ। ल्यू सियंग ने **चन-कुओत्से** नामक ग्रंथ को प्रकाशित किया। यह लेखक वांग मंग का प्रशंसक था। इस ग्रंथ में उसके काल की घटनाओं का निरूपण कालक्रम से उपलब्ध होता है। ल्यू सिन ल्यू सियंग का पुत्र था। उसने शुओ वेन नामक एक प्रामाणिक शब्दकोष भी प्रस्तुत किया, जिसमें हन्-कालीन शब्दों के विकास का इतिहास समुपलब्ध होता है। इसी काल में **ल्यू ऐन** नामक लेखक का आविर्भाव हुआ। उसने **ताओ ते-चिंग** नामक ग्रंथ का संग्रह किया। इसमें ताओवाद की व्युत्पत्ति एवं उसके क्रमिक विकास का इतिहास प्राप्त होता है।

इस काल का चीन का सबसे प्रसिद्ध पुरातन संग्रह **सू-म-चियेन** के द्वारा

---

१. Moreover, the men of the Han age were intensely interested in past history." Fitzerald.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रचित शिह-ची नामक ग्रंथ है, जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है। इसको ऐतिहासिक संस्मरण माना जाता है। वह सम्राट् वू ती के दरबार में रहता था, अतएव राजकीय पुस्तकालय से ऐतिहासिक सामग्री के संकलन का सुअवसर उसे उपलब्ध था। इसकी रचना में पूरे दस वर्ष लग गये थे। यह चीन का सर्वप्रथम ऐतिहासिक ग्रंथ माना जाता है। इसमें दो हजार वर्षों का चीन का इतिहास मिलता है। आधुनिक इतिहासकारों के लिये इस देश के अतीत के पुनर्निर्माण में यह ग्रन्थ पर्याप्त रूप में उपयोगी सिद्ध होता है। इसमें लेखक ने शासक-वर्ग के अपव्यय, क्रूरता तथा तृष्णा की कटु आलोचना की है। उसने जन-नेता चेंग-शेंग की प्रशंसा की, जिसने चिन वंश के विनाश के निमित्त प्रयत्न किया था। यह एक सफल ऐतिहासिक ग्रंथ होने के अतिरिक्त उत्कृष्ट साहित्यिक रचना भी मानी जाती है। इस पुस्तक में भौगोलिक सामग्री भी उपलब्ध होती है। उसने विभिन्न देशों का पर्यटन किया था। उसका व्यक्तिगत विचार था कि शिक्षा को पूर्ण बनाने के निमित्त विभिन्न देशों का भ्रमण एक युवक के लिये परम आवश्यक है। वह स्वभाव से बहुत ही विनम्र एवं उदार था। वह कहता था कि उसकी रचना में कोई नवीनता नहीं है। वह अपने ग्रंथ को पहले से चली आने वाली घटनाओं का व्यवस्थित संग्रह मानता था। यह ग्रन्थ हन्-सभ्यता के विविध अंगों के संबन्ध में सूचनाओं का भंडार माना जाता है। उसने ऐतिहासिक रचना का एक आदर्श प्रस्तुत किया, जिसका अनुकरण कालान्तर के रचयिताओं ने किया था।

पन पियाओ (३ ई०-५४ ई०) ने सू-म-चियेन के ग्रन्थ के ऊपर एक आलोचना लिखी। इसके पुत्र **पन कु** (९२ ई०) ने चियेन-हन-शू नामक ग्रन्थ की रचना की, जिसमें प्रारम्भिक हन्-वंश का इतिहास मिलता है। इस ग्रंथ को पूर्ण करने के पहले ही उसकी मृत्यु हो गई। उसकी बहन पनचाओ ने उसके अधूरे कार्य को पूर्ण किया था। इस काल में कविता-संग्रह, ऐतिहासिक तथा समालोचना के अतिरिक्त अन्य प्रकार के ग्रन्थ भी लिखे गये। इस काल में एक नवीन गद्य-शैली का विकास हुआ; जो सरल, सुरम्य, स्पष्ट तथा ओजस्विनी थी। इस काल में स्वतंत्र काव्य-ग्रंथ भी लिखे गये। इनमें उतनी मौलिकता नहीं मिलती, जितनी हन्-युग में अपेक्षित थी। इनमें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चाऊ काल के साहित्यिक आदर्शों का बहुत कुछ अनुकरण मिलता है।

दर्शन—हन्-काल में केवल प्राचीन विचारधाराओं का ही विकास हुआ, परन्तु किसी सर्जनात्मक एवं मौलिक दर्शन का कोई विशेष उद्गम नहीं हो सका। **मोती** के अनुयायी प्रथम शताब्दी के अन्त तक विद्यमान थे। इस काल के कतिपय नरेशों ने लिगलिस्ट विचारधारा का समर्थन किया। चाऊ-कालीन दार्शनिक पद्धतियों का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जाता था। इस काल में विशेष रूप से दो प्राचीन विचारधाराओं का विकास हुआ—(१) ताओवाद तथा (२) कन्फ्यूशियन मत। ताओवाद का विशेष सम्मान राजकुल में हुआ। हन्-काल में इस विचारधारा का सबसे प्रसिद्ध प्रचारक **हुअइ-नन-त्सु** नामक था। इस वंश के एक शासक ने १६३ ई० में लाओत्सु (जो ताओवाद का प्रवर्तक माना जाता है) की जन्मभूमि में अत्यन्त श्रद्धा के साथ पूजा चढ़ाई थी। उसकी स्मृति को अक्षुण्ण बनाने के निमित्त उसने अपनी राजधानी में एक भव्य मन्दिर का निर्माण किया। उत्तर हन्-वंश के काल में प्रत्येक ताओवादी को पाँच बुशेल चावल प्रति वर्ष अपने संप्रदाय को दान देना पड़ता था, अतएव इस समय वे 'फाइव-बुशेल-राइस-ताओइस्ट के नाम से प्रसिद्ध हुये। **चंग-ताओ-लिंग** के नेतृत्व में इस समय ताओवादी विशेष रूप से संगठित हो गये थे। इस विचारधारा के लोग सम्राट् की स्वेच्छाचारिता के घोर विरोधी थे। वे नागरिक के विचार-स्वातंत्र्य तथा उनके व्यक्तिगत मामलों में राजकीय हस्तक्षेप के अभाव में विश्वास करते थे।

कन्फ्यूशियस मत राजकीय संरक्षण की प्राप्ति के कारण विशेष रूप से पनप रहा था। हन्-वंश के प्रारम्भिक नरेश इस दर्शन के प्रति **कुछ** उदासीन थे, पर कालान्तर में चीन-सम्राटों ने इस मत को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया। इस समय कन्फ्यूशियस मत से संबन्धित रचनायें पाठ्यपुस्तक के रूप में पाठशालाओं में पढ़ाई जाने लगीं। परीक्षाओं में कन्फ्यूशियस के सिद्धान्तों पर कड़े प्रश्न पूछे जाते थे। राजकीय आज्ञा से उसकी प्रमुख शिक्षायें पत्थरों पर अंकित की गईं। इस काल में जिन व्यक्तियों ने स्वतन्त्र विचारधारा के प्रवर्तन के निमित्त किंचित् चेष्टा की, उनमें **वंग चुंग** तथा **यंग सियंग** उल्लेखनीय हैं। वंग चुंग चेकिआंग नामक प्रान्त के एक दीन परिवार में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्पन्न हुआ था। वह अपनी गरीबी के कारण पुस्तकें नहीं खरीद सकता था, अतएव उसने किताबों की दूकानों में बैठ कर विविध शास्त्रों का अध्ययन किया। जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण पूर्णतः वैज्ञानिक था। उसने लोगों को तत्कालीन प्रचलित अंधविश्वासों से मुक्त करने की चेष्टा की। पर यहाँ पर उल्लेखनीय है कि उसके मत में कतिपय पूर्वकालीन विचारों का समन्वय भी मिलता है। उदाहरणार्थ वह नियति की अटलता तथा आत्मा की अमरता में विश्वास करता था। अतएव उसकी चेष्टाओं के बावजूद भी उसका मत उतना मौलिक नहीं सिद्ध हो सका था। यंग सियंग ने इस बात का निर्देश किया कि मनुष्य का स्वभाव अच्छाई एवं बुराई का सम्मिश्रण है। वह कन्फ्यूशियस मत से इतना अधिक प्रभावित था कि उसे पूर्णत: स्वतंत्र विचारक की संज्ञा प्रदान करना दुष्कर है।

विज्ञान—हन्-काल में विज्ञान के क्षेत्र में भी प्रगति हुई। दूसरी शताब्दी ईसवी में इन लोगों ने **धूप-घड़ी** का आविष्कार किया तथा ८ ई० तक इन लोगों ने जल-घड़ी का पता लगा लिया था। १०४ ई० पू० में सू-म-चियेन ने एक नवीन पंचांग बनाया, जो चीन के कतिपय स्थानों में आज भी प्रामाणिक माना जाता है। उसने वर्ष की गणना कर उसे ३६५ दिनों में विभक्त किया। इस समय कुछ वैज्ञानिक यंत्रों के भी आविष्कार किये गये। **वंग चुंग** नामक दार्शनिक, जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है, इस काल का सबसे बड़ा वैज्ञानिक था। उसने चीन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रचार करते हुये अंधविश्वासों को दूर करने की चेष्टा की। अब तक दुर्भिक्ष, ग्रहण तथा बाढ़ आदि का कारण दैवी प्रकोप माना जाता था, पर उसने इनके ऊपर वास्तविक अनुसंधान किया। उसने इस बात का निर्देश किया कि ग्रहण एक प्राकृतिक घटना है, जिसकी गणना पहले से की जा सकती है। उसके पहले लोग विद्युतपात को मनुष्य के पापों के फलस्वरूप उसके लिये ईश्वर के द्वारा भेजा हुआ एक दण्ड मानते थे। उसने बताया कि यह एक प्रकार का अग्निपुंज है, जो मनुष्य को भस्मीभूत कर देता है। उसके वैज्ञानिक विवेचन लुन हेंग नामक ग्रंथ में उपलब्ध होते हैं। उसके अनुसार १८० दिनों के अनन्तर चन्द्रग्रहण तथा ४२ महीनों के अनन्तर सूर्यग्रहण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लगता है। हन्-काल में ही चंग हेंग नामक वैज्ञानिक ने विश्व के प्रथम भूकम्प-सूचक यंत्र का आविष्कार किया था। इस युग के अन्तिम चरण में चंग-चुंग-चिंग नामक चिकित्सक ने विभिन्न ज्वरों के कारण और उनके ऊपर शंग-हन-लुन नामक ग्रन्थ लिखा था।

अन्य आविष्कार—हन-काल के पहले लोग बाँस और लकड़ी की तख्तियों तथा सिल्क के ऊपर लिखते थे। १०५ ई० में तासी लुन नामक पूर्व हन्-वंश के एक पदाधिकारी ने बाँस की छाल, रेशा, सन (पटुआ), वृक्ष की छाल, कपड़े के टुकड़े तथा मछली मारने की पुरानी जाल के सम्मिश्रण से कागज का आविष्कार किया। इतिहासकारों का कथन है कि चीन में हन्-काल में ही सबसे पहले कागज का उत्पादन किया गया था। इस काल में एक नवीन लेखनी का भी आविष्कार किया गया। विशेषज्ञों की सहायता से हन्-राजाओं ने एक नवीन लिपि का संपूर्ण साम्राज्य में प्रचार किया। यह पूर्वकालीन लिपियों से अधिक सुविधाजनक एवं वैज्ञानिक थी।

धर्म—तत्कालीन धर्म का वर्गीकरण स्पष्टतः दो भागों में किया जा सकता है—(१) स्थानीय धर्म तथा (२) राजकीय धर्म। स्थानीय धर्म के अन्तर्गत् चीन के प्राचीन देवताओं की पूजा सम्मिलित थी। प्रत्येक प्राकृतिक विषय (उदाहरणार्थ पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा तथा जल इत्यादि) की पूजा अलग देवताओं के नाम से की जाती थी। लोग पितरों की पूजा में भी आस्था रखते थे। इन सभी देवी देवताओं की पूजा ने हन्-देव-समूह को जन्म दिया। चीन की हन्-कालीन समाधि की दीवालों के ऊपर इन देवों की आकृतियों को अंकित किया गया है। राजकीय धर्म का उद्देश्य सम्राट् की मर्यादा को बढ़ाना था। इस धर्म के नियमों के अनुसार आकाश-देवता (तियेन) की पूजा की जाती थी। इसे सर्वशक्तिमान् देव घोषित किया गया। प्रजा में विश्वास उत्पन्न किया गया कि हन्-सम्राट् भूमंडल पर इस देवता का प्रतिनिधि है। इस प्रकार सम्राट् के प्रति प्रजा की भक्ति को बढ़ाने की चेष्टा की गई। इसके अनुसार पंचभूत की पूजा की जाती थी—(१) पृथ्वी, (२) दारु, (३) धातु, (४) अग्नि तथा (५) जल। इनमें पृथ्वी को सबसे प्रधान तत्त्व माना गया। आकाश एवं पृथ्वी की पूजा के लिये सम्राट

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्रमशः फेंग तथा शन नामक धार्मिक अनुष्ठान करता था। इस समय सम्राट्-पूजा की भावना के प्रचार के निमित्त भी चेष्टा की गई। इसके बल पर हन्-राजाओं ने अपने शासन को स्थायित्व प्रदान करने का प्रयत्न किया।

कला—हन्-साम्राज्य का संपर्क बहुत से राज्यों के साथ स्थापित हो चुका था; उदाहरणार्थ बैक्ट्रिया, पार्थिया तथा कुषाण-राज्य। फलतः बाह्य कलाओं के द्वारा चीनी कला के प्रभावित होने की पृष्ठिभूमि प्रस्तुत हुई। चीनी वास्तुकला तथा पारसीक एवं आसीरियन वास्तुकला में कई दृष्टियों से समानतायें उपलब्ध होती हैं। इस काल में चीन में गोलाकार मूर्तियाँ बनाई जाने लगीं। यह प्रथा असीरियन कला की देन थी। अन्त्येष्ठि-प्रकोष्ठ (कब्रों) की दीवालों के ऊपर कुछ मूर्तियों का अंकन मिलता है। ये पत्थर की चित्रकारी सी प्रतीत होती हैं। वेष्ठनियों में कतिपय स्थानों पर घोड़ों की मूर्तियों का निर्माण मिलता है। ये प्रतिमायें चीनी अथवा मंगोल घोड़ों की आकृतियों से साम्य नहीं रखतीं। हन्-नरेश बैक्ट्रिया एवं सोग्डियाना के घोड़ों के बड़े ही शौकीन थे। ये मूर्तियाँ इन्हीं घोड़ों की आकृतियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। चित्रकला का साधारण विकास हुआ। इस समय की चित्रकारियों के कुछ उदाहरण कब्र की दीवालों के ऊपर उपलब्ध होते हैं। वास्तु-कला का विकास इस समय विशेष रूप से संपन्न हुआ। हन-कालीन गद्य एवं पद्य-साहित्य में भव्य प्रासादों के मनोरम विवरण उपलब्ध होते हैं। दृढ़ता के हेतु भवनों में प्रस्तर-निर्मित स्तंभों का निर्माण प्रचुरता के साथ किया जाने लगा। इनमें काट-छाँट एवं पच्चीकारी का काम बारीकी के साथ किया गया। भवनों के सोपान संगमरमर के द्वारा निर्मित किये जाते थे। गृह-भित्ति के विन्यास में ईंटों का प्रयोग प्रचुर संख्या में किया गया। भवन-प्रांगण में उद्यान लगाये जाते थे। वू ती के विख्यात उद्यान में नये पेड़ पौधे आरोपित किये गये थे तथा सरोवरों के निर्माण के द्वारा उन्हें मनोरम बनाया गया था।

इस काल में लघु कला का भी विकास हुआ। इसका सबसे बड़ा कारण चीन के निवासियों का सुदूर देशों के संपर्क में आना था। बहुमूल्य पत्थरों एवं धातुओं के द्वारा लोगों ने कलात्मक वस्तुओं का सृजन किया। चीनी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जौहरी हिन्द महासागर आदि से मूल्यवान् मोती, सीसा तथा पत्थर आदि लाते थे, जिसके फलस्वरूप चीनी लघु कला को एक नवीन दिशा में गतिशील होने का सुअवसर उपलब्ध हुआ। पूर्व काल की समता में इस समय वस्तुओं के निर्माण में ताँबे का प्रयोग अवनत दशा में था, यद्यपि ताँबे के दर्पण अब भी चीन के विभिन्न प्रान्तों में व्यवहार में लाये जाते थे। चीनी रेशमी वस्त्र (सादा तथा चित्रित) बाहरी देशों में बहुलता के साथ प्रयोग में लाया जाता था।

बौद्ध धर्म का प्रवेश—सम्भवतः हन्-काल में ही बौद्ध धर्म का (जो कि कालान्तर में चीन में अत्यन्त लोकप्रिय हो गया) चीन में प्रथम प्रवेश हुआ। इसमें लवलेश भी संदेह नहीं है कि गौतम बुद्ध की शिक्षायें चीन की स्वदेशी परिस्थितियों के अनुकूल नहीं थीं। जिस मानसिक एवं आध्यात्मिक जगत् में गौतम बुद्ध रहते थे, वह निश्चयात्मक रूप से चीन से नितांत भिन्न था। गौतम बुद्ध की शिक्षाओं का उद्देश्य उस ऐहिक जीवन से मुक्ति प्राप्त करना था, जो पापमय एवं कलुषित है। यद्यपि चीन में भी निराशावादी विचारक रहते थे, पर वे लौकिक जीवन को नितांत व्यर्थ नहीं समझते थे। वे मानव जीवन के विषय में बहुत कुछ अंशों में आशावादी थे। यहाँ के दार्शनिक समाज को सुखमय बनाने की क्रिया में संलग्न थे। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि बौद्ध धर्म का चीन की कुछ प्राचीन विचारधाराओं से अंशतः साम्य अवश्य था। उदाहरणार्थ **सुनत्सू** नामक विचारक आडम्बर-विहीनता तथा कर्मफल में विश्वास करता था। इसी प्रकार ताओवादी विचारधारा के समर्थक गंभीर चिंतन में विश्वास रखते थे तथा विश्व को मिथ्या बताते थे। ये सिद्धान्त बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों से समानता रखते थे। पर यह निर्विवाद है कि बौद्धधर्म एवं चीन की प्रमुख विचारधाराओं में पर्याप्त असमानता थी। इस प्रतिकूल वातावरण के वर्तमान् होने पर भी चीन में बौद्ध धर्म का प्रसार सम्भव हो सका था।

इतिहासकारों का कथन है कि चीन में इस धर्म का प्रवेश उत्तर-पश्चिम एवं दक्षिण की दिशाओं से हुआ था। २ ई० पू० में एक चीनी राजदूत ने यूची लोगों से बौद्ध धर्म के विषय में सुन रखा था। प्रथम शताब्दी में बौद्ध

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भिक्षु एवं उपासक चीन के तत्कालीन सम्राट् के एक भाई के संरक्षण में रहते थे। वहाँ के मिंगती नामक सम्राट् ने स्वप्न में एक दीर्घकाय पुरुष को देखा, जिसके व्यक्तित्व से वह प्रभावान्वित हो उठा। दूसरे दिन प्रातःकाल उसके मंत्रियों में से एक ने बताया कि उसने शाक्यमुनि गौतम बुद्ध का स्वप्न में दर्शन किया था। इस समय से लेकर जीवनपर्यन्त मिंगती बौद्ध मतावलंबी था। उसने इसके धार्मिक ग्रंथों को लाने के निमित्त अपने दो राजदूतों को भारतवर्ष भेजा था। वे ६५ ई० में दो भारतीय बौद्ध पुजारियों तथा कई धर्म-ग्रंथों के साथ चीन लौटे। इनके रहने के निमित्त मिंगती ने एक मन्दिर का निर्माण किया था। बौद्ध धर्म से संबन्धित यह प्रथम चीनी मन्दिर था। १६० ई० में आधुनिक अनहुई नामक स्थान पर उसने एक बौद्ध देवालय का निर्माण किया था। द्वितीय शताब्दी के प्रथमार्द्ध में लोयंग में बौद्ध भिक्षु रहते थे। इस समय के बौद्ध धर्म के चीनी प्रचारकों में एक पार्थियन राज-कुमार उल्लेखनीय है, जिसका नाम अन-शिह-काओ था। उसने उत्तराधिकार की तृष्णा को तिलांजलि देकर बौद्ध धर्म में दीक्षा ग्रहण कर ली थी। उसने अपने सहायकों के द्वारा कुछ बौद्ध ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद कराया था। पहले ताओवाद के समर्थकों ने बौद्ध धर्म के प्रचारकों का स्वागत किया। इसका कारण यह है कि ताओवाद तथा बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों में कुछ आकस्मिक समानता थी। इसीलिए प्रारम्भ में बौद्धों को ताओवादी समझा जाता था। परन्तु शीघ्र ही वहाँ बौद्ध धर्म का विरोध होना प्रारम्भ हो गया। कुछ लोगों ने बौद्ध धर्म को गर्हित एवं जुगुप्सित धर्म घोषित किया। कन्फ्यूशियस मतावलम्बी, जो हन् राजाओं के कृपापात्र थे, बौद्ध धर्म से जलते थे। इन कारणों से हन्-काल में बौद्ध धर्म पनप न सका।

व्यापारिक संबन्ध—हन्-काल व्यापारिक विकास के निमित्त सब प्रकार से अनुकूल था। इस काल में वाणिज्य का जितना अधिक विकास हुआ, उतना पहले किसी भी काल में नहीं हुआ था। इस समय उत्तर-पश्चिम भारतवर्ष तथा अफगानिस्तान में कुषाण वंश शासन कर रहा था। फारस में पार्थियन जाति के लोग राज्य कर रहे थे। उसके पश्चिम में यूनानियों के कुछ उपनिवेश थे। उसके और पश्चिम में रोम-साम्राज्य का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विकास बड़ी शीघ्रता के साथ हो रहा था। इन सभी राज्यों में चीन के सौदागर व्यापारिक वस्तुओं को विक्रय के निमित्त ले आते थे। व्यापार-सम्बन्ध में चीन-वासियों का परिचय रोम-साम्राज्य के साथ हुआ। ये लोग पूर्वी रोम-साम्राज्य को 'ता चिन' कहते थे। कुछ चीनी ग्रन्थों में पूर्वी रोम-साम्राज्य का वर्णन भी उपलब्ध होता है। पूर्वी रोम-साम्राज्य के साथ चीनवासियों का यह परिचय व्यापार-सम्बन्ध में हुआ होगा। बाहरी देशों के व्यापारी भी वस्तुओं के विक्रय के निमित्त चीन आया करते थे। १२० ई० में पूर्वी रोम-साम्राज्य से व्यापारियों का एक दल लोयंग आया हुआ था। १६६ ई० में रोम-सम्राट् ने अपने साम्राज्य के कुछ व्यापारियों को राजदूत बनाकर लोयंग भेजा था। एशियाई देशों के व्यापारी भी चीन के प्रसिद्ध नगरों में वस्तु-विनिमय के निमित्त आया करते थे। चीन का सिल्क बाहरी देशों में काफी लोकप्रिय था। कालिदास ने 'शाकुन्तलम्' में चीन के रेशमी वस्त्र (चीनांशुक) का उल्लेख किया है। चीन से बाहरी देशों में भेजी हुई वस्तुओं में चमड़े, ऊन, फल, तथा दालचीनी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। बाहरी देशों से चीन में शीशे, घोड़े, बहुमूल्य पत्थर, हाथीदाँत तथा ऊनी एवं रेशमी वस्त्र आया करते थे।

संगीत—इस युग में संगीत के क्षेत्र में भी विकास हुआ। संगीत धनिक एवं रंक दोनों के मनोरंजन का एक प्रिय साधन था। इस समय तीन नवीन वाद्यों का आविष्कार हुआ (१) एक तो ऐसी वीणा का प्रयोग, जिसे ये लोग पि-पा कहते थे। बैक्ट्रिआ के साथ संपर्क के कारण इसके साथ इन लोगों का परिचय हुआ। यह चीन की प्रथम वीणा थी। (२) दूसरे वाद्य का नाम कुंग हाऊ था। इसके आकार एवं प्रयोग के विषय में विशेष ज्ञात नहीं है। (३) तीसरा चौदह तारों का एक वाद्य (ज़िथर नामक) था, जो बाँस का बना होता था। यह वाद्य तीनों में सबसे अधिक प्रिय था।

मनोविनोद—हन्-कालीन समाज मनोविनोद का प्रेमी था। इस समय के लोग नृत्य के आयोजन, नटों की कला तथा चमत्कार-प्रदर्शन के द्वारा अपना दिलबहलाव करते थे। कुत्तों की दौड़ एवं मुर्गों का युद्ध इनके मनोविनोद का एक प्रिय साधन था। ये लोग विभिन्न प्रकार की क्रीड़ाओं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का आयोजन करते थे, जिनमें वेइ-ची सबसे प्रसिद्ध है।

निष्कर्ष—हन-काल के विविध परिवर्तनों एवं रचनात्मक विकासों को दृष्टि में रखते हुए हम इसे चीन का एक महत्त्वपूर्ण युग कह सकते हैं। इस काल की सामाजिक, आर्थिक तथा बौद्धिक दशा निस्संदेह उच्च कोटि की थी। हन्-सभ्यता विश्व की किसी भी समकालीन सभ्यता की तुलना में आ सकती थी।

चीन में बौद्ध धर्म का प्रसार (२२० ई०-५८९ ई०)

चीन के इतिहास में २२० ई० से लेकर ५८९ ई० तक का काल बौद्ध धर्म के प्रसार के लिये प्रसिद्ध है। लातुरेत के अनुसार किसी विदेशी धर्म का उद्गम एवं विकास पाँच कारणों से संभव हो सकता है—(१) **किसी धर्म-विशेष के अनुयायियों के द्वारा किसी बाहरी प्रदेश को जीत लेना**—ऐसी परिस्थिति में विजेता विजित प्रदेश के निवासियों को अपने धर्म को मानने के निमित्त या तो बाध्य करने लगता है या उन्हें विविध भौतिक प्रलोभन एवं सुविधायें प्रदान करता है। इस प्रकार का व्यवहार मुसलमान विजेताओं ने बहुधा किया था। स्पेन एवं पुर्तगाल के ईसाइयों ने लैटिन अमेरिका में इसी प्रकार ईसाई धर्म का प्रसार किया था। (२) **घनिष्ट व्यापारिक सम्बन्ध**—घनिष्ट व्यापारिक संपर्क के कारण किसी प्रदेश में विदेशी धर्म का सूत्रपात संभव सिद्ध होता है; उदाहरणार्थ सोलहवीं शताब्दी में चीन में ईसाई धर्म का प्रचार, मध्यकाल में उत्तरी यूरोप में ईसाई धर्म का प्रसरण तथा अफ्रीका में आधुनिक काल में इस्लाम का प्रचार। (३) **विभिन्न संस्कृतियों का सम्मेलन**—इसके परिणामस्वरूप निम्नतर संस्कृति के लोग उच्चतर संस्कृति वालों के धर्म को स्वीकार कर लेते हैं। (४) **प्रचारकों की संलग्नता**—इसके फलस्वरूप एक धर्म का प्रसार दूसरे देश में संभव होता है। उदाहरणार्थ विश्व में ईसाई धर्म के व्यापक प्रसार का सबसे महान् कारण यही है। (५) **एक ऐसी प्रबल धार्मिक भावना का अनुभव, जिसे स्वदेशी धर्म तृप्त नहीं कर पाता**—ऐसी दशा में लोग उस विदेशी धर्म को अपना लेते हैं, जो इस कमी को पूर्ण करता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जहाँ तक चीन में बौद्ध धर्म के प्रवेश का प्रश्न है, इनमें से प्रथम तीन कारणों का कोई भी सम्बन्ध नहीं था। बौद्ध मतावलम्बियों ने चीन के किसी भी भाग को नहीं जीता था। बहुत प्रारम्भिक काल में चीन एवं भारतवर्ष में कोई विशेष व्यापारिक सम्बन्ध नहीं था। चीन की संस्कृति भारतीय संस्कृति से निम्न न थी।

प्रतिकूल परिस्थितियाँ—चीन एवं भारतवर्ष की सभ्यता के मूलभूत आदर्शों में महान् भेद था। भारतीय धार्मिक भावना में लोकोत्तरपरायणता अधिक थी। यहाँ के लोग मृत्यु के अनन्तर व्यक्ति की अनुभूतियों के विषय में अधिक चिन्तनशील थे। वे आत्मा की अमरता तथा आध्यात्मिकता एवं रहस्यवाद आदि में विश्वास करते थे। ताओवाद के अतिरिक्त चीन की समस्त विचारधाराएँ लौकिक जीवन को प्रधान मानकर चलती थीं। ऐहिक जीवन को अधिकाधिक सुखमय बनाना चीन-निवासी का लक्ष्य था। भौतिक जीवन की समता में आध्यात्मिक जीवन उनके लिये पर्याप्त मात्रा में गौण था।

बौद्ध धर्म ब्रह्मचर्य-जीवन का समर्थक था। यह सिद्धांत चीन के गृहस्थाश्रम के लिये घातक था। चीन की दार्शनिक, धार्मिक एवं सामाजिक परंपरायें गृहस्थाश्रम के पक्ष में थीं। कान्फ्यूशियस ने इसे एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक संस्था घोषित किया था। भिक्षुक संघ का संगठन प्रजातंत्रात्मक आदर्शों पर आधारित था। चीन में शताब्दियों से निरंकुश राज्य चला आ रहा था। यह भिक्षुकसंघ को संशयात्मक दृष्टि से देखता तथा उस पर नियंत्रण स्थापित करने की चेष्टा कर सकता था। चीन-निवासी कर्मठ जीवन में विश्वास करते थे। वे विरक्त, साधु एवं संन्यासी को समाज के ऊपर भार समझते थे। भिक्षु-जीवन उनके आदर्शों के अनुसार कायर का जीवन था। इन मौलिक विभेदों के होते हुये भी बौद्ध धर्म को चीन में जो सफलता उपलब्ध हुई, वह विश्व-इतिहास की एक परम श्लाघनीय घटना मानी जा सकती है। बहुत समय तक चीन इस्लाम तथा ईसाई धर्म से भी संबन्धित था, पर वहाँ जो सफलता बौद्ध धर्म को उपलब्ध हुई, वह उन्हें प्राप्त न हो सकी थी।

प्रचार सम्भव होने के कारण—जिन परिस्थितियों में चीन में बौद्ध

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्म का प्रचार संभव हुआ, उनका वर्णन कुछ निम्न ढंग से किया जा सकता है—(१) यद्यपि चीन एवं भारतवर्ष में इस समय घनिष्ठ वाणिज्य-संबन्ध नहीं था, तथापि सीमित रूप में व्यापार-संपर्क अवश्य था। कला, साहित्य एवं दर्शन के क्षेत्र में बौद्धमतावलंबियों का ज्ञान चीनवासियों से अधिक था। इस देश में बौद्ध धर्म के प्रचारक उत्साह एवं प्रेरणा के साथ आये। (२) तत्कालीन चीनी धर्म मानव आत्मा की कतिपय मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करने में सफल नहीं सिद्ध हो सका था। बौद्ध धर्म के द्वारा कुछ अंशों में इसकी पूर्ति संभव प्रतीत हुई। विशेष रूप से महायान धर्म ने आवागमन से मुक्ति के लिये जो उपाय बताये, वे इस देश के निवासियों को व्यावहारिक प्रतीत हुये। इसके द्वारा निर्दिष्ट शांति-प्राप्ति के मार्ग में चीन-वासियों की आस्था क्रमशः बढ़ने लगी। (३) ये लोग बौद्ध धर्म के कर्मवाद से सहमत थे, जिसके अनुसार मनुष्य के वर्तमान जीवन के कर्म उसके भावी जीवन को निश्चित करते हैं। मनुष्य अपनी अच्छी कृतियों के द्वारा अपने दूसरे जीवन को सुखमय बना सकता है। इस कारण चीन-निवासी को बौद्ध धर्म अधिक उपयुक्त प्रतीत हुआ। (४) चीनवासियों को यह धर्म उनके बौद्धिक तथा धार्मिक परिधि को विस्तृत करनेवाला प्रतीत हुआ। बौद्ध साहित्य, दर्शन तथा इस धर्म के प्रवर्तक आदि के प्रति चीनवासियों की श्रद्धा बढ़ने लगी। (५) बौद्ध धर्म ने चीनवासियों के लिये आत्मसंतोष का एक व्यापक मार्ग प्रस्तुत किया। अव्यवस्था एवं अशान्ति के दिनों में जब लौकिक जीवन कष्टमय एवं दुर्वह बन गया, उस समय लोग बौद्ध धर्म की ओर शान्तिग्रहण के निमित्त झुकने लगे। (६) व्यावहारिक रूप में बौद्ध धर्म व्यक्ति की महत्ता में विश्वास रखता था। यह प्रवृत्ति निश्चय ही चीन के धार्मिक संप्रदायों में नहीं थी। चीन के धर्म वर्गगत भेदभाव में विश्वास करते थे। कन्फ्यूशियस-मतावलंबी अभिजातवर्ग को प्रधानता देते थे। ताओवाद के अनुसार मुक्ति कुछ ही लोगों के लिये संभव थी। इसके विपरीत बौद्ध धर्म में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं था। इसके अनुसार नीच से नीच व्यक्ति को भी सदाचरण द्वारा मुक्ति-प्राप्ति हो सकती है। इस कारण बौद्ध धर्म चीनी धर्मों की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय सिद्ध हुआ। (७) बौद्ध धर्म में विदेशी परिस्थितियों को स्वानुकूल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बनाने की विलक्षण शक्ति थी। इसके प्रचारकों ने चीन के स्थानीय प्रचलन एवं विश्वास के अनुसार इस धर्म में उन परिवर्तनों को उत्पन्न किया, जो कि चीन में इसे लोकप्रिय बनाने के लिये आवश्यक थे। यह इसकी सफलता का एक अन्य कारण था। (८) बौद्ध धर्म की महायान शाखा का प्रचार उत्तर-पश्चिम भारत में विशेष रूप से व्यापक हो रहा था। तक्षशिला तथा पुरुषपुर (पेशावर) आदि नगर इसके केन्द्रबिन्दु थे। इन स्थानों पर गंधार शैली में जो मूर्तियाँ बनाई गईं, वे महायान धर्म से संबन्धित थीं। फारस, पश्चिमी एशिया तथा चीन आदि देशों के साथ उत्तर-पश्चिमी भारतवर्ष का व्यापारिक संबन्ध इस समय बढ़ने लगा। ऐसे प्रदेशों में जिनका चीन के साथ वाणिज्य-सम्पर्क स्थापित था, बौद्ध धर्म के प्रचारक अत्यन्त उत्साह एवं लगन के साथ प्रचार-कार्य करने लगे। (९) चीन का सामाजिक संगठन इस काल में राजनीतिक उथल-पुथल के कारण निर्बल हो चुका था। इसके फलस्वरूप ऐहिक जीवन की ओर लोग अनासक्त होने लगे। इस प्रकार के ऊबे हुए व्यक्तियों के लिये बौद्ध मठ शरणस्थल सिद्ध होने लगा। ऐसे समय पर बौद्ध धर्म ने चीनवासियों को शान्ति का संदेश दिया।

(१०) चीन में बौद्ध धर्म की महती सफलता का एक बड़ा कारण चीनवासियों का सहयोग भी था। इसके फलस्वरूप इस धर्म के प्रचारकों ने सुविधा के साथ बौद्ध ग्रंथों का चीनी भाषा में रूपांतर किया। हन-कालीन ग्रन्थों की एक विशद सूची उपलब्ध हुई है, जिसमें अधिकांश बौद्ध धर्म की अनूदित पुस्तकें हैं। (११) चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार यहाँ के उन भिक्षुओं की कृतियों के फलस्वरूप हुआ, जिन्होंने भारतयात्रा की थी। उन्होंने बौद्ध तीर्थों का पर्यटन किया। ये लोग भारतवर्ष से बौद्ध धर्म के ग्रंथों की प्रतिलिपि अपने साथ चीन ले गये थे। इन्होंने इस धर्म के प्रति चीनवासियों की आस्था को द्विगुणित किया। इस प्रकार के यात्रियों में फाहियान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उसने पुरुषपुर, तक्षशिला, मथुरा, सांकाश्य, कपिलवस्तु, श्रावस्ती, कुशीनगर, बोधिगया, सारनाथ तथा राजगृह आदि सभी बौद्ध तीर्थों का पर्यटन किया था। भारतवर्ष की यात्रा में उसने लगभग दो वर्ष लगा दिये थे। अपने साथ कई बौद्ध ग्रंथों की प्रतिलिपियों को लेकर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वह ताम्रलिप्ति के बंदरगाह पर जहाज़ में बैठा। वहाँ से लंका तथा पूर्वी द्वीपसमूह होता हुआ वह चीन पहुँचा। चीन के भिक्षुओं ने भी बौद्ध ग्रंथों का अपनी भाषा में अनुवाद किया तथा मौलिक बौद्ध साहित्य की भी रचना की। (१२) बौद्ध धर्म को चीन में राजकीय संरक्षण भी उपलब्ध हुआ था। चीन के कई सम्राट बौद्ध मतावलंबी थे। दक्षिण चीन का सबसे प्रसिद्ध बौद्ध मतावलंबी लियंग वूती था। वह बौद्ध सूत्रों का महान् समर्थक था। उसने त्रिपिटकों के विभिन्न चीनी संस्करणों का संकलन किया था। उसने पशुमेध को रोक दिया। वह कट्टर शाकाहारी था। उसने अपना कुछ समय बौद्ध मठ में भी व्यतीत किया। उत्तरी चीन में बहुत से राजकीय मठ बने हुये थे! ३८१ ई० में उत्तर-पश्चिम चीन के ९० प्रतिशत निवासी बौद्धमतावलंबी थे। सुइ राजवंश के काल में बौद्ध धर्म चीनवासियों के जीवन का एक अभिन्न अंग था[१]।

बौद्ध धर्म के प्रचारक—चीन में बौद्ध धर्म कई विदेशी प्रचारकों के द्वारा लाया गया। इनमें से अधिकांश भारतवर्ष के विभिन्न भागों से आये थे। इसके अतिरिक्त कतिपय अन्य देशों से भी बौद्ध धर्म के प्रचारक चीन आये थे, उदाहरणार्थ लंका, कंबोडिया, अफगानिस्तान तथा मध्य एशिया। इनमें प्रमुख प्रचारक इस प्रकार थे—

मध्य एशिया के प्रचारक

(१) धर्मरक्ष—इसका चीनी नाम फा-हु (धर्म का रक्षक) था। उसके माता-पिता जाति के यूची थे। उसका जन्मस्थान चीन के सरहद पर स्थित तन हुआंग नामक स्थान था। यहाँ पर उसने भारतीय आचार्यों से बौद्ध धर्म में दीक्षा ली थी तथा उनके साथ मध्य एशिया के कई स्थानों में धर्म-प्रचार के हेतु पर्यटन किया था। वह एक प्रकांड विद्वान था। कहा जाता है कि वह चीनी भाषा एवं संस्कृत के अतिरिक्त विश्व की लगभग ३४ अन्य भाषाओं को भी जानता था। २६६ ई० में वह चीन के लोयंग नामक स्थान में आया

[१] "By the advent of the Sui, it had become an integral and powerful part of Chinese life."

—Latourette.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा इसको केन्द्र बनाकर प्रचार-कार्य करने लगा। उसने १७५ ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया था।

(२) कुमारजीव—मध्य एशिया से चीन में आये हुये बौद्ध प्रचारकों में कुमारजीव सबसे प्रसिद्ध माने जाते हैं। उनके पिता एक भारतीय थे, जिनका नाम कुमारायण था। कुछ कारणों से जो अब भी अज्ञात हैं, कुमारायण ने अपनी जन्मभूमि को छोड़ दिया। पामीर से होते हुये वे कूची आये। वहाँ के स्थानीय सम्राट ने इनकी विद्वत्ता से आकर्षित होकर इन्हें राजगुरु के पद पर नियुक्त किया। यहाँ पर जीवा नामक राजकुमारी के साथ इनका प्रेम हो गया। फलतः कूची के सम्राट ने कुमारायण का विवाह जीवा के साथ कर दिया। इसी राजकुमारी से कुमारजीव उत्पन्न हुये (जीवा के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण इनका यह नाम पड़ा)। इनके जन्म के अनन्तर जीवा ने बौद्ध धर्म में दीक्षा ले ली और उसने भिक्षुणी का जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ किया। कूची में प्रारम्भिक शिक्षा देने के अनन्तर कुमारजीव को जीवा अपने साथ कश्मीर ले आई। यहाँ पर उन्होंने बौद्ध ग्रंथों का गहन अनुशीलन किया। उसके आचार्य का नाम बन्धुदत्त था, जो कि महायान धर्म का अनुयायी था। तदनन्तर अपनी माता के साथ मध्य एशिया के कई बौद्धिक केन्द्रों का पर्यटन करते हुए वे कूची लौट आये। कहा जाता है कि कूची लौटते समय उनकी भेंट एक अर्हत् से हुई, जिसने भविष्यवाणी की कि कुमारजीव निकट भविष्य में एक लब्धप्रतिष्ठ आचार्य बनने वाला था। इस समय उनकी ख्याति चतुर्दिक फैलने लगी। ३५५ ई० में काशगर में वे सूर्यसोम नामक महायान धर्म के आचार्य से प्रभावित हुये थे। इसके कुछ ही समय बाद काश्मीर के विमलाक्ष नामक बौद्ध यात्री के साथ उनकी भेंट हुई, जिससे उन्होंने सर्वास्तिवादविनय में शिक्षा पाई थी। उनसे शिक्षा-ग्रहण करने के निमित्त खोतान, काशगर तथा यारकंद के विद्यार्थी उनके पास आते थे। ३८३ ई० में कूची के ऊपर चीन का एक आक्रमण हुआ। वे इस समय बन्दी बनाकर चीन लाये गये। उनकी प्रतिभा से परिचित होने पर चीन के सम्राट ने उन्हें अपने पास राजधानी में रखा। तदनन्तर मृत्यु-पर्यन्त ४१३ ई० तक उन्होंने अपना जीवन चीन में व्यतीत किया। चीन में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बौद्ध धर्म के प्रचार के क्षेत्र में उन्होंने युगांतर का प्रवर्तन किया।[१] वे बौद्ध दर्शन के अगाध विद्वान् थे तथा चीनी एवं संस्कृत भाषा के ऊपर इनका प्रकांड आधिपत्य था। उनके पर्यवेक्षण में ९४ बौद्ध ग्रंथों का प्रामाणिक अनुवाद प्रस्तुत किया गया। चीन के विभिन्न भागों के विद्यार्थी उनकी विद्वत्ता का लाभ उठाने के निमित्त बहुसंख्या में एकत्र होते थे। उनके द्वारा अनूदित ग्रन्थों में महाप्रज्ञापारमिता शास्त्र, शतशास्त्र, सुखावत्यमृतव्यूह, सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, महाप्रज्ञापारमिता सूत्र तथा वज्रछेदिका प्रज्ञापारमिता सूत्र उल्लेखनीय हैं। अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में उन्होंने अपने शिष्यों को उपदेश दिया था कि उनकी कृतियाँ श्रद्धेय थीं न कि उनका जीवन। मनुष्य को कमल से प्रेम करना चाहिये न कि उस सेवार से जिससे वह उगता है। कुमारजीव का नाम मध्य एशिया की उन विभूतियों में चिरस्मरणीय रहेगा, जिन्होंने चीन में भारतीय सभ्यता का प्रसार किया था।

काश्मीर के बौद्ध प्रचारक—चीन में सबसे अधिक काश्मीर के बौद्ध विद्वानों ने प्रचार का कार्य किया। कुषाण नरेशों की प्रेरणा के फलस्वरूप काश्मीर का धार्मिक वातावरण बौद्ध प्रभाव से आच्छादित था। यहाँ पर बाहरी देशों के भी विद्यार्थी बौद्ध ग्रन्थों के अनुशीलन के निमित्त आते थे।

(१) संघभूमि—काश्मीर के बौद्ध प्रचारकों में सर्वप्रथम संघभूमि का नाम उल्लेखनीय है। वह ३८१ ई० में चीन आया था। चीन में ३८४ ई० तक उसकी कृतियों के प्रमाण उपलब्ध होते हैं। उसने चीनी भाषा में कई बौद्ध ग्रन्थों का रूपान्तर किया। उसने चीनी भाषा में विनयपिटक की एक विशद टीका भी प्रस्तुत की थी। यह उसकी सर्वोत्कृष्ट कृति मानी जाती है।

(२) गौतम संघदेव—वह ३८४ ई० में चीन के चंगगन नामक प्रदेश में आया था। चीनी साधनों के अनुसार उसकी गणना महान् आचार्यों की कोटि में की जाती थी। उसने सबसे पहले चीनी विद्यार्थियों को बौद्ध ग्रन्थों

---

१ "He was responsible for starting a new epoch in the transmission of Buddhism to China."—Bagchi.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का अध्यापन कार्य करना प्रारम्भ किया। ३८१ ई० में धर्म-प्रचार के हेतु वह दक्षिण चीन आया। उसने लूशन में वर्तमान एक बौद्ध मठ में रहकर कुछ संस्कृत के ग्रन्थों का चीनी रूपान्तर किया। ३६७ ई० में वह नानकिंग आया। वहाँ के अधिकारियों के ऊपर उसने अपनी विद्वत्ता की छाप जमा ली। उसके निवास के निमित्त राज्य की ओर से एक मठ का निर्माण किया गया। उसने अपने विद्यार्थियों की सहायता से कई महत्त्वपूर्ण बौद्ध ग्रन्थों का अनुवाद-कार्य पूरा किया।

(३) पुण्यत्रात—इसके विषय में हमारा परिचय अत्यल्प है। लगता है कि कूची से वह भी कुमारजीव के साथ चीन लाया गया था। उसने बौद्ध ग्रंथों के अनुवाद में कुमारजीव की सहायता की थी। उसने सर्वास्तिवाद शाखा के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया था।

(४) धर्मयशस—इसकी शिक्षा काश्मीर में सम्पादित हुई थी। उसने तीस वर्ष की अवस्था में काश्मीर छोड़ दिया। तदनन्तर मध्य एशिया के विभिन्न सांस्कृतिक केन्द्रों का पर्यटन करता हुआ वह ३६७ ई० में चीन पहुँचा। इस समय से लेकर ४५३ ई० तक उसने अपना जीवन चीन में बिताया। उसने कई भारतीय ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। अपना कार्य पूर्ण कर लेने के पश्चात् वह चीन से मध्य एशिया होता हुआ काश्मीर लौट आया।

(५) बुद्धयशस—उसका जन्म काश्मीर के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। प्रारम्भ में उसके पिता की बौद्ध धर्म में कोई आस्था नहीं थी। चीनी परम्परा के अनुसार उसने किसी समय एक बौद्ध भिक्षु को अपमानित कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप वह कठिन रोग से पीड़ित हो उठा। इससे मुक्ति पाने के निमित्त उसने उस बौद्ध भिक्षु की बहुत सेवा की। इसके फलस्वरूप वह रोगमुक्त हो उठा। इससे बौद्ध धर्म से वह इतना प्रभावित हो उठा कि उसने अपने तेरह वर्षीय बालक यश को उसे समर्पित कर दिया। इस भिक्षु के सम्पर्क में रहकर यश ने बौद्ध ग्रन्थों का अनुशीलन किया। २७ वर्ष की अवस्था से उसने पूर्णतः एक बौद्ध भिक्षु का जीवन बिताना प्रारंभ किया। विदेश में बौद्ध धर्म के प्रचार के निमित्त उसमें एक प्रबल भावना उत्पन्न

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुई। वह सबसे पहले काशगर आया। वहाँ का स्थानीय शासक उससे बहुत प्रभावित था। उसने काशगर में अपने जीवन के दस वर्ष बिता दिये। तदनन्तर वह कूची होता हुआ चीन आया। वहाँ कुमारजीव के साथ उसने कई बौद्ध ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। कुमारजीव की मृत्यु के अनन्तर वह काश्मीर लौट आया। चीनी साधनों के अनुसार वह उच्च आदर्शों वाला व्यक्ति था। वह राजकीय उपहारों को स्वीकार नहीं करता था तथा एक आदर्श श्रमण-जीवन बिताता था।

(६) विमलाक्ष—वह कुमारजीव का समकालीन था। वह उनके साथ कूची में बहुत दिनों तक कार्य कर चुका था। कुमारजीव के साथ वह भी चीन लाया गया था। वहाँ पर चंगगन में ४०६ ई० से लेकर ४१३ ई० तक उसने कुमारजीव के साथ कार्य किया। उसने कुछ बौद्ध ग्रन्थों का चीनी रूपांतर प्रस्तुत किया था। कुमारजीव की मृत्यु के अनन्तर ४१३ ई० में वह दक्षिण चीन आया। वहाँ उसने अपने जीवन का अवशिष्ट भाग बौद्ध धर्म के प्रचार में व्यतीत किया।

(७) बुद्धजीव—वह चीन में सर्वप्रथम नानकिंग नामक स्थान पर ४२३ ई० में पहुँचा। इस समय फाहियान संस्कृत भाषा में लिखे हुये कुछ विशिष्ट ग्रन्थों को साथ लेकर भारतवर्ष से चीन लौटा था। बुद्धजीव ने इनमें से कुछ ग्रन्थों का अनुवाद किया। उसने अपना शेष जीवन चीन में व्यतीत किया।

(८) गुणवर्मा—वह बुद्धजीव से अधिक बुद्धिमान् था। बीस वर्ष की अवस्था से उसने भिक्षु जीवन बिताना प्रारंभ किया। जब वह तीस वर्ष की अवस्था का था, उस समय काश्मीर का शासक निस्संतान मर गया। वहाँ के मन्त्रिमण्डल ने उसे काश्मीर का सम्राट होने के निमित्त आमन्त्रित किया, पर उसने इसे अस्वीकार कर दिया। वह काश्मीर से सबसे पहले लंका आया। वहाँ पर भिक्षु-संघ ने उसका हार्दिक स्वागत किया। उसने इस द्वीप में कुछ काल तक बौद्ध धर्म का प्रचार किया। तदनन्तर वह जावा आया। वहाँ का शासक इसकी विद्वत्ता से अधिक प्रभावित हुआ। वहाँ के राजकीय परिवार के सभी सदस्यों ने उससे बौद्ध धर्म में दीक्षा ली। धीरे-धीरे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसकी ख्याति चीन में भी पहुँची। नानकिंग के बौद्ध संघ ने चीन-सम्राट से गुणवर्मा को चीन आमंत्रित करने के लिए अनुरोध किया। उसने चीन-सम्राट के निमंत्रण को स्वीकार कर लिया। ४३१ ई० में वह नानकिंग पहुँचा। वहाँ पर इसके निवास के निमित्त एक मठ का निर्माण कराया गया। दुर्भाग्यवश वह चीन में केवल एक ही वर्ष तक जीवित रह सका। इस अल्पकाल के भीतर उसने काफी काम किया। उसने लगभग ११ बौद्ध ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया।

(६) धर्ममित्र--वह ध्यानवाद का आचार्य था। वह सर्वप्रथम कूची आया। कुछ वर्षों तक वहाँ रहने के उपरान्त वह तन हुआंग आया। वहाँ पर उसने एक मठ की स्थापना की। ४२४ ई० में वह दक्षिण चीन आया। उसने अपने जीवन के शेष दिनों को यहीं पर व्यतीत किया। उसकी मृत्यु ४४२ ई० में हुई। उसने चीनी विद्यार्थियों को कई बौद्ध ग्रन्थों का अध्यापन किया।

मध्यदेश के बौद्ध-प्रचारक

(१) धर्मक्षेम—वह मध्यदेश का रहने वाला तथा महायान धर्म का अनुयायी था। वह सबसे पहले काश्मीर आया। वहाँ के बौद्ध महायान धर्म के विरोधी थे, अतएव उसे यहाँ से हटकर कूची आना पड़ा। कुछ काल के अनन्तर वह पश्चिमी चीन में आया। यहाँ के शासक ने उसे रोक लिया। उसने ४१४ ई० से लेकर ४३२ ई० तक कई ग्रन्थों का अनुवाद किया। उसने ४३२ ई० में स्थानीय शासक से भारत लौटने के लिए आज्ञा माँगी। वह धर्मक्षेम को वहाँ से हटने नहीं देना चाहता था तथा कुछ और ग्रन्थों का उससे अनुवाद कराना चाहता था। इस कारण वह इससे रुष्ट हो गया तथा ४३३ ई० में उसे मरवा डाला।

(२) गुणभद्र—वह भी मध्य देश का रहने वाला था। ४३५ ई० में वह समुद्र-मार्ग से दक्षिणी चीन आया। उसका जन्म ब्राह्मण-परिवार में हुआ था, पर उसकी प्रवृत्ति बौद्ध धर्म की ओर थी। अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध वह भिक्षुसंघ का सदस्य बन गया तथा बौद्ध ग्रन्थों का अनुशीलन करने लगा। वह लंका होता हुआ ४३५ ई० में कैन्टन पहुँचा। तत्पश्चात्

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह नानकिंग आया, जहाँ पर मृत्युपर्यन्त (४६८ ई० तक) उसने अध्यापन-कार्य तथा अनुवाद-कार्य किया। उसके द्वारा अनूदित कुछ ग्रन्थ उपलब्ध हुये हैं।

पूर्वी भारत के प्रचारक—चीनी साधनों के अनुसार बौद्ध धर्म के कुछ प्रचारक आसाम एवं बङ्गाल से भी चीन आये थे। उनमें ज्ञानभद्र, जिनयशस् तथा यशोगुप्त के नाम उल्लेखनीय हैं। दुर्भाग्यवश इनके विषय में उल्लेख बहुत कम मिलते हैं। परिणामतः उनके जीवनचरित के सम्बन्ध में हमारी जानकारी अत्यल्प है। इन सभी विद्वानों ने उत्तरी चीन में छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक कार्य किया।

पश्चिमी भारत के प्रचारक

(१) उपशून्य—वह उज्जयिनी का रहने वाला था, जो कि तत्कालीन प्रख्यात बौद्धिक केन्द्र था। सम्भवतः वह जल-मार्ग से चीन गया था। वहाँ सबसे पहले वह नानकिंग आया। उसने वहाँ पर छठी शताब्दी का संपूर्ण उत्तार्द्ध ग्रंथों के अनुवाद-कार्य में व्यतीत किया।

(२) परमार्थ—वह भी उज्जयिनी का रहने वाला तथा चीन में छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आया था। उसका एक दूसरा नाम गुणरत्न भी था। वह कई बौद्ध शाखाओं का प्रकांड विद्वान् था। शिक्षा की समाप्ति के उपरांत वह पाटलिपुत्र आया। इसी समय इस नगर में एक चीनी दल आया था। इस दल के अनुरोध पर पाटलिपुत्र-नरेश ने परमार्थ को चीन भेज दिया। वह जल-मार्ग के द्वारा इस देश में ५४६ ई० में पहुँचा। वह अपने साथ कई बौद्ध ग्रंथ ले आया था। ५५७ ई० तक वह इन ग्रंथों का अनुवाद करता रहा। इस समय तक उसने लगभग ७० ग्रंथों का अनुवाद किया। ५५७ ई० से लेकर ५६६ ई० तक उसने शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत किया। उसकी मृत्यु ५७६ ई० में संभवतः कैन्टन में हुई। उसके द्वारा अनूदित ग्रन्थों में सन्धिनिर्मोचनसूत्र, छेदिका प्रज्ञापारमितासूत्र, महान्यायसंपरिग्रहशास्त्र, मध्यान्तविभागशास्त्र, अभिधर्मकोषशास्त्रव्याख्या, विनय-द्वाविंशति-प्रसन्नार्थ-शास्त्र तथा अष्टादर्श-शून्यता-शास्त्र उल्लेखनीय हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तर-पश्चिम भारत के बौद्ध प्रचारक

(१) **बुद्धभद्र**—इसका जन्म नगरहार में हुआ था। १७ वर्ष की अवस्था में ही इसका अध्ययन काफी विस्तृत हो चुका था। वह इस समय काश्मीर आया। यहाँ पर उसका परिचय चेयेन नामक एक चीनी यात्री के साथ हुआ। उसके साथ वह चीन आया। वहाँ पर उसने कुछ समय तक कुमारजीव के साथ कार्य किया। कुमारजीव इसकी प्रतिभा से बहुत प्रभावित था। ४२१ ई० में वह नानकिंग आया। वहाँ पर उसने मृत्युपर्यन्त (४२६ ई० तक) कई ग्रंथों का अनुवाद किया।

(२) **विमोक्षसेन**—वह स्वात की घाटी में स्थित उड्डियान नामक स्थान का रहने वाला था। कोशल-नरेश विरुडभ से पराजित होने के कारण कपिलवस्तु के शाक्यों की एक शाखा उड्डियान चली आई थी। विमोक्ष-सेन इसी शाक्य-शाखा से संबन्धित था। विमोक्षसेन की शिक्षा काश्मीर में संपादित हुई थी। वह अभिधर्म-साहित्य का एक प्रकांड पंडित था। ५४१ ई० तक वह उत्तरी चीन में था। इस समय तक उसने कई ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। चीन में उसकी कृतियों के विषय में इतिहासकारों का परिचय अपूर्ण है।

(३) **बोधिधर्म**—उसका द्वितीय नाम धर्मबोधि भी था। वह ५२६ ई० में चीन आया था। चीन-सम्राट ने इस समय उसे नानकिंग में आमन्त्रित किया था। उसके अनुसार वास्तविक आध्यात्मिक लाभ आडम्बर, अनुष्ठान तथा लौकिक साधनों से अप्राप्य है। इसका उपाय मन की शुद्धता है। वह बौद्ध धर्म के ध्यानवाद संप्रदाय का समर्थक था। उसने महापरिनिर्वाणसूत्र शास्त्र का अनुवाद किया था। उसका चीनी नाम त-म-फु-थि था।

(४) **जिनगुप्त**—इसका जन्म गंधार में हुआ था। इसकी शिक्षा पुरुषपुर में संपादित हुई, जो कि इस काल का एक समृद्धिशाली नगर था। विद्यो-पार्जन के उपरान्त उसने भिक्षु-जीवन व्यतीत करना प्रारंभ किया। २७ वर्ष की अवस्था में विदेश में बौद्ध धर्म के प्रचार के निमित्त उसमें एक प्रबल भावना उत्पन्न हुई। सर्वप्रथम वह कपिशा आया, जहाँ उसने एक वर्ष तक

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रचार का कार्य किया। तदनन्तर वह ताशकुर्घान होता हुआ खोतान पहुँचा। यहाँ पर कुछ समय तक रह लेने के उपरान्त वह दक्षिणी मार्ग से होता हुआ ५५७ ई० में चीन में वर्तमान कानसु नामक स्थान पर पहुँचा। उसके साथ यहाँ उसके आचार्य ज्ञानभद्र और जिनयशस् भी आये थे। वह उनके साथ ५५९ ई० में चंगगन पहुँचा। राजाज्ञा के अनुसार यहाँ पर उसके निवास के निमित्त एक मठ का निर्माण किया गया। अपने आचार्यों के पर्यवेक्षण में उसने यहाँ कुछ बौद्ध ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद किया।

चीन में ५७२ ई० में एक महान् राजनीतिक संकट पैदा हुआ। उसके परिणामस्वरूप जिनगुप्त अपने आचार्यों के साथ चीन से मध्य एशिया चला आया, जहाँ तुर्कों का शासन था। उसके आचार्यों की मृत्यु यहीं पर हुई। उसने ५८१ ई० तक तुर्कों के बीच बौद्ध धर्म का प्रचार किया। ५८१ ई० में चीन में पुनः राजनीतिक व्यवस्था स्थापित हुई। इस समय वहाँ सुइ राजवंश के शासन का उद्गम हुआ। इस वंश के तत्कालीन सम्राट ने जिनगुप्त को चीन आमंत्रित किया। इस आमंत्रण को स्वीकार कर वह पुनः चीन लौट आया। यहाँ पर ५८५ ई० तक उसने बौद्ध ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। लगभग ६०० ई० में उसकी मृत्यु हुई।

(५) धर्मगुप्त—जिनगुप्त के उपरान्त चीन में आने वाले बौद्ध प्रचारकों में धर्मगुप्त सबसे प्रसिद्ध है। वह काठियावाड़ का रहने वाला था। २३ वर्ष की अवस्था में वह कान्यकुब्ज आया। यहाँ पर कौमुदीसंघाराम नामक मठ में रहकर उसने बौद्ध साहित्य का अनुशीलन किया। २५ वर्ष की अवस्था में वह भिक्षु बन गया। वह अब उत्तरी पंजाब के देवविहार नामक मठ में रहने लगा। यहाँ उसने सौदागरों से चीन में बौद्ध धर्म के प्रसार के विषय में सुना। फलतः उसने अपनी चीन-यात्रा प्रारम्भ की। वह कपिशा, तुखार, बदक्शाँ, बखान, ताशकुर्घान तथा काशगर होता हुआ कूची पहुँचा। कूची का सम्राट धर्मगुप्त को रोकना चाहता था। पर वह उसकी इच्छा के विरुद्ध करसहर तथा तुर्फान होता हुआ ५९० ई० में चंग-गन पहुँचा। वहाँ पर कई वर्षों तक उसने बौद्ध धर्म का प्रचार किया। कालान्तर में वह लो-यंग आया,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जहाँ पर ६१० ई० में उसकी मृत्यु हुई। उसने वहाँ कुछ बौद्ध ग्रंथों का चीनी रूपान्तर किया तथा बौद्ध साहित्य की परम्परा को पुनरुज्जीवित किया। उसने अपनी यात्रा का विवरण भी लिखा था, जो अभी तक उपलब्ध न हो सका है। चीन के प्राचीन ग्रंथों में इस विवरण का छिटपुट उल्लेख हुआ है। उनके अनुसार इसमें विभिन्न प्रदेशों की जलवायु, पर्वत, नदी, नगर, रीति एवं प्रथा तथा व्यापार और वाणिज्य के विषय में विशद सूचनायें भरी हुई थीं।

बौद्ध धर्म का चीन पर प्रभाव—इस काल में बौद्ध धर्म चीनी सभ्यता के ऊपर सबसे बड़ा बाह्य सांस्कृतिक प्रभाव था।[१] चीनवासियों की विचार-धारा, कला तथा रीति प्रथाओं को जिस रूप में बौद्ध धर्म ने प्रभावित किया, उसकी तुलना पाश्चात्य विश्व के ऊपर ईसाई धर्म के प्रभाव से की जा सकती है। इस धर्म का प्रभाव चीन-वासियों के जीवन के प्रायः सभी अंगों के ऊपर पड़ा।[२]

धर्म के क्षेत्र में इसने चीन में नवीन भावनाओं को जन्म दिया। इसके फलस्वरूप लोगों का नवीन देवी देवताओं की पूजा में विश्वास हुआ। लोग आत्मा की देहान्तरप्राप्ति में विश्वास करने लगे। पुनर्जन्म, मोक्ष तथा कर्मवाद में लोगों की आस्था उत्पन्न हुई। नैतिक दृष्टि से भी इसका चीन के ऊपर प्रर्याप्त प्रभाव पड़ा। प्राणिमात्र के प्रति दया, श्रेष्ठ लोगों का आदर, जीवन के प्रति उदार दृष्टिकोण, जीवहत्या का विरोध तथा सच्चरित्र जीवन आदि को सामाजिक आदर्श माना गया। तृतीय शताब्दी के उपरान्त ताओवाद बौद्ध धर्म से अत्यधिक प्रभावित हुआ। यही कारण है कि ताओवाद में भी आराधना-विधि, भिक्षु-जीवन तथा पवित्र रचनाओं के संग्रह आदि को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला। पाँचवीं शताब्दी के लगभग ताओवादिओं ने एक मन्दिर का निर्माण किया, जिसमें मूर्ति की स्थापना की

---

१ "Buddhism was by far the most important cultural influence of foreign origin introduced in to China in the historical period." —Fitzerald.

२ "Buddhism had a manyfold influence upon the life of the period." —Latourette.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गई। इसमें पुरोहित रहने लगे, जिनके धार्मिक जीवन को संगठित करने के निमित्त भिक्षुसंघ के नियमों के समान नियमावली बनाई गई। इसी समय एक ताम्रोवादी ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि बौद्ध धर्म ताम्रोवाद का एक दूसरा रूप है तथा गौतम बुद्ध लाम्रोत्से के अनुयायी थे। चीन की भाषा एवं उसके साहित्य के ऊपर भी बौद्ध धर्म का प्रभाव पड़ा। इसके कारण ही चीनी भाषा में अनेक पारिभाषिक शब्दों का प्रवेश हुआ। इस धर्म ने चीनी भाषाविज्ञान में एक नवीन ध्वन्यात्मक व्याख्या को जन्म दिया।

कला के क्षेत्र में बौद्ध धर्म का विशेष प्रभाव पड़ा। इस धर्म के माध्यम से चीन में हेलेनिस्टिक कला का सूत्रपात हुआ।[१] उत्तर-पश्चिम भारतवर्ष में गंधार-शैली का सर्वप्रथम आविर्भाव हुआ, जिसके ऊपर पर्याप्त यूनानी प्रभाव था। उत्तर-पश्चिम भारतवर्ष का मध्य एशिया एवं चीन आदि के साथ घनिष्ठ व्यापारिक संबन्ध था। इस सम्पर्क के कारण चीन-वासियों का परिचय गंधार-कला से हुआ, जो कि बौद्ध कला थी। वहाँ बौद्ध प्रतिमाओं के आदर्श पर छोटी बड़ी हर प्रकार की मूर्तियाँ निर्मित की गई। मनहुअंग की कला पर गंधार-कला का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। बौद्ध धर्म के माध्यम के द्वारा भारतीय चित्रकला का भी चीन की चित्रकला पर प्रभाव पड़ा। किअंगसू नामक चित्रकार के चित्रों के विषय बौद्ध धर्म से संबन्धित हैं।

बौद्ध धर्म पर चीनी प्रभाव--यदि बौद्ध धर्म ने चीन को प्रभावित किया, तो चीन ने भी बौद्ध धर्म को परिवर्तित किया। कुछ इतिहासकारों का कथन है कि चीन ने ही बौद्ध धर्म को अधिक प्रभावित किया था।[२] बौद्धों ने ताम्रोवाद की शब्दावली को अपना लिया तथा उसके साहित्य का प्रचुर अध्ययन किया। उन्होंने ताम्रो ते चिंग पर टीका लिखी। एक शक्तिशाली

---

१ "In the realm of art, it served as the conduit by which Hellenistic influence flowed eastward across Central Asia" —Fitzerald.

२. "But in the end it was Buddhism, rather than Chinese culture which underwent the greatest transformation."-Fitzerald.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्म होने के कारण बौद्ध धर्म ने चीन में अपनी शाखाओं को जन्म दिया। इनमें से कुछ शाखायें ऐसी थीं, जो भारतवर्ष से आई थीं पर इनमें अधिकांश की उत्पत्ति चीन में हुई थी। सच तो यह है कि चीन के वायुमंडल ने बौद्ध धर्म की काया को परिवर्तित कर दिया। चीनी बौद्ध धर्म ने ताओवाद एवं कन्फ्यूशियस मत की उन शाखाओं को आत्मसात किया, जिनका विकास चाऊ एवं हन्काल में हुआ था। इसमें सन्देह नहीं कि बौद्ध धर्म के विकास की इस नई क्रिया को भारतीय ग्रंथों से प्रेरणा मिली थी, पर निश्चयात्मक रूप से उसमें चीनी प्रतिभा के चिन्ह परिलक्षित होते हैं। चीन की स्वदेशी परिस्थितियों के कारण वहाँ के बौद्ध धर्म में निम्न शाखाओं का विकास हुआ—

चन—इस शाखा का जापानी नाम ज़ेन था। इसके अनुसार मोक्ष की प्राप्ति आंतरिक ज्ञान से होती है। इस आंतरिक ज्ञान का उदय आकस्मिक कारणों से होता है, जैसा कि स्वयं गौतम बुद्ध को भी हुआ था। इसमें संन्यास, आडम्बर तथा ध्यान आदि को गौण स्थान दिया गया। इसके सूत्रपात का श्रेय ताओ शेंग को दिया जाता है, जो कि कुमारजीव का शिष्य था।

तियेन ताइ—इसके प्रवर्तक का नाम हुइ-सु था। इसके शिष्य का नाम चिह काई था, जिसने इस संप्रदाय के प्रचार में सहायता की। पहले वह चन संप्रदाय का अनुयायी था। कालान्तर में उसका ध्यान इसकी त्रुटियों की ओर आकर्षित हुआ। उसके अनुसार ज्ञान की प्राप्ति चन सम्प्रदाय द्वारा प्रदर्शित मार्ग में सम्भव नहीं थी। वास्तविक ज्ञान की उपलब्धि आकस्मिक नहीं है। इसके लिये ध्यान, एकाग्रता, सद् ग्रंथ का अवलोकन, धार्मिक अनुष्ठान, मानसिक अनुशासन तथा आन्तरिक प्रज्ञा आदि आवश्यक हैं। इस सम्प्रदाय के अनुसार सत्य का स्वरूप व्यक्तिगत नहीं, अपितु सामूहिक है। जो तत्व एक व्यक्ति के लिये सत्य है, वह सम्पूर्ण समाज के लिये भी। इस संप्रदाय का नाम तियेन ताइ पर्वत के नाम के आधार पड़ा था। चिह काइ अपने सिद्धान्तों के उपदेश के निमित्त यहाँ जाया करता था।

चिंग तु—इसके प्रवर्तक का नाम हुई युआन था। इसका समय ३३३ ई० से लेकर ४१६ ई० तक माना जाता है। इसके अनुसार मोक्ष की प्राप्ति सरल भक्ति के द्वारा होती है। इस संप्रदाय के अनुयायियों की श्रद्धा अमि-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ताभ में थी, जो कि चीन के महायान धर्मावलंबियों के द्वारा एक बोधिसत्व माने जाते थे। इनके स्मरण के द्वारा आवागमन से मुक्ति मिलती है। लोकोत्तर में इस संप्रदाय के अनुयायियों का विश्वास था। अरक्षित चीनी समाज वर्तमान जीवन से कुछ ऊब गया था, अतएव द्वितीय जगत् में आस्था रखने वाला यह संप्रदाय अधिक लोकप्रिय बनने में सफल हुआ।

तङ्ग-काल (६१८ ई०—६०७ ई०)

चीनी सभ्यता के इतिहास में तंग-काल युगान्तर का प्रवर्तन करता है।[1] इस राजवंश की स्थापना ६१८ ई० में हुई। इसकी राजधानी चंगगन में वर्तमान थी। इस नगर की भौगोलिक स्थिति इसके सर्वाङ्गीण विकास के लिये सर्वथा अनुकूल थी। यह तंग-नरेशों की कृतियों का केन्द्रविन्दु था। इसके संस्थापक का नाम लि युअन था। इतिहास के पृष्ठों में वह काओत्सु के नाम से प्रसिद्ध है। उसने ६१८ ई० से लेकर ६२६ ई० तक राज्य किया। इस काल के बीच वह अपने प्रतिद्वन्द्वियों के दमन तथा अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने में व्यस्त था।

ताइ सुंग—यह इस राजवंश का द्वितीय शासक था। इसका काल ६२७ ई० से लेकर ६४६ ई० तक माना जाता है। वह चीन का एक बहुत ही सुयोग्य शासक था। उसका राज्यकाल चीन के दीर्घकालीन इतिहास का एक ज्वलंत युग था। उसने अपने बाइस वर्षीय शासन-काल में साम्राज्य को सुसंगठित किया। वह इसकी समृद्धि तथा सभ्यता के विकास में सतत् संलग्न था। उसके काल में इस राजवंश की शक्ति अपने अभ्युदय की पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी। उसने शासन के क्षेत्र में कई महत्त्वपूर्ण सुधार किये। उच्च पदों पर नियुक्ति के निमित्त प्रतियोगिता-परीक्षायें ली गईं। इससे सुयोग्य पदाधिकारियों का चुनाव सम्भव हुआ। सैनिक एवं दीवानी विभागों में अलग कर्मचारियों की नियुक्ति की गई। उसने सम्पूर्ण साम्राज्य को दस प्रान्तों में विभाजित किया। राजकुल से सम्बन्धित एवं सुयोग्य व्यक्तियों को

१. "The consolidation of the Tang dynasty is a turning point in the history of China." —Fitzerald.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राज्यपाल नियुक्त किया गया। प्रान्तों का विभाजन लघु इकाइयों में किया गया। इनके शासन के लिये भी योग्य कर्मचारी चुने गये। विभिन्न भागों के शासन की देख-रेख के लिये कमिश्नर 'इम्पीरियल कमिश्नर्स' हुआ करते थे। ये राजधानी में रहते थे तथा विभिन्न समयों पर निरीक्षण के निमित्त प्रांतों में भेजे जाते थे। सभी महत्त्वपूर्ण पदाधिकारियों की नियुक्ति का कार्य राजधानी में हुआ करता था। इस कारण साम्राज्य के विभिन्न भागों में केन्द्रीय नियन्त्रण बहुत ही कड़ा था। इसके समय में कृषि के विकास के लिये नहरों का निर्माण किया गया। उसने बलिदान की प्रथा को रोक दिया। कन्फ्यूशियस की स्मृति में एक मन्दिर की स्थापना की गई। इतिहास, गणित, काव्य एवं दर्शन के क्षेत्र में प्रवीण व्यक्तियों को उसने सम्मान प्रदान किया।

उसने अपने सैनिक शासन को सुव्यवस्थित किया। अश्वसेना को विशेष रूप से सुदृढ़ किया गया। सैनिकों को नवीन शस्त्रों के प्रयोग में कुशल एवं रणपद्धति में दक्ष बनाया गया। वह एक विजेता सम्राट था। उसने मध्य एशिया में अपने साम्राज्य की सीमा और आगे तक बढ़ा ली। साम्राज्य की उत्तरी सीमा को बाह्य आक्रमणों से सुरक्षित करने के निमित्त उसने किलेबन्दी की। तुर्कों को दबाने के निमित्त उसने उनमें वैमनस्य उत्पन्न किया। ६३० ई० में उसकी सेना ने पूर्वी तुर्कों को परास्त कर उनके द्वारा शासित भू-भाग को छीन लिया। कुछ ही काल के उपरांत उसने पश्चिमी तुर्कों का भी दमन किया। ६३२ ई० तक पूर्वी मंगोलिया के खितान तथा दक्षिणी मंचूरिया के मंगोल उसके द्वारा कुचल डाले गये। काशगर, यारकंद, समरकंद तथा बोखारा ने चीन की अधीनता स्वीकार कर ली। ताइ सुंग के मृत्युकाल के समय रूसी तुर्किस्तान तथा अफगानिस्तान भी उसके साम्राज्य में सम्मिलित थे। विजेता होने के अतिरिक्त वह कूटनीतिज्ञ भी था। दूरस्थ प्रदेशों के शासकों के साथ उसने प्रेमपूर्ण संबन्ध स्थापित किया। ६४३ ई० में उसने भारतवर्ष राजदूत भेजा था। तिब्बत-सम्राट को मिलाने के निमित्त उसने एक चीनी राजकुमारी का विवाह उसके साथ किया। उसने नवविजित प्रदेशों में चीनी प्रथाओं एवं बौद्ध धर्म का प्रचार किया। उसने बर्बर जातियों को भी अपनी शक्ति एवं कूटनीति के द्वारा दहला दिया। समका-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लीन लेखकों ने ताईसुंगकालीन ऐश्वर्य की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। उनके अनुसार राष्ट्र की धनराशि इस समय अभ्युदय की पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी। इस समय अन्न, धन तथा गृह आदि की जो प्रचुरता थी, वह किसी काल में भीं नहीं थी।[१] नागरिकों के द्वारा सिल्क के बने हुये वस्त्रों का खूब व्यवहार किया जाता था। चीन के गाँवों में भी इस समय सिल्क के कारखाने विद्यमान थे। राजधानी के समीपस्थ किसी ग्राम में एक सिल्क का कारखाना था जिसमें हजारों मजदूर काम करते थे। वह साहित्य एवं कला के विकास का प्रेमी था। इस समय राजकीय पुस्तकालय में ५४००० ग्रंथ विद्यमान थे।

काओत्सुंग—उसकी मृत्यु के पश्चात् ६४६ ई० में उसका पुत्र काओत्सुंग सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने ६८३ ई० तक राज्य किया। वह अपने पिता के समान ही विजेता था। उसने कोरिया एवं मंचूरिया को जीत लिया। उसने एक जापानी जहाजी बेड़े को परास्त कर चीनी जलसेना की शक्ति का परिचय दिया। सुदूर पश्चिम में उसने तंग-आधिपत्य को सुदृढ़ किया। उसने ६५६ ई० तक पश्चिमी तुर्कों को पूर्ण रूप से परास्त कर आक्सस नदी के समीपवर्ती क्षेत्रों पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। इसके समय में तंग-साम्राज्य की सीमा भारतवर्ष को छूती थी। ताशकंद, समरकंद, बोखारा तथा फरगना उसके साम्राज्य में सम्मिलित थे। उसकी शक्ति का लोहा अरब भी मानते थे। उसने फंग तथा शन नामक बलिदान की परंपरा को पुनरुज्जीवित किया। इस पुनरुज्जीवन का कारण राजकीय शक्ति एवं समृद्धि का प्रदर्शन था। यह नरेश बौद्ध मतावलंबी था। उसके समय में मठों की स्थापना की गई। उसके राज्य-काल के अंतिम भाग में विद्रोह की चिनगारियाँ फूटने लगीं। इस समय तिब्बतवासियों ने विद्रोह किया, जिसके फलस्वरूप टेरिम की घाटी के कुछ प्रसिद्ध नगरों पर तंग-वंश का आधिपत्य समाप्त हो गया। तुर्कों ने भी चीनी प्रभुता के विनाश

---

१ "Never before had China known such wealth, never had she enjoyed such abundant food, such comfortable houses, such exquisite clothing." —Will Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के निमित्त चेष्टा करना प्रारम्भ किया। उन्होंने ट्रान्सोक्सिआना से चीनियों को भगा दिया।

वु हाऊ—इसका राज्य-काल ६८३ ई० से लेकर ७०५ ई० तक माना जाता है। वह काओत्सुंग की प्रेयसी थी। उसके जीवनकाल के अंतिम दिनों में इसका प्रभाव इतना अधिक बढ़ गया कि शासन का समस्त कार्य एकमात्र इसके संकेत पर संपादित होता था। काओत्सुंग की मृत्यु के पश्चात् अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिये उसने उसके कई पुत्रों को मरवा डाला। इसका व्यक्तिगत जीवन भ्रष्टाचार से भरा हुआ था। अपने शासन-काल के बाईस वर्षों में उसने कई व्यक्तियों के साथ अपना गुप्त प्रेम स्थापित रखा। पर उसका शासन बहुत ही कड़ा था। उसकी गणना विश्व की सफल साम्राज्ञियों में की जाती है। ७०५ ई० में अस्सी वर्ष की अवस्था में वह षडयंत्र के द्वारा मार डाली गई। ७०५ ई० से लेकर ७१२ ई० तक कई अयोग्य व्यक्तियों ने शासन किया। ७१२ ई० में सुअन सुंग नामक योग्य व्यक्ति के हाथ में तंग-शासन की बागडोर आई।

सुअन सुंग—उसने ७१२ ई० से लेकर ७५६ ई० तक राज्य किया। उसका शासन प्रारम्भ में बहुत ही सफल था। उसने समस्त संभावित षडयंत्रों को कुचल दिया। उसके शासन-काल में तंग-वंश का ऐश्वर्य अपने अभ्युदय की पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था[१]। उसने पश्चिम में तुर्कों को पूर्ण रूप से दबा दिया। मंगोलिया एवं तुर्किस्तान के ऊपर उसने तंग-वंश के आधिपत्य-को सुदृढ़ किया। तिब्बत-सम्राट ने उसकी शक्ति से आतंकित होने के कारण आत्मसमर्पण किया। अरबों ने भी उसका लोहा माना। समरकंद, बोखारा, ताशकंद तथा तुर्किस्तान के राजकुमारों ने कई अवसरों पर उससे सहायता की याचना की। ७४७ ई० में उसने पामीर तथा काश्मीर के राजाओं की भी सहायता की थी। उसका राज्यकाल सांस्कृतिक विकास के लिये भी प्रसिद्ध है। उसके दरबार में कलाकारों एवं साहित्यकारों का जमघट लगा रहता था।

---

१. "Under him the Tang reached the pinnacle of its glory"

—Latourete.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसने कवियों एवं दार्शनिकों को आर्थिक सहायता प्रदान की थी। लिपो तथा तुफु उसके दरबारी कवि थे। प्रसिद्ध चित्रकार हन कन एवं वंगवेई उसके काल की विभूति थे। उसके राज्य के अंतिम दिनों में अनलुशन नामक व्यक्ति के नेतृत्व में एक विद्रोह हुआ। उसमें विलक्षण संगठन-शक्ति थी। उसके नेतृत्व में विद्रोहियों ने काफी उथल-पुथल मचाया। इस समय सुअन सुंग सत्तर वर्ष का हो चुका था। वह इस विद्रोह को रोकने में असफल सिद्ध हुआ। इस घटना के कारण ७५६ ई० तक तंग-वंश की आंतरिक शक्ति काफी क्षीण हो गई।

तंग वंश का अधःपतन-काल (७५६ ई०-६०७ ई०)—तंग-वंश के अधःपतन की क्रिया अनलुशन के विद्रोह के साथ प्रारम्भ होती है। इस राजवंश के पूर्ण विनाश में लगभग १५० वर्ष लगे। इतिहासकारों ने बाह्य आक्रमण, गृहयुद्ध, अराजकता, भ्रष्ट शासन तथा राजाओं की विलासिता आदि को तंग-साम्राज्य के अधःपतन का कारण माना है। उत्तर-पश्चिम सीमा की ओर से बर्बर जातियों के कई आक्रमण हुये। सम्राट की मृत्यु के अनन्तर उत्तराधिकार-संबन्धी युद्ध बहुधा होने लगे। तिब्बत के आक्रमण ने तंग-साम्राज्य को काफी क्षति पहुँचाई। ७६३ ई० में उनके द्वारा चंगगन जीत लिया गया। इस समय उच्च पदों पर नियुक्ति परंपरा के आधार पर होने लगी। परिणामस्वरूप अयोग्य व्यक्ति शासन-व्यवस्था में घुसने लगे। ऐसे लोग सम्राट के शासन को अप्रिय बनाते थे। प्रान्तों का शासन विशेष रूप से ढीला था। इस कारण असंतोष एवं विद्रोह का वातावरण बढ़ने लगा। समुद्री डाकू बंदरगाहों को लूटने लगे। ८८० ई० से लेकर ६०७ ई० तक लगातार विद्रोह एवं षडयंत्र हुये, जिसके फलस्वरूप तंग-वंश का अंतिम विनाश संपन्न हुआ।

तंगकालीन संस्कृति

काव्य—कतिपय इतिहासकारों ने तंग-काल को चीनी सभ्यता का एक द्वितीग स्वर्णयुग माना है। इस देश के इतिहास में यह युग महान् रचनात्मक कार्यों एवं विशिष्ट विकासों के लिये प्रख्यात है। तंग-वंश के लगभग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तीन सौ वर्षों का काल (६१८ ई०-६०७ई०) चीन के काव्य-साहित्य का स्वर्ण-युग माना जाता है। तंगकालीन कविता के विषय विविध हैं तथा उसमें नवीन विशेषतायें परिलक्षित होती हैं। इसमें श्रृंगार रस, वीर रस, करुण रस, दर्शन एवं धर्म आदि का प्रतिबिम्ब उपलब्ध होता है। इस काल के गण्यमान कवियों की तालिका में लिपो, तुफू तथा पोचुइ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

लिपो—उसका जन्म सुदूर पश्चिम में ७०५ ई० में हुआ। वह भ्रमण-शील प्रवृत्ति का साहित्यकार था तथा कामिनी एवं मदिरा में उसकी विशेष अभिरुचि थी। वह सुअन सुंग का दरबारी कवि तथा उसका परम स्नेह-भाजन था। कहा जाता है कि उसने इस सम्राट् की प्रेयसी यंग कुई फी का ही सौन्दर्यनिरूपण अपनी कई कविताओं में किया था। उसकी कवितायें प्रकृतिनिरूपण से भी संबन्धित हैं तथा उसकी शैली में प्रवाह एवं स्वाभाविकता मिलती है। उसके पद गेय हैं तथा यही कारण है कि उसे चीन का कीट्स कहते हैं। उसकी शैली में ओजस्विता, प्रसाद गुण एवं मौलिकता पर्याप्त रूप में मिलती है।

तुफू—इसका समय ७१२ ई० से लेकर ७७० ई० तक माना जाता है। वह सुअन सुंग का प्रिय दरबारी कवि तथा लिपो का घनिष्ठ मित्र था। इन दोनों ने मिलकर एक मित्रमंडल की स्थापना की थी, जिसका नाम 'एट इमार्टल ऑफ दी वाइन कप' था। उसकी कृतियों में लिपो का प्रायः उल्लेख मिलता है, जिससे दोनों की प्रगाढ़ मैत्री स्पष्ट होती है। उसकी प्रारंभिक कविताओं में उसके आशावादी दृष्टिकोण का प्रतिबिम्ब मिलता है तथा उनके विषय मुख्यतया प्रणय से संबन्धित हैं। पर यहाँ पर उल्लेखनीय है कि उसकी उत्तरकालीन कृतियों में उदासीनता का पुट उपलब्ध होता है। इसका कारण यह है कि उस समय चीन में युद्ध और रक्तपात चल रहा था। निर्दोष व्यक्तियों की हत्याओं एवं असहाय व्यक्तियों के करुण क्रन्दन ने इस लेखक को जीवन के प्रति उदासीन बना दिया था। प्रकृति के प्रति उसका नैसर्गिक प्रेम था। यही कारण है कि उसकी कृतियों में वर्षा, पर्वत, सूर्य, चंद्र, नदी एवं सरोवर आदि प्राकृतिक विषयों का सुन्दर वर्णन मिलता है। जीवन के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रति उसका दृष्टिकोण बहुत कुछ यथार्थवादी एवं व्यावहारिक था। उसकी शैली के कुछ प्रशंसक समालोचकों ने उसे तंग काल का सर्वश्रेष्ठ कवि माना है।

पोचुइ—इसका समय ७७२ ई० से लेकर ८४६ ई० तक माना जाता है। वह बहुत काल तक उच्च राजकीय पदों पर कार्य कर चुका था तथा अपने व्यक्तिगत जीवन में कन्फ्यूशियस के सिद्धान्तों से प्रभावित था। यही कारण है कि इसके मत की छाप उसकी पंक्तियों में बारंबार परिलक्षित होती है। उसने अपनी कविता को अलंकृत एवं सुसज्जित करने का कोई प्रयास नहीं किया था। तथापि उसकी शैली सुन्दर एवं प्रभावोत्पादक थी। उसके काव्य में सरल शब्दों में नैतिक उपदेश मिलते हैं, जिसका सम्मान जनसाधारण एवं उच्च वर्ग दोनों में विशेष रूप से था। इसकी अधिकांश पंक्तियाँ लोगों को कंठस्थ थीं।[१]

गद्य—तंगकालीन गद्य में कथायें, यात्राविवरण, उपन्यास तथा ऐतिहासिक ग्रंथ आते हैं। इस काल का कथा-साहित्य काफी लोकप्रिय तथा लोगों के मनोरंजन का साधन था। इस समय की कुछ कथायें गद्यपद्य-मिश्रित शैली में मिलती हैं, जिनकी तुलना प्राचीन भारतीय चंपू (गद्यपद्य-मिश्रित) शैली से की जा सकती है। आठवीं शताब्दी से चीन में यात्रा-विवरण लिखने की परंपरा प्रारंभ हुई। ये भ्रमण-वृत्तान्त अधिकांशतः जन-भाषा में लिखे जाने के कारण लोगों को सरलता के साथ बोधगम्य थे। इस प्रकार चीन में एक नवीन साहित्य (वर्नाक्यूलर लिटरेचर) का जन्म हुआ, जो कि वहाँ की सांस्कृतिक अवस्थाओं के अध्ययन के निमित्त नितांत उपयोगी है। इस समय के उपन्यास रोचक हैं और उनमें तत्कालीन सामाजिक दशा का प्रतिबिम्ब मिलता है। तत्कालीन रचनाओं में सबसे महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रंथ हैं। उनकी लेखन-क्रिया चीन की एक प्राचीन परंपरा थी। चीन ने तंग काल में जितने अधिक इतिहासकार पैदा किये, उतना संभवतः

---

१. For years many of his poems were enormously popular and were on the lips of high and low." —Latourette.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किसी भी राष्ट्र ने इतने कम समय में नहीं किया था। तंग-सम्राटों के दरबार में ऐसे कई लेखक थे, जिनका कार्य सम्राट के जीवनवृत्त तथा तत्कालीन जनता की दशा का वर्णन करना था।

कला—तंगकालीन कला विविधता तथा नये विकासों के लिये चिर-स्मरणीय है। इस समय की कला में नवीनता के सृजन का बहुत कुछ श्रेय बौद्ध धर्म को है। इसने न केवल चीनवासियों के धार्मिक जीवन को प्रभावित किया, अपितु वहाँ की कला में भारतीय तत्त्वों का भी समावेश किया। भारतीय मन्दिरों की भाँति इस समय के देवालयों को प्रतिमाओं से सुसज्जित किया गया। चीन के तक्षणकारों ने गंधार-कला की विशेषताओं का अनुकरण किया। इस बात का ज्वलन्त प्रमाण लुंग मेन की प्रतिमायें हैं, जिनका अंकन गुफा की दीवालों पर किया गया। इनको देखने से ऐसा आभास होता है, मानों इनका निर्माण भारतीय कलाकारों ने ही किया हो। इन बौद्ध प्रतिमाओं की मुद्रा, केशविन्यास तथा वस्त्र का आवरण पूर्ण रूप से भारतीय लगता है। तत्कालीन चीनी मूर्तियों तथा गुप्तयुगीन प्रतिमाओं में बहुत बड़ा साम्य है। तंगकालीन मूर्तियाँ निस्संदेह श्रेष्ठ प्रकार की हैं तथा विश्व के किसी भी देश की तत्कालीन प्रतिमाओं की समकक्षता में उन्हें रखा जा सकता है। इस समय के कलाकारों ने लौकिक प्रकार की भी मूर्तियों का निर्माण किया, जिनमें स्वाभाविकता की प्रचुर छाप दृष्टिगोचर होती है। इस काल की मृण्मयी प्रतिमायें भी उपलब्ध हुई हैं, जिनमें विविध प्रकार की आकृतियों का प्रतिनिधित्व किया गया है। इनमें विलक्षण सौन्दर्य, सजीवता एवं कला का चूड़ान्त निदर्शन मिलता है।

इस समय चित्रकला अपने अभ्युदय की पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी। चीन के कतिपय इतिहासकारों ने तंगयुगीन चित्रकला का तुलनात्मक अध्ययन करते हुये इसे वहाँ की सर्वश्रेष्ठ चित्रकारी स्वीकार किया है।[१] इस काल का सबसे निपुण उल्लेखनीय कलाकार वु-ताओ-सुअन

१ "Painting now attained a high pinnacle—in the judgement of some, the highest in Chinese History." —Latourette.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

था। तंग-सम्राटों के दरबार की विभूतियों में उसकी गणना की जाती है। उसने चित्रकला की एक नवीन शैली को जन्म दिया। व्यक्तिगत जीवन में बौद्ध मतावलम्बी होने के कारण उसकी चित्रकला के विषय प्रधानतः इसी धर्म से सम्बन्धित हैं। उसकी चित्रकला के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण चंगगन तथा लोयंग के मन्दिरों की दीवालों पर उपलब्ध होते हैं। इस काल का दूसरा निपुण चित्रकार वंग वेई था, जो कि एक कुशल कवि एवं चिकित्सक भी था। इस समय चित्रकला की दो शैलियाँ प्रचलित थीं—(१) उत्तरी शैली तथा (२) दक्षिणी शैली। उत्तरी शैली इस देश की परम्परागत चित्रकला से प्रभावित थी। इसमें गाढ़े रंग का प्रयोग होता था। दक्षिणी शैली नवीन एवं पर्याप्त अंशों में मौलिक थी। इसमें हल्का रंग चढ़ाया जाता था। वंग-वेई दक्षिणी शैली का एक लब्धप्रतिष्ठि आचार्य माना जाता था। उत्तरी शैली के प्रसिद्ध आचार्यों में लि-सु-सुअन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस शैली के अन्य विशिष्ट चित्रकारों में हनकन की भी गणना की जाती थी। उसके द्वारा निर्मित कतिपय सुन्दर अश्व-चित्रों के उदाहरण प्राप्त होते हैं। चीन-सम्राट के दरबार में विदेशी राजदूतों के द्वारा सुन्दर अश्वों को समर्पित करने का दृश्य उसने बड़ी ही सफलता के साथ प्रदर्शित किया है।

आर्थिक जीवन—तंगकालीन कृषि एवं व्यावसायिक विकास को दृष्टि में रखते हुये उस समय के आर्थिक जीवन को संतोषजनक कहा जा सकता है। भूमि का पुनर्वितरण किया गया। इस कारण भूमिविहीन लोगों के हाथ में भी थोड़ी बहुत जमीन आ गई। कृषि के विकास के निमित्त नहरों का निर्माण किया गया। दुर्भिक्ष के अवसर पर अनाज के वितरण की व्यवस्था की गई। कर-व्यवस्था में सुधार किया गया। भूमिकर एवं वाणिज्य-कर निश्चित कर दिया गया और इस प्रकार तत्कालीन जनता कर वसूल करने वाले कर्मचारियों के शोषण तथा उत्पीड़न से बच गई। भूमिकर वर्ष में दो किश्तों में दिया जा सकता था। आर्थिक परिवर्तनों के कारण साम्राज्य की मुद्रा-नीति में सुधार किया गया। इस समय जो नवीन रजत एवं ताम्रमुद्रायें निर्मित की गईं, उनका कालान्तर में भी अनुकरण किया गया।

व्यापार—बाह्य देशों के साथ घनिष्ठ सम्पर्क के कारण इस समय व्यापार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का विकास होना स्वाभाविक ही था । चीन की जनसंख्या तंग-काल में काफी अधिक हो चली थी। ६१८ ई० में यहाँ की जनगणना ३० करोड़, ७२६ ई० में ४१½ करोड़ तथा ७३३ ई० में ४३ करोड़ के लगभग थी । चीनी इतिहासकारों का कथन है कि इस समय चीन की जनसंख्या में महती वृद्धि का कारण वहाँ विदेशियों का बहुसंख्या में आगमन था। ये विदेशी वहाँ पर व्यापार-सम्बन्ध में आये थे। यहाँ पर व्यापारी जलमार्ग एवं स्थलमार्ग दोनों से ही आते थे। समकालीन लेखकों के अनुसार तंग-सम्राटों की राजधानी की सड़कें और विश्रामगृह विदेशी व्यापारियों से भरे हुये थे। कैंटन नामक बंदरगाह में फारस, अरब तथा भारतवर्ष के व्यापारी अपने देश के माल को लेकर उतरते थे। ७५८ ई० में यहाँ अरब और फारस के व्यापारी संख्या में इतने अधिक हो गये कि उन्होंने चीनी करों से ऊब कर इस बन्दरगाह को लूट लिया था। इस नगर में यहूदी तथा ईसाई भी रहते थे। उनके पारस्परिक झगड़ों के निर्णय के निमित्त एक राजकीय पदाधिकारी नियुक्त किया गया था। चुअनचाऊ यहाँ का दूसरा प्रसिद्ध बन्दरगाह था। कैंटन तथा इस बन्दरगाह में काफी प्रतियोगिता रहती थी। चीनी सौदागर भी माल के विक्रय के निमित्त सुदूर भागों में जाते थे। बगदाद की बाज़ारें चीनी माल से भरी रहती थीं। चीन से प्रायः सिल्क बाहरी देशों में भेजा जाता था। बाहरी देशों से यहाँ हाथीदाँत, मसाला, ताँबा तथा सुगन्धित द्रव आदि आता था। इतिहासकारों का कथन है कि पूर्व काल की अपेक्षा तंग-काल का व्यापार अधिक उन्नत दशा में था।[१]

मुद्रण-कला—विद्वानों का कथन है कि चीन में मुद्रण-कला तंग-काल से प्रारम्भ हुई। इस समय लकड़ी के ब्लाक के द्वारा कुछ संस्कृत तथा चीनी ग्रंथों को मुद्रित किया गया। ८६८ ई० में मुद्रित एक बौद्ध सूत्र उपलब्ध हुआ है। यह चीन का प्रथम मुद्रित ग्रंथ है, जो विद्वानों को प्राप्त हो सका है। धार्मिक लाभ के निमित्त इसकी मुद्रित प्रतियों का वितरण निःशुल्क किया

---

१ "Foreign trade appears to have reached greater proportions under the Tang than at any previous time."

—Latourette.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया था। लगता है कि यह मुद्रण-कला मुहरों के व्यवहार का उत्तर विकास थी। इस मुद्रण-कला का प्रचार चीन में कालान्तर में शताब्दियों तक विद्यमान था।

बाह्य प्रभाव—तंग-काल में चीनी सभ्यता के ऊपर बाह्य प्रभाव पड़ा। इसी समय चीन में लोगों ने ईख से चीनी बनाना, अंगूर से मदिरा तैयार करना तथा ऐनक (चश्मे) का व्यवहार करना सीखा। तंग-सम्राट् धर्म-सहिष्णु थे, अतएव उन्होंने विविध धर्मों के विकास में प्रेरणा प्रदान की। इसी समय चीन में ईसाई धर्म का प्रथम प्रवेश हुआ। चीन में तंग-युग में दो प्रकार के ईसाई मतावलम्बी विद्यमान थे—(१) नेस्टोरियन शाखा के ईसाई तथा (२) जैकोबाइट शाखा के ईसाई। नेस्टोरियन शाखा के अनुयायी ईसा मसीह में दैवी एवं मानवी दोनों ही प्रकार की शक्तियों को मानते थे। जैकोबाइट शाखा के अनुयायी ईसा मसीह में केवल दैवी शक्ति मानते थे। विद्वानों का ऐसा अनुमान है कि नेस्टोरियन सम्प्रदाय हेरात, समरकन्द तथा बल्ख होता हुआ चीन पहुँचा। चीन में इस संप्रदाय को फैलाने का श्रेय ए-लो-पेन नामक व्यक्ति को दिया जाता है, जो ६३५ ई० में चंगगन आया हुआ था। उस समय यहाँ ताइ सुंग राज्य कर रहा था। कहा जाता है कि उसने ए-लो-पेन का हार्दिक सम्मान किया। उसकी आज्ञा के अनुसार नेस्टोरियन शाखा की कई धार्मिक पुस्तकों का अनुवाद किया गया। उसके विश्राम एवं सुविधाओं के निमित्त एक भव्य भवन बनवाया गया। तंग-नरेशों के काल में चीन के कई प्रसिद्ध केन्द्रों में गिरजाघरों की स्थापना की गई। चीन में जैकोबाइट संप्रदाय के अनुयायियों की संख्या अपेक्षाकृत कम थी। लगता है कि यह संप्रदाय ससैनियन साम्राज्य से होता हुआ चीन पहुँचा था।

तंग-काल में चीन में मनीच धर्म का भी प्रवेश हुआ, जिस पर पारसीक प्रभाव पर्याप्त अंशों में था। पश्चिम में यह मेसोपोटामिया तथा भूमध्यसागरीय जगत् में फैला हुआ था। सातवीं शताब्दी के अंत में चीन में इसका प्रथम उद्गम हुआ। चंगगन तथा लोयंग में मनीच धर्म से संबन्धित मन्दिरों की स्थापना की गई। इस धर्म के ग्रंथों का पठन-पाठन चीन में होता था। तंग-काल में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अरब के सौदागर चीन आया करते थे। इनके द्वारा इस्लाम का प्रचार चीन में संभव हुआ। एक चीनी परंपरा के अनुसार मोहम्मद साहब के कोई संबन्धी चीन आये थे। यहाँ का एक प्राचीन मकबरा उन्हीं का बताया जाता है। तंग-काल में चीन में कुछ यहूदी भी विद्यमान थे, पर उनकी संख्या अत्यल्प थी तथा वे सभी व्यापारी थे।

बौद्ध धर्म का उत्कर्ष—तंग-काल में बौद्ध धर्म अपने अभ्युदय की पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था। इस समय के बौद्ध धर्म के विकास को देखते हुये कुछ इतिहासकारों ने तंग-काल को चीन का बौद्ध काल कहा है। इस काल में मौलिक एवं अनूदित बौद्ध साहित्य की रचना की गई। इस समय चीन में नवीन बौद्ध सम्प्रदायों का उद्गम हुआ। (१) फासियांग सम्प्रदाय—इस बौद्ध सम्प्रदाय का संस्थापक एक भारतीय आचार्य था। कुछ समालोचकों के अनुसार फासियांग सम्प्रदाय चीनी बौद्ध दर्शन के चरमोत्कर्ष को व्यक्त करता है। इसके अनुसार दृष्ट विश्व विचारों का व्यक्तीकरण है। यह सम्प्रदाय पर्याप्त रूप में आदर्शवादी था। इसके प्रधान ग्रंथों में तर्कपूर्ण व्याख्या उपलब्ध होती है। इस सम्प्रदाय के अनुसार धार्मिक अनुभूति का मार्ग योगाभ्यास है। (२) विनय सम्प्रदाय—इसका चीनी नाम लूत्सुंग सम्प्रदाय था। इसके प्रवर्तक का नाम ताओ सुअन था। इसके अनुसार मोक्ष की प्राप्ति के निमित्त नैतिकता एवं सदाचार का व्यवहार आवश्यक है। (३) चेन येन—इसकी उत्पत्ति भारतीय तंत्रवाद के कारण हुई। यह चीनी बौद्ध धर्म से सम्बन्धित एक भ्रष्ट सम्प्रदाय था। इसके अनुयायी आडंबर एवं कर्मकांडों में विश्वास करते थे। इन सम्प्रदायों का विकास पूर्ण रूप से चीनी वातावरण में हुआ।

बौद्ध धर्म के तंगकालीन भारतीय प्रचारक

(१) **प्रभाकरमित्र**—यह नालन्दा विश्वविद्यालय का एक बौद्ध आचार्य था। इस समय यह विश्वविद्यालय विद्या का एक अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र था। यहाँ पर चीन और तिब्बत के भी विद्यार्थी अध्ययनार्थ आते थे। वह पहला भारतीय विद्वान था, जो तंग-काल में बौद्ध धर्म के प्रचार के हेतु चीन गया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था। उसका जन्म मध्य एशिया में एक राजकीय परिवार में हुआ था। उसने महायान सूत्रों का गहन अध्ययन किया था। उसने नालन्दा में शीलभद्र से बौद्ध दर्शन का दूरतर अनुशीलन किया। अपनी विद्वत्ता के कारण वह यहाँ पर शिक्षक नियुक्त किया गया। विदेश में बौद्ध धर्म के प्रचार की इच्छा उसमें प्रारम्भ से ही थी। ६२७ ई० में वह चीन आया। तंग-सम्राट ने उसे कुछ बौद्ध ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद करने के लिए नियुक्त किया। इनमें से कुछ उपलब्ध भी हुये हैं। उसकी मृत्यु ६३३ ई० में चीन में ही हुई।

(२) **बोधिरुचि**—वह दक्षिणी भारत का बौद्ध भिक्षु था। प्रारम्भ में उसे ब्राह्मण दर्शन, ज्योतिष, गणित तथा चिकित्साशास्त्र की शिक्षा दी गई। कालान्तर में यशघोष नामक एक बौद्ध आचार्य से प्रभावित होने के कारण उसने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया तथा बौद्ध साहित्य का अध्ययन करना प्रारम्भ किया। ६९२ ई० में चालुक्य-दरबार में एक चीनी राजदूत आया था। उसके अनुरोध पर उसने चीन जाना स्वीकार कर लिया। ६९३ ई० में जलमार्ग के द्वारा वह चीन पहुँचा। उसने पहुँचते ही अनुवाद-कार्य प्रारम्भ कर दिया। उसकी सहायता के लिये चंड नामक एक बौद्ध भिक्षु नियुक्त किया गया। इसके अतिरिक्त उसके कुछ और भी सहायक थे; उदाहरणार्थ ईश्वरधर्म तथा प्रज्ञागुप्त। ७०६ ई० में वह तंग-सम्राट की राजधानी चंगगन में आया। वहाँ पर उसके निवास के निमित्त एक मठ बनवाया गया था। उसने वहाँ रत्नकूट नामक महायान ग्रंथ का अनुवाद करना प्रारम्भ किया। इस कार्य को पूर्ण करने में उसने ७ वर्ष लगा दिये। जिस समय यह कार्य समाप्त हुआ, उस समय राज्य की ओर से एक विशेष उत्सव मनाया गया। इस अवसर पर राजकुल के समस्त सदस्य उपस्थित थे। बोधिरुचि ने कुल ५३ ग्रन्थों का अनुवाद किया था। रत्नकूट उसका अंतिम अनूदित ग्रंथ था। ७२४ ई० में वह तंग-सम्राट के साथ लोयंग आया। वहीं पर ७२७ ई० में उसकी जीवन-लीला समाप्त हुई। चीनी साधनों के अनुसार मृत्यु के समय उसकी अवस्था १५६ वर्ष थी।

(३) **शुभाकरसिंह**—वह अपने आप को गौतम बुद्ध के पितृव्य अमृतो-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दन का वंशज मानता था। उसने सर्वप्रथम नालन्दा विश्वविद्यालय में रहकर बौद्ध साहित्य की विभिन्न शाखाओं का अध्ययन किया। बाहरी देशों में बौद्ध धर्म के प्रचार के निमित्त वह भी उत्सुक था। ७१६ ई० में वह चंगगन पहुँचा। अपने साथ वह कई प्रतिलिपियों को भी लाया था, जिन्हें उसने चीन-सम्राट को समर्पित किया। उसके उपरांत वह लोयंग आया। वहाँ पर बोधिरुचि के साथ उसका सम्पर्क हुआ। उसने चीन में कुछ ग्रंथों का अनुवाद किया। ७३५ ई० में ९९ वर्ष की अवस्था में उसकी मृत्यु हुई। एक शिक्षक के रूप में चीन में उसकी प्रतिष्ठा बहुत ऊँची थी। वहाँ पर उसने एक विशेष प्रकार के बौद्ध अध्यात्मवाद का सूत्रपात किया था।

(४) **वज्रबोधि**—वह एक राजकुमार था। दस वर्ष की अवस्था में वह नालन्दा-विश्वविद्यालय में अध्ययन के निमित्त आया था। वहाँ पर उसने पाँच वर्षों तक विद्योपार्जन किया। तदुपरान्त ४ वर्ष तक उसने वलभी में अध्ययन किया। उसके पश्चात् उसने ६ वर्षों तक नालन्दा में पुनः बौद्ध ग्रंथों का अनुशीलन किया। इसके अनन्तर वह कांची के पल्लव-सम्राट नरसिंह पोतवर्मा के दरबार में आया। वहाँ कुछ समय तक रह लेने के उपरांत वह लंका आया। वहाँ के सम्राट ने उसे महाप्रज्ञापारमितासूत्र की एक प्रतिलिपि तंग-सम्राट को समर्पित करने के लिये चीन भेजा। वह ७२० ई० में कैंटन पहुँचा। ७२३ ई० से लेकर ७३० ई० तक उसने कुछ बौद्ध ग्रन्थों का अनुवाद किया। उसकी मृत्यु ७३२ ई० में लोयंग में हुई।

(५) **अमोघवज्र**—वह वज्रबोधि का शिष्य था। उसका चीनी नाम पुकोंग था। चीन में वज्रबोधि की विद्वत्ता से प्रभावित होने के कारण उसने उन्हें अपना आचार्य स्वीकार कर लिया। ७२४ ई० से लेकर ७३१ ई० तक वह वज्रबोधि के साथ लोयंग में था। ७३६ ई० में भारत से कुछ बौद्ध ग्रन्थों की प्रतिलिपि को प्राप्त करने के निमित्त उसने चीन से प्रस्थान किया। वह सबसे पहले लंका पहुँचा। वहाँ पर लगभग ३ वर्षों तक दंतविहार नामक मठ में उसने विभिन्न बौद्ध संप्रदायों पर गहन अध्ययन किया। इसी समय लंका-सम्राट ने उसे कुछ बौद्ध ग्रन्थों को तंग-सम्राट को समर्पित करने के निमित्त चीन भेजा। कहा जाता है कि वह ५०० भारतीय ग्रन्थों के साथ ७४० ई० में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुनः चीन लौटा। तब से लेकर ७७४ ई० तक वह चीन में अनवरत बौद्ध धर्म का प्रचार करता रहा। उसने ७७ ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। विद्वानों का कहना है कि तंग-काल में बौद्ध धर्म की प्रचार-क्रिया ने यहाँ एकता लाने में पर्याप्त सहायता की थी।

कन्फ्यूशियस एवं ताओमत—तंग-काल में कन्फ्यूशियस मत काफी लोकप्रिय था। तंग-नरेश इस मत के भी संरक्षक थे। कन्फ्यूशियस मत में लोकपरायणता थी। यह पारिवारिक जीवन को प्रधान मानकर चलता था। इस कारण गृहस्थाश्रम के समर्थकों की इसमें आस्था थी। तंग-सम्राटों ने कन्फ्यूशियस के सम्मान में मंदिरों का निर्माण किया। विद्यार्थियों को इस मत से संबन्धित ग्रन्थ पढ़ाये जाते थे। उच्च पदों पर नियुक्ति के लिये कन्फ्यूशियस मत का विशेष ज्ञान आवश्यक था। तंग-दरबार में ताओवाद का भी महान् प्रभाव था। इस मत का सुप्रसिद्ध विद्वान लूयेन तंग-काल की विभूति था। व्यावहारिक क्षेत्र में वह व्यक्तिवादी था। वह कहता था कि मनुष्य को व्यक्तिगत मोक्ष की प्राप्ति के लिये सचेष्ट होना चाहिये। इन दोनों मतों के अनुयायियों ने विविध विषयों पर लेखनी उठाकर तंग-साहित्य को समृद्ध बनाने के निमित्त चेष्टा की। उदाहरणार्थ तु यु ने संविधान के ऊपर तुंग तियेन नामक ग्रन्थ लिखा। ल्यू चिह ची ने शिह तुंग नामक ऐतिहासिक ग्रन्थ की रचना की। इस समय शब्दकोश भी तैयार किये गये। हन यू (७६८ ई०-८२४ ई०) गद्य का सबसे बड़ा लेखक था। उसने गद्य-साहित्य के क्षेत्र में एक नवयुग का सूत्रपात किया।

तंगकालीन सभ्यता का प्रभाव—इतिहासकारों के अनुसार चीन सभ्यता का दाता एवं प्राप्तकर्ता दोनों ही था। तंगकालीन सभ्यता ने बाहरी देशों की सभ्यताओं को प्रभावित किया। चीनवासियों की संस्कृति की छाप जापान के निवासियों के जीवन पर पड़ी। यहाँ के लोग बहुसंख्या में चीन आये। इनमें से अधिकांश विद्यार्थी थे। चीनी सभ्यता की विशेषताओं के ज्ञान के लिये जापान से कलाकार भी वहाँ आये। उन्होंने चीन की नगर-विन्यास-पद्धति का अनुकरण किया। फलतः सांस्कृतिक दृष्टि से चीनी जापान (सिनिसाइज़्ड जापान) की उत्पत्ति हुई। कोरिया ने चीनी सभ्यता के अधि-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कांश को अपना लिया। फ्रांसीसी इंडोचीन तंग-सभ्यता के प्रभाव के अन्तर्गत था। तिब्बत चीन के बौद्ध धर्म से प्रभावित था। समरकंद के लोगों ने चीन से कागज बनाना सीखा।

इन सांस्कृतिक विकासों के कारण तंग-काल चीनी सभ्यता के इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण युग माना जाता है। इस काल में सदियों तक चीन संगठनबद्ध, संपन्न तथा सुसंस्कृत राष्ट्र माना जाता था।[१] कुछ इतिहासकारों ने तंग-काल को चीन के इतिहास का सबसे श्रेष्ठ काल माना है।[२]

सुंग-काल (९६० ई०–१२७९ ई०)

तंग-वंश के अधःपतन के अनन्तर ९०७ ई० से लेकर ९६० ई० तक चीन का राजनीतिक जीवन अव्यवस्थित था। ५३ वर्षों के इस काल में पाँच राजवंशों का उद्‌गम हुआ। इस समय चीन में विश्रृंखलता एवं अराजकता थी। अव्यवस्था के इन वर्षों को चीनी इतिहासकारों ने राजनीतिक दुर्बलता का काल कहा है। इसे अंत करने का गौरव चाओ कुअंग यिन नामक व्यक्ति को दिया जाता है। उसका एक द्वितीय नाम ताइत्सु भी था। इसके द्वारा स्थापित राजवंश का नाम सुंग वंश पड़ा। सुंग वंश का काल ९६० ई० से लेकर १२७९ ई० तक माना जाता है। इस वंश का अधिकार-क्षेत्र हन् एवं तंग-वंश की तुलना में अधिक विस्तृत नहीं था। विशेषतया चीन के मुख्य देश के बाहर इसका प्रभाव कम था। यहाँ तक कि इस वंश के उत्तर-काल में स्वयं चीन का उत्तरी भाग विदेशी विजेताओं के हाथ में था। तथापि सांस्कृतिक दृष्टि से यह काल बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता है। लातुरेत के शब्दों में सुंगकालीन चीन सभ्यता के भौगोलिक विस्तार, विलक्षण उन्नति तथा विचार एवं कला के क्षेत्रों में विशिष्ट कृतियों के लिये प्रसिद्ध है।

सुधार—सुंग-काल एक नये बौद्धिक काल के सूत्रपात को व्यक्त करता

---

१. "Under the T'ang, China was for centuries a unified, prosperous and highly civilized empire." —Latourette.

२. "This was the most glorious period of the history of China in all respects." —Bagchi.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। इस समय शिक्षा का सामान्य स्तर विकासोन्मुखी हो रहा था। इस वंश के विवादों ने देश के चिन्तनशील एवं विचारसंपन्न वर्ग को चेतना प्रदान की तथा उसके ऊपर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाला। इनमें सबसे प्रसिद्ध विवाद वे थे, जो वंग एन शिह के राजनीतिक, आर्थिक तथा शिक्षाविषयक योजनाओं से संबंधित थे। उसका समय १०२१ ई० से लेकर १०८६ ई० तक माना जाता है। वह एक बहुत ही योग्य व्यक्ति था। वह अपने सुधारों के द्वारा साम्राज्य के आर्थिक और सैनिक शासन को सुसंगठित करना चाहता था। उसकी योजनाओं का एक विशेष लक्ष्य जनता की समृद्धि को बढ़ाना तथा साम्राज्य को उत्तरी आक्रमणों से सुरक्षित रखना था। लातुरेत के अनुसार उसके सुधारों के निम्नलिखित अंग थे :—(१) राज्य-हित के निमित्त बजट बनाने के लिये एक कमीशन की नियुक्ति की गई, जिसके परिणामस्वरूप राज्य के वार्षिक व्यय में अधिक से अधिक बचत संभव हो सका। (२) जिले की पैदावार से कर लेने की योजना बनाई गई। इसकी आय का प्रयोग जिले के विकास के लिये किया गया। स्थान-स्थान पर सामग्री के विनिमय एवं जनता को ऋण देने के निमित्त दूकाने स्थापित की गईं। (३) खेती के विकास के लिये किसानों को २ प्रतिशत के दर से ऋण दिया गया। इससे महाजनों के अमानुषिक व्यवहार एवं शोषण से उनका बचना संभव हो सका। (४) भूमि का समान टुकड़ों में विभाजन किया गया। कर लगाने के लिये प्रति वर्ष उनका मूल्यांकन किया जाता था। (५) व्यक्ति की चल एवं अचल दोनों प्रकार की संपत्ति पर कर लगाया गया। (६) राज्य की ओर से होने वाले बेगार को समाप्त किया गया। (७) सेना का पुनर्संगठन किया गया। अनावश्यक सैनिकों को दीवानी विभाग में स्थान दिया गया। देश की सुरक्षा एवं आंतरिक शांति की स्थापना के निमित्त सैनिक सेवा अनिवार्य कर दी गई। आवश्यकता पड़ने पर प्रत्येक बड़े परिवार के एक व्यक्ति से सैनिक कार्य लिया जा सकता था। (८) अश्व-सेना को अधिक सुदृढ़ करने के निमित्त एक पृथक् योजना बनाई गई। प्रत्येक परिवार को कम से कम एक घोड़ा रखना पड़ता था। युद्ध के अवसर पर राज्य इन अश्वों को सैनिक प्रयोजन के लिये ले लेता था। (९) राजकीय परीक्षाओं में सफलता के हेतु प्राचीन ग्रंथों का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उच्च ज्ञान आवश्यक कर दिया गया। वंग एन शिह ने इन सुधारों को जन-सेवा को दृष्टि में रखते हुए किया था। लोकहित में उसकी महती आस्था थी। उसकी गणना चीन के उन मनीषियों में की जा सकती है, जो कि निस्स्वार्थ भाव से सामाजिक उत्थान के लिये तत्पर थे।

साहित्य—सुंग-काल में प्रायः सभी प्रकार के ग्रंथों की रचना की गई। इस समय तंग-वंश तथा उसके उपरांत के पाँच राजवंशों का इतिहास प्रस्तुत किया गया। इसके अतिरिक्त चीन का संपूर्ण प्राचीन इतिहास लिखा गया। इस समय के प्रसिद्ध इतिहासकारों में सु-म-कुअंग तथा चेंग चिआओ उल्लेखनीय हैं। सु-म-कुअंग ने पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्व से लेकर ६६० ई० तक चीन का इतिहास लिखा। इसके अतिरिक्त उसने कुछ और छोटे ग्रंथ भी लिखे थे। चेंग चिआओ सुंगकालीन इतिहासकारों में सबसे प्रसिद्ध था। उसने तुंग चिह नामक ग्रन्थ की रचना की, जिसमें प्रारम्भ से लेकर तंग-काल तक चीन का इतिहास मिलता है। इसके अतिरिक्त चीन के विशेष कालों तथा ऐतिहासिक व्यक्तियों के जीवनचरित के ऊपर पुस्तकें लिखी गईं। स्थानीय नामों की सूची एवं उनके इतिहास को लिखने की परंपरा इसी काल में प्रारम्भ हुई। प्राचीन ग्रन्थों का नवीन संस्करण प्रस्तुत किया गया। पूर्वकालीन लेखकों की रचनाओं पर कई आलोचनात्मक निबंध भी लिखे गये। सुंगकालीन विद्वानों ने समसामयिक घटनाओं के ऊपर निबंध लिखा। इस समय विश्वकोष की रचना के लिये प्रयत्न किया गया। पहले की रचनाओं के उद्धरणों का अनुवाद किया गया। इस प्रकार का सबसे प्रसिद्ध संकलन ताइ पिंग यू लन नामक था। इसमें लगभग १७०० ग्रंथों से उद्धरणों का संकलन किया गया था।

कुछ आलोचकों के अनुसार सुंगकालीन गद्य-संबन्धी ग्रन्थ दोषपूर्ण थे। उनमें अशुद्धियों की भरमार है। पर यह कथन आंशिक रूप में सत्य है। उनमें गुणों की समता में दोष की मात्रा अत्यल्प है। इनमें विलक्षण ऐतिहासिक सामग्री भरी हुई है। अतीत के प्रति श्रद्धा की भावना का प्रभाव सुंगकालीन कविता पर भी पड़ा। यही कारण है कि इस समय का काव्य प्राचीनता की बेड़ियों से जकड़ा हुआ था। इसको दृष्टि में रखते हुये कुछ विद्वानों ने कहा है कि सुंगकालीन कविता उस प्रकार उच्च स्तर पर नहीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहुँच सकी है, जिस प्रकार पूर्व कालों में। इतना होते हुये भी यह निर्विवाद है कि इस समय का काव्य गुणसंपन्न था। तत्कालीन अनेक कवितायें भी भाव की दृष्टि से स्वतंत्र तथा कवि की आन्तरिक भावनाओं की सफल एवं अप्रभावित अभिव्यक्ति मानी जा सकती हैं। ये पेशेवर कवियों के द्वारा नहीं लिखी गई थीं। ये उन लेखकों की रचनाएँ हैं, जिनका काव्य के प्रति नैसर्गिक प्रेम था। सुंग-काल में लेखकों ने नवीन विषयों पर लेखनी उठाई, उदाहरणार्थ-खगोल-शास्त्र, वनस्पति-शास्त्र तथा चिकित्सा-शास्त्र। पुष्पों एवं फलों के प्रकारों पर जितनी वैज्ञानिक रचनायें इस समय चीन में प्रस्तुत की गईं, वह परम श्लाघनीय है। इस काल में गल्प-साहित्य की भी रचना हुई।

मुद्रण—सुंग-काल में पहले की अपेक्षा मुद्रण-कला का अधिक विकास हुआ। यह प्रगति तत्कालीन साहित्यिक एवं बौद्धिक उन्नति के कारण संभव हुई थी। इस समय विशेष मुद्रण-विधि (ब्लाक मेथड ऑफ प्रिंटिंग) का विकास हुआ। इसके द्वारा वृहदाकार ग्रन्थ छापे गये सुंगकालीन मुद्रण-कला चीनवासियों की आविष्कार-प्रवृत्ति तथा यन्त्र-कुशलता का महान परिचायक है। इस काल की मुद्रण-कला की विशेषता यह था कि पुस्तक के नाम के साथ लेखक का नाम भी छापा जाता था। मुद्रण-विधि की उत्कृष्टता का परिणाम यह हुआ कि आज भी सुंग-कालीन पुस्तकों के संस्करण सुरक्षित अवस्था में उपलब्ध हो सके हैं। मुद्रण के विकास का व्यावहारिक परिणाम यह था कि लेखकों को नवीन रचनाओं के सृजन के लिये प्रेरणा मिली।

कला—सुंग-काल में कला का भी विकास हुआ। इसका आंशिक श्रेय राजकीय संरक्षण को दिया जा सकता है। इस वंश का हुइ सुअंग नामक सम्राट स्वयं कुशल कलाकार था। उसने एक ऐसी पाठशाला खोल रखी थी, जिसमें सुलेख एवं चित्रकला की शिक्षा दी जाती जी। उसके समय में चित्र-कला में राजकीय परीक्षायें ली जाती थीं। इस वंश के अन्य सम्राटों ने भी कला के संरक्षण की इस परम्परा को जीवित रखा। उन्होंने अपने राजमहलों को पर्वत, नदी, पशु, पक्षी तथा पौधे आदि के चित्रों से सुसज्जित किया। इस काल की कला बौद्ध धर्म के चन संप्रदाय तथा ताओवाद से विशेष रूप से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रभावित हुई।

कलात्मक वस्तुओं के सृजन में चीनी मिट्टी का प्रचुर मात्रा में उपयोग किया गया। इसके द्वारा बने हुये प्यालों एवं तश्तरियों के ऊपर पालिश चढ़ाकर विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ बनाई जाती थीं। बौद्ध धर्म की अवनति के कारण सुंग-काल में मूर्तिकला का संतोषजनक विकास नहीं हुआ। इस समय की कला वस्तुतः चित्रकला के विकास के लिये प्रख्यात है। चित्रकारों के द्वारा प्रस्तुत प्राकृतिक दृश्य बड़े ही मनोरम हैं। इस प्रकार की चित्रकला सुंग-काल में अपनी महत्ता की पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी। इसके उदाहरण विश्वसभ्यता में अन्यत्र सरलतापूर्वक नहीं उपलब्ध होते।[१] इसके अतिरिक्त पुष्प, पक्षी, पशु, बुद्ध और बोधिसत्वों के चित्र भी कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किये गये। इस काल की चित्रकारी में प्रायः एक ही प्रकार के रंग का प्रयोग किया जाता था। इस काल के चित्रकारों में कुछ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, उदाहरणार्थ—(१) **कुओ चुंग शु**—यह एक मनमौजी प्रवृत्ति का कलाकार था। वह पर्वतों के दृश्य-चित्रण के लिये प्रख्यात था। (२) **कुओ सी**—उसने चित्रकला के ऊपर एक ग्रंथ लिखा था। उसके चित्रों के उदाहरण अधिकांशतः मन्दिरों एवं राजमहलों की दीवालों पर मिले हैं। (३) **लि लुंग मियेन**—वह बहुमुखी प्रतिभा वाला कलाकार था। एक निपुण चित्रकार होने के अतिरिक्त वह कवि एवं गद्यकार भी था। उसकी चित्रकला के विषय बौद्ध धर्म से सम्बन्धित हैं। (४) **मितेई**—वह अपने समय का महान् चित्राचार्य माना जाता था। उसने चित्रकला की एक नवीन शैली को जन्म दिया, जिसका प्रचार कोरिया तक हुआ। (५) **सिया कुइ**—उसने समुद्र से संबन्धित दृश्यों का निपुणता के साथ चित्रण किया।

निओ कन्फ्यूशियन मत—सुंग-काल निओकन्फ्यूशियन मत के विकास के लिये भी प्रसिद्ध माना जाता है। यह मत प्रधान रूप से कन्फ्यूशियन विचारधारा पर आधारित था। इसके अतिरिक्त इसमें ताओवाद एवं बौद्ध

---

१. "Probably no landscape painting equal to the Sung had ever appeared anywhere in the world." —Latourette.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्म का भी समन्वय था। इस विचारधारा के विकास में पर्याप्त समय लगा। वस्तुतः इसकी उत्पत्ति तंग-काल में हुई थी। इसको लोकप्रिय बनाने का गौरव कई व्यक्तियों को है, जिनमें शाओ यंग, चाउ तुन इ, चेंग हाओ तथा चेंग प्रथम उल्लेखनीय हैं। इन सभी विद्वानों के विचार बौद्ध धर्म, ताओ-वाद तथा कन्फ्यूशियस मत से प्रभावित थे। निओ कन्फ्यूशियन मत का सबसे प्रकांड उन्नायक चु सी नामक व्यक्ति था। इसका समय ११३० ई० से लेकर १२०० ई० तक माना जाता है। इस मत के उपर्युक्त विचारकों के समान वह भी बौद्ध धर्म एवं कन्फ्यूशियन विचारधारा से प्रभावित था। चु-सी को समन्वय की विलक्षण शक्ति प्राप्त थी। स्पष्ट विचारों के अतिरिक्त उसमें प्रशंसनीय साहित्यिक शैली का भी गुण विद्यमान था। उसके इन गुणों के कारण निओ कन्फ्यूशियन विचारधारा के प्रसरण में बहुत बड़ी सहायता उपलब्ध हुई।

इसके समर्थक विद्वान बौद्धों की भाँति ध्यान में विश्वास करते थे। इस क्रिया में सफल होने के निमित्त वे कभी-कभी एकान्त एवं शांत स्थानों में चले जाते थे। वहाँ उनके चतुर्दिक शिष्यों का एक वर्ग एकत्र रहता था। इस कारण वह स्थान बौद्ध विहार की भाँति प्रतीत होता था। जैन संप्रदाय की भाँति इस संप्रदाय के अनुयायी भी ज्ञान की आकस्मिक प्राप्ति में विश्वास करते थे। ताओवादियों के अनुकरण पर उनका कथन था कि बाह्य प्रकृति और प्राणी सार्वभौमिक तर्कबुद्धि के अंश हैं। हम सृष्टि को तभी वास्तविक रूप में समझ सकते हैं, जब उसे अपने अभ्यंतर में देखने का प्रयास करें। उनकी धारणा थी कि ज्ञान में त्रुटि भी हो सकती है। इसका परिहार तभी संभव है, जब कि बाह्य संसार का अवलोकन किया जाय। इस मत के घोर समर्थक चुसी का कथन था कि ज्ञान के लिए अध्ययन भी आवश्यक है। उसके अनुसार सत्य की प्राप्ति के लिए दीर्घकालीन गहन अध्ययकनी आवश्यकता है। चुसी सृष्टि को ली तथा ची नामक दो तत्वों के द्वारा निर्मित मानता था। ली आध्यात्मिक तत्व तथा ची भौतिक तत्व का द्योतक था। कन्फ्यूशियस मत की भाँति इस मत में भी उच्च कोटि की नैतिकता को महत्त्व दिया गया। चुसी कहता था कि विश्व के कार्यों का सुसंचालन नैति-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कता के द्वारा ही संभव हो सकता है।

चुसी एक परम अनन्त सर्वव्यापी ब्रह्म में विश्वास करता था। इसको उसने ताई ची की संज्ञा दी। उसका कथन था कि इसने यिन और यंग नामक दो तत्वों का सृजन किया है। यिन नारी तत्व था और यंग पुरुष तत्व। ली और ची के समान सृष्टि-रचना में इन दोनों तत्वों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान था। इन्हीं दोनों तत्वों के संयोग से अग्नि, जल, पृथ्वी, काष्ठ एवं धातु आदि का आविर्भाव हुआ। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि निओ कन्फ्यूशियन मत कुछ अंशों में कन्फ्यूशियस-विचारधारा से भिन्न भी था। निओ कन्फ्यूशियन मत के अनुयायी ध्यान के लिये संसार से विराग, ज्ञान की आकस्मिक प्राप्ति तथा सृष्टि की उत्पत्ति के कारणों के ऊपर विचार में विश्वास करते थे। कन्फ्यूशियस-विचारधारा में इनका कोई भी स्थान नहीं था। यही कारण है कि कन्फ्यूशियस-विचारधारा के कट्टर अनुयायी इस मत के विरोधी थे। इसी समय चीन में एक उपयोगितावादी वर्ग का आविर्भाव हुआ। यह वर्ग राष्ट्र की राजनीतिक, आर्थिक तथा सैनिक समस्याओं के सुलझाव में विश्वास रखता था। इसके समर्थक निओकन्फ्यूशियस मत के दार्शनिक तत्व के आलोचक थे। यद्यपि ये विरोधी प्रवृत्तियाँ विद्यमान थीं, तथापि इस मत का सुंग-काल में स्वाभाविक विकास हुआ। इसका प्रकांड उन्नायक चुसी अपने समय का प्रख्यात आचार्य माना जाता था। इसके द्वारा दी गई हुई व्याख्याओं का पर्याप्त सम्मान हुआ।

व्यापार—सुंग-काल में विदेशी व्यापार का विकास विशेष रूप से हुआ। विद्वानों का कथन है कि वाणिज्य के क्षेत्र में जितनी अधिक प्रगति सुंग-काल में हुई, उतनी पहले कभी नहीं हुई थी। इस समय की व्यापारिक प्रगति का प्रथम कारण यह था कि चीनवासियों की पोतनिर्माणकला पहले से अधिक विकसित थी। दूसरा कारण यह था कि यहाँ के वैज्ञानिकों ने दूर समुद्र में दिशा-ज्ञान के निमित्त एक यंत्रविशेष का अनुसंधान किया। विदेशी व्यापार के विकास के कारण चीन के बंदरगाहों का महत्त्व बढ़ने लगा। इस समय पहली बार चीनवासियों का अधिकार दक्षिणपूर्व तथा भारतवर्ष जाने वाले समुद्र-मार्गों पर स्थापित हुआ। चुअन चाऊ तथा कैंटन के बंदरगाह आयात

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एवं निर्यात के सबसे प्रसिद्ध केन्द्र थे। व्यापार के ऊपर नियंत्रण स्थापित करने के लिये राजकीय पदाधिकारियों की नियुक्ति की गई। कुछ सामग्री के व्यापार के ऊपर राज्य का विशेषाधिकार घोषित किया गया। इन वस्तुओं में विक्रयकार्य के लिये उन्हीं व्यापारियों को आज्ञा दी जाने लगी, जिनको राज्य से लाइसेंस प्राप्त था। सुंग-सम्राटों ने विदेशी व्यापारियों को पर्याप्त सुविधायें प्रदान की थीं। जो विदेशी व्यापारी चीनी बंदरगाहों में रहते थे, उन्हें अपने देश के कानूनों के अनुसार आपसी झगड़ों में स्वयं निर्णय करने का अधिकार दिया गया। चीन में बसने वाले विदेशी व्यापारियों में अधिकांश अरब थे। सुंग-काल में एक अरब को उच्च पद पर नियुक्त किया गया था। कुछ अरबों ने चीनी महिलाओं के साथ विवाह भी कर लिया था। विदेशी व्यापारियों में कुछ यहूदी भी थे। सुंग-काल में केफेंग में यहूदियों का एक उपनिवेश था। इस समय व्यापार-कर के कारण राजकीय आय प्रचुर मात्रा में बढ़ गई थी। सुंग-सम्राटों ने बाह्य देशों के व्यापारियों को चीन आने के लिये दूत भेजा था। उन्हें चीन आने के लिये लाइसेंस दिया गया।

जापान के साथ चीन का व्यापार समृद्ध दशा में था। ज़ेन संप्रदाय के जापानी अनुयायी इसके चीनी केन्द्रों के दर्शनार्थ आते थे। जापान के मठों में भिक्षुओं को उच्च स्थान दिया गया। इस प्रकार व्यापार के अतिरिक्त धार्मिक कारणों से भी दोनों देशों में घनिष्ठ सांस्कृतिक संबन्ध था। व्यापारिक सुविधाओं की प्राप्ति के लिए चंपा, जावा, सुमात्रा, भारतवर्ष तथा एशिया माइनर से कई दूत-मंडल चीन आये। चीन के व्यापारी सुदूर भागों में जाते थे। इससे उनका भौगोलिक ज्ञान काफी बढ़ गया। उन्हें मिश्र, सिसली, रोम तथा यूनान आदि के विषय में पर्याप्त जानकारी थी। चीन से बाहर जाने वाली वस्तुओं में सीसा, सोना, चाँदी, चीनी मिट्टी के बर्तन तथा सुगंधित काष्ठ उल्लेखनीय हैं। विदेशी आमोद-प्रमोद की वस्तुओं का चीन में पर्याप्त सम्मान था। इस कारण चीन की प्रभूत मुद्रायें बाहरी देशों में चली गईं। यही कारण है कि सुंग-मुद्रायें जावा, सिंगापुर, जंजीबार, तथा सोमाली-तट आदि से उत्खनन में उपलब्ध हुई हैं। देश की मुद्राओं को बाहर जाने से रोकने के लिये विलास की सामग्री पर कर बढ़ा दिया गया। कदाचित् सिक्कों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की कमी के कारण सुंग-नरेशों ने कागज के सिक्कों का उपयोग किया। इस समय चीन में कुर्सियों का उपयोग बढ़ने लगा। सेडान की कुर्सियाँ काफी लोकप्रिय थीं। उत्तर एवं दक्षिण चीन में चाय का प्रयोग बढ़ने लगा। इनका प्रचार विदेशी व्यापार का परिणाम था। इन सब विकासों को देखते हुए हम सुंगकालीन चीनी सभ्यता को उच्चकोटि की सभ्यता मान सकते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ४

पार्थियन सभ्यता

मूलभूमि एवं प्रसरण—ईरान में सेल्यूकसवंशियों के अधःपतन के पश्चात् पार्थियन शासन का इतिहास तृतीय शताब्दी ई० पू० के उत्तरार्द्ध से प्रारंभ होता है। कैस्पियन सागर के समीप पर्नि जाति के लोग रहते थे। पार्थियन लोगों का सम्बन्ध इसी जाति के साथ माना जाता है। कतिपय विद्वानों के अनुसार ये सिथियन जाति के थे। ये लोग अच्छे घुड़सवार तथा स्वभाव से बहादुर हुआ करते थे। इनके अनुसार युद्ध में लड़ते हुये काम आना गौरव एवं आत्मसम्मान का विषय तथा स्वाभाविक कारणों से मृत्यु कायरता एवं कलंक की निशानी थी। ये अपनी मूलभूमि को छोड़ कर दक्षिण-पूर्व की ओर बढ़ते हुये पार्थव नामक प्रदेश में आये, जिसकी पहचान आधुनिक खुरासान से की जाती है। वहाँ पर इन्होंने एक छोटे राज्य की स्थापना की। इसी पार्थव नाम के आधार पर ये पार्थियन कहलाने लगे। इन्होंने अपनी शक्ति को क्रमशः बढ़ा कर संपूर्ण ईरान को जीत लिया। कतिपय विद्वानों का कथन है कि पार्थव शब्द, जिसका उल्लेख साइरस और दारा के लेखों में मिलता है, पार्थियन शब्द का पर्याय है। उनके अनुसार पार्थव शब्द का अर्थ 'लड़ने वाला घुड़सवार' होता है। यह मत ठीक भी हो सकता है, क्योंकि पार्थियन निपुण अश्वारोही हुआ करते थे। इनकी घुड़सवार-सेना युद्ध-कला के लिये प्रसिद्ध थी।

साधन—पार्थियन इतिहास के पुनर्निर्माण के विषय में प्रमाणाभाव है। गार्डनर के अनुसार यह कथन—'इतिहास मान्यताप्राप्त गल्पों का संग्रह है'—जितना पार्थियन इतिहास के विषय में चरितार्थ है उतना अन्य किसी भी देश के इतिहास के संबन्ध में नहीं। प्रारंभिक पार्थियन इतिहास का एकमात्र साहित्यिक साधन जस्टिन का विवरण है, जिससे इसके बारे में उतनी जानकारी नहीं उपलब्ध होती जितनी अपेक्षित है। इसमें परस्पर-विरोधी उक्तियाँ होने के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कारण इसकी प्रामाणिकता जहाँ तहाँ काफी संदिग्ध हो जाती है। प्राचीन ईरानी लेखकों के ग्रन्थ भी पार्थियन इतिहास पर यथेष्ट प्रकाश नहीं डालते। इस कारण इसका यथातथ्य निरूपण प्रस्तुत करने में व्यावहारिक कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि प्रारंभिक पार्थियन लेख भी बहुत ही कम प्राप्त हुये हैं। प्रथम शताब्दी ईसवी के पहले की पार्थियन मुद्रायें तिथियुक्त नहीं हैं। अतएव इस राजवंश के आदि शासकों का वास्तविक तिथिनिर्धारण समस्यापूर्ण हो जाता है। उपलब्ध छिटपुट सामग्री के आधार पर पार्थियन इतिहास विद्वानों के द्वारा निम्न रूप में प्रस्तुत किया गया है।

अर्सेकिज़ प्रथम—इतिहासकारों का अनुमान है कि उसने लगभग २४६ ई० पू० से लेकर २४७ ई० पू० तक राज्य किया। वह बड़ा ही निर्भीक, महत्त्वाकांक्षी एवं संगठन-शक्ति से संपन्न था। इस समय सेल्यूकस-वंशी राज्य ह्रासोन्मुखी होने लगा। बैक्ट्रिआ तथा सोग्डिआना जैसे संपन्न खंडों के निकल जाने के कारण इसकी शक्ति काफी क्षीण हो चली थी। अतएव अर्सेकिज़ ने इसका लाभ उठाना चाहा। असाक के सेल्यूकसवंशी राज्यपाल ऐगाथोक्लीज़ ने उसके छोटे भाई को अपमानित कर दिया था। इस कारण उसे आक्रमण का अच्छा बहाना भी मिल गया। इसमें जीत के कारण अग्रतर विजय के लिये उसका उत्साह द्विगुणित हो उठा। उसने बैक्ट्रिआ के नवीन शासक डिओडोटस के भी दाँत खट्टे कर दिये। पर प्रारब्ध ने उसका आगे साथ न दिया। इसके दो ही वर्ष पश्चात् (२४७ ई० पू० में) वह किसी संग्राम में लड़ता हुआ मारा गया।

तिरिदतीज़—उसके अनुज तिरिदतीज़ ने उसके अधूरे कार्य को पूर्ण करने के लिये चेष्टा करनी प्रारंभ की। अपने अग्रज की भाँति वह भी काफी सुयोग्य था। उसने सुरक्षा की दृष्टि से अपनी राजधानी अस्सक (अथवा आर्सक) में स्थापित की, जो पर्वत-श्रेणियों के द्वारा घिरा हुआ था। इस समय सेल्यूकस द्वितीय सीरिया में विद्रोह-दमन में संलग्न था। इसका लाभ उठा कर उसने हिर्कानिया नामक प्रान्त को जीत लिया। समुद्र-तट के समीप स्थित होने के कारण यह उर्वर एवं संपन्न प्रदेश था। यह नवविजित क्षेत्र इस समय पार्थियन राज्य का केन्द्रविन्दु था। उसने एक नवीन अश्वारोहिणी सेना सुसं-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गठित की, जो अपनी गतिशीलता एवं पैतरेबाज़ी के कारण शत्रु-पक्ष को चमत्कृत कर देती थी। उसने लगभग ३७ वर्षों तक राज्य किया। राज्य-काल के अन्तिम दिनों में उसने अपनी राजधानी हेकैटोमपिलोस नामक नगर में स्थानान्तरित कर दी। इस पुर की स्थापना यूनानियों ने की थी। निर्माण-काल से लेकर अब तक यह एक प्रतिष्ठित वाणिज्य-केन्द्र एवं विशिष्ट नगर माना जाता था। अपने समकालीन पश्चिमी व्यापारिक पुरों के साथ यह वाणिज्य-मार्गों से जुटा हुआ था। इस पुर पर आधिपत्य पार्थियन वंश के शक्ति-विस्तार के इतिहास में युगान्तर का प्रवर्तक है।

अर्तबेनुस प्रथम—उसका राज्याभिषेक २०६ ई० पू० के लगभग हुआ। गद्दी पर बैठने के अनन्तर उसने अर्सेकिज़ तृतीय की उपाधि धारण की। अपने पिता की भाँति वह भी सेल्यूकस-वंशियों को दबा कर शक्ति-विस्तार करना चाहता था। पर वह इस उद्देश्य की पूर्ति में सफलीभूत न हो सका। इसका कारण है कि तत्कालीन सेल्यूकस-वंशीय शासक ऐंटायकस तृतीय काफी सुयोग्य था। उसने मीडिया, एकबतना तथा बैक्ट्रिया को जीत कर काफी शक्ति-विस्तार कर लिया था। अर्तबेनुस उसके द्वारा पराजित तथा उसकी संप्रभुता को स्वीकार करने के हेतु बाध्य किया गया।

फ्रिअपेटिअस—उसके उत्तराधिकारी फ्रिअपेटिअस के राज्यकाल (१६५ ई० पू०) में पार्थिअन सत्ता का पुनर्विकास हुआ। इस समय ऐंटायकस तृतीय रोम के द्वारा पराजित कर दिया गया। इस कारण फ्रिअपेटिअस को शक्ति-विस्तार के निमित्त सुअवसर प्राप्त हुआ। उसने कैस्पिअन सागर के दक्षिणी तट के पर्श्ववर्ती प्रदेशों को जीत लिया। पार्थियन नरेशों में सबसे पहले 'फिल्हेलेन' ('लव ऑफ दी हेलाज़') की उपाधि उसी ने धारण की थी।

मिथ्रदतीज़ प्रथम—पार्थियन साम्राज्य का वास्तविक जन्मदाता यही था। उसमें प्रतिभाशील सम्राट के सभी अपेक्षित गुण वर्तमान् थे। कतिपय इतिहासकारों ने उसकी सफलताओं को दृष्टि में रखते हुये उसकी तुलना साइरस प्रथम से की है। १६० ई० पू० से लेकर १४० ई० पू० तक का समय उसके सतत् युद्धों का काल था। उसने इन बीस वर्षों की अवधि में मीडिया, पर्सिज़, एलीमाइज़, बैबीलोनिया तथा असीरिया आदि को जीत कर अपने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। उसने दजला नदी के तट पर अपनी नवीन राजधानी स्थापित की, जो टेसिफन के नाम से विख्यात हुआ। उसने दजला के तट पर स्थित सेल्यूसिया नामक नगर को जीत लिया, जिसकी जनसंख्या छह लाख के लगभग थी। उसका सबसे उल्लेखनीय युद्ध सेल्यूकस-वंशी डेमेट्रिअस द्वितीय के साथ हुआ। इसमें डेमेट्रिअस हरा कर बन्दी बनाया गया। मिथ्रदतीज़ ने उसे सर्वदा के लिये मिला लेने के निमित्त अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ कर दिया। उसने अपने साम्राज्य की यूनानी जनता तथा अन्य जाति के लोगों के साथ सहानुभूति दिखाई। उसकी मुद्राओं के ऊपर उसकी उपाधि 'फिल्हेलेन' अंकित है। यह यूनानियों के प्रति उसकी सहिष्णुता का परिचायक है। उसकी मृत्यु १३७ ई० पू० के लगभग हुई। जीवन के अन्तिम दिनों मे उसका साम्राज्य फरात नदी से लेकर हेरात तक फैला हुआ था।

फ्रातीज़ द्वितीय—वह मिथ्रदतीज़ प्रथम का उत्तराधिकारी पुत्र था। उसके समय में सेल्यूकस-वंशी ऐंटायकस सप्तम ने खोई हुई शक्ति के पुनरुद्धार की चेष्टा की। उसने पार्थियन सम्राट को लगातार तीन युद्धों में हरा दिया। फ्रातीज़ अपनी गहरी हारों के कारण अधीर हो उठा। उसने ऐंटायकस के पास सन्धि-प्रस्ताव भेजा। वह पार्थिआ को छोड़ कर अन्य विजित प्रदेशों को वापस करने तथा कर-दान के लिये प्रस्तुत था। यह यूनानी शासक अपनी विजयों के कारण इस समय मदान्ध था। वह समस्त पार्थियन राज्य का उन्मूलन करना चाहता था, अतएव सन्धि की कोई भी शर्तें उसे मान्य नहीं थीं। वह एकबतना तक बढ़ चुका था। पार्थियन सम्राट की तत्कालीन प्रतिकूल परिस्थितियों में प्रारब्ध ने उसका साथ दिया। इस समय ऋतु इतनी खराब हो गई थी कि ऐंटायकस को आगे की विजय-योजनाओं को किंचित् काल के लिये स्थगित कर देना पड़ा।

उसने अपने सैनिकों को कई भागों में विभक्त कर आस-पास के नगरों और गाँवों में टिका दिया। स्थानीय व्यक्तियों को इनके भोजन, वस्त्र एवं अन्य आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये बाध्य किया गया। यूनानी सिपाहियों ने अपने स्वार्थ के हेतु उन्हें बुरी भाँति चूसा। इस व्यवहार के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कारण लोग ऊब गये। फलतः ऐंटायकस के विरुद्ध एक जन-विद्रोह प्रारंभ हो गया। पार्थियन कर्मचारियों ने इस विद्रोह के और भड़कने में छलबल का प्रयोग किया। फ्रातीज़ ने कूटनीतिज्ञ की भाँति इस परिस्थिति का लाभ उठा कर ऐंटायस पर आक्रमण कर दिया। विजयश्री इस बार फ्रातीज़ के हाथों में थी। ऐंटायकस पूर्ण रूप से परास्त किया एवं मार डाला गया। यह घटना १२६ ई० पू० में घटी थी। इस पराजय के कारण सेल्यूकस-वंशियों की शक्ति सदा के लिये छिन्न-भिन्न हो गई। अतएव यह तिथि यूनानी एवं पार्थियन शक्ति-सन्तुलन के इतिहास में सीमाचिन्ह की भाँति प्रमुख मानी जाती है।

इस समय फ्रातीज़ से एक राजनीतिक भूल हो गई। उसने ऐंटायकस के सैनिकों को अपनी सेना में भर्ती कर लिया। वे बाद में चल कर द्रोही सिद्ध हुये। ऐंटायकस के साथ युद्ध के समाप्त होते ही चीनी तुर्किस्तान की सिथियन जाति के लोगों का हमला हुआ। इन्होंने पार्थियन राज्य के ऊपर दो दिशाओं से आक्रमण किया। पहली सिथियन शाखा पश्चिम की ओर बढ़ती हुई एक-बतना तथा दूसरी दक्षिण की ओर स.स्तान तक आ पहुँची। यह हमला काफी भयङ्कर सिद्ध हुआ। सिथियन लोगों ने अपने रणचातुर्य के कारण पार्थियन सिपाहियों के दाँत खट्टे कर दिये। इसी बीच फ्रातीज़ की सेना के यूनानी सैनिकों ने (जो कि ऐंटायकस की सेना से भर्ती किये गये थे) उसे धोखा दे दिया। उनकी चाल के कारण फ्रातीज़ संग्राम में लड़ता हुआ मार डाला गया। उसके पितृव्य आर्तबेनुस द्वितीय को इन आक्रमणकारियों को रोकने की चेष्टा में अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। इस समय पार्थियन राज्य के पूर्ण विनाश की परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गईं।

मिथ्रदतीज़ द्वितीय—जब पार्थियन राज्य पर इस प्रकार विपत्ति के बादल मँडरा रहे थे, मिथ्रदतीज़ द्वितीय सिंहासनारूढ़ हुआ। वह अपने पूर्वज शासक मिथ्रदतीज़ प्रथम का स्मरण दिलाता है। उसने लगभग ३६ वर्षों (१२४ ई० पू० से ८८ ई० पू०) तक राज्य किया। कतिपय इतिहासकारों ने पार्थियन वंश का सबसे प्रतिभाशील सम्राट इसी नरेश को माना है। उसने अपने राज्य को शकों के खतरे से बचा दिया। उसने थोड़े ही समय के भीतर हेरात को जीत लिया तथा राज्य-सीमा आक्सस नदी तक बढ़ा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ली। सीस्तान तथा अरेकोशिया ने उसकी अधीनता को स्वीकार कर लिया। उसके समय में चीन के हन-नरेश वू-ती ने अपना एक राजदूत पार्थिया भेजा था। इसका तात्कालिक फल यह हुआ कि चीन एवं पार्थिया के बीच व्यापारिक मार्ग खुल गया। यहाँ के सौदागर कारवाँ बनाकर तुर्किस्तान होकर चीन जाने लगे तथा वहाँ पर इन्हें राज्य की ओर से पूर्ण सुविधायें प्राप्त होने लगीं। उसने रोम-साम्राज्य से भी संबन्ध स्थापित करने की चेष्टा की। ९२ ई० पू० में जब रोम-साम्राट सुला फरात नदी के तट पर आया था, मिथ्रदतीज़ ने उसके पास एक दूत-मंडल मैत्री का प्रस्ताव लेकर भेजा था। जिस समय आर्मेनिया में आन्तरिक झगड़े चल रहे थे, उसने हस्तक्षेप किया तथा अपने आश्रित टिग्रेनीज़ को वहाँ का शासक नियुक्त कराया। रालिन्सन का कथन है कि इसमें हम उसकी कूटनीति का परिचय पाते हैं। कुछ इतिहासकारों ने इस नरेश की सफलताओं के कारण उसकी तुलना दारा महान् से की है। उसने ईरान को विश्व-शक्ति का रूप प्रदान किया तथा दारा के तुल्य अपने आप को राजाधिराज घोषित किया।

विसघटन-काल—इसके उपरान्त तीस वर्षों का समय पार्थियन इतिहास के पृष्ठों में विसंघटन का काल माना जाता है। मिथ्रदतीज़ द्वितीय की की मृत्यु के अनन्तर फ्रातीज़ प्रथम का पुत्र मनस्क्रीज़ सिंहासनारूढ़ हुआ। इस समय उसकी अवस्था ८६ वर्ष के लगभग थी। उसने दस वर्षों तक राज्य किया। वृद्धावस्था के कारण शासन-कार्यों में उसने विशेष अभिरुचि नहीं ली। अतएव सुदूर प्रान्तों में केन्द्रीय नियंत्रण इसके काल में शिथिल हो उठा। उसके अन्तर सनत्रोकिज़ का राज्याभिषेक हुआ। वह मिथ्रदतीज़ प्रथम का पुत्र था। सिंहासनारोहण के समय उसकी अवस्था अस्सी वर्ष की थी। इस समय रोम एवं पोंटस के बीच युद्ध चल रहा था। ये दोनों ही राज्य पार्थियन सम्राट को सहायता चाहते थे। कोई भी योग्य शासक इनके झगड़े का लाभ उठा सकता था। सनत्रोकिज़ दोनों ही पक्षों को मिथ्या आशा देता रहा। वास्तविकता यह थी कि वह उक्त दोनों राज्यों के झगड़े से दूर रहना चाहता था, अतएव उसने किसी की भी सहायता न की। उसके समय में आर्मेनिया का शासक टिग्रेनीज़ (जिसको मिथ्रदतीज़ ने वहाँ की गद्दी

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर बिठाया था) काफी महत्त्वाकांक्षी एवं शक्तिशाली सिद्ध होने लगा। उसने उपर्युक्त पार्थियन सम्राट की दुर्बलता का लाभ उठा कर उसके राज्य के सीमान्त प्रान्तों को जीतना प्रारंभ किया। दक्षिण की ओर बढ़ता हुआ वह एकबतना तक आ धमका। उसने अपने आप को राजाधिराज घोषित किया। उसके शक्ति-विस्तार को देखते हुये लगता था, मानों पार्थियन सम्राट कुछ गिने दिनों में ही उसका सामन्त होने जा रहा हो।

फ्रातीज़ तृतीय—सनत्रोकीज़ का उत्तराधिकारी पुत्र यह नरेश ७०ई० पू० में सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने उन प्रान्तों का पुनः विजय किया, जो कि उसके पिता के शासन-काल में पार्थियन राज्य से निकल गये थे। उसने आर्मेनिया के टिग्रेनीज़ को परास्त कर अपमानजनक सन्धि को मानने के हेतु उसे बाध्य किया। इस परिस्थिति से बचने के लिये उसने रोम से सहायता माँगी, पर इसमें वह असफल रहा। इसका कारण यह था कि रोम इस समय सीरिया में युद्ध-संलग्न था तथा पार्थिया के साथ संघर्ष से बचना चाहता था। अपनी इन सफलताओं के कारण फ्रातीज़ ने मिथ्रदतीज़ प्रथम की भाँति अपने आप को राजाधिराज घोषित किया। वह बुद्धिमान तथा ऊँची योग्यता से युक्त सम्राट था। उसके समय में न केवल पार्थियन साम्राज्य की लुप्त शक्ति का पुनरुद्धार हुआ, अपितु नवीन प्रदेश भी जीते गये। उसे अधिक दिनों तक राज्य करने का सुअवसर उपलब्ध नहीं हुआ। उसके शासन-काल के दसवें वर्ष में उसके पुत्रों ने षडयंत्र द्वारा उसे मार डाला।

ओरोड्स द्वितीय—इस नरेश का शासन-काल उल्लेखनीय राजनीतिक घटनाओं से परिपूर्ण है। इसका समकालीन रोमन कौंसल क्रेसस बड़ा ही महत्त्वाकांक्षी था। वह पाम्पी एवं जूलियस सीज़र से भी अधिक प्रभावशाली बनना चाहता था। धनलोलुपता एवं साम्राज्यवादी भावना से प्रेरित होने के कारण उसने पार्थिया, बैक्ट्रिआ तथा पश्चिमोत्तर भारतवर्ष को जीतने की योजना बनाई। उसने सबसे पहले पार्थिया के विरुद्ध प्रयाण किया। वहाँ के राजकीय कोष को लूट कर वह अपनी धनतृष्णा को तृप्त करना चाहता था। उसके सैनिक अभियान को सुनते ही पार्थियन सैनिक थर्रा उठे। ओरोड्स द्वितीय ने सन्धि के प्रस्ताव के साथ अपना राजदूतमंडल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसके पास भेजा। इस समय क्रेसस मदान्ध था। उसने इसे ठुकराते हुये उत्तर दिया कि मैं पार्थियन सम्राट का अभिनन्दन समरांगण में करना चाहता हूँ। दूत-मंडल के प्रधान ने इसका व्यंगात्मक उत्तर दिया कि आपके लिये पार्थियन सम्राट को शिकस्त देना उतना ही असंभव है, जितना कि हथेली के ऊपर बाल का उगाना। आर्मेनिया का तत्कालीन शासक क्रेसस से मिल गया। उसने उसकी सहायता के लिये एक सेना भेजी, जिसमें छः हजार घुड़सवार तथा तीस हजार पैदल सम्मिलित थे।

ओरोड्स ने उसका सामना करने के लिये अपनी सेना के विभिन्न अंगों को सुसंगठित किया। उसका तीस वर्षीय सेनानायक सुरेन बड़ा ही सुयोग्य था। उसकी सेना में कुशल तीरन्दाज़ सैनिक सम्मिलित थे। उन्होंने करहई के संग्राम में क्रेसस की सेना के सिपाहियों के दाँत खट्टे कर दिये। सुरेन ने इस युद्ध में बड़ी बुद्धिमत्ता के साथ पार्थियन सेना का नेतृत्व किया। क्रेसस की सेना के तीन चौथाई से अधिक सैनिक लड़ते हुये मार डाले गये। ५३ ई० पू० की ६ जून को क्रेसस अपने पुत्र के सहित मारा गया। इस समय रोम को पार्थिया की शक्ति का वास्तविक अनुमान लगा। क्रेसस का सिर पार्थियन सम्राट के सम्मुख लाया गया। रोम की सेना के कैदियों के साथ उदारता का व्यवहार दिखाया गया। उन्होंने स्थानीय महिलाओं के साथ विवाह किया तथा वे ईरान के नागरिक बन गये। इस पराजय के कारण रोम की शक्ति के ऊपर एक बहुत बड़ा आघात पहुँचा। पार्थिया की विजय का वास्तविक कर्णधार सुरेन था। इस समय उसका भाग्यचक्र उसके विरुद्ध हो गया। उसकी सफलता एवं बढ़ते हुये प्रभाव को देख कर ओरोड्स शङ्कालु हो गया तथा उसे मरवा डाला। उसकी गणना विश्व के उन सेनानायकों में की जा सकती है, जिन्हें अपनी सेवाओं एवं सफलताओं के बावजूद भी अपने स्वामी का कोपभाजन बनने के कारण जीवन से हाथ धोना पड़ा था।

इस घटना के पश्चात् उसने सीरिया-विजय की योजना बनाई। उसने अपने पुत्र पैकोरस को सेनानायक बनाकर भेजा। इस समय उसकी अवस्था कुल पंद्रह वर्ष की थी। तथापि वह अदम्य उत्साह से युक्त, विभिन्न रण-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शैलियों में दक्ष एवं कुशल सेनानायक था। उसका सीरिया-अभियान प्रारंभ में काफी सफल सिद्ध हुआ। मार्ग में पड़ने वाले नगरों को जीतता हुआ वह अन्तियोक पहुँचा। पार्थियन सैनिकों ने इसे चारों ओर से घेर लिया। इसी बीच राजधानी में वर्तमान् उसके प्रतिस्पर्द्धी भाइयों ने अफवाह उड़ा दी कि पैकोरस अपने पिता के विरुद्ध सीरिया में कोई षडयंत्र रच रहा था। परिणा-मतः पैकोरस को इसके आगे की योजना स्थगित करनी पड़ी तथा उसे लौट आना पड़ा।

यहाँ पर उल्लेखनीय है कि सीरिया के लोग रोम के क्रूर शासन से ऊब चुके थे। उन लोगों ने ४० ई० पू० के लगभग सीरिया को रोम-शासन से उन्मुक्त करने के लिये ओरोड्स को आमन्त्रित किया। इस कारण उसने सीरिया-विजय की पुनः योजना बनाई। इस योजना के अनुसार पूर्वी रोम-साम्राज्य के अन्य भाग (एशिया माइनर तथा पैलेस्तीन) भी जीते जाने वाले थे। उसने पार्थियन सेना को दो भागों में विभक्त कर दिया। एक भाग का नायक था लेब्रिएनस तथा दूसरे भाग का नायक था पैकोरस। लेब्रिएनस पहले रोम-सेना में था तथा राजदूत बना कर पार्थिया भेजा जा चुका था। कुछ राजनीतिक परिवर्तनों के कारण रोम में अपने जीवन को असुरक्षित पाकर वह पार्थियन दरबार में रुक गया तथा पार्थियन सेना में उसने नौकरी कर ली। इसकी सेवाओं से ओरोड्स प्रभावित था तथा उसमें विश्वास रखता था। इन दोनों सेनानायकों का सैनिक अभियान प्रारंभ में काफी सफल रहा। लेब्रिएनस ने एशिया माइनर के अधिकांश हिस्सों को जीत लिया। पैकोरस ने सीरिया तथा पैलेस्तीन के ऊपर विजय प्राप्त कर ली। परिस्थितियों को देखने से लगता था कि पार्थिया संपूर्ण पूर्वी रोम-साम्राज्य को जीत लेगा। पर लेब्रिएनस तथा पैकोरस अपनी विजय-योजनाओं को पूर्ण करने के पहले ही विपक्षियों के द्वारा धोखे से मार डाले गये। पैकोरस की मृत्यु के कारण वृद्ध ओरोडस के हृदय पर कड़ा आघात पहुँचा। वह कई दिनों तक न तो भोजन करता था और न तो विश्राम। उसने ३७ ई० पू० में अपने ज्येष्ठ पुत्र को उत्तराधिकारी घोषित कर राज्य-कार्य से विरक्ति ले ली।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

फ्रातीज़ चतुर्थ—इसका सम्पूर्ण जीवनचरित रक्तरंजन के उदाहरणों से परिपूर्ण है। उसने अपने राज्याभिषेक के उपरान्त अपने कई भाइयों की हत्या करा दी, जिन्हें वह सन्देहवश अपना प्रतिस्पर्धी समझता था। इस समय उसका पिता ओरोड्स जीवित था। उसने फ्रातीज़ चतुर्थ के इस क्रूर एवं अमानुषिक कार्य की कटु निन्दा की, अतएव उसने इसे भी अस्सी वर्ष की अवस्था में मरवा डाला। अपनी महत्त्वाकांक्षा की सिद्धि के लिये नृशंस संहार इसके लिये साधारण बात थी। अपने पिता की हत्या के कुछ ही काल उपरान्त उसने अपने शेष सभी भाइयों को मरवा डाला। इसी समय कई पार्थियन सामन्त भी, जिनसे उसे षडयंत्र की आशङ्का थी, काट डाले गये। यहाँ तक कि उसने अपने नवयुवक ज्येष्ठ पुत्र की भी हत्या करा दी। उसे सन्देह था कि वह उसके विरोधियों का समर्थन कर रहा था। अपने इन व्यवहारों के कारण वह काफी अप्रिय शासक हो गया था।

पार्थियन सम्राट के प्रति प्रजा के इस असंतोष एवं संभावित विद्रोह को देख कर ऐन्टोनी ने एक बड़ी सेना के साथ इसके ऊपर आक्रमण कर दिया। आर्मेनिया का सम्राट अपनी सेना के साथ जिसमें एक लाख तेरह हजार पैदल सिपाही सम्मिलित थे, ऐन्टोनी से मिल गया। इस समय मीडिया के शासक एवं पार्थियन सम्राट ने ऐन्टोनी का सामना करने के लिये एक सम्मिलित मोर्चा बनाया। ऐन्टोनी का पहला धावा मीडिया की राजधानी पर हुआ। यह एक सुदृढ़ दुर्ग था। घोर प्रयत्न के बावजूद भी रोम-सेना इसे जीतने में असफल सिद्ध हुई। दस हजार के लगभग रोम के सिपाही कैदी बना लिये गये। ऐन्टोनी ने सन्धि का प्रस्ताव रखा, पर पार्थियन सम्राट को वह मान्य नहीं था। इसके उपरान्त भी रोम-सेना को असफलताओं का सामना करना पड़ा। एक चौथाई से अधिक रोम के सिपाही युद्ध-क्षेत्र में काम आये। रोम-पार्थियन इन युद्ध-क्रियाओं ने तुलनात्मक दृष्टि से पार्थिआ की महती शक्ति को सिद्ध कर दिया।

इसके उपरान्त ऐन्टोनी को आगस्टस के साथ संघर्ष करना पड़ा। इस कारण फ्रातीज़ चतुर्थ को अब रोम से कोई खतरा नहीं था। इसका लाभ उठाने के लिए उसने अग्रतर विजय-योजनायें बनाईं। इतिहास के पृष्ठों में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह एक ऐसे विजेता के रूप में अवतरित होता है, जिसके हृदय में अपने स्वार्थ एवं महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए औचित्य एवं अनौचित्य में कोई भेद नहीं था। माडिया के सम्राट के ऊपर, जिसने ऐन्टोनी के विरुद्ध उसकी सहायता की थी, उसने आक्रमण कर दिया तथा उसे बन्दी बना लिया। आर्मेनिया भी जीत लिया गया। इन सैनिक सफलताओं के कारण वह और स्वेच्छाचारी एवं निरंकुश हो गया। उसकी निर्दयता उत्तरोत्तर बढ़ती गई। फलतः उसके विरुद्ध एक जन-विद्रोह हुआ। विद्रोहियों को प्रारंभ में सफलता प्राप्त हुई। उन्होंने टिरिदतीज़ नामक एक कुलीन व्यक्ति को अपना सम्राट चुना। फ्रातीज़ को जीवन-रक्षा के लिये भाग कर सीथिया में शरण लेनी पड़ी। वहाँ से एक सीथियन सेना के साथ वह पार्थिआ लौटा। इसकी सहायता से टिरिदतीज़ को पराजित करने तथा अपनी खोई हुई गद्दी को वह प्राप्त करने में सफलीभूत हुआ। टिरिदतीज़ ने सीरिया में (३२ ई० पू० के लगभग) शरण ली। वह फ्रातीज़ के सबसे कनिष्ठ पुत्र को भी अपने साथ ले भागने में सफलीभूत हुआ था।

इस समय रोम में एक राजनीतिक परिवर्तन हुआ। वहाँ का नया शासक अब आगस्टस था। टिरिदतीज़ ने फ्रातीज़ के पुत्र को आगस्टस के हवाले कर दिया। फ्रातीज़ अपना पुत्र वापस लेना चाहता था। अतएव उसने आगस्टस के साथ एक सन्धि की, जिसके अनुसार पूर्व युद्धों में प्राप्त रोम के कैदियों एवं लूट के सामान को पार्थियन सम्राट ने लौटा दिया तथा बदले में वह अपने प्रिय पुत्र को प्राप्त कर सका। फ्रातीज़ की इन सफलताओं ने सिद्ध कर दिया कि पार्थिया की शक्ति असाधारण थी तथा दजला-फरात नदियों के पूर्व रोम-साम्राज्य को फैलाने की चेष्टा एक राजनीतिक भूल थी। कहा जाता है कि इस सन्धि के अनन्तर रोम-पार्थिया-सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण हो गया। दोनों साम्राज्यों में कालान्तर में यह मैत्री यहाँ तक बढ़ गई कि फ्रातीज़ ने अपने चार ज्येष्ठ पुत्रों को शिक्षा-प्राप्ति के हेतु रोम भेज दिया था।

अर्तबेनुस तृतीय—फ्रातीज़ चतुर्थ के पश्चात् का काल पार्थिया के इतिहास में राजनीतिक उथल-पुथल का समय था। उसको उसके एक पुत्र ने विष देकर मार डाला तथा वह स्वयं सिंहासनारूढ़ हुआ। इतिहास के पृष्ठों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में वह फ्रातीज़ पंचम के नाम से प्रसिद्ध है। उसके इस व्यवहार के कारण सामन्तों ने उसके प्रति विद्रोह कर उसे पदच्युत कर दिया। उन्होंने फ्रातीज़ चतुर्थ के वानोनीज़ प्रथम नामक पुत्र को, जो उस समय रोम में था, सम्राट चुना। वह पश्चिमी सभ्यता के वातावरण में पला था। अतएव ईरान की रीति प्रथाओं से उसे घृणा थी। इस कारण सामन्तों एवं ईरानी जनता के बीच वह अप्रिय हो गया। फलस्वरूप इसे भी राजच्युत होना पड़ा। ईरान में अपने जीवन को असुरक्षित पाने के कारण उसने सीरिया में शरण ली, जहाँ वह कालान्तर में मार डाला गया। उसके पश्चात् अर्तबेनुस तृतीय राज्याभिषिक्त हुआ। उसका राज्यकाल सांस्कृतिक दृष्टि से भले ही उत्थान का काल रहा हो, पर राजनीतिक दृष्टि से यह किसी प्रकार भी महत्त्वपूर्ण नहीं था। दीर्घकालीन शासन के बावजूद भी वह केन्द्रीय शक्ति को सुसंगठित करने में असफल सिद्ध हुआ। उसके राज्यकाल के अन्तिम दिनों में विविध षडयंत्र हुये, जिनमें रोम का हाथ था।

वोलोगेसीज़ प्रथम—अर्तबेनुस तृतीय के उपरान्त कुछ अयोग्य शासक सिंहासनारूढ़ हुये। इन्होंने कुल बारह वर्षों (४० ई०–५२ ई०) तक राज्य किया। तत्पश्चात् वोलोगेसोज़ प्रथम राज्याभिषिक्त हुआ। वह एक सुयोग्य शासक था। इसके काल में पार्थियन शक्ति का पुनर्जागरण हुआ। उसने ५२ ई० से लेकर ७७ ई० तक राज्य किया। स्वभाव से वह यूनानी प्रथाओं का विरोधी एवं ईरानी रीतियों का समर्थक था। उसकी मुद्राओं के पृष्ठभाग पर अग्नि की वेदी के सामने बलिदान चढ़ाते हुये पुरोहित के चित्र का अङ्कन किया गया है। उसके समय में पहली बार राजकीय लेखों में पहलवी-अर्सेकिड लिपि का व्यवहार किया गया। बाद की एक परम्परा के अनुसार अवेस्ता का संकलन उसी के राज्यकाल में हुआ था। उसने वोलोगेशिया नामक नगर की स्थापना की जो कि व्यापार एवं वाणिज्य का एक प्रतिष्ठित केन्द्र था।

उसके समय में सीथियन जाति के खानाबदोशियों का पार्थिया पर आक्रमण हुआ। वोलोगेसीज़ ने इन्हें परास्त कर दिया। उसका समकालीन रोम-सम्राट नीरो था। आर्मेनिया के प्रश्न को लेकर रोम तथा पार्थिया में इस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समय भी झगड़ा हुआ। रोम आर्मेनिया को अपना अधीनस्थ बनाना चाहता था। इस उद्देश्य से नीरो ने कार्बुलो नामक सुयोग्य सेनापति के नेतृत्व में एक बड़ी सेना आर्मेनिया को नतमस्तक करने के लिये भेजा। यह सेनानायक उत्साह एवं आत्मविश्वास से भरा हुआ था। इस समय वोलोगेसीज़ ने आर्मेनिया के शासक टिरिदतीज़ की सहायता की। दोनों दलों में युद्ध कई वर्षों तक चलता रहा। अन्त में दोनों पक्षों में सन्धि हुई, जिसके अनुसार टिरिदतीज़ को नीरो के हाथों से राजकीय मुकुट प्राप्त करने के लिये रोम जाना पड़ा। कहा जाता है कि आर्मेनिया-शासक का स्वागत वहाँ बड़े ही धूम-धाम से हुआ। नीरो ने वोलोगेसीज़ को भी रोम आमन्त्रित किया था। पर उसे यह पार्थियन मर्यादा के विरुद्ध लगा और इस कारण इस निमन्त्रण को उसने अस्वीकार कर दिया।

उसके राज्य-काल के अन्तिम भाग (७५ ई०) में अलानी जाति के लोगों का आक्रमण हुआ। इस जाति के लोग बहादुर थे। उन्होंने आर्मेनिया के शासक को परास्त कर दिया। वोलोगेसीज़ ने इनके विरुद्ध रोम से सहायता माँगी। इसके पहले ही ६८ ई० में नीरो की मृत्यु हो चुकी थी और वहाँ पर वेसपेसियन नामक सम्राट राज्य कर रहा था। उसने पार्थियन सम्राट को सहायता करने से इन्कार कर दिया। इस जाति के लोगों ने पहले पार्थियन सेना को परास्त कर दिया, जिसका नेतृत्व सम्राट का भाई पैकोरस कर रहा था। उसकी भार्या आक्रमणकारियों के द्वारा बन्दी बना ली गई, जिसे छुड़ाने के लिये उसे गहरी रकम भेंट करनी पड़ी। इस अवसर पर वोलोगेसीज़ ने एक नई सेना सुसंगठित की। उसने इसके विभिन्न अंगों को सुदृढ़ किया। इस सेना ने आक्रमणकारियों के दाँत खट्टे कर दिये। सतत् पराजयों के फलस्वरूप उन्हें पार्थिया से हट जाना पड़ा। इस प्रकार वोलोगेसीज़ का शासनकाल काफी सफल रहा। इसके पश्चात् ७७ ई० से लेकर १४८ ई० तक क्रमशः तीन नरेशों ने राज्य किया, पर इनके समय में पार्थियन राज्य का कोई विशेष विकास नहीं हुआ।

वोलोगेसीज़ द्वितीय—१४८ ई० के समीप वोलोगेसीज़ द्वितीय नामक शासक सिंहासनारूढ़ हुआ। यह ऊँची प्रतिभा का सम्राट था। उसने १६२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ई० तक राज्य किया। वह सामरिक प्रवृत्ति का शासक था। उसका शासन-काल पार्थियन इतिहास में दो प्रधान नीतियों के लिये चिरस्मरणीय है :—(१) इस राजवंश की लुप्त मर्यादा एवं शक्ति का पुनरुद्धार तथा (२) रोम के साथ संघर्ष। रोम के साथ उसका पहला झगड़ा आर्मेनिया के प्रश्न को लेकर हुआ। वहाँ का तत्कालीन शासक रोम का आश्रित था। वोलोगेसीज़ ने उसे हरा कर तिग्रेनीज़ को वहाँ का शासक नियुक्त किया। यह व्यक्ति पार्थियन सम्राट का आश्रित तथा आर्मेनिया के प्राचीन राजवंश से संबंधित था।

रोम-सेना के साथ टक्कर लेने के लिये उसने एक बड़ी सेना तैयार की। इसका नायक कोसरोज़ नामक सुयोग्य व्यक्ति नियुक्त किया गया। फ़रात नदी को पार कर उसने रोम-सेना के साथ युद्ध किया। रोम का सेनाध्यक्ष कार्नेलिअनस पराजित हुआ। कोसोरोज़ सीरिया को रौंदता हुआ पैलेस्तीन पहुँचा। पार्थिया की इन सफलताओं ने रोम को दहला दिया। इस बार एक नई रोम-सेना सुसंगठित की गई, जिसका नायक वेरस चुना गया। उसकी सहायता के लिये योग्यतम सैनिक पदाधिकारी भेजे गये; उदाहरणार्थ प्रिस्कस तथा केसिअस। इस सेना की विभिन्न टुकड़ियों ने एक ही समय कई स्थलों पर पार्थियन सेनाओं के साथ युद्ध किया। इनमें से एक युद्ध में प्रिस्कस ने कोस-रोज़ को हरा दिया। आर्मेनिया की राजधानी जीत ली गई। वहाँ एक नवीन शासक नियुक्त किया गया, जो रोम का आश्रित था। वोलोगेसीज़ ने इस बार पार्थियन सेना का नेतृत्व स्वयं किया। सीरिया में केसियस के नेतृत्व में रोम के साथ उसका युद्ध हुआ। वोलोगेसीज़ पराजित हो गया। केसियस ने आगे बढ़ते हुये पार्थियन राज्य में स्थित सेल्यूसिया पर घेरा डाल दिया। नागरिकों को सताने के लिये नगर जला दिया गया। रोम के इस नृशंस व्यवहार के कारण संपूर्ण नगर में हाहाकार मच गया। गिबन लिखता है कि विजेता रोम के सिपाहियों ने स्थानीय सिपाहियों के साथ बर्बरता का व्यवहार किया। तीन लाख से ऊपर नागरिक काट डाले गये। अन्य समकालीन लेखकों ने भी रोम के इस अमानुषिक व्यवहार की कटु आलोचना की है।

सेल्यूसिया को जीत लेने के अनन्तर केसियस का सीधा आक्रमण पार्थि-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यन साम्राज्य की राजधानी टेसिफन (Ctesiphon) के ऊपर हुआ। राजकीय कोष लूट लिया गया। आक्रमणकारियों ने राजमहल को ध्वस्त कर दिया। नागरिकों के घर एवं मन्दिर आदि लूट लिये गये। तदनन्तर रोम-सेना ने मेसोपोटामिया के ऊपर हमला किया। वहाँ पर भी पार्थियन सैनिकों के पैर उखड़ने लगे। यह पहला अवसर था जब कि रोम ने पार्थिया को अपनी भूमि पर ही परास्त कर दिया। इन विपरीत परिस्थितियों को देखकर वोलोगेसीज़ ने (१६५ ई० में) रोम से सन्धि कर ली। पार्थिया को मेसोपोटामिया का पश्चिमोत्तर भाग रोम को लौटाना पड़ा। दलजा नदी दोनों साम्राज्यों के बीच की सीमा मानी गई। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि इस पराज्य के पश्चात् भी वोलोगेसीज़ ने २५ वर्षों (१६० ई०) तक राज्य किया। इस बीच उसने भारतवर्ष एवं चीन के साथ व्यापारिक संबन्ध बढ़ाने की चेष्टा की। पार्थिया की बाज़ारों में चीनी सिल्क का सम्मान था। उसने काव्य और संस्कृति के विकास के लिये भी चेष्टा की।

अर्तबेनुस पंचम—तदनन्तर कई पीढ़ियों के शासन के पश्चात् अर्तबेनुस पंचम सिंहासनारूढ़ हुआ। उसका शासनकाल पार्थिया की खोई हुई शक्ति के पुनरुद्धार के लिये प्रसिद्ध है। उसके पहले वोलोगेसीज़ पंचम तथा अर्तबेनुस में एक गृह-युद्ध छिड़ा। इसका लाभ उठा कर रोम-सम्राट कैरेकेल्ला ने मेसोपोटामिया पर आक्रमण कर दिया। रास्ते में पड़ने वाले ग्राम एवं नगर जला दिये गये। भीषण रक्तपात से लोग घबड़ा उठे। युद्ध में हारे हुये सिपाही कैदी बना लिये गये। आर्बेला में वर्तमान पार्थियन राजवंश की कब्रों में अधिकांश उखाड़ दिये गये। गिबन ने उसकी इन कृतियों का वर्णन करते हुये उसे मानवता का शत्रु कहा है। २१७ ई० में कैरेकेल्ला अपने किसी संरक्षक द्वारा मार डाला गया। अर्तबेनुस को रोम के इन अत्याचारों का बदला लेना था। उसका समकालीन रोम-सम्राट मैक्रिनस था। उसने इसे दो बार परास्त किया और इस प्रकार उसने पार्थियन साम्राज्य की सीमा पुनः फरात नदी तक बढ़ा ली। उसकी सफलताओं को देखने से लगता था मानों वह रोम के विरुद्ध ईरान की शक्ति का विस्तार यूरोप में भी करने जा रहा हो। पर उसकी योजना अपूर्ण रह गई। इस कार्य को ससैनियन राज-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वंश ने पूर्ण किया, जिसे भूमध्यसागर के तट तक अपनी विजयों को फैलाने का श्रेय था।

सभ्यता एवं संस्कृति

पार्थियन जाति के सामरिक स्वभाव तथा खानाबदोशी जीवन को देखने पर थोड़ी देर के लिये ऐसा लगता है, मानों इसकी अपनी कोई सभ्यता एवं संस्कृति न रही हो। अतएव यहाँ पर उल्लेखनीय हो जाता है कि झटपट किसी ऐसे निष्कर्ष पर पहुँच जाना ऐतिहासिक तथ्यों से रहित होगा। असीरियन लोगों को भाँति यद्यपि ये लोग भी लड़ाई और खूनखच्चर में दिलचस्पी रखते थे, पर कला एवं संस्कृति के विभिन्न अंगों से किसी प्रकार विमुख न थे। उनकी सभ्यता से संबन्धित निम्नलिखित तत्त्व विचारणीय हो जाते हैं :—

साम्राज्य-संगठन—उनका साम्राज्य-संगठन प्रायः सार्वामनीष आदर्शों पर ही अवलम्बित था तथा इस क्षेत्र में उन्होंने कोई मौलिकता नहीं दिखाई। साइरस एवं दारा के काल से चली आने वाली सामान्तवादी प्रथा को उन्होंने जारी रखी। छोटे सामन्त एवं सरदार अपने क्षेत्रों में पूर्ववत वर्तमान थे। यदि हारे हुये प्रदेश का शासक उनकी अधीनता को स्वीकार कर लेता था, तो वे सामन्त के रूप में उसे रहने देते थे। प्राचीन लेखकों ने पार्थियन सम्राटों के १८ सामन्त-राज्यों का उल्लेख किया है। इनमें से ११ बड़े तथा ७ छोटे राज्य थे। बड़े सामन्त-राज्यों में मीडिया, आर्मेनिया तथा एलीमाइज़ आदि आते थे। इस प्रकार उनका साम्राज्य काफी हद तक सामन्तसंबीय था। कुछ इतिहासकारों ने पार्थियन साम्राज्य की सामन्त-प्रथा की तुलना मध्यकालीन यूरोप की सामन्त-प्रथा से की है। सामन्तों के दो प्रधान कार्य थे :—(१) पार्थियन सम्राट को वार्षिक कर एवं भेंट देना तथा (२) आवश्यकता पड़ने पर उचित सैनिक सहायता प्रदान करना। यहाँ पर इस बात का निर्देश आवश्यक है कि यह सामन्त-प्रथा दोषपूर्ण थी। शासन के मामलों में उनका हस्तक्षेप कभी-कभी बढ़ जाता था। पार्थियन इतिहास में ऐसे उदाहरण मौजूद हैं जब कि उनके सामन्त शत्रुओं से मिल जाते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार के धोखे के कारण रोम के द्वारा पार्थियन नरेशों को गहरी पराजय खानी पड़ी थी। सम्राट की मृत्यु के अनन्तर उसके चुनाव में इनका काफी हाथ होता था। ऐसे अवसर पर वे हर प्रकार के छल-बल का प्रयोग करने से बाज़ न आते थे।

जो प्रदेश पार्थियन सम्राटों के प्रत्यक्ष शासन के अन्तर्गत थे, उनका वर्गीकरण प्रान्तों में कर दिया गया था। इन्हें हम राजकीय प्रान्त कह सकते हैं। इनमें राज्यपाल (क्षत्रप) नियुक्त किया जाता था, जो प्रायः राजकुल से संबन्धित हुआ करता था। कभी-कभी सामन्तकुलों के सदस्य भी राज्यपाल बनाये जाते थे। इनका पद मौरूसी था। साम्राज्य के विभिन्न भागों में यूनानियों के जो उपनिवेश थे, उनके साथ पार्थियन नरेशों ने उदारता का व्यवहार किया। उनमें से अधिकांश समृद्धिशाली नगर थे, जिनमें अब भी यूनानी बहुसंख्या में रहते थे। उदाहरणार्थ सेल्यूसिया में ही यूनानियों की संख्या आधे करोड़ के लगभग थी। इन उपनिवेशों को स्वायत्त शासन का अधिकार प्रदान किया गया। ये प्रति वर्ष पार्थियन सम्राट को निश्चित कर देते थे। साम्राज्य की ओर से इन्हें जो राजकीय सुविधायें दी गईं, उन्हें देखते हुये इन्हें 'स्वतन्त्र नगर' की संज्ञा प्रदान की जा सकती है।

साखामनीष सम्राटों की भाँति पार्थियन सम्राट भी पूजनीय समझा जाता था। मार्सेलिनस लिखता है कि अर्सेकिडवंशी को किसी प्रकार की भी शारीरिक क्षति पहुँचाना लोग पापतुल्य मानते थे। इसकी गणना देवघात की कोटि में होती थी। रक्तविशुद्धता की भावना के कारण राजकुल के बाहर का कोई भी व्यक्ति सम्राट नहीं चुना जा सकता था। तथापि दो ऐसी समितियाँ थीं, जो व्यावहारिक शासन में सम्राट के ऊपर नियन्त्रण रखती थीं। पहली समिति में राजकुल के युवक सदस्य आते थे। दूसरी समिति कुलीनों की थी, जिसकी तुलना हम आधुनिक 'हाउस ऑफ लार्ड्स' से कर सकते हैं। ये कुलीन दो प्रकार के थे—(१) धर्मसत्ताधारी तथा (२)—लोकसत्ताधारी। पहली कोटि के कुलीन धर्म के प्रतिनिधि माने जाते थे। इन्हें 'सोफी' अथवा 'मागी' कहा जाता था। इन्हें लोग बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। इन दोनों ही वर्गों के कुलीनों को राजकीय सुविधायें उपलब्ध थीं। अपनी संपन्न

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जागीरों में ये छोटे राजाओं की भाँति रहते थे। यद्यपि सम्राट अर्सेकिड-वंश से चुना जाता था, तथापि यह आवश्यक था कि इस चुनाव की मंजूरी इन दोनों समितियों से ले ली जाय। सम्राट के चुनाव के उपरान्त राज्याभिषेक का कार्य सेनापति के द्वारा संपन्न किया जाता था, जिसका पद मौरूसी हुआ करता था।

पार्थियन सम्राटों की दरबारी शानशौकत एवं शिष्टाचार साखामनीष नरेशों के ही तुल्य थी। उनकी राजधानी तीन नगरों में वर्तमान् थी; उदाहरणार्थ मेसोपोटामिया में दजला नदी के तट पर स्थित टेसिफन, मीडिया में वर्तमान् एकबतना तथा पार्थिया में बसा हुआ हेकैटोम-पिलस नामक नगर। शीत-ऋतु में इनकी राजधानी टेसिफन में हुआ करती थी। इन तीनों नगरों में भव्य राजप्रासाद बने हुये थे। इसके अतिरिक्त बैबीलन में भी इनका राजमहल स्थित था। इस प्रासाद का वर्णन करता हुआ फिलास्ट्रेटस लिखता है :—"इसकी छत पीतल की बनी थी, जो प्रकाश के प्रतिबिम्ब के कारण अद्वितीय छवि धारण करती थी। इसमें मरदाने और जनाने कमरे अलग बने थे तथा स्थान-स्थान पर वितान लटकाये गये थे, जिन पर सुनहला कसीदे का कार्य किया गया था। महल की दीवालों एवं खंभों में कहीं-कहीं सोने और चाँदी की ईंटें जड़ दी गई थीं, जिनके सौन्दर्य के कारण प्रासाद की शोभा द्विगुणित हो उठती थी।" भित्तियों पर आकृतियों एवं दृश्यों को अंकित किया गया था, जिनके विषय यूनानी भी थे। उदाहरणार्थ एक दृश्य में थर्मोपली के युद्ध का दृश्य प्रदर्शित किया गया था।

लगता है कि अर्सेकिड-वंशी नरेश आमोद-प्रमोद के प्रेमी एवं विलासी भी थे। प्लूटार्क ने सुरेन (जिसने क्रेसस को पराजित किया था) के शान-शौकत एवं तड़क-भड़क का वर्णन करते हुये लिखता है कि वह सुन्दर वेश-भूषा तथा सुगन्धित द्रवों एवं अनुलेप आदि से सुसज्जित रहा करता था। जब वह बाहर निकलता था, उस समय एक हजार ऊँट उसके सामान को ढोते थे। उसके हरम (अन्तःपुर) के सदस्यों को ढोने के लिए दो सौ रथों की आवश्यकता पड़ जाती थी। उसके साथ सेवक-मंडल तथा अंगरक्षकों का एक लम्बा कारवाँ चलता था। प्लूटार्क के इस वर्णन से हम अनुमान लगा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सकते हैं कि स्वयं सम्राट का जीवन कितना विलासमय रहा होगा।

पार्थियन सम्राटों के पास कोई स्थायी सेना नहीं थी। यह उनके सैनिक शासन का सबसे बड़ा दोष था। सूचना पाने पर सामन्त और सरदार (कुलीन) नियत तिथि पर अपनी सेना के साथ निश्चित स्थान पर एकत्र होते थे। इस प्रकार युद्ध के लिये सम्राट अपनी सेना को संकलित करता था। प्राचीन लेखकों ने पार्थियन अश्वारोहियों की बड़ी प्रशंसा की है। वे निपुण तीरन्दाज़ तथा विविध शस्त्रों के प्रयोग में दक्ष थे और अपने घोड़ों की पैतरेबाजी से शत्रुओं को घबड़ा देते थे। ये लोग गज-सेना का प्रयोग नहीं करते थे। नौसेना का व्यवहार इनको अज्ञात था, यद्यपि कैस्पियन तट से इनका संबन्ध पहले से ही था। पार्थियन नरेश घुड़सवारों से आक्रमण का कार्य तथा पदाति सेना से सुरक्षा का कार्य लिया करते थे। नगरों पर अच्छी तरह घेरा डालने की कला उन्हें विदित नहीं थी। यही कारण है कि जब कभी भी इन्हें मज़बूत दीवालों से घिरे नगर को जीतने की आवश्यकता पड़ती थी, उस समय वे प्रायः विफल हो जाते थे। प्रायः ऐसे अवसरों पर वे यूनानी सैनिकों की सहायता लिया करते थे।

यहाँ पर उल्लेखनीय हो जाता है कि यद्यपि इस समय ईरान से यूनानी राज्य हटा दिया गया तथापि सभ्यता एवं संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों—शासन-पद्धति, सामाजिक प्रथायें एवं आर्थिक संगठन आदि—में पर्याप्त यूनानी प्रभाव था। अतएव पूर्व काल में प्रचलित यूनानी रीतियों को उन्होंने अपने शासन-प्रबन्ध में स्थान दिया। पार्थियन नरेशों ने भी अपनी मुद्राओं के ऊपर 'फिल्हेलेनीज़' (लव ऑफ दी हेलाज़) लेख अङ्कित किया। यह तत्कालीन ईरानी परिस्थितियों को देखते हुये आवश्यक सिद्ध हुआ। विशेषतः ईरान में स्थित यूनानी उपनिवेशों में यूनानी रीति-प्रथाओं के अनुसार शासन करना अधिक अनिवार्य हो गया। अतएव राजकीय लेखों में यूनानी भाषा एवं लिपि का प्रयोग किया गया। पार्थियन सम्राट तथा उनके सचिव एवं कर्मचारी यूनानी भाषा से परिचित थे। वे यूनानी किरीट एवं गजरा पहनते तथा सम्राट की यूनानी उपाधियों को धारण करते थे। वे अपने लेखों में यूनानी संवत् (सेल्यूसिड

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संवत्) का प्रयोग करते थे, यद्यपि अपने संवत् (अर्सेकिड संवत्) का प्रवर्तन उन्होंने कर दिया था।

समाज—रोम के विरुद्ध पार्थियन सफलताओं के कारण ईरानी समाज में नव चेतना का संचार हुआ। पैकोरस का सीरिया-अभियान, क्रेसस की पराजय, ऐंटोनी की असफलतायें तथा आगस्टस के द्वारा ईरान को दी गई सुविधाओं आदि ने सिद्ध कर दिया कि ईरान में पश्चिमी देशों से बराबरी की शर्तों पर मोर्चा लेने की शक्ति थी। परिणामतः राष्ट्रीय जागृति तथा विकास की भावनाओं का यहाँ उद्गम हुआ, जो कि समाज के उत्थान के लिये आवश्यक हैं।

इस समय तक विभिन्न संस्कृतियों के साथ ईरानी सभ्यता का पर्याप्त संपर्क हो चुका था। अतएव सामाजिक संगठन में नये परिवर्तन होने लगे। यूनान एवं रोम के संपर्क के कारण दासों की स्थिति में सुधार हुआ। इस समय के ईरानी दास अच्छे कलाकार सिद्ध हुये। पढ़े-लिखे दासों को राजकीय पदों पर नियुक्त किया गया, जो कि पूर्वी विश्व में सर्वथा एक नवीन विकास था। रोम ने फ्रातोज़ चतुर्थ को एक दास-कन्या का उपहार चढ़ाया था, जो कि बाद में प्रधान महिषी के पद पर नियुक्त हुई। उसने इसके राज्यकाल तथा इसके उत्तराधिकारी फ्रातीज़ पंचम के समय में शासन-कार्यों में सक्रिय भाग लिया। इस उदाहरण से लगता है कि दासों के प्रति इस समय ईरान में उदारता एवं सहिष्णुता की नीति अपनाई गई। यूनानियों एवं ईरानियों में विवाह-संबन्ध स्थापित होने लगे। इस प्रकार के विवाह से उत्पन्न संतान के नाम में यूनानी एवं रोमन नामों का सम्मिश्रण होता था। इस दृष्टान्त से भी स्पष्ट है कि पुरातन संकीर्णता इस समय क्रमशः विलीन होने लगी तथा ईरानी लोग विदेशी सभ्यताओं की भी विशेषताओं को स्वतः ग्रहण करने लगे।

जहाँ तक पार्थियन लोगों का प्रश्न है, इस बात का निर्देश पहले किया जा चुका है कि वे युद्ध के प्रेमी थे। वे संग्राम को सबसे महत्त्वपूर्ण उद्यम मानते थे। आखेट उनका प्रिय व्यसन था। विविध प्रकार के खेल-कूदों में वे दिलचस्पी रखते थे। जस्टिन लिखता है कि वे सामूहिक ढंग से भी शिकार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करते थे। वे खजूर के शराब के शौकीन थे। मात्रा से अधिक मदिरा का व्यवहार उनके लिये साधारण बात थी। नृत्य एवं वाद्य से उनका प्रेम था। संगीत के अवसर पर बाँसुरी एवं ढोल बजाये जाते थे। अन्य खानाबदोशी जातियों की भाँति मांस उनका प्रिय भोजन था।

तत्कालीन ईरानी समाज में बहुविवाह का प्रचार था। अतएव स्त्री को पुरुष की अधीनता में अधिक रहना पड़ता था। साखामनीष सम्राटों की भाँति पार्थियन नरेशों का हरम बड़ा हुआ करता था। इसमें विवाहित महिलाओं के अतिरिक्त रखेलियाँ तथा दास-कन्यायें भी रहती थीं। इनके हरम में यूनानी एवं भारतीय दास-कन्याओं के भी रहने का प्रमाण मिलता है। मूसा नामक भारतीय दास-कन्या अपने समय में शासन-कार्य में काफी प्रभाव रखती थी। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि साखामनीष-काल की भाँति इस समय में हरम में हिजड़ों का कोई प्रभाव नहीं होता था। पार्थियन लोगों का व्यक्तिगत उदाहरण कुछ स्थलों पर उच्च भी था। उदाहरणार्थ वे कैदियों के साथ उदारता का व्यवहार करते थे। वे अपने वचन को निभाते तथा सन्धि की शर्तों का पालन करते थे।

वे मीडियन शैली का जामा एवं तंग मोहड़ी का पाजामा पहनते तथा लम्बे बाल एवं दाढ़ी बढ़ाते थे। युद्ध-प्रेमी पार्थियन सरदार लोहे का कवच एवं कुंडल धारण कर अश्व-पृष्ठ पर आरूढ़ हुआ करता था। उसके प्रिय शस्त्र तलवार, कटार, भाला तथा धनुष-बाण आदि थे। पार्थियन नरेशों की वेशभूषा के विषय में उनकी मुद्राओं के द्वारा कुछ ज्ञान प्राप्त होता है। अपनी एक मुद्रा के ऊपर अर्सेकिज़ प्रथम यूनानी मुकुट, कानों में सुवर्णाभूषण, लम्बा कोट तथा पैरों में मज़बूत फीतों से बँधा जूता पहने हुये दिखाया गया है। एक दूसरी मुद्रा के ऊपर वह तिकोना टोप तथा कवच धारण किये हुये अंकित है। यह संभवतः उसका सैनिक वेष था।

आर्थिक जीवन—पार्थियनकालीन ईरान आर्थिक क्षेत्र में नवीन परिवर्तनों के लिये भी विशिष्ट माना जाता है। व्यवसाय एवं उद्योगधंधों का विकास हुआ। इस समय के कतिपय महत्त्वपूर्ण उद्यम उल्लेखनीय हैं :—उदाहरणार्थ सूती कपड़े, चमड़े का काम, भाण्ड-निर्माण, लोहे के शस्त्र तथा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शीशे की वस्तुयें। सिकन्दर के अभियान ने नवीन मार्गों से लोगों को परिचित किया। इनमें से अधिकांश ईरान होकर जाते थे। इन पथों के माध्यम से पाश्चात्य एवं पूर्वी जगत् का वाणिज्य-संबन्ध विकसित होने लगा। पार्थियन काल में यह प्रदेश व्यापारिक मार्गों के कारण पूर्वापर विश्व का सन्धि-स्थल था। सुदूर पूर्वी देशों के व्यापारियों का कारवाँ ईरान से होकर गुज़रता था। इनको सुविधा प्रदान करने की आवश्यकता ने ऐसे प्रतिनिधियों को जन्म दिया, जो विदेशी सौदागरों के माल को लादने के लिये सवारियाँ देते तथा उन्हें नदियों को पार करने में सहायता प्रदान करते थे। इस प्रकार की पृष्ठभूमि में मध्यस्थों (दलालों), कारवाँ-नेताओं एवं संक्रमण-वाणिज्य के विशेषज्ञों का समाज में आविर्भाव हुआ। यह विकास वहाँ के आर्थिक जीवन का एक नवीन अंग था।

चीन के नरेशों ने पार्थियन दरबार में अपने राजदूत भेजे और इस प्रकार ईरान एवं इस देश के बीच व्यापारिक संबन्ध सुदृढ़ हुआ। रोम ईरान के माध्यम से ताँबे एवं शीशे के बर्तन, शराब तथा तेल पूर्वी देशों को भेजता था तथा पूर्वी देशों से इस प्रदेश के द्वारा सिल्क, अनुलेप, सुगन्धित द्रव एवं कीमती पत्थर आदि यूनान एवं रोम भेजे जाते थे। ईरान में चीन एवं भारतवर्ष से फौलाद आते थे। इनकी पश्चिमी देशों में बड़ी माँग थी। दमिश्क का फौलाद, जिसकी पार्श्ववर्ती देशों में बड़ी ख्याति थी, वास्तव में भारतीय फौलाद था जो कि वहाँ ईरान से होकर जाता था। प्लूटार्क के वर्णन से लगता है कि पार्थियन सिपाहियों के शस्त्र भारतीय इस्पात के बने होते थे। इस समय ईरान, बैबीलोनिया, सीरिया एवं पैलेस्तीन में घनिष्ठ व्यापार-संबन्ध था। अन्य देशों से यहाँ जंगली जानवरों के चमड़े, ऊन, गढ़े हुये लकड़ी के सामान, चावल, सुन्दर पक्षी, नशीली वस्तुयें, औषधियाँ, शिलाजीत, कागज, काँसे एवं अन्य धातुओं के द्वारा निर्मित भाण्ड आदि आते थे। बैंक-प्रथा का उद्गम हुआ। इस व्यापार-संपर्क के कारण बाज़ारें अधिक समृद्ध थीं।[१] आन्तरिक व्यापार के विकास के लिये पुराने

१. "Never had the states of East and West been so closely linked, nor, before the time of Augustus, had there been so much trade in either direction." —Ghirshman.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राजमार्गों का जीर्णोद्धार तथा नवीन सड़कों का निर्माण किया गया। मरु-स्थलों से होकर जाने वाले मार्गों के किनारे यथास्थान विश्राम-गृह बनवाये गये तथा जल की व्यवस्था की गई। डूरा से प्राप्त एक प्राचीन लेख से ज्ञात होता है कि रेगिस्तानी रास्तों में सौदागरों की सुरक्षा के लिये पुलिस की नियुक्ति की गई। इस समय ईरान के लोग कारवाँ की रक्षा करने वाले देव-ताओं में विश्वास करते थे। डूरा के प्राचीन लेखों के अनुसार ये घोड़े तथा ऊँट की पीठ पर आरूढ़ होकर निर्जन स्थानों में घूमते रहते थे। संभवतः उस समय डाक ले जाने की व्यवस्था थी। तेज़ यात्रा करने के लिये घोड़ा-गाड़ियाँ होती थीं। जब घोड़े थक जाते थे, तो उन्हें विश्राम-गृहों पर छोड़ दिया जाता था तथा उनके बदले में नये घोड़े जोत दिये जाते थे। इस प्रकार दूर की यात्रा कम समय में सम्भव थी। वर्देनिज़ ने ३५० मील की यात्रा केवल दो ही दिनों में तय की थी। घोड़ों के खुर में नाल लगाने की प्रथा ज्ञात हो चुकी थी।

जहाँ तक कृषि का प्रश्न है, साधारण कृषक के पास कृषि-योग्य भूमि की कमी थी। अधिकांश भूमि सामन्तों, सरदारों एवं धनी मानी व्यक्तियों के अधिकार में थी। इनके पास खेत के लम्बे खत्ते थे, अतएव कृषि से वास्त-विक लाभ केवल इन्हीं को था। ये नवीनतम ढंग से खेती करते थे। गाँव के लोग मुर्गी तथा बतख पालते थे, जिनकी बाहरी देशों में खपत थी। बाहरी देशों के संपर्क के कारण यहाँ विदेशी फल-फूल तथा वनस्पतियाँ उगाई जाने लगीं; उदाहरणार्थ चीनी घास, खीरा, ककड़ी, लहसुन, प्याज तथा चमेली के पौधे आदि।

धर्म—पार्थियन लोगों के प्रारंभिक धर्म के विषय में प्रमाणाभाव के कारण कुछ विशेष अज्ञात है। वे खानाबदोशी थे, अतएव विद्वानों का ऐसा अनु-मान है कि उन लोगों में आदिम उपासना-विधियाँ अवश्य प्रचलित रही होंगी। ईरान में आधिपत्य स्थापित करने के उपरान्त इनके धर्म में नवीन परिवर्तनों का होना प्रारंभ हो गया। अपने राजवंश के संस्थापक अर्सेकिज़ की वे पूजा करने लगे। इसे हम उनके धर्म का पूर्वज-पूजा-विषयक अंग मान सकते हैं। कालान्तर में वे अनहित की पूजा (जलदेवता की आराधना)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

करने लगे और यही उनका प्रधान देवता बन गया। वे जल को सबसे पवित्र तत्त्व समझने लगे। टैसिटस लिखता है कि जब आर्मेनिया का शासक तिरिद-तीज़ नीरो से मिलने के लिये रोम गया था, उस समय समुद्री रास्ते से जाने का साहस उसे नहीं हुआ। उसे इस बात का भय था कि कहीं उसकी इस प्रकार की यात्रा से जल की पवित्रता भंग न हो जाय। अतएव वह स्थलमार्ग से ही रोम गया। ईरान में जल को देवता मानना वहाँ की एक प्राचीन पर-म्परा थी। हेरोडोटस के विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है।

पार्थियन काल में इस देवता की आराधना के लिये ईरान में मन्दिरों का निर्माण होने लगा। एकबतना के राजकीय प्रासाद के प्रांगण में अनहित का मन्दिर बना हुआ था। असेंक में वर्तमान् अनहित के मन्दिर में तिरिदतीज़ का राज्याभिषेक-संस्कार संपन्न हुआ था। उसकी पूजा ईरान के बाहरी देशों में भी होने लगी। लीडिया में इसे बैक्ट्रिआ की देवी (लेडी ऑफ बैक्ट्रिआ) कहते थे। पार्थियन कैदियों के माध्यम से (जो युद्ध में पकड़े जाने पर रोम लाये गये थे) वहाँ पर अनहित-पूजा का श्रीगणेश हुआ। कालान्तर में रोम से आगे बढ़ कर इसका प्रचार राइन एवं डैन्यूब नदियों के प्रदेशों तक हुआ था। उत्तरी ईरान के प्रसिद्ध धार्मिक केन्द्र शिज़ का प्रमुख देवालय अनहित का मन्दिर घोषित किया गया।

यहाँ पर उल्लेखनीय है कि पार्थियन लोगों पर ज़रथुस्त्र धर्म का कोई विशेष प्रभाव नहीं था। रक्तपात से उन्हें कोई हिचक नहीं थी। वे पशुओं का बलिदान चढ़ाते थे, जो कि ज़रथुस्त्र के अनुसार अधर्म था। ज़रथुस्त्र-अनुयायियों की भाँति वे शव को क्रमशः समाप्त हो जाने के लिये खुले आकाश में नहीं छोड़ देते थे। पार्थियन नरेशों के मृतक शरीर समाधियों में गाड़ दिये जाते थे। शव को जिस सन्दूक में रख कर दफनाया जाता था, उसकी बाहरी और भीतरी सतहों पर अनहित के चित्र बनाये जाते थे। सूसा की एक पार्थियन समाधि के उत्खनन में इसके स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं। पार्थियन नरेश धर्मसहिष्णु थे। मेसोपोटामिया में उन्होंने स्थानीय धर्म के पालन की स्वतन्त्रता दी थी। वे यहूदियों के प्रति भी धर्मसहिष्णु थे। इसके पूर्व यूना-नियों तथा रोम-विजेताओं ने यहूदियों को काफी सताया था। अतएव पार्थि-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यन नरेशों की सहिष्णुनीति के कारण वे उन्हें अपने धर्म का रक्षक मानते थे। द्वितीय शताब्दी में रोम के विरुद्ध एक यहूदी विद्रोह में पार्थियन लोगों ने इनकी सहायता की थी। उनकी मुद्राओं के ऊपर ज़ियस तथा एपोलो के चित्र अंकित हैं। इससे लगता है कि इन यूनानी देवताओं को राजकीय मान्यता प्रदान की गई थी।

ईरान में रहने वाली अन्य जातियाँ तीन देवताओं की पूजा करती थीं—अहुरमज़्द, मिथ्र तथा अनहित। इस देव-समूह को ईरान की त्रिमूर्ति कहा जा सकता है। पार्थियन नरेशों की कुछ सामन्त-मुद्राओं पर किसी मन्दिर के शिखर पर तीन वेदियों का अंकन मिलता है। विद्वानों का अनुमान है कि इनका सम्बन्ध इन्हीं तीनों देवताओं से है। अहुरमज़्द की पूजा वहाँ की एक प्राचीन परम्परा थी। सूर्य की पूजा मिथ्र के नाम से की जाती थी। विशेषतः उदय-काल के समय सूर्य-नमस्कार की प्रथा वहाँ प्रचलित थी। पार्थियन नरेशों के व्यक्तिगत उदाहरण के कारण ईरानी जनता में भी अनहित-पूजा का प्रचार हुआ। मिथ्र सैनिकों का रक्षक, सत्य का पोषक, दानवविनाशक तथा समृद्धि का मूल माना जाता था। कुछ लोग जादू मंत्र में भी विश्वास करते थे। विद्वानों का अनुमान है कि यह बैबीलोनिया के धार्मिक विश्वासों का प्रभाव था। मूर्ति-पूजा इस समय होती थी। फिलास्ट्रेटस बैबीलोनिया के पार्थियन राजप्रासाद का वर्णन करता हुआ लिखता है कि इसकी दीवालों पर सुवर्णजटित देवप्रतिमायें अंकित की गई थीं। उन्हें देखने से लगता था, मानों आकाश-मंडल में तारे चमक रहे हों।

कला—विश्व-कला के प्रसिद्ध विद्वान् फर्गुसन का कथन है कि पार्थियन काल में ईरानी कला सुषुप्तावस्था में पड़ी थी। सिकन्दर के आक्रमण के उपरान्त तथा ससैनियन वंश के अभ्युदय के पूर्व कला के विविध क्षेत्रों में ईरान में कोई प्रगति नहीं हुई।[१] पर यदि उपलब्ध प्रमाणों की ध्यानपूर्वक समीक्षा की

१. "Oriental architecture is practically a blank from the conquests of Alexander the Great to the rise of the Sassanian dynasty."

—Fergusson.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाय, तो ऐसा समीचीन नहीं प्रतीत होता। पुरातत्त्व-साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि नगर-विन्यास, राजप्रासादों का सन्निवेश, मूर्ति-निर्माण तथा चित्रकला आदि से पार्थियन कालीन ईरान किसी प्रकार भी अपरिचित नहीं था। इस काल की कला की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसने बाह्य-कला के प्रभावों से क्रमशः हट कर राष्ट्रीय आदर्शों पर पनपना प्रारंभ किया। अतएव इसमें ईरानी तत्त्व अधिक परिलक्षित होते हैं। इसे हम ईरानियों की राष्ट्रीय चेतना का परिणाम कह सकते हैं।

नगर-निर्माण—पार्थियन कालीन सबसे प्रसिद्ध नगरों में टेसीफन तथा हट्रा आदि का नाम लिया जा सकता है। इन दोनों नगरों की स्थापना एक दुर्ग के रूप में हुई थी। ये लोग अपने नगरों का आकार अधिकतर गोल रखते थे। सुरक्षा के हेतु उनके चतुर्दिक सुदृढ़ दीवाल बनी होती थी। समान दूरी दूरी पर उसमें बुर्ज़ भी बने होते थे। शत्रुओं के आक्रमण से बचाव के लिये उनके चारो ओर चौड़ी एवं गहरी खाईं भी बनी होती थी। हट्रा का नगर खाईं तथा दीवाल दोनों से ही परिवेष्ठित था। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि ये अंग भारतीय नगरों में भी वर्तमान् थे; उदाहरणार्थ परिखा (खाईं), प्राकार (दीवाल) तथा अट्टालक (बुर्ज़) आदि। यह समानता भारतवर्ष एवं ईरान के सांस्कृतिक संबन्ध की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है। नगरों का विस्तार विशेष हुआ करता था। हट्रा के नगर की परिधि तीन मील के लगभग थी।

राजप्रासाद—सुरक्षा की दृष्टि से राजप्रासाद बहुधा नगर के बीचोबीच बनाया जाता था। हट्रा का राजमहल पुरमध्य में स्थित था। भारतवर्ष में भी राजमहल नगर के केन्द्रीय भाग में बने होते थे। मेगस्थनीज़ लिखता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य का राजप्रासाद पाटलिपुत्र के मध्य में निर्मित था। कौटिल्य ने भी पुर के केन्द्रीय हिस्से में राजमहल का सन्निवेश वांछनीय माना है। पार्थियन राजमहलों में विशाल कमरे बने होते थे। यह ईरान की प्राचीन परंपरा थी। हट्रा के राजमहल में आठ विशाल कमरे विद्यमान थे। इनकी औसत लम्बाई एवं चौड़ाई ६० फीट एवं ४० फीट थी। छत प्रायः अर्द्ध-वृत्ताकार हुआ करती थी। पार्थियन कालीन ईरानी कलाकार मेहराब के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निर्माण से परिचित थे। महलों की दीवालों में पत्थरों की चुनाई की गई थी।

मन्दिर—देवालय भी तत्कालीन वास्तुकला के ज्वलन्त उदाहरण थे। हट्रा से पार्थियन कालीन मन्दिर के अवशेष मिले हैं। इनसे ज्ञात होता है कि देवालय के भीतर एक गर्भ-मन्दिर हुआ करता था, जिसमें देव-प्रतिमा की स्थापना की जाती थी। गर्भगृह के चतुर्दिक प्रदक्षिणा-पथ हुआ करता था। मन्दिर के छत पर आने के लिये भीतर सीढियाँ बनी होती थीं। अग्नि जलाने के लिये छत पर वेदी का निर्माण किया जाता था। मन्दिर के चबूतरे पर चढ़ने के लिये इसके चतुर्दिक सोपान बने होते थे।

मूर्तिकला—पार्थियन कालीन मूर्तियों के कतिपय भव्य उदाहरण ईरान के प्राचीन सांस्कृतिक केन्द्रों से उपलब्ध हैं। इस समय के कलाकार काँसे एवं संगमरमर के द्वारा भी प्रतिमाओं का निर्माण करते थे। शमी नामक स्थान से कांस्य-निर्मित दो पुरुष-मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। उनका निर्माण द्वितीय शताब्दी ई० पू० के मध्य में हुआ होगा। इनमें व्यावर्तनयुक्त उत्तरीय एवं अधोवस्त्र बहुत ही सुन्दर ढंग से अंकित किये गये हैं। इनसे इस युग की वेशभूषा तथा बालों के सँवारने के ढंग के विषय में परिचय प्राप्त होता है। स्त्री-प्रतिमाओं में सूसा से प्राप्त मूर्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसका निर्माण संगमरमर के द्वारा हुआ था। विद्वानों का ऐसा अनुमान है कि यह मूर्ति फ्रातीज़ चतुर्थ की प्रधान महिषी की है। इसके निर्माण की शैली कुछ यूनानी कला से प्रभावित दीख पड़ती है। साम्राज्ञी के मुकुट के ऊपर यूनानी लिपि में एक छोटा लेख मिलता है, जिसमें इस प्रतिमा के निर्माता कलाकार का नाम आता है। लेख की लिपि संकेत करती है कि इसका निर्माण प्रथम शताब्दी ई० पू० अथवा प्रथम शताब्दी ईसवी में हुआ। लगता है कि इस समय दाढ़ी रखने की प्रथा लोकप्रिय थी। शमी से प्राप्त एक संगमरमर की मूर्ति में कोई पार्थियन राजकुमार अपनी दाढ़ी सुसज्जित किये हुये प्रदर्शित किया गया है। इसी प्रकार सूसा से प्राप्त पुरुष-प्रतिमा में उसकी दाढ़ी साफ दृष्टिगोचर होती है।

अन्य प्रसिद्ध मूर्तियों में वाल्गेसीज़ तृतीय की एक प्रतिमा है, जिसमें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसके शरीर का उत्तरार्द्ध दिखाया गया है। वह अपने देश के आदर्शभूत शिरोवेष्र को धारण किये हुये है, जो कि उसके कानों के ऊपर लटकता हुआ कन्धे को ढके है। उसके मस्तक पर राजकीय मुकुट है। उसकी श्मश्रु (गल-मूँछ) तथा दाढ़ी द्रष्टव्य है। जिस फलक पर यह मूर्ति अंकित है, उस पर एक छोटा लेख भी उपलब्ध है। इसमें उसका नाम उसकी उपाधियों के सहित उत्कीर्ण है।

उत्कीर्ण-भास्कर—पार्थियन मूर्ति-कला के विषय में इस समय के उत्कीर्ण-भास्कर (रिलीफ-स्थापत्य) के दृष्टान्त भी उल्लेनीय हैं। शमी से पास स्थित तंग-ए-सरवाक नामक स्थान से इस कोटि की मूर्तिकला का एक उदाहरण मिला है, जिसमें सम्राट अपने दलबल के साथ देवी को पूजा-सामग्री चढ़ाता हुआ प्रदर्शित किया गया है। इस दृश्य में कई आकृतियाँ हैं। इसमें कुछ राजकुल के सदस्य लगते हैं। पिछली पंक्ति में शस्त्रयुक्त सामन्त एवं विशिष्ट पदाधिकारी खड़े हैं। सूसा के एक उत्कीर्ण-भास्कर (बेस-रिलीफ) में अन्तिम पार्थियन सम्राट अर्तबेनुस पंचम अपने एक सामन्त को अंगूठी (जो शक्ति का प्रतीक प्रतीत होती है) समर्पित करता हुआ दिखाया गया है।

चित्रकारी—पार्थियन काल में चित्रकला का भी विकास हुआ। ईंट की दीवालों के ऊपर गाढ़े लेप चढ़ाकर उस पर चित्रकारी का कार्य किया जाता था। इस प्रकार की चित्रकला के सर्वोत्तम उदाहरण कुह-ए-ख्वाजा से प्राप्त हुये हैं। चित्र के विषयों में वृत्त, आयत, फूल-पत्तियाँ तथा प्राकृतिक विषय उल्लेखनीय हैं। कुछ चित्र राजा-रानी की आकृतियाँ तथा देवताओं के रूप प्रदर्शित करते हैं। संगीत, नृत्य, खेल-कूद तथा आखेट आदि के दृश्य भी चित्रों के द्वारा निरूपित किये गये हैं।

भाण्डकला—वहाँ की कला के विषय में मिट्टी के बर्तन तथा खिलौने आदि उल्लेखनीय हैं। वहाँ कुंभकारों के घर नगर के सीमान्त प्रदेश में बने होते थे। वे सुन्दर प्याले एवं तश्तरियाँ बनाते थे, जिन पर नीले अथवा हरे रंग के पालिश का काम किया गया है। वे पतले मुँह की बोतल तथा छोटे एवं बड़े आकार के घड़े और सुराही भी बनाते थे। वे कमण्डल के आकार के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के भी बर्तन बनाते थे, जिनको उठाने के लिये उनमें मुठिया लगी रहती थी। वहाँ पर जीवन में उपयोगी बर्तनों को शव के साथ कब्रों में गाड़ दिया जाता था। सूसा के उत्खनन में ऐसे बर्तनों के उदाहरण मिले हैं। तत्कालीन मिट्टी के खिलौनों के भी नमूने प्राप्त हैं। इनमें से एक में अनहित देवी अपने नग्न रूप में दिखाई गई है। कुछ मृण्मयी मूर्तियों में अश्व-पृष्ठ पर आरुढ़ पार्थियन सैनिकों की आकृतियाँ प्रदर्शित की गई हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ५

ससैनियन सभ्यता

राजनीतिक पृष्ठभूमि—द्वितीय शताब्दी के अन्तिम चरण में ईरान के फार्स नामक प्रांत में ससैनियन नामक एक नवीन राजवंश का उद्‌गम हुआ, जो कि विश्व-इतिहास के पृष्ठों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यह ईरान का राष्ट्रीय राजवंश था। यह प्राचीन साखामनीष राजवंश से संबंधित था। इस राजवंश के संस्थापक का नाम ससैन था। परंपरा के अनुसार वह अपने समय का एक प्रतिभासंपन्न एवं प्रभावशाली व्यक्ति माना जाता था। इसका पुत्र पपैक भी काफी सुयोग्य था। इन दोनों व्यक्तियों ने ईरान में स्तख नामक स्थान के चतुर्दिक अपने प्रभाव को बढ़ा लिया। पपैक राजनीतिक चालों में नितांत दक्ष था। उसने २०८ ई० में अपनी सैनिक शक्ति को सुदृढ़ कर दूर-तर प्रभाव-विस्तार की योजना बनाई। यह तिथि ससैनियन राजवंश के इतिहास में युगांतर का प्रवर्तन करती है। पपैक की यह महत्त्वाकांक्षा उसके समकालीन चक्रवर्ती पार्थियन सम्राट को सह्य न थी। अतएव जब उसने अपना उत्तराधिकार अपने पुत्र शापुर को देना चाहा, उस समय पार्थियन सम्राट ने इसका तीव्र विरोध किया। इस प्रकार ससैनियन राजवंश के नेता तथा पार्थियन सम्राट के बीच संघर्ष का सूत्रपात हुआ। यह संघर्ष बहुत समय तक चलता रहा।

ससैनियन शक्ति का विस्तार—पपैक की मृत्यु के अनंतर उसके पुत्रों (शापुर तथा अर्देशिर) में एक उत्तराधिकार-सम्बन्धी युद्ध छिड़ा। इसकी समाप्ति के पूर्व ही शापुर की आकस्मिक मृत्यु हो गई। परिणामस्वरूप अर्देशिर सिंहासनारूढ़ हुआ। जिस कार्य को पपैक ने अपूर्ण छोड़ रखा था, उसे अर्देशिर ने पूरा किया। उसने अपनी शक्ति का विस्तार फार्स नामक प्रान्त में करना प्रारम्भ किया। यह प्रान्त ईरानी राजनीति का अड्डा था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
जहाँ अनेक प्रतिस्पर्द्धी अपने राजनीतिक प्रभाव को बढ़ाने में प्रयत्नशील थे। पर अर्देशिर के सैनिक संगठन तथा राजनीति-कुशलता के समक्ष उन्हें नतमस्तक होना पड़ा। उसने उन्हें परास्त कर फार्स में निर्विरोध सैनिक शक्ति को स्थापित किया। अर्देशिर की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर पार्थियन सम्राट अर्तबेनुस पंचम सशंकित हो उठा। उसकी दृष्टि में अर्देशिर की विजयें पार्थियन शक्ति के लिये स्पष्ट चुनौती थीं। अतएव उसने अह्वाज़ के शासक को उसे पराजित करने के निमित्त भेजा। अर्देशिर ने उसे बड़ी सुगमता के साथ पराजित किया। इसके अनन्तर अर्तबेनुस के साथ उसके चार युद्ध हुये। अन्तिम युद्ध (२२४ ई०) में उसने अर्तबेनुस को पूर्ण रूप से परास्त कर दिया। इस विजय के फलस्वरूप अर्देशिर की गणना एक महान् सम्राट के रूप में होने लगी। साखामनीष सम्राटों के अधःपतन के लगभग ५५० वर्ष के उपरांत इस समय ससैनियन वंश के नेतृत्व में एक राष्ट्रीय पारसीक राज्य की स्थापना हुई। यह नवीन वंश प्राचीन साखामनीष वंश का वैध उत्तराधिकारी था। इसकी स्थापना एवं शक्ति-विस्तार के कारण पूर्व पारसीक सभ्यता का दूसरा विकास सम्भव हो सका।

वह सांस्कृतिक कार्यों में भी अभिरुचि रखता था। उसने 'खुर्रा-ए-अर्देशिर' (जिसका अर्थ अर्देशिर का वैभव होता है) नामक नगर की नींव डाली, जिसका प्रतिनिधि आधुनिक फिरोज़ाबाद है। राजप्रासाद, उद्यान एवं राजकीय तथा सार्वजनिक भवनों के निर्माण द्वारा उसने इसे भव्य रूप प्रदान किया। कहा जाता है कि सब मिला कर उसने अठारह नगरों की स्थापना की थी, जिनमें से ग्यारह समुद्र-तट और नदियों के किनारे बसे हुये थे। इनकी व्यापारिक महत्ता अधिक थी। सिंचाई की सुविधा के निमित्त उसने नहरें निकालीं। वह विद्या-प्रेमी सम्राट था। उसने दो उत्कृष्ट ग्रन्थों की रचना की थी। इनमें से एक में उसने अपनी यात्राओं एवं अनुभवों का वर्णन किया है तथा दूसरे में सम्राट की आदर्श दिनचर्या का उल्लेख मिलता है। तख्तेरुस्तम के उत्कीर्ण-भास्कर (बेस रिलीफ) में अहुरमज़्द उसे राजमुकुट समर्पित करता हुआ अंकित किया गया है। इसमें दो लेख भी उत्कीर्ण हैं, जिनमें एक की भाषा ईरानी तथा दूसरे की यूनानी है। इनमें सम्राट की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपाधियाँ उल्लिखित हैं। उसकी मुद्राओं के ऊपर अग्निपूजा, वेदी तथा इससे संबंधित पुजारियों का अंकन मिलता है। इसका सम्बन्ध राष्ट्रीय धर्म से है। ससैनियन कला में अर्देशिर की कतिपय विजयों के दृश्यों का भी अंकन किया गया है। गिबन का कथन है कि उसने सिथियन जाति को भी परास्त किया था, पर यह विवादास्पद है। इतिहासकार साइक्स ने उसकी कृतियों का मूल्याङ्कन करते हुये कहा है कि वह प्राज्ञ, उदारचरित, न्यायप्रिय, सिद्धान्तवादी एवं प्रजावत्सल शासक था।

शापुर प्रथम—अर्देशिर ने लगभग पचास वर्षों तक शासन किया। अपने शासनकाल में उसने अपने सभी शत्रुओं को परास्त कर निर्द्वन्द्व ससैनियन साम्राज्य की स्थापना की। उसके पुत्र का नाम शापुर था, जिसे उसने अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया था। ससैनियन वंश के इतिहास में यह शापुर प्रथम के नाम से प्रसिद्ध है। अपने पिता के शासन-काल में उसे युद्ध एवं शासन-संबन्धी उचित प्रशिक्षण की प्राप्ति का सुअवसर उपलब्ध हुआ था। परिणामतः वह एक कुशल शासक एवं विजेता सिद्ध हुआ। उसके राज्य-काल के पूर्व ससैनियन शासन-संगठन पार्थियन शासन-पद्धति का प्रतिरूप था। इस प्रणाली में सामन्त-प्रभाव अधिक था। शापुर ने इसे परिवर्तित करने की चेष्टा की। उसने केन्द्रीकरण की नीति अपनाई। इसके परिणाम-स्वरूप सामन्तों की स्वार्थमयी प्रवृत्तियाँ विनष्ट हो गईं। शासन-सम्बन्धी अन्य दोषों का परिहार करते हुये उसने अपनी भावी योजनाओं की कार्यान्विति के निमित्त पृष्ठभूमि प्रस्तुत की।

ससैनियन वंश के आंतरिक विरोधियों का दमन उसके पिता के शासन-काल में किया जा चुका था। पर बाह्य शत्रुओं का प्रश्न अभी तक बना हुआ था। पूर्व में कुषाण शासक इस समय काफी शक्तिशाली थे। इनके कारण ससैनियन सम्राज्य की पूर्वी सीमा खतरे में थी। कुषाण-साम्राज्य आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न था। इसमें कई व्यापारिक केन्द्र सम्मिलित थे। अतएव कुषाण-साम्राज्य की विजय ससैनियन सम्राट के लिये राजनीतिक एवं आर्थिक दोनों ही दृष्टियों से उपयोगी थी। उसके नक्शेरुस्तम के लेख से ज्ञात होता है कि वह विजय-यात्रा करता हुआ पेशावर तक बढ़ आया था। उसने मार्ग में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
समरकन्द, ताशकन्द तथा बैक्ट्रिश्रा आदि को जीत लिया। इन विजयों के फलस्वरूप कुषाण-साम्राज्य की सत्ता समाप्त हो गई। इस समय बाहरी देशों में ईरान की यश-वृद्धि तथा व्यापारोन्नति पर्याप्त रूप में हुई।

साम्राज्य की पश्चिमी सीमा को संगठित करने के अनन्तर शापुर ने अपनी शक्तिशालिनी सेना के साथ पश्चिम की विजय-यात्रा प्रारम्भ की। उसकी इस विजय-योजना के प्रधानतः दो लक्ष्य थे—एक तो साम्राज्य की पश्चिमी सीमा को बाह्य आक्रमणों से सुरक्षित रखना तथा दूसरे धन-प्राप्ति के द्वारा कोष की पूर्ति। उसने सर्वप्रथम २४४ ई० में सीरिया के शासक फिलिप को परास्त किया। इस विजय के फलस्वरूप उसका आधिपत्य मेसोपोटामिया एवं आर्मेनिया के ऊपर स्थापित हुआ। इस घटना के लगभग १५ वर्ष उपरांत उसने सीरिया के कई नगरों को जीत लिया। उसके समय में रोम-साम्राज्य की आन्तरिक दशा ठीक न थी। २३५ ई० में रोम-सम्राट सेवेरस अपने ही सैनिकों के द्वारा मार डाला गया। इसके पश्चात् सम्राट की नियुक्ति एक तरह से सेना करने लगी। अगले पचास वर्षों में २६ व्यक्ति सम्राट बनाये गये। उनमें से केवल एक की ही स्वाभाविक मृत्यु हो सकी थी, अन्यथा सभी षडयंत्र के द्वारा मार डाले गये। शापुर ने रोम की इस शोचनीय आन्तरिक स्थिति का लाभ उठाया। २६० ई० में उसने रोम-साम्राज्य के अधीनस्थ कई नगरों के ऊपर अपना आधिपत्य स्थापित किया। इन नगरों से उसे प्रभूत मात्रा में धन की प्राप्ति हुई। अनेक रोम-नागरिक बन्दी बनाकर ईरान भेजे गये। इन बन्दियों में कतिपय कलानिपुण कारीगर थे, जिन्होंने रोमन पद्धति के अनुसार ईरान में प्रासादों, राजमार्गों तथा पुल आदि का निर्माण किया। पश्चिम में शापुर ने कतिपय अन्य स्थानों पर भी आक्रमण किया था। उसे सभी युद्धों में सफलता प्राप्त हुई। केवल पामीरा में उसकी सेना को विजय नहीं प्राप्त हो सकी। उसने अपनी विजयों को शिलाखण्डों पर अंकित किया। फार्स के एक प्रस्तरखण्ड पर उसके चरणों पर नतमस्तक शत्रु-सम्राट की आकृति अंकन का मिलता है।

ईरान का आंतरिक संगठन—उसकी विजिगीषु नीति के कारण ईरान की धाक बाहरी देशों में काफी जम गई। उसने अपने साम्राज्य के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विभिन्न भागों को एकता के सूत्र में दृढ़बद्ध किया। अपने युग की चेतना से वह भली भाँति परिचित था। यही कारण है कि उसने मनीच धर्म को प्रोत्साहित किया। इस धर्म के ऊपर ज़ोरोस्टर धर्म का प्रभाव था। यही कारण है कि इसे ईरान का राष्ट्रीय धर्म माना जाता था। शापुर के द्वारा इस धर्म को प्रोत्साहन प्रदान करने का कारण पूर्ण रूप से राजनीतिक था। उसे साम्राज्य की एकता के निमित्त एक व्यापक धर्म की आवश्यकता थी। मनीच धर्म के स्वीकरण ने इस कार्य को पूरा किया। कला एवं साहित्य के समुन्नयन के हेतु भी वह प्रयत्नशील था। ऊपर इस बात की चर्चा की जा चुकी है कि रोम के कलाकारों के निर्देश में ईरान में नवीन शैली के अनुसार भवनों का निर्माण किया गया। उसने चिकित्साशास्त्र, ज्योतिष, नक्षत्र-विद्या तथा दर्शनशास्त्र से संबन्धित कई यूनानी एवं भारतीय ग्रन्थों का अनुवाद कराया। यह कार्य उसकी रचनात्मक प्रतिभा का ज्वलंत प्रमाण है।

वह अपने समय का सबसे बड़ा निर्माता माना जाता था। उसने अपनी राजधानी एक नये स्थान पर बनाई। इसके अवशेष इस नगर की विशालता एवं समृद्धि का स्मरण दिलाते हैं। इसमें शिलालेख मिले हैं, जो ऐतिहासिक दृष्टि से उपयोगी हैं। नक्शेरुस्तम के एक उत्कीर्ण-भास्कर (बेस-रिलीफ) में रोम-सम्राट वलेरियन, शापुर के समक्ष क्षमायाचना की भावना में अवनत दिखाया गया है। एक अन्य उत्कीर्णभास्कर (बेस-रिलीफ) में उसके सामन्त उसे अपना प्रभु-सम्राट स्वीकार करते हुये अङ्कित किये गये हैं। उसमें संगठन शक्ति तथा शासन-प्रबन्ध की क्षमता उच्चकोटि की थी। उसके कुछ लेख दो या तीन भाषाओं में उत्कीर्ण मिलते हैं। वह कभी-कभी बड़ी उदारता भी दिखाता था। एक समय उसने भूमि की उपज का केवल तीसवाँ हिस्सा सैन्य कर के रूप में उनसे वसूल किया था।

शापुर प्रथम के उत्तराधिकारी—शापुर की मृत्यु (२७२ ई०) के अनन्तर होरमिज़्द तथा वहराम प्रथम नामक उसके दो पुत्रों ने क्रमशः राज्य किया। इनका शासन अल्पकालीन था। इनके राज्य-काल के विषय में कुछ विशेष अज्ञात है। वहराम प्रथम के अनन्तर वहराम द्वितीय शासक हुआ। इसका राज्यकाल (२७६ ई०-२९३ ई०) आंतरिक एवं बाह्य संघर्षों में व्यतीत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुआ। सबसे पहले उसे रोम के साथ युद्ध करना पड़ा। जिस समय वह इस युद्ध में संलग्न था, उसके भाई ने कुषाणों की सहायता से राजसिंहासन को छीनने के निमित्त चेष्टा की। वह सीस्तान का राज्यपाल था। इस गृह-कलह के कारण विवश होकर उसे रोम से सन्धि करनी पड़ी। सन्धि की शर्तों के अनुसार उसे रोम को मेसोपोटामिया तथा आर्मेनिया को समर्पित करना पड़ा।

नरश—बहराम द्वितीय का उत्तराधिकारी बहराम तृतीय एक निर्बल शासक था। उसके राज्यारोहण के समय ईरान की राजनीतिक स्थिति ठीक न थी। इसे सुव्यवस्थित करने में वह असमर्थ सिद्ध हुआ। उसकी अयोग्यता एवं निर्बलता का लाभ उठा कर शापुर प्रथम के पुत्र नरश ने उसे सिंहासनच्युत कर दिया। पर नरश भी अयोग्य था। उसने ३०३ ई० से लेकर ३०६ ई० तक राज्य किया। उसके काल में कुषाणों की शक्ति पुनः विकसित होने लगी। उसने इन्हें मिलाने के निमित्त अपने पुत्र होरमिज़्द द्वितीय का विवाह कुषाण-राज्यकन्या के साथ किया।

शापुर द्वितीय (३०६ ई०-३७६ ई०)—होरमिज़्द दितीय की मृत्यु नरश के काल में हो चुकी थी। इस कारण उसके अनंतर होरमिज़्द द्वितीय का पुत्र शापुर द्वितीय राज्याभिषिक्त हुआ। सिंहासनारोहण के समय वह एक अल्पवयस्क बालक था, जिसके फलस्वरूप प्रारंभ में ईरान की आंतरिक शक्ति शोचनीय हो उठी। इस बिगड़ी हुई परिस्थिति ने बाह्य शत्रुओं को शक्ति-विस्तार के लिये अवसर प्रदान किया। विशेषतया पूर्व में ईरान-विजय के लिये कुषाण अधिक सक्रिय हो उठे। पर वयस्क होने के उपरांत शापुर द्वितीय ने बड़ी सफलता के साथ इन प्रतिकूल परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करना प्रारंभ किया। उसने कुषाणों को बुरी भाँति पराजित कर उनके उत्तर-पश्चिमी प्रांत को ईरान में सम्मिलित किया। इस नवविजित प्रदेश के माध्यम से ईरान की शक्ति एवं प्रतिष्ठा का प्रसार हुआ। इस राजनीतिक विजय के उपरांत पूर्व में ईरान का सांस्कृतिक प्रसार भी अवश्यंभावी सिद्ध हुआ। इस विजय के परिणामस्वरूप ससैनियन कला एवं संस्कृति ने चीनी तुर्किस्तान तथा चीन में प्रवेश किया।

डॉक्टर अ० स० अल्तेकर का कथन है कि पेशावर का किदार नामक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुषाण-शासक शापुर की अधीनता को स्वीकार करता था। कालान्तर में उसने पश्चिमी पंजाब तथा काश्मीर को जीतकर अपनी शक्ति बढ़ा ली तथा समुद्रगुप्त की सहायता द्वारा उसने ससैनियन प्रभुता से अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी। पुराणों में चतुर्थ शताब्दी के मध्य में उत्तर-पश्चिम भारतवर्ष में शासन करने वाले एक म्लेच्छ-सम्राट का उल्लेख मिलता है। लगता है कि इससे तात्पर्य किदार कुषाण से है। कतिपय इतिहासकारों का अनुमान है कि प्रयाग के स्तंभलेख में किदार कुषाण को ही दैवपुत्र-शाहिशाहानुशाहि कहा गया है तथा उसने ही उपर्युक्त सम्राट को कन्याओं का उपहार (कन्योपायनदान) चढ़ाया था तथा गरुड़ध्वज से अंकित राजाज्ञा को अपने शासन-क्षेत्र में जारी किया था (गरुत्मदङ्कस्वविषयभुक्तिशासनयाचना)।

पूर्व में अपनी शक्ति को संगठित करने के उपरान्त शापुर द्वितीय ने अपना ध्यान पश्चिम की ओर आकृष्ट किया। उसने केवल बारह हजार सैनिकों के साथ अरबों को परास्त कर दिया था। वहराम द्वितीय एवं नरश के शासनकाल में ईरान को रोम के समक्ष नतमस्तक होना पड़ा था। अतएव अपने साम्राज्य की पश्चिमी सीमा को आतंकरहित बनाने के लिये शापुर द्वितीय ने रोम से प्रतिशोध लेना अनिवार्य समझा। ३३७ ई० में कांस्टैन्टाइन की मृत्यु के पश्चात् रोम-साम्राज्य उसके तीन पुत्रों में विभक्त हो गया—कांस्टैन्टाइन द्वितीय, कांस्टैन्टियस तथा कांस्टैन्स। इनमें कांस्टैन्टियस को रोम-साम्राज्य के पूर्वी प्रान्त उपलब्ध हुये; उदाहरणार्थ थ्रेस, एशिया माइनर, सीरिया, मेसोपोटामिया तथा मिश्र। शापुर द्वितीय का प्रतिद्वन्दी रोम-सम्राट वही था। उसके पहले वहराम द्वितीय के काल में मेसोपोटामिया ससैनियन साम्राज्य से निकल कर रोम-साम्राज्य में सम्मिलित हो चुका था। शापुर मेसोपोटामिया को रोम से छीनना चाहता था। उसका उद्देश्य इस समय रोम के आधिपत्य को फरात नदी के पश्चिम की ओर हटा देना था। इस नदी के तट पर निसिबिस नामक रोम का एक सुदृढ़ दुर्ग था। ३३७ ई० में ससैनियन सेना ने इस पर पूरी तैयारी के साथ आक्रमण कर दिया। इसका नेतृत्व स्वयं शापुर ने किया। इस किले पर ससैनियन सम्राट का घेरा ६३ दिनों तक पड़ा रहा, पर वह इसे तोड़ने में सफलीभूत न हो सका। इसके पाँच वर्ष उपरान्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३४२ ई० में उसने दूसरी बार इस दुर्ग पर घेरा डाला, जो ७८ दिनों तक चलता रहा। इस बार भी ससैनियन सेना असफल सिद्ध हुई। इस असफलता का कारण यह था कि ससैनियन मैदान में लड़ना अच्छी तरह जानते थे, पर पार्थियन लोगों के तुल्य वे भी दुर्ग को तोड़ नहीं सकते थे।

कांस्टैन्टियस के पश्चात् जूलियन सिंहासनारूढ़ हुआ। वह बढ़ता हुआ टेसीफन तक चला आया। प्रत्यक्ष युद्ध लड़कर वह इसे जीतने में सफल नहीं हो सका। अतएव उसने कूटनीति का प्रयोग किया। उसकी आज्ञा के अनुसार तीन गुप्त रास्ते खोद कर तैयार किये गये। वे किले की दीवाल के नीचे से होकर इस नगर के केन्द्रीय भाग में खुलते थे। इन मार्गों के द्वारा रोम-सेना पुर के भीतर प्रवेश पा सकी। इसने नागरिकों के साथ बड़ी क्रूरता का व्यवहार किया। निर्दोष व्यक्ति हजारों की संख्या में काट डाले गये। रोम-सैनिकों ने नगर को अधिक से अधिक ध्वस्त करने की चेष्टा की। शापुर की सन्धि के प्रस्तावों को जूलियन ने ठुकरा दिया। इन असफलताओं के बावजूद भी ससैनियन सम्राट ने धैर्य के साथ कार्य लिया। उसके सुयोग्य सेनानायकों ने भी अपना सक्रिय सहयोग प्रदान किया। इसके पश्चात् भी दोनों सेनाओं में युद्ध चलता रहा। संग्राम-भूमि में एक समय जूलियन किसी पारसीक घुड़सवार के भाले के आघात से घायल हो गया और यह उसके प्राणान्त का कारण सिद्ध हुआ। इसके फलस्वरूप रोम-सेना को वापस लौटना पड़ा। इस समय ससैनियन सैनिकों ने इसे काफी क्षति पहुँचाया। जिस प्रकार नैपोलियन की सेना को रूस से वापस हटते समय मार्ग में विपर्यय का सामना करना पड़ा, उसी प्रकार रोम-सेना को भी अपना संहार देखना पड़ा। इस घटना के उपरांत भी रोम-ससैनियन युद्ध हुये, जिसमें अन्तिम विजय शापुर को उपलब्ध हुई। सन्धि के नियमों के अनुसार मेसोपोटामिया के काफी हिस्से ईरान को लौटा दिये गये तथा ससैनियन सम्राट को आर्मेनिया पुनः प्राप्त हो गया। शापुर द्वितीय ने आर्मेनिया का संगठन एक नये सिरे से किया। यहाँ पर ईसाई धर्म के अनुयायी रहते थे। इनकी सहानुभूति रोम के साथ थी। ये ससैनियन सम्राट को अपना शत्रु मानते थे, अतएव इनके भावी विरोध को अवरुद्ध करना शापुर द्वितीय को नितांत आवश्यक प्रतीत हुआ। यही कारण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है कि उसने आर्मेनिया में कठोर शासन की स्थापना की।

इसमें लवलेश भी संदेह नहीं है कि शापुर द्वितीय शापुर प्रथम की भाँति एक सफल शासक एवं विजेता था। अपने उत्कर्ष-काल के दिनों में उसे अपने वाह्य शत्रुओं के दमन में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। उसने अपने साम्राज्य के विभिन्न भागों में शांति की स्थापना की। इतना होते हुए भी शापुर द्वितीय के शासन-काल के अंतिम भाग में अराजकता का वातावरण फैलने लगा। ईरान के सामंत आंतरिक विद्रोह के बीज बोने लगे। ज़रथुस्त्र धर्म के पुरोहितों ने उनका साथ दिया। उनकी सम्मिलित कृतियों के कारण केन्द्रीय सत्ता क्षीण पड़ने लगी। उन्होंने अंत में चल कर सम्राट को इतना अधिक दबा दिया कि उसे अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करने का अधिकार भी न रह गया। सामंतों तथा पुरोहितों की सहायता से ससैनियन वंश का कोई भी राजकुमार सम्राट-पद के लिये प्रयत्न कर सकता था।

शापुर द्वितीय के उत्तराधिकारी—उसके अनंतर ससैनियन वंश के तीन शासकों ने क्रमशः राज्य किया—(१) अर्देशिर द्वितीय, (२) शापुर तृतीय तथा (३) वहराम चतुर्थ। इन तीनों के शासनकाल में केन्द्रीय शक्ति शिथिल होती गई। सम्राट के अधिकार कम थे। सामंतों ने उनकी दुर्बलता का दुरुपयोग करना प्रारंभ किया। केन्द्रीय सरकार का उनके ऊपर किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं रह गया। आंतरिक दुर्व्यवस्था के अतिरिक्त इनकी वाह्य नीति भी सफल नहीं थी। इनके शासनकाल में ३८९ ई० तक आर्मेनिया का लगभग एक चौथाई भाग ससैनियन साम्राज्य से निकल गया।

यज़्दगर्द प्रथम—वहराम चतुर्थ का उत्तराधिकारी यज़्दगर्द प्रथम भी अदूरदर्शी एवं अयोग्य शासक सिद्ध हुआ। सामंतों तथा पुरोहितों की बढ़ती हुई शक्ति का सामना करने के निमित्त उसने ईसाइयों की सहानुभूति प्राप्त करने की चेष्टा की। अतएव उसके दरबार में उन्हें सम्मान प्रदान किया गया। उसके राज्यकाल में गिरजाघरों की स्थापना की गई तथा ईसाइयों की एक धार्मिक सभा बुलाई गई। उसकी इस धार्मिक नीति को देखकर लोगों ने उसे ईसाई सम्राट कहना प्रारम्भ किया। यज़्दगर्द की इस नीति के कारण ज़रथुस्त्र धर्म के अनुयायी अत्यन्त क्रुद्ध हुये। ऐसी परिस्थिति में उसे अपनी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धार्मिक नीति बदलनी पड़ी। उसने अब ईसाई मतावलंबियों को दबाना प्रारम्भ किया। इतना होते हुए भी यज़्दगर्द को ज़रथुस्त्र मतावलंबियों का सहयोग नहीं प्राप्त हो सका। इस प्रकार उसकी आन्तरिक नीति उसकी अदूरदर्शिता का परिचय देती है। उसकी वैदेशिक नीति भी असफल थी। आर्मेनिया के अशांत वातावरण में वह कोई भी सुधार नहीं कर सका। पूर्व में ईरान के अधिकांश भाग निकल गये।

वहराम पंचम (४२१ ई०-४३८ ई०)—यज़्दगर्द प्रथम की मृत्यु के उपरांत उसके पुत्रों में एक उत्तराधिकार-संबन्धी युद्ध छिड़ा। इसमें वहराम पंचम सफल हुआ। वह यज़्दगर्द की यहूदी पत्नी से उत्पन्न था। उसे प्रारंभ से ही उच्च कोटि की शिक्षा दी गई थी। वह आखेट-प्रेमी था और यही कारण है कि उसका नाम वहराम पड़ा। अपने पिता के शासन-काल में कुछ दिनों तक वह आर्मेनिया का वाइसराय रह चुका था, अतएव राज्याभिषेक के पहले ही उसे अपेक्षित अनुभव प्राप्त हो चुके थे। अपने सिंहासनारोहण के अनन्तर उसने घोषित किया कि उसके शासन का उद्देश्य सार्वजनिक कल्याण है। उसने अपने व्यक्तिगत कोष से राजमार्ग, पुल एवं सरायों का निर्माण किया। अनाथ, असहाय, विधवा, लूले तथा लँगड़ों की सहायता के लिये उसने दानगृह स्थापित किये। वह एक योग्य शासक तथा प्रतिभासंपन्न व्यक्ति था, जिसमें काव्यमर्मज्ञ एव कलानुरागी के समस्त वांछनीय गुण विद्यमान थे। उसने ससैनियन संस्कृति के विकास के निमित्त पर्याप्त चेष्टा की। वह राष्ट्रीय काव्य का महान् संरक्षक था। उसकी गृह-नीति एक दूरदर्शी शासक की नीति थी। वह इस बात को भली भाँति जानता था कि तत्कालीन प्रतिकूल परिस्थितियों में सामन्तों के सहयोग के बिना शासन-संचालन सम्भव नहीं था। अतएव संघर्षात्मक प्रवृत्तियों को दूर करने के निमित्त उसने सामन्तों को मिलाने की चेष्टा की। उसने इन्हें अपेक्षित अधिकारों को प्रदान कर संतुष्ट किया। वैदेशिक नीति में भी उसे सफलता प्राप्त हुई। उसके पूर्ववर्ती नरेशों के शासनकाल में साम्राज्य के कुछ भाग ससैनियन राज्य से निकल चुके थे। साम्राज्य की पूर्वी, पश्चिमी तथा उत्तरी सीमायें सुरक्षित नहीं थीं। यहाँ आक्रमणकारियों का सर्वदा भय बना रहता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था। वहराम पंचम को इस बात का श्रेय प्रदान किया जाता है कि उसने साम्राज्य के विभिन्न भागों को अपनी विजिगीषु नीति एवं संगठन-क्षमता के द्वारा सुरक्षित किया।

उसका समकालीन रोम-सम्राट थिओडोसियस था। उसने ईरानी बन्दियों को मुक्त कराने के अभिप्राय से अपना दूतमंडल इसके पास कांस्टैन्टिनोपुल भेजा, परन्तु उसने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। अतएव इसका बदला लेने के हेतु उसने रोम-साम्राज्य के ऊपर आक्रमण कर दिया। कुछ काल के युद्धोपरान्त दोनों दलों में ४२२ ई० में सन्धि हुई। इसकी शर्तों के अनुसार ईरानी कैदी रोम-सम्राट के द्वारा लौटा दिये गये तथा रोम-साम्राज्य में रहने वाले ज़रस्थुस्ट्र मतावलंबियों को धार्मिक सहिष्णुता प्रदान की गई। धार्मिक नीति के अनुसरण में वह नितांत सहिष्णु था। विशेषतया साम्राज्य के ईसाइयों के साथ उसने किसी प्रकार का भी अत्याचार नहीं होने दिया। इसके परिणामस्वरूप उसे विदेशियों की सहानुभूति प्राप्त हो गई। अतएव यह कहा जा सकता है कि ससैनियन शासकों की तालिका में वहराम पंचम का स्थान विशिष्ट था तथा वह निर्विवादतः एक सफल एवं सुयोग्य शासक था। १९३२ ई० में किश में की गई हुई खुदाइयों में इसके द्वारा निर्मित प्रासाद के अवशेष प्राप्त हुये हैं, जो कि तत्कालीन स्थापत्य पर उपयोगी प्रकाश डालते हैं।

यज़्दगर्द द्वितीय (४३८ ई०-४५९ ई०)—बहराम पंचम का उत्तराधिकारी यज़्दगर्द द्वितीय हुआ। इसके शासनकाल में कोई उल्लेखनीय घटना घटित नहीं हुई। उसका अधिकांश समय आंतरिक संगठन एवं धार्मिक नीति के संचालन में व्यतीत हुआ। वह एक धर्मप्रवण शासक था। उसने ईरान में प्रचलित सभी धर्मों का अध्ययन किया। इसके परिणामस्वरूप वह अपने राज्यकाल के प्रारम्भ में एक धर्म-सहिष्णु सम्राट था। वहराम पंचम की भाँति उसने भी ईसाइयों के प्रति उदार नीति अपनाई। पर कालान्तर में ज़रस्थुस्त्र धर्म के प्रभाव तथा ईसाइयों की वैदेशिक सहानुभूति के कारण यज़्दगर्द को भी अपनी धार्मिक नीति बदलनी पड़ी। वह व्यवहार में इस समय ज़रथुस्त्र धर्म के प्रति अधिक उन्मुख हुआ। उसने आर्मेनिया के ईसाइयों को ईरान के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राष्ट्रीय धर्म को मानने के निमित्त बाध्य किया। फलतः ससैनियन साम्राज्य में ईसाई धर्म की प्रगति अवरुद्ध हो गई। इसका दूरतर परिणाम अच्छा नहीं हुआ। विदेशी जातियाँ, जो अधिकांशतः ईसाई धर्म की अनुयायिनी थीं, साम्राज्य का शत्रु बन गईं। इसके फलस्वरूप साम्राज्य में आंतरिक दुर्व्यवस्थाओं का प्रारम्भ हुआ। यह घटना ससैनियन सम्राट के हित के लिए बाधक सिद्ध हुई।

पिरोज़ (४५६ ई० ४८४ ई०)—यज़्दगर्द द्वितीय के उपरांत ससैनियन राजसिंहासन का उत्तराधिकारी पिरोज़ हुआ। उसके राज्यकाल में ईरान को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। देश के अंतर्भाग में दुर्व्यवस्था तथा दैवी आपत्तियों का वातावरण फैला हुआ था। भयानक एवं दीर्घकालीन दुर्भिक्ष के कारण जनता में हाहाकार मच गया। जलवर्षा के अभाव में कुयें एवं सोते सूख गये। यहाँ तक कि दजला एवं आक्सस नदियों में पानी बहुत कम रह गया। जल-थल के जीव-जन्तु मरने लगे। चतुर्दिक भयंकर दृश्य छा गया। पिरोज़ ने इस कठिन अवसर पर जनता की सहायता के निमित्त भरसक पूरा प्रयास किया। विदेशों से अन्न मँगाया गया। उसने इस बात पर कड़ी दृष्टि रखी कि अनाज के वितरण में किसी प्रकार की बेईमानी न होने पाय। पर इस चेष्टा के बावजूद भी वह प्रकृति के इस भयानक प्रकोप पर विजय नहीं प्राप्त कर सका। इस दुर्दशा का कुप्रभाव राज्य के आर्थिक संगठन के ऊपर भी पड़ा। संत्रस्त एवं पीड़ित जनता से कर नहीं वसूल किये गये, परिणामतः राजकीय कोष बहुत कुछ रिक्त हो चला था। आर्थिक दशा की भाँति धार्मिक स्थिति भी नितांत शोचनीय थी। साम्राज्य के भीतर धार्मिक संघर्ष की प्रवृत्तियाँ सक्रिय थीं। यहूदी तथा ईसाई धर्म का प्रचार बड़ी शीघ्रता के साथ हो रहा था। ईसाई धर्म के अनुयायी इस समय दो शाखाओं में विभक्त हो गये थे—(१) नेस्टोरियन तथा (२) मोनोफिज़िट्स्। नेस्टोरियन ईसा के स्वरूप में दैवी एवं मानवी दो पृथक् प्रकृतियों की कल्पना करते थे, पर मोनोफिज़िट्स् के अनुसार ये दोनों प्रकृतियाँ उनके व्यक्तित्व में एकीभूत हो उठी थीं। यद्यपि पिरोज़ ने ईसाई धर्म के दमन की नीति अपनाई, तथापि उसे अपेक्षित सफलता उपलब्ध न हो सकी। आन्तरिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नीति की भाँति पिरोज़ की बाह्य नीति भी असफल सिद्ध हुई। पूर्व में उसे एफ्थलाइट के साथ युद्ध करना पड़ा। इस युद्ध में वह पराजित हुआ एवं बन्दी बनाया गया। मुक्ति पाने के निमित्त उसे एफ्थलाइटों को प्रभूत मुद्रायें देनी पड़ीं। इस प्रकार साम्राज्य की पूर्वी सीमा को वह सुसंगठित करने में असफल सिद्ध हुआ। साम्राज्य के उत्तरी भाग में उसे निरंतर हूणों का सामना करना पड़ा। फलतः उसे साम्राज्य के पश्चिमी भाग को सुरक्षित रखने तथा रोम-साम्राज्य से संघर्ष लेने के निमित्त अवसर उपलब्ध नहीं हो सका।

कवद—पिरोज़ के उत्तराधिकारी कवद के शासनकाल में ईरान की शक्ति काफी क्षीण हो गई थी। साम्राज्य के सीमा-प्रान्त अरक्षित थे तथा उनका आंतरिक संगठन शिथिल हो गया था। पूर्व में एफ्थलाइटों के आक्रमण का भय ईरान को सर्वदा बना रहता था। इन्हें प्रतिवर्ष ससैनियन सम्राट से एक गहरी रकम कर के रूप में प्राप्त होती थी। ईरान के आंतरिक मामलों में भी ये काफी हस्तक्षेप रखते थे। पश्चिम में रोम तथा उत्तर में हूणों के आक्रमण का भय अभी बना हुआ था। कवद एक ऐसा सम्राट था, जिसे सर्वदा परिस्थितियों का दास बनना पड़ा। उनसे बाध्य होने के कारण उसने जिसका पहले साथ दिया, उसी का उसने कालान्तर में विरोध भी किया। वह निस्संदेह एक सदाशय सम्राट था। निर्धन व्यक्तियों के लाभ के निमित्त उसने औषधालय बनवाये। कई नहरों को निकाल कर उसने सिंचाई की सुव्यवस्था की। वह कर्मठ, विचारशील तथा सैनिक प्रतिभा से सम्पन्न था। उसने कई नगरों की स्थापना की। उसने चीन से प्रेमपूर्ण संबन्ध स्थापित करने के लिये वहाँ अपने राजदूत भेजे थे।

इसके शासनकाल में जनसाधारण ने एक क्रांति की, जिसे मज़दकाइट क्रान्ति की संज्ञा प्रदान की जाती है। इसके जन्मदाता का नाम मज़दक था। वह अपने आपको देवदूत बताता था। उसने भाई चारे की भावना का सन्देश दिया। अतएव जनता ने उसका स्वागत किया। वह सरल जीवन का समर्थक तथा द्वेष, क्रोध एवं तृष्णा के परित्याग का उन्नायक था। उसमें विलक्षण संगठन-शक्ति थी। शीघ्र ही उसके अनुयायियों की संख्या बढ़ गई। कहा जाता है कि कुछ समय तक उससे कवद भी प्रभावित था। उसके समय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में जनसाधारण का जीवन अरक्षित हो चला था। उनका जीवन सामंतों के निर्देश के अनुसार संचालित होता था। उन्होंने अपनी शोचनीय दशा में सुधार लाने के निमित्त प्रयास करना प्रारम्भ किया। उन्होंने सामन्तों के अधिकारों का विरोध किया। इस विरोध ने एक क्रान्ति का स्वरूप धारण किया, जिसे मज़्दकाइट क्रान्ति की संज्ञा प्रदान की जाती है। कवद ने सामन्तों को दबाने के लिये इसे उपयुक्त अवसर समझा। यही कारण है कि इस सामन्त-विरोध में उसने जनता का साथ दिया। इसमें सामन्त शक्तिशाली पड़े। उन्होंने इस जनक्रान्ति का दमन कर कवद को बन्दी बना लिया तथा उसके भाई ज़मस्प को ईरान का शासक घोषित किया। पर एफ्थलाइटों की सहायता से कवद ने पुनः राज्यसिंहासन प्राप्त कर लिया। कहा जाता है कि उसने एफ्थलाइट राजकन्या के साथ अपना विवाह किया, जिसके बदले में उन्होंने उसे खोई हुई गद्दी को प्राप्त करने के लिये तीस हजार चुने हुये घुड़-सवार सैनिकों की मदद की थी। उसने अपनी शक्ति को नये सिरे से संग-ठित करना प्रारम्भ किया तथा मेसोपोटामिया पर आक्रमण कर प्रभूत धन एकत्र किया।

शक्ति के सुदृढ़ होने के उपरान्त कवद ने अपनी नीति बदल दी। इसके पहले उसने सामन्तों के विरुद्ध सर्वसाधारण की सहायता की थी, पर अब वह सामन्तों का पक्ष करने लगा और जनता को दबाने में उसने उनकी पूर्ण सहा-यता की। इसका परिणाम यह हुआ कि मज़्दकाइट क्रान्ति सफल न हो सकी। इसके नेताओं को काट डाला गया तथा इसका समर्थन करने वाली पुस्तकों को जला दिया गया। इस प्रकार सामन्तवाद की नींव दृढ़तर हो उठी। इससे वास्तविक क्षति कवद को ही पहुँची। सामन्त उसे पुनः दबाने लगे। उसकी बाह्य नीति भी दुर्बल थी। एफ्थलाइटों के प्रभाव को वह कम नहीं कर सका। रोम के विरुद्ध भी वह असफल ही रहा। पर वस्तुतः यदि देखा जाय तो कवद तत्कालीन परिस्थितियों के कारण विवश था। उसे अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिये उपयुक्त सुविधायें नहीं प्राप्त हो सकीं। उसने ईरान की सर्वाङ्गीण उन्नति के निमित्त योजनायें बनाई थीं। यदि उसे अनुकूल अवसर मिलता, तो संभवतः वह उन्हें कार्यान्वित कर ईरान की पूर्व-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
कालीन प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करने में सफलीभूत होता । ५३५ ई० में ८२ वर्ष की अवस्था में उसकी मृत्यु हो गई ।

कोसरोज़ प्रथम (५३१ ई०-५७६ ई०)—कवद के पश्चात् उसका पुत्र कोसरोज़ प्रथम सिंहासनारूढ़ हुआ । इतिहास के पृष्ठों में वह खुसरो नौशीरवाँ के नाम से प्रसिद्ध है । उसके राज्यारोहण के पूर्व उसके विरुद्ध षडयंत्र रचा गया, जिसमें राजपरिवार के सदस्य सम्मिलित थे । इसका भेद खुलने पर उसने षडयंत्रकारियों को कटवा डाला । उसका राज्यकाल ससैनियन वंश के इतिहास में एक नवीन युग का सूत्रपात करता है । वह एक शक्तिशाली नरेश था । उसके काल में सम्राट की शक्ति में महती अभिवृद्धि हुई । पूर्व काल में बढ़ी हुई सामन्त-शक्ति को उसने कुचल डाला । ससैनियन साम्राज्य में मज़्द-काइट क्रान्ति की असफलता के कारण एक प्रकार से अराजकता छा गई थी । सामन्तों ने जनसाधारण की स्त्रियों एवं संपत्ति का अपहरण किया था । कोस-रोज़ ने उन्हें जनता को प्रत्यावर्तित कराया । दीन परिवारों के बच्चों की शिक्षा की उसने व्यवस्था की । उसने ग्रामीण उन्नति की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया । गरीबों को नया घर बनाने के लिये आर्थिक सहायता प्रदान की गई । उसने नवीन राजमार्ग तथा पुल आदि का निर्माण कराया । यातायात की इस सुविधा के कारण ग्राम तथा नगर का संबन्ध बढ़ गया । आर्थिक संगठन की दृष्टि से उसने नवीन नियम बनाये । खेतों के प्रकार के अनुसार उसने भूमि-कर निश्चित किया । उसके समय में कर तीन किश्तों में अदा किया जा सकता था । उनकी वसूली में किसी प्रकार का अन्याय नहीं हो सकता था । वह असहाय व्यक्तियों को कर-दान से मुक्त कर देता था । इससे ग्रामीण जनता की आर्थिक दशा में सुधार हुआ तथा राजकीय कोष में वृद्धि हुई ।

इस नरेश ने महत्त्वपूर्ण सैनिक सुधार भी किये । अनावश्यक सैनिक व्यय रोक दिये गये । उसने अपने सैनिकों को दुर्ग जीतने की विधि में प्रवीण किया । इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि ससैनियन सेना इस कला में बड़ी कमज़ोर पड़ती थी । नये अस्त्र शस्त्रों का प्रयोग प्रचलित किया गया । सुरक्षा के उद्देश्य से राजधानी के चतुर्दिक खाईं खोद दी गई । अब तक पूरी सेना का एक ही सेनापति हुआ करता था । पर कोसरोज़ की योजना के अनुसार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सेना को चार प्रादेशिक भागों में विभक्त कर दिया गया। प्रत्येक भाग के लिये पृथक सेनापति की नियुक्ति की गई। नये नियम के अनुसार किसी भी नागरिक से सैनिक सेवा ली जा सकती थी। सीमा-प्रान्तों की सुरक्षा के निमित्त सेना की टुकड़ियाँ नियुक्त की गईं। गुप्तचर विभाग विदेशियों की कृतियों का निरीक्षण करता था। कोसरोज़ के ये सुधार उसकी दूरदर्शिता का परिचय देते हैं। सैन्यसंगठन के उपरांत उसने बाहरी शक्तियों से निपटना प्रारम्भ किया। ५४० ई० में उसने सीरिया पर विजय प्राप्त किया। इस अभियान में उसे प्रचुर धन प्राप्त हुआ। इसके उपरांत उसने साम्राज्य की पूर्वी सीमा को सुसंगठित किया। अभी तक एफ्थलाइट ईरान के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करते चले आ रहे थे। उन्हें ईरान से प्रतिवर्ष कर मिलता था। कोसरोज़ ने इसे बंद कर दिया तथा पश्चिमी तुर्कों की सहायता से उन्हें परास्त किया। उसने साम्राज्य की उत्तरी सीमा की हूण-आक्रमण से रक्षा की। इसके समय में ईरान के आंतरिक मामलों में कोई भी बाह्य हस्तक्षेप नहीं रह गया। उसके इन कार्यों के फलस्वरूप ईरान की प्रतिष्ठा में महती अभिवृद्धि हुई। साम्राज्य की आंतरिक शांति के लिये वह सर्वदा कटिबद्ध रहता था। देश के गौरव एवं शांतिमय वातावरण के कारण ईरानी कला, विज्ञान एवं साहित्य का विकास हुआ। इस दृष्टि से कोसरोज़ का शासनकाल अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है।

वह न्यायप्रिय शासक था। उसने साम्राज्य के प्रत्येक भाग में गुप्तचरों की नियुक्ति की, जिनका कार्य जनता के दुख तथा राजपुरुषों के अत्याचारों को उसे सूचित करना था। वह प्रजा की दशा के विषय में व्यक्तिगत ज्ञान प्राप्त करने के लिये प्रान्तों में दौड़ा करता था। यदि यह सिद्ध हो जाता था कि किसी कर्मचारी ने नागरिक के साथ क्रूरता एवं कठोर अत्याचार किया है, तो वह इस प्रकार के अपराध में उसे कभी-कभी प्राणदण्ड तक देता था। उसने शान्ति-स्थापना के निमित्त भी प्रयास किया था। ईरान में कहावत प्रचलित थी कि उसके राज्य में बाघ और बकरी एक ही घाट पानी पीते थे तथा लोग बेखटके सुख की नींद सोते थे। उसकी एक आज्ञा के अनुसार न्याय एवं प्रेम ईश्वरीय सन्देश हैं। न्याय ही सम्राट का कोष है तथा जनता उसकी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सन्तान है। उसकी सुरक्षा की व्यवस्था ही राजा का वास्तविक धर्म है। अशोक की भाँति उसने भी घोषित किया था कि वह शयनगृह, राजसभा तथा भोजनशाला अथवा जहाँ कहीं भी हो, जनता की शिकायत उसके पास फौरन पहुँचाई जाय।

उसने शिक्षा-प्रसार की दिशा में भी कार्य किया। दीन परिवारों के बच्चों की पढ़ाई का खर्च राज्य की ओर से मिलने लगा। विज्ञान की शिक्षा को भी उसने प्रोत्साहित किया। कहा जाता है कि वह दर्शन-शास्त्र से भी प्रेम रखता था। उसने प्लेटो एवं अरस्तू की कृतियों को पढ़ा था। उसकी आज्ञा के अनुसार ईरानी भाषा में इनका अनुवाद तैयार किया गया। भारतीय ग्रन्थों का भी अनुवाद उस समय प्रस्तुत हुआ था। ५२९ ई० में जस्टिनियन के अत्याचारों से ऊब कर निओ-प्लेटोनिस्ट भाग कर ईरान आये। उसने उन्हें संरक्षण प्रदान किया। इनके ग्रन्थों का उसने पहलवी भाषा में अनुवाद कराया। उसका प्रतिनिधि भारतवर्ष से पंचतंत्र की एक प्रतिलिपि ले आया था, जिसका पहलवी रूपान्तर प्रस्तुत किया गया। उसकी राजनीतिक एवं सांस्कृतिक उपलब्धियाँ उसकी उपाधियों को चरितार्थ करती थीं।

होरमिज़्द चतुर्थ (५७० ई०-५९० ई०)—कोसरोज़ प्रथम के अनंतर उसके उत्तराधिकारी होरमिज़्द चतुर्थ के समय तक ईरान की आर्थिक स्थिति में काफी परिवर्तन आ चुका था। इस समय सामन्तों एवं पुरोहितों ने अपने प्रभाव को बढ़ाना प्रारम्भ किया। इसमें लवलेश भी संदेह नहीं कि होरमिज़्द चतुर्थ एक मेधावी तथा नीतिनिपुण शासक था। अपने पिता की भाँति वह भी अपने साम्राज्य को दृढ़ शासन में बद्ध करना चाहता था पर तत्कालीन परिस्थितियाँ इतनी प्रतिकूल थीं कि होरमिज़्द चतुर्थ को इस कार्य में सफलता नहीं प्राप्त हो सकी तथा सामन्तों एवं पुरोहितों का प्रभाव विकासोन्मुखी होने लगा। ऐसी दशा में उसने ईसाइयों को मिलाना चाहा। इसका परिणाम यह हुआ कि ज़रथुस्त्र धर्म के पुरोहित होरमिज़्द चतुर्थ के कट्टर विरोधी बन गये तथा साम्राज्य की आंतरिक दशा दिन प्रति दिन गिरती गई।

बहराम कोबिन का विद्रोह—वह ससैनियन सेना का नायक था। वह एक सुयोग्य एवं महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति था। ईरान के उत्तरी भाग में उसने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हूण-सेना को बुरी भाँति पराजित किया था। पूर्व में उसने तुर्कों को भी परास्त किया। पर दुर्भाग्यवश उसे बैजंटाइन सेना के विरुद्ध सफलता नहीं प्राप्त हो सकी। इस पर क्रुद्ध होकर होरमिज़्द चतुर्थ ने उसे अपमानित कर दिया। वहराम कोविन अपने सैनिकों में बहुत ही प्रभाव रखता था तथा एक महत्त्वाकांक्षी प्रकृति का व्यक्ति था। उसने सामन्तों एवं अपने अनुयायियों की सहायता से होरमिज़्द चतुर्थ पर आक्रमण कर उसे बंदी बना लिया। अपने पराजय के फलस्वरूप यह नरेश सिंहासनच्युत किया गया।

कोसरोज़ द्वितीय (५९० ई०-६२८ ई०)—इस घटना के अनन्तर सामन्तों ने कोसरोज़ द्वितीय को शासक बनाया। यह होरमिज़्द चतुर्थ का पुत्र था। इतिहास के पृष्ठों में वह खुसरो परवीज़ के नाम से भी प्रसिद्ध है। पर सेनापति वहराम कोविन को सामन्तों का यह निर्णय मान्य नहीं था। वह स्वयं शासक बनना चाहता था। उसके पास बलवती एवं सुसंगठित सेना विद्यमान थी। अतएव सामन्त उसका विरोध नहीं कर सके। ऐसी परिस्थिति में बाध्य होकर कोसरोज़ द्वितीय ने बैज़ंटाइन शासक मारिस की शरण ली। इसकी सहायता से वह वहराम चतुर्थ को दबाने में सफलीभूत हुआ। इस बार राज्य की बागडोर पाने पर उसने अपने पिता होरमिज़्द को जो अब भी टेसीफन के बन्दीगृह में दयनीय परिस्थितियों में पड़ा था, मुक्त कर दिया। ईरानी लेखकों का कहना है कि कारागार में उसे कठिन यातनायें सहनी पड़ी थीं। उसके विरोधियों ने उसकी दोनों आँखें निकलवा दी थीं। उसने इस समय अपने पिता के शत्रुओं को कठोर दंड दिया। कोसरोज़ द्वितीय विजिगीषु प्रकृति का शासक था। बैज़ंटाइन नरेश के साथ उसकी मित्रता राजनीतिक एवं अल्पकालीन थी। मारिस की मृत्यु के अनन्तर उसने बैज़ंटाइन राज्य पर आक्रमण कर दिया। इसमें उसे विपुल धन की प्राप्ति हुई। इसके पहले उसे मारिस को उसकी सहायता के उपलक्ष में कुछ भाग देने पड़े थे। कोसरोज़ ने इन्हें छीन कर ससैनियन साम्राज्य में सम्मिलत कर लिया। उसने चालुक्य-नरेश पुल्केशिन् द्वितीय के दरबार में अपना एक राजदूत भेजा था। अजन्ता की एक चित्रकारी में इस घटना का चित्रण हुआ है। बैज़न्टाइन साम्राज्य के विरुद्ध उसकी सफलता अधिक दिनों तक स्थिर न रह सकी। नवीन शासक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हेराक्लियस ने बैज़ंटाइन शक्ति को संगठित करना प्रारम्भ किया। उसने कई स्थानों को जीत कर राज्य-सीमा बढ़ा ली तथा ईरान पर भी आक्रमण किया। उसने कोसरोज़ की नवीन राजधानी दस्तगर्द को जीत लिया। उसे यहाँ लूट में प्रभूत धन उपलब्ध हुआ। कोसरोज़ ने अपनी इस पराजय से कुपित होकर अपने सैनिक पदाधिकारियों को कठोर दंड दिया। इससे उसके विरुद्ध असन्तोष का वातावरण उत्पन्न होने लगा। कोसरोज़ ने इसी समय अपनी परम सुन्दरी ईसाई भार्या शिरीन से उत्पन्न पुत्र को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया। इससे उसके प्रति विरोध की भावना पराकाष्ठा पर पहुँच गई। इस अवसर पर कुलीनों एवं सामन्तों ने उसके विरुद्ध एक षडयंत्र रचा। वे इसे हटा कर उसके ज्येष्ठ पुत्र सिरोज़ को सिंहासनारूढ़ करना चाहते थे। षडयंत्रकारी अपने उद्देश्य में सफल हुये। उन्होंने कोसरोज़ को पकड़कर बन्दी-गृह में डाल दिया और कुछ ही दिनों पश्चात् उसे मार डाला। इस प्रकार इस सम्राट के ३८ वर्षीय शासन का दुखद अन्त ६२८ ई० में हुआ।

ससैनियन राजवंश का अधःपतन—कोसरोज़ द्वितीय के अनन्तर ससैनियन राजवंश के अधःपतन का सूत्रपात्र हुआ। इस समय ससैनियन शासन-संगठन में अनेक दोष आ गये थे। एक सबल एवं सुयोग्य शासक ही इन्हें दूर कर सकता था। कोसरोज़ द्वितीय के अनुवर्ती शासक निर्बल तथा अयोग्य थे। इनमें वह क्षमता नहीं थी, जो तत्कालीन परिस्थितियों में सुधार के लिये अपेक्षित थी। शासकों की अयोग्यता ने सामन्तों एवं सेनापतियों को अपनी स्वतन्त्रता घोषित करने के लिये प्रेरित किया। ईरान का सिंहासन इनके हाथ का खिलौना मात्र रह गया था। अपनी इच्छा के अनुसार ये शासकों को राज्याभिषिक्त अथवा राज्यच्युत कर सकते थे। ससैनियन शासक के राज्याभिषेक का अर्थ था कालान्तर में सामन्तों के द्वारा उसका वध। इसका परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे राजकुल के सभी सदस्य समाप्त हो गये। इस वंश का अन्तिम शासक यज़्दगर्द तृतीय था। सामन्तों ने इसे ६३२ ई० में सिंहासन प्रदान किया था। पर वह एक अयोग्य सम्राट सिद्ध हुआ। ऐसी दशा में अरबों ने ईरान पर आक्रमण कर दिया। यज़्दगर्द ने उनका सामना करने के लिये विशाल सेना एकत्र की। इसकी सहायता से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसने उनके आक्रमण की बाढ़ को रोकना चाहा, पर वह इस कार्य में असमर्थ सिद्ध हुआ। पराजय के उपरांत ६५१ ई० में उसका वध हुआ तथा इसके साथ ससैनियन राजवंश का शासन समाप्त हो गया।

ससैनियन सभ्यता एवं संस्कृति

धर्म—मज्द धर्म—यह ईरान का पुरातन राष्ट्रीय धर्म था। ससैनियन-काल में यह अधिक पनपने लगा। विदेशी धर्मों के विरोध के आवश्यकता ने इसके अभ्युदय में सहायता पहुँचाई। कुछ ससैनियन सम्राटों (विशेष रूप से अर्देशिर प्रथम) ने इसे प्रोत्साहन प्रदान किया। वे ज़ेंद-अवेस्ता को ज्ञान का सार मानते थे। शापुर द्वितीय की आज्ञा के द्वारा एक पूजा-संग्रह (खोर्द अवेस्ता) तैयार किया गया जिसमें अवेस्ता की वन्दनायें उद्धृत थीं। इस मत के अनुयायी क्षिति, जल, पावक और समीर को पवित्र मानते थे। उनके अनुसार ये सृष्टि-रचना के चार तत्व हैं और फलतः श्रद्धेय हैं। वे स्वर्ग एवं नरक तथा कर्मवाद और आत्मा की अमरता में विश्वास करते थे। मज़्द मतालवम्बी इस समय अहुरमज़्द को ओरमज़्द कहने लगे। वह विश्व का स्रष्टा, संचालक, पोषक तथा नियामक माना गया। उनके अनुसार विश्व में अच्छी तथा बुरी वस्तुयें दिखाई देती हैं; उदाहरणार्थ सज्जनता एवं दुष्टता, दया एवं क्रूरता, सुख एवं दुख, हास्य एवं रुदन, जन्म तथा मृत्यु, हरियाली तथा मरुस्थल। ये अच्छी तथा बुरी वस्तुयें विश्व की मानों दो विरोधी शक्तियाँ हैं। इन दोनों के पृथक देवता हैं। ओरमज़्द एवं अहरीमान क्रमशः अच्छी और बुरी शक्तियों के प्रतिनिधि हैं। ओरमज़्द प्रकाश, सद, संकल्प, सत्य, अधीश्वरत्व, दया, कल्याण तथा अमरत्व का स्वामी है; पर इसके विपरीत अहरीमान अन्धकार, अपराध तथा पापादि का स्वामी है। इन दोनों देवताओं में प्रभुता के लिये संघर्ष चलता है, जिसमें अन्तिम विजय ओरमज़्द की होती है। शारीरिक विकार एवं कुष्ठ आदि का संबन्ध अहरीमान से है। वे सदाचार, सत्य एवं शौर्य को महत्त्व प्रदान करते थे। उनके अनुसार बचन से हटने का दंड कम से कम तीन सौ कोड़े थे। अपराधियों से सार्वजनिक कार्य लेकर उन्हें दोषमुक्त घोषित किया जा सकता है। उनके अनुसार यदि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्राट सुचारु रूप से शासन करने में असफल सिद्ध हो, तो उसे राज्यच्युत करना पाप नहीं है।

अनहित की पूजा—ससैनियन काल के धार्मिक विश्वासों में अनहित की पूजा उल्लेखनीय है। इस समय जल-पूजा में लोगों की विशेष आस्था उत्पन्न हुई। अनहित जल का प्रतिनिधित्व करता था। ससैनियन सम्राटों ने जल-पूजा को विशेष प्रोत्साहन प्रदान किया। इन नरेशों में ससैन, पपैक तथा अर्देशिर विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पपैक ने इस देवता के एक मन्दिर का निर्माण स्तख में किया था। कालान्तर में शापुर प्रथम ने विशपुर नामक नगर में इस देवता के सम्मान में एक मन्दिर की स्थापना की थी। विशपुर के मन्दिर की विशेषता यह है कि इसके चतुर्दिक एक जल की खाई है। यह अनहित की पूजा के साथ जल-पूजा के विशेष संबन्ध का परिचायक है।

पुरोहित-प्रभाव—ससैनियनकाल में धर्म के क्षेत्र में पुरोहित-प्रभाव बढ़ने लगा। उत्तरपूर्व ईरान की जनता पुरोहितों का विशेष सम्मान करती थी। अनहित-पूजा में पुरोहितों की आवश्यकता पड़ती थी। अनहित-मन्दिरों में राज्य की ओर से पुरोहित वर्ग नियुक्त किया जाता था। पुरोहितों के कारण धार्मिक आडंबर बढ़ने लगे। कर्मकाण्ड एवं अनुष्ठान का प्रचार विकासोन्मुख होने लगा। शिज़ के मन्दिर में धार्मिक क्रियायें पुरोहितों की सहायता से प्राचीन परम्पराओं के आधार पर की जाने लगीं। पुरोहित राज-नीति में भी भाग लेते थे। वे चिकित्सा के क्षेत्र में भी हस्तक्षेप करने की चेष्टा करते थे। उनके अनुसार रोग का निदान झाड़फूँक एवं जड़ी-बूटियों के द्वारा संभव है। ईश्वरीय प्रेरणा के द्वारा प्रत्येक रोग के उपचार के लिये बूटियाँ उपलब्ध हैं। वे इनका व्यावहारिक प्रयोग करते थे तथा रूढ़िवादियों का इनमें विश्वास भी था। वे कहते थे कि स्वास्थ्य-विकार का संबन्ध मनुष्य के पापों से है तथा वे अपने मन्त्र-बल के द्वारा उनसे मुक्ति दिला सकते हैं। अन्धविश्वासियों से वे काफी द्रव्य चूसते थे।

राजकीय धर्म की आवश्यकता—शापुर प्रथम के राज्यकाल तक ससैनियन साम्राज्य की पर्याप्त सीमावृद्धि हो चुकी थी। उसे एक ऐसे धर्म की आवश्यकता प्रतीत हुई, जो साम्राज्य को एकता के सूत्र में दृढ़बद्ध कर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सके। तत्कालीन प्रचलित ईरानी धर्म इस आवश्यकता की विशेष पूर्ति नहीं कर सकते थे, अतएव शापुर ने मनीच धर्म का स्वागत किया। उसे ऐसा आभास हुआ कि इसके द्वारा इस लक्ष्य की उपलब्धि संभव हो सकेगी। इस धर्म का प्रवर्तक मनी (२१६ ई०-२७४ ई०) नामक व्यक्ति था। उसका जन्म बैबीलोनिया में स्थित टेसीफन नामक नामक स्थान में २१६ ई० में हुआ था। शापुर ने अपनी धार्मिक नीति के संबन्ध में इसे अपना पर्यवेक्षक नियुक्त किया।

मनीच धर्म की विशेषतायें—वह अपने आपको तत्कालीन युग की धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के निमित्त ईश्वर के द्वारा प्रेषित मानता था। विश्व के धार्मिक इतिहास में कतिपय इतिहासकारों ने इसकी गणना ज़रथुस्त्र, बुद्ध तथा ईसा समीह की समकक्षता में की है। वह स्वभाव से सहिष्णु था। उसके अनुसार प्रायः सभी धर्मों में विशेषतायें होती हैं। उसमें प्रचार-संलग्नता भी विशेष थी। कहा जाता है कि वह भारतवर्ष तथा चीन भी आया था। उसने ईसा मसीह की भाँति एक ऐसे व्यापक धर्म की शिक्षा दी, जिसका अनुसरण सभी जातियाँ कर सकती थीं। उसके सिद्धान्त बौद्ध धर्म तथा ईसाई धर्म के द्वारा प्रभावित थे। उसने शाबूरकान (शापुरखन) नामक ग्रन्थ में गौतमबुद्ध को ईश्वर का दूत कहा है। लेग्गे तथा ईलियट ने एक ऐसे मनीच-ग्रन्थ का उल्लेख किया है, जो बौद्ध सूत्र की शैली में लिखा गया है। इसमें मनीच को तथागत कहा गया है। इस पुस्तक में बुद्ध तथा बोधिसत्वों का भी उल्लेख मिलता है। इस धर्म के अनुसार सृष्टि-निर्माण के दो प्रमुख तत्व हैं—(१) सत् तथा (२) असत्। विश्व वास्तव में इन्हीं दो तत्वों के सम्मिश्रण का परिणाम है। सत् प्रकाश का द्योतक है तथा असत् अंधकार का। मनुष्य की आत्मा प्रकाशमय है पर शरीर अंधकारमय। इस धर्म में मोक्ष के सिद्धान्त का भी प्रतिपादन मिलता है। आत्मा का शरीर से मुक्त होना मोक्ष-प्राप्ति का द्योतक है। इस धर्म के अनुसार आत्मा अमर है। इसका अस्तित्व सृष्टि के प्रलय के उपरांत भी बना रहता है। यह धर्म आचारवादी था। इसके अनुसार मदिरा एवं मांस का परित्याग तथा आचरण की पवित्रता अनिवार्य थी। ईर्ष्या, तृष्णा, शत्रुता तथा लौकिक उपलब्धियों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की अनावश्यक स्पृहा अधिकाधिक त्याज्य है।

मनीच धर्म के अनुयायी—इस धर्म के अनुयायी दो वर्गों में विभक्त थे—(१) एलेक्ट तथा (२) हियरर्स। प्रथम वर्ग को नैतिकता के कठोर सिद्धान्तों का पालन करना पड़ता था। उनके लिये विवाह एवं संभोग वर्जित था। अहिंसा के वे घोर पुजारी थे। यहाँ तक कि वे फल, फूल और अन्न की बाल को भी नहीं तोड़ते थे। भोजन करते समय वे प्रार्थना करते थे—"मैंने इस अन्न को न तो काटा और न पीसा ही है। यह कार्य दूसरे के द्वारा किया गया है। मैं दोषमुक्त हूँ।" जल का प्रयोग वे केवल पीने के ही समय करते थे, न कि स्नान के अवसर पर। वे अपने पास भोजन और वस्त्र केवल उतना ही रखते थे, जितने से उनका गुजारामात्र किसी तरह हो सके। वे मदिरा मांस से परहेज रखते थे। हर तरह से पवित्र जीवन बिताना उनका कर्त्तव्य था। इस वर्ग में पुजारी आते थे।

दूसरे वर्ग में गृहस्थ आते थे। उन्हें अहिंसा का पालन उतनी कड़ाई के साथ नहीं करना पड़ता था। इनके लिये दिन में चार बार पूजा अनिवार्य थी। प्रत्येक महीने में सात दिन इन्हें उपवास तथा व्रत आदि रखना पड़ता था। वे अपनी आमदनी का दसवाँ भाग एलेक्ट वर्ग को प्रदान करते थे। सदाचार एवं संयम का पालन करना तथा दान देना भी इनका कर्तव्य था। प्रतिमा की पूजा तथा पशु-हत्या दोनों के लिये निषिद्ध थी। एलेक्ट तथा हियरर्स वर्ग की तुलना जैन धर्म एवं बौद्ध धर्म के श्रमण तथा श्रावक के साथ क्रमशः की जा सकती है। इस धर्म का प्रचार मध्य एशिया में हुआ था। इस धर्म से संबन्धित लेख पूर्वी तुर्किस्तान से उपलब्ध हुये हैं। भूमध्यसागरीय देशों में इसका विस्तार चतुर्थ शताब्दी में विशेष रूप से संपन्न हुआ था।

मनीच धर्म का अधःपतन—यहाँ पर उल्लेखनीय है कि शापुर की मृत्यु के अनन्तर मनीच्च धर्म का अधःपतन प्रारम्भ हुआ। इसका कारण यह है कि उसके उत्तराधिकारियों के काल में इसे प्रोत्साहन नहीं प्राप्त हो सका था। उन्होंने मज़्द-धर्म का संरक्षण किया। मज़्द धर्म के पुरोहित मनीच धर्म के घोर विरोधी थे। उन्होंने इसके विकास को रोकने के निमित्त पर्याप्त चेष्टा की। इस समय ईरान के चतुर्दिक वैदेशिक धर्म तीव्रता के साथ प्रसरित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो रहे थे। पूर्व में बौद्ध धर्म का विकास हो रहा था। कुषाण शासक कनिष्क ने इसे राजधर्म बनाया तथा इसके विकास के लिये विविध चेष्टायें कीं। मेसोपोटामिया में ईसाई धर्म का प्रसार हो रहा था। इन धर्मों की अग्रसरता मनीच धर्म के लिये घातक सिद्ध हुई। शापुर प्रथम की मृत्यु के अनन्तर मनी के ऊपर अभियोग चलाकर उसे प्राणदण्ड दिया गया। उसके अनुयायी ईरान में अपने जीवन को अरक्षित पाकर मिश्र एवं सीरिया आदि देशों में हट आये। नरश के शासनकाल में पुनः मनीच धर्म को राजकीय संरक्षण उपलब्ध हुआ। इसका कारण यह था कि पूर्वकालीन यातनाओं से ऊब कर इस धर्म के अनुयायी ईरान के पश्चिमी देशों में बस गये थे। नरश ने रोम के विरुद्ध इनकी सहानुभूति को जीतने के लिये मनीच धर्म को राजधर्म बना लिया। पर इसके अनन्तर ससैनियन सम्राटों ने पुनः इस धर्म के प्रति दमन-नीति अपनाई। उन्होंने मज़्द-धर्म को प्रोत्साहित किया। इस राजकीय दृष्टिकोण के कारण ससैनियन साम्राज्य के भीतर मनीच धर्म को काफी धक्का पहुँचा।

मज्दक-धर्म—इस धर्म का जन्मदाता मज़्दक (४८० ई०-५२८ ई०) था। इसका उद्गम ईरानी तथा पूर्वी विचारों के संपर्क के फलस्वरूप हुआ था। मज़्दक ने मनुष्यों के बीच कृत्रिम भेदभाव के दूरीकरण तथा भाई चारे की भावना का सन्देश दिया। लोगों का ऐसा अनुमान है कि एकता के इस सिद्धान्त का आविर्भाव हेलेनिस्टक दार्शनिकों के विचार अथवा ईसाई धर्म के प्रभाव के फलस्वरूप हुआ। मनी तथा मज़्दक के सिद्धान्तों में वैषम्य था। मनी के अनुसार व्यक्ति का शुद्धीकरण वांछनीय है, पर मज़्दक के अनुसार सामाजिक व्यवस्था की शुद्धि अधिक अनिवार्य है। जिस व्यक्ति को उसकी योग्यता के अनुसार परिस्थितियाँ नहीं मिलतीं, उसके अन्दर स्वाभाविक रूप से दुर्गुण आने लगते हैं। वह ईर्ष्या, घृणा, प्रतिशोध एवं लोलुपता आदि दुर्गुणों को जाग्रत कर लेता है और फलतः उसकी गणना बुरे नागरिक के रूप में होने लगती है। पर वास्तविकता यह है कि इसमें उसका कोई अपराध नहीं है। ईश्वर ने साधनों का सृजन सभी व्यक्तियों के लिये किया है, पर वे सबको नहीं उपलब्ध होते। यह राजनीतिक एवं सामाजिक संगठन का सबसे बड़ा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दोष है। वह अपने अन्य विचारों की दृष्टि से भी साम्यवादी था। उसके अनुसार संपत्ति और यहाँ तक भार्या में भी साझेदारी होनी चाहिये।

मनुष्य का कर्तव्य एक दूसरे की सहायता करना है। अतिथि-सेवा धर्म है। नागरिक अपने व्यवहारों के द्वारा दूसरे को पीड़ा न पहुँचायँ। उसके अनुसार जीव-हत्या पाप है। शत्रु को दया दिखानी चाहिये। पहले इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि उसके इन विचारों के फलस्वरूप मज़्दकाइट क्रान्ति का जन्म हुआ। कुलीन जनसाधारण को चूसते थे। कवद के काल में जब भयंकर अकाल पड़ा था, उस समय भी कुलीन जनता को कर-वसूली में दबाने लगे। इस परिस्थिति में मज़्दक के विचार लोगों को अच्छे लगे। उसने यह सन्देश दिया कि इस अवसर पर विद्रोह धर्म की माँग थी। अतएव जनसाधारण की जो क्रान्ति हुई, उसे मज़्दकाइट क्रान्ति की संज्ञा दी गई। यह विद्रोह पहले कुलीनों के विरुद्ध हुआ। मज़्द-धर्म के पुजारियों ने इस समय इनका साथ दिया। इसके पहले उन्होंने कवद को काफी दबा रखा था, अतएव उसने उनके विरुद्ध मज़्दकाइट का साथ दिया। इस पर क्रुद्ध होकर उन्होंने राजकुल एवं मज़्द-धर्म के पुजारियों की सहायता से ४९८ ई० में कवद के विरुद्ध एक षडयंत्र का आयोजन किया, जिसके द्वारा वह सिंहासनच्युत कर दिया गया। कुछ ही काल पश्चात् (५०१ ई० में) उसने एफ्थलाइटों की सहायता से खोई हुई गद्दी प्राप्त कर ली। इस बार उसने मज़्दकाइट के प्रति अपनी नीति बदल दी। उसने इनके नायकों को पकड़ना और कठोर दण्ड देना प्रारम्भ किया। उनका साहित्य जला दिया गया। इस नीति के कारण मज़्दमतावलंबी अब कवद के पक्ष में आ गये तथा इस धर्म के पुजारियों का प्रभाव राजनीति में पुनः बल पकड़ने लगा।

सामाजिक सङ्गठन—ससैनियन समाज वर्ग-विभाजन के सिद्धान्त पर अवलंबित था। यहाँ के वर्गगत भेद में घोर जटिलता थी। एक वर्ग के सदस्य का दूसरे वर्ग में स्थानांतरित होना संभव नहीं था।[१] सम्राट समाज का सबसे पूजनीय व्यक्ति हुआ करता था। संपूर्ण समाज का कार्य-संचालन

१. "It was a rigid pyramid in which it was practically impossible to pass out of one class in to another"—Chirshman.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसी के निर्देश से होता था। उसे लोग राजाधिराज मानते थे। राजकुल के विशिष्ट सदस्यों में युवराज एवं राजकुमार विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। युवराज को शासन-संबन्धी उच्च शिक्षा दी जाती थी। वह राजधानी में सम्राट के पास रहता था तथा शासन के विषयों में उसे सहायता पहुँचाता था। राजकुमार प्रायः विभिन्न प्रान्तों के राज्यपाल नियुक्त किये जाते थे। ससैनियन सम्राट का प्रभाव-क्षेत्र व्यापक हुआ करता था। उसकी अधीनस्थता में विजित प्रदेशों के कुछ ऐसे शासक भी आते थे, जिनसे अपने द्वारा शासित भूमिखण्ड में उचित प्रबंध की आशा की जाती थी। वे प्रति वर्ष एक निश्चित धन सम्राट को दिया करते थे। युद्ध के अवसर पर उनसे साम्राज्य-रक्षा के निमित्त सैनिक सहायता की आशा की जाती थी।

राजकुल के उपरांत समाज में द्वितीय स्थान सामंतों का हुआ करता था। ईरान में सामन्तशाही प्रथा सालामनीष सम्राटों के काल से ही चली आ रही थी। यह प्रथा पार्थियन काल में भी प्रचलित थी। ससैनियन काल में सामन्तों का विशेष प्रभाव था। उनकी बढ़ती हुई शक्ति को इस वंश के केवल कुछ ही सम्राट कुचलने में सफलीभूत हुये थे। सम्राट को निर्बल पाकर सामन्त अपनी शक्ति को पुनः बढ़ा लेते थे तथा ससैनियन राजनीति को अपनी इच्छा के अनुसार संचालित करने की चेष्टा करते थे। एक समय उनका प्रभाव यहाँ तक बढ़ गया कि वे ससैनियन सम्राट को राज्याभिषिक्त एवं पदच्युत करने लगे। वस्तुतः सामन्तों की शक्ति का विकास इस राजवंश के अधःपतन का एक प्रधान कारण सिद्ध हुआ था। समाज में सामन्त अपना पर्याप्त प्रभाव रखते थे। उन्हें किसानों से काफी कर मिलता था। युद्ध के अवसर पर अधीनस्थ राजाओं की भाँति ये लोग भी साम्राज्य को सैनिक सहायता पहुँचाते थे। वे अपने रक्त को पवित्र मानते थे। उनकी वंश-परंपरा राजकीय लेखों में उल्लिखित रहती थी। वे अपनी महत्ता प्रासाद एवं हरम की विशालता, परिचारकों एवं अस्त्र-शस्त्र की बहुसंख्या तथा सैनिक बल के आधार पर प्रतिपादित करते थे। सामन्त वर्ग को तत्कालीन विशेषाधिकार-युक्त वर्ग माना जा सकता है।

सामन्तों के नीचे राजकर्मचारियों का वर्ग आता था। इसमें राज्य के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उच्च पदाधिकारी सम्मिलित थे। सम्राट साम्राज्य के शासन का वास्तविक कार्य इन्हीं के द्वारा संपन्न करता था। राज्य की ओर से इन्हें पर्याप्त अधिकार प्राप्त थे। समाज में इनका भी विशेष सम्मान था। सामंतों के विरुद्ध सम्राट इनकी सहायता पर निर्भर रहता था।

समाज के निम्न भाग में जनसाधारण वर्ग सम्मिलित था। इसमें कृषक तथा श्रमिक आदि आते थे। ये ग्रामीण जनसंख्या के प्रतिनिधि हुआ करते थे। इनकी दशा शोचनीय थी। उदाहरणार्थ किसानों का जीवन सामंतों एवं कर्मचारियों की अनुकम्पा पर निर्भर हुआ करता था। प्रत्येक ग्राम का एक अध्यक्ष होता था। ग्रामाध्यक्ष कर वसूल कर राजकर्मचारियों के माध्यम से उसे राजकीय कोष में पहुँचाता था। वे इस प्रकार किसान एवं राजकर्मचारियों के बीच संयोजक का कार्य करते थे। लगता है कि अर्देशिर प्रथम की राजकीय घोषणा (न्याय के बिना कृषि असंभव है) अधिक व्यावहारिक रूप में कार्यान्वित नहीं हो सकी थी। अन्यथा कृषकों की स्थिति इतनी बुरी न होती। उनसे बेगार तथा सैनिक सेवा ली जा सकती थी। शोषण एवं निर्दयता के वे दयनीय शिकार थे। वे एक तरह से रियासतों के मालिक के व्यक्तिगत दास थे। ग्राम एवं नगर में रहने वाले श्रमिकों के साथ कठोर व्यवहार किया जाता था। इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि इन अत्याचारों के विरुद्ध कृषकों ने क्रान्ति (मज़्दकाइट क्रान्ति) की थी जो सफल न हो सकी थी। कतिपय ससैनियन शासकों ने कृषकों की दशा में सुधार लाने की चेष्टा की थी, पर वे इस क्रिया में सफलीभूत नहीं सिद्ध हुये।

आर्थिक दशा

कृषि—ससैनियन आर्थिक संगठन कृषिमूलक था। राजकीय आय का प्रधान साधन खेती थी। अतएव ससैनियन नरेशों ने इसके विकास पर विशेष ध्यान दिया था। तत्कालीन साधनों से ज्ञात होता है कि उन्होंने ग्रामीण सुरक्षा तथा कृषि की उन्नति के निमित्त सभी अपेक्षित साधनों की व्यवस्था की थी। उदाहरणार्थ इनके काल में नहरों का निर्माण किया गया। कुछ ससै-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नियन नरेश कृषि के विकास में काफी अभिरुचि रखते थे। अर्देशिर प्रथम कहता था—"बिना सेना के शक्ति नहीं हो सकती, द्रव्य के बिना सेना का होना असंभव है, द्रव्य कृषि के बिना असंभव है तथा कृषि न्याय के अभाव में असंभव है।" उसके समय में उजड़े हुये ग्रामों का पुनर्निर्माण किया गया। दीन जनता को उसने खेती की सुविधा के लिये भूमि, बीज तथा पशु दिये। युद्ध में बन्दी बनाये हुये विदेशियों को ग्रामों में बसा दिया गया। उसके द्वारा ईरान में विदेशी फसलों को पैदा किया गया।

कृषि-उत्पादन दो प्रकार का होता था—एक तो खाद्योपयोगी तथा दूसरा व्यापारोपयोगी। भूमि-कर बहुधा अन्न के रूप में ही एकत्र किया जाता था। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि व्यावहारिक रूप में भूमि के वास्तविक स्वामी सामंत हुआ करते थे। खेती का वास्तविक कार्य कृषकों के द्वारा ही संपन्न किया जाता था, परन्तु उसके लाभ के ऊपर उनका कोई विशेष अधिकार नहीं होता था। सामन्त उनसे अन्न का अधिकांश वसूल कर लेते थे। परिणामस्वरूप उपज का एक लघु भाग ही कृषक के पास अवशिष्ट रहता था, जिसके द्वारा उसकी जीविका का उपार्जन असम्भव हो जाया करता था। वे सामन्तों की आवश्यकताओं के अनुसार अन्न का उत्पादन करते थे। परिणामतः उनके जीवन की आवश्यकताओं के अनुसार खेती नहीं हो पाती थी।

व्यवसाय—ससैनियनकालीन ईरान में व्यवसाय का विशेष विकास हुआ। यहाँ के व्यावसायिक विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन करते थे, जिनका निर्यात बाहरी देशों में किया जाता था। ईरान में उत्पादित होने वाली वस्तुओं में रेशमी कपड़े तथा शीशे के सामान विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कभी-कभी ससैनियन सम्राट एवं उनके सामन्त भी व्यावसायिक कार्य करते थे। इस समय राज्य की ओर से कारखाने खुले हुये थे। इनमें कारीगरों को राज्य की ओर से निश्चित मासिक वेतन मिलता था। सामन्तों के भी निजी कारखाने हुआ करते थे. जिनका संगठन वे स्वयं करते थे।

आंतरिक व्यापार—व्यापार की सुरक्षा तथा सुविधा के निमित्त राज्य की ओर से विशेष प्रबंध किया गया था। आंतरिक व्यापार के विकास के निमित्त नई सड़कों का निर्माण एवं प्राचीन राजमार्गों का जीर्णोद्धार किया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
गया। राजमार्गों के दोनों ओर यथास्थान विश्रामगृह एवं कूप आदि का निर्माण किया गया। व्यापार-निरीक्षण के निमित्त विशेष कर्मचारियों की नियुक्ति की गई, जो व्यापारियों की सुविधा एवं मार्गों की सुरक्षा पर ध्यान देते थे।

विदेशी व्यापार—बाहरी देशों के साथ ईरान का व्यापार उन्नत अवस्था में था। बाह्य देशों एवं केन्द्रों में, जिनसे ससैनियन साम्राज्य व्यापारिक सूत्र में आबद्ध था, चीन एवं मिश्र का सिकन्दरिया विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त मेसोपोटामिया, एशिया माइनर, यूनान, रोम तथा भारतवर्ष के साथ भी इसका व्यापार होता था। बाहरी देशों से भी ईरान में माल आते थे, उदाहरणार्थ चीन से यहाँ रेशमी वस्त्र आता था। तत्कालीन विश्व में चीन रेशमी वस्त्रों के उत्पादन का एक विश्रुत केन्द्र था। यहाँ से भारतवर्ष में भी रेशमी वस्त्र आते थे। ईरान के व्यापारी मिश्र के सिकन्दरिया से पश्चिमी देशों का माल अपने देश में लाते थे। ४५५ ई० तथा ५१३ ई० के बीच ईरान एवं उत्तरी चीन में दस बार राजदूतों का आदान-प्रदान हुआ था। ईरान की बाज़ारों में भारतीय तथा चीनी सौदागर सीरिया की वार्निश तथा कसीदा किये हुये कपड़े खरीदते थे। ईरानी मेलों में बहुधा आकर वे कीमती पत्थर, मूँगा, मोती एवं नशीली वस्तुओं का क्रय-विक्रय करते थे। विदेशों में ससैनियन साम्राज्य के दो नगरों की प्रतिष्ठा विशेष रूप से थी—(१) निसिब्रस तथा (२) टेसीफन। निसिब्रस के द्वारा इस साम्राज्य का सम्पर्क पश्चिमी देशों के साथ विशेष रूप से स्थापित हुआ। टेसीफन से व्यापारिक मार्ग भारतवर्ष, मध्य एशिया तथा चीन तक जाते थे। चीनी लेखों में टेसीफन की पर्याप्त प्रशंसा मिलती है। इनके अनुसार यह एक सम्पन्न भूखंड था। इस आयात एवं निर्यात के कारण इसका विभिन्न देशों के साथ सांस्कृतिक सम्बन्ध भी स्थापित हुआ।

मुद्रायें—इस काल के आर्थिक जीवन में मुद्राओं का स्थान महत्त्वपूर्ण था। इनका प्रयोग विशेष रूप से नगरों में किया जाता था, जो व्यवसाय एवं व्यापार के केन्द्र थे। उत्खनन में तत्कालीन मुद्राओं के उदाहरण उपलब्ध हुये हैं। ये मुद्रायें अधिकांशतः चाँदी एवं ताँबे की हैं। इस समय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
की कुछ सुवर्ण मुद्रायें भी प्राप्त हुई हैं, जो कलात्मक विकास का भी परिचय देती हैं। इस समय व्यवसाय एवं वाणिज्य-कर मुद्राओं के रूप में वसूल किया जाता था।

बैंक-प्रथा—मुद्रा के प्रचलन एवं वाणिज्य-सम्बन्धी विकास के फलस्वरूप ईरान में बैंक-प्रथा का भी विकास हुआ। बैंक व्यापारियों के धन की सुरक्षा तथा उनकी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के विशिष्ट साधन थे। ससैनियन काल में बैंक व्यापारियों को उनके द्वारा जमा किये हुये धन के ऊपर सूद भी देते थे। बैंक राजकीय एवं व्यक्तिगत दोनों प्रकार के हुआ करते थे। बैंक व्यापारियों को ऋण भी दिया करते थे। इनमें लिखा-पढ़ी का कार्य बहुत सुव्यवस्थित रखा जाता था। उधार दिये हुये धन, ब्याज की दर तथा ऋण के लौटाने की तिथि का पूर्ण व्यौरा इनमें सुरक्षित रहता था। सभी शर्तें पहले से ही निश्चित कर ली जाती थीं, ताकि उभय पक्ष में किसी प्रकार का विवाद कालान्तर में उपस्थित न हो। इस प्रकार के विवरण का प्रस्तुत करना तत्कालीन जगत में आदर्श माना जाता था। इस पद्धति का अनुकरण बाहरी देशों में किया गया। सर्वप्रथम सीरिया के ईसाइयों ने ईरान से इस प्रथा को सीखा तथा आगे चलकर यूरोप के कुछ देशों में भी इसका अनुकरण किया गया।

आर्थिक संगठन के दोष—इस स्थान पर उल्लेखनीय है कि ईरान का आर्थिक संगठन दोषयुक्त था। अर्थ के साधनों पर सामंतों का नियंत्रण था। वे कृषि, व्यवसाय तथा व्यापार पर पर्याप्त प्रभाव रखते थे। इसके परिणाम-स्वरूप निम्न वर्ग का, जो उत्पादन का वास्तविक कार्य करता था, शोषण हुआ। यद्यपि इसके सदस्य कठिन परिश्रम करते थे, तथापि उनकी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति न हो पाती थी। उनका जीवन विपन्नावस्था में व्यतीत होता था। फलतः लौकिक जीवन से उन्हें विराग होंने लगा। इस आर्थिक संगठन से वे असंतुष्ट थे। ससैनियन सम्राट इस दोष का परिहार करने में असमर्थ सिद्ध हुये, क्योंकि वे अपनी सैनिक एवं धनसम्बन्धी आवश्यकताओं के लिये सामन्तों पर निर्भर रहते थे।

शासन-व्यवस्था—ससैनियन शासनव्यवस्था में सम्राट का स्थान सर्वोच्च

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था। वह साम्राज्य का सबसे बड़ा पदाधिकारी था। वह कानून का निर्माण करता था। उसके दिये हुये निर्णय में कोई भी परिवर्तन नहीं हो सकता था। सम्राट के अधिकार समय-समय पर बढ़ते तथा घटते रहते थे। उदाहरणार्थ अधिक शक्तिशाली हो जाने पर वह सामन्तों को दबा कर स्वतन्त्रेच्छा के अनुसार शासन करता था। ऐसी परिस्थिति में उसके अधिकार अनियंत्रित एवं असीमित हो जाते थे। पर सम्राट की शक्ति के घटने पर सामन्त-प्रभाव बढ़ने लगता था। ऐसी परिस्थिति में उसका नियन्त्रण घट जाता था। तथापि उसका उत्तरदायित्व बहुत अधिक था। आवश्यकता पड़ने पर उसे सेना का नेतृत्व भी करना पड़ता था। वही अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करता था। उसकी सहायता के लिये कई महत्त्वपूर्ण केन्द्रीय कर्मचारी हुआ करते थे। प्रांतों में भी वह अपने प्रतिनिधि कर्मचारियों की सहायता से कठोर नियंत्रण स्थापित करने की पर्याप्त चेष्टा करता था।

मंत्रिमंडल—सम्राट की सहायता के लिये मंत्रिमंडल हुआ करता था। मंत्रिपरिषद् की नियुक्ति एक प्राचीन पारसीक परम्परा थी। साखामनीष्र सम्राटों के काल में भी राजा की सहायता के निमित्त मंत्रिमंडल हुआ करता था। इसका प्रधान मुख्य सचिव हुआ करता था। उसका उत्तरदायित्व पर्याप्त था। राज्य के महत्त्वपूर्ण कार्यों को उसे सतर्कता के साथ देखना पड़ता था। सम्राट की अनुपस्थिति में शासन का सम्पूर्ण कार्य उसके निर्देश के द्वारा सम्पादित होता था। मुख्य सचिव से सैनिक कार्य भी लिया जा सकता था। तत्कालीन साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि कभी-कभी उसे सेना का नेतृत्व करना पड़ता था। युद्ध एवं संधि के निर्णय में उसका अधिकार हुआ करता था। संधि-पत्रों पर उसे हस्ताक्षर करना पड़ता था। उसके नीचे अन्य कई सचिव हुआ करते थे। मंत्रिमडल का संगठन मुख्य सचिव स्वयं करता था। प्रायः मुख्य सचिव ही वित्त-मंत्री हुआ करता था। वह व्यवसाय, कृषि तथा व्यापार-कर आदि के निर्धारण में सम्राट को मंत्रणा प्रदान करता था। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि मंत्रिमंडल प्रधानतः सम्राट की एक परामर्शदायिनी संस्था थी। इसकी राय को मानना अथवा ठुकरा देना सम्राट पर निर्भर था।

आर्थिक शासन—राजकीय आय का प्रमुख साधन भूमि-कर था। पहले

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि राज्यकर्मचारी इसका संग्रह ग्रामाध्यक्ष की सहायता से करते थे। कर के मामले में कृषकों को इतना अधिक सताया जाता था कि वे ऋण के भार से लद जाते थे। इस प्रकार की दुर्व्यवस्था बाहरी देशों में भी थी। मिश्र एवं रोम में भूमिकर-सम्बन्धी यह शोषण वर्तमान था। व्यवसाय-कर एवं वाणिज्य-कर से भी साम्राज्य की काफी आमदनी हुआ करती थी।

न्याय-शासन—ससैनियन काल में न्याय-शासन धर्मप्रभावित था। निर्णय का कार्य धर्मशास्त्रों की सहायता से संपादित होता था। इस कारण न्याय के क्षेत्र में पुरोहितों का प्रभाव बढ़ने लगा, जो कि धर्मशास्त्रों में पारंगत माने जाते थे। सम्राट साम्राज्य का सर्वोच्च न्यायाधीश था। उसके अधीनस्थ अनेक न्यायालय हुआ करते थे। न्यायाधीश की नियुक्ति सम्राट स्वयं करता था। प्रांतीय न्यायालयों की अपील सम्राट के पास हो सकती थी। ग्राम-न्यायालय का प्रधान ग्रामाध्यक्ष हुआ करता था। इन विभिन्न न्यायालयों के होते हुये भी प्रत्येक नागरिक को सम्राट से न्याय के हेतु निवेदन का पूर्ण अधिकार प्राप्त था।

स्थानीय शासन—ससैनियन कालीन स्थानीय शासन सुव्यवस्थित था। प्रान्त, नगर एवं ग्राम-शासन के लिये राजकीय कर्मचारी नियुक्त किये जाते थे। प्रान्तीय राज्यपाल सम्राट का प्रतिनिधि समझा जाता था। वह अपने सहायक कर्मचारियों की नियुक्ति स्वयं करता था। प्रान्तों का वर्गीकरण जिलों में किया गया था। जिले में भी कई राजकीय कर्मचारी हुआ करते थे। ये कर्मचारी केन्द्रीय एवं स्थानीय शासन में दृढ़ सम्बन्ध स्थापित करते थे।[१] जिले का विभाजन ग्रामों में किया गया था। ग्राम शासन की सबसे छोटी इकाई थी। ग्राम-शासन पर भी केन्द्रीय नियंत्रण रहा करता था। इस प्रकार

---

१. "The great achievement of the Sassanians was the creation of a stable bureaucracy which provided the link between the provinces and the Central authority to which it was responsible"

—Ghirshman.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
की व्यवस्था के कारण ससैनियन काल में शासन-सम्बन्धी एक केन्द्रीयकरण स्थापित हुआ, जो इसकी महानता का परिचायक है।

राजसभा का शिष्टाचार—साखामनीष सम्राटों की भाँति ससैनियन सम्राट भी दरबारी शिष्टाचार के प्रेमी हुआ करते थे। सम्राट के समक्ष सभासदों एवं कर्मचारियों को अनुशासन एवं शिष्टता का सर्वदा ध्यान रखना पड़ता था। कुल एवं पद के अनुसार राजसभा में लोग पद ग्रहण करते थे। इस दृष्टि से सभागृह कई भागों में विभक्त था। सबसे पहले भाग में राजकुल के सदस्य, तदनन्तर दूसरे भाग में सामंत तथा तीसरे भाग में कर्मचारी आदि बैठते थे। राजसभा में विशेष अवसरों पर काफी चहल-पहल भी रहती थी। इसे विभिन्न विधियों से अलंकृत करने की चेष्टा की जाती थी। उत्सव के अवसर पर संगीतज्ञ एवं विदूषक लोगों का मनोविनोद करते थे। कौशल एवं प्रदर्शन के अनुसार इन्हें पारितोषिक दिया जाता था।

सैनिक शासन—ससैनियन साम्राज्य का प्रधान आधार सेना थी, अतएव इस वंश के नरेशों ने सैनिक शासन को सुदृढ़ किया। सेना का अध्यक्ष सेनापति हुआ करता था। उसका पद आनुवंशिक था। कभी-कभी राजकुल के सदस्य भी इस पद पर नियुक्त किये जाते थे। इसका विशेष लाभ यह था कि वे सम्राट के विरुद्ध नहीं जा सकते थे। इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि आवश्यकता पड़ने पर सम्राट मुख्य सचिव से भी सेनापति का कार्य ले सकता था। इससे स्पष्ट है कि दीवानी तथा सैनिक विभाग में बहुत विभेद नहीं माना जाता था। इस प्रकार की परंपरा भारतवर्ष में भी विद्यमान थी। उदाहरणार्थ राज्यवर्द्धन के प्रधान मंत्री भाण्डी ने प्रधान सेनापति का भी कार्य किया था। ससैनियन साम्राज्य में प्रधान सेनापति की अधीनता में दो सहायक सेनापति भी रहते थे। सहायक सेनापति के पद पर सामंत वर्ग के सदस्य नियुक्त किये जाते थे। सम्राट समय-समय पर सेना में आवश्यकताओं के अनुसार नवीन सुधार भी करता था। उदाहरणार्थ कोसरोज़ प्रथम के शासनकाल में सेना को चार प्रादेशिक भागों में विभक्त किया गया तथा पृथक भागों के लिये पृथक सेनापति की नियुक्ति की गई। इस प्रकार उसने प्रधान सेनापति के स्थान पर चार सेनापतियों को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नियुक्त कर उसकी महत्त्वाकांक्षा तथा कुचक्र को रोकने की चेष्टा की। सीमान्त प्रदेशों की सुरक्षा के लिये सेना की टुकड़ियाँ नियुक्त की गई थीं। ससैनियन सेना के सैनिक विभिन्न रणपद्धतियों में पर्याप्त कुशल थे।

शिक्षा—उच्च शिक्षा एक तरह से कुलीन एवं धनिक व्यक्तियों का एकाधिपत्य था। कृषक अशिक्षित थे। इसी तरह अन्य उद्योग-धंधों के पालन करने वाले गरीब लोग भी शिक्षा से रहित हुआ करते थे। व्यापारी केवल उतना ही पढ़ते थे, जितना कि उन्हें अपने तिजारत के काम के लिये आवश्यक था। कुलीन परिवार के बालकों को पाँच साल से ही शारीरिक एवं बौद्धिक शिक्षा दी जाती थी। राष्ट्रीय धर्म की विशेषताओं का भी उन्हें ज्ञान कराया जाता था। बीस वर्ष की अवस्था तक वे साहित्य, इतिहास, संगीत एवं युद्ध-कला काफी सीख लेते थे। कुछ कुलीन एकमात्र सैनिक शिक्षा ही ग्रहण करते थे। पुरोहित-कर्म की शिक्षा परम्परागत ढंग से दी जाती थी। अनुशीरवाँ ने चिकित्सा-शास्त्र की शिक्षा के लिये एक विद्यालय स्थापित किया था। इसमें उसने यूनानी ढंग से चिकित्सा-शिक्षा देने की व्यवस्था की थी।

साहित्य—इस काल में साहित्यिक प्रगति भी हुई। मौखिक परंपराओं के आधार पर चले आने वाले राष्ट्रीय साहित्य को लिखित रूप प्रदान किया गया। इन समय अवेस्ता में कुछ नूतन समावेश किये गये। इसकी टीकायें पहलवी भाषा में प्रस्तुत की गईं। ससैनियन कालीन लगभग ग्यारह ग्रन्थ उपलब्ध हुये हैं। इनमें से एक में अर्देशिर की उपलब्धियों का वर्णन प्राप्त होता है। इस कोटि के एक अन्य ग्रन्थ में नौशीरवाँ की प्रजावत्सलता से संबन्धित कथायें मिलती हैं। इसके काल में एक संग्रह-ग्रन्थ प्रस्तुत किया गया, जिसमें ईरानी नरेशों की कृतियों का वर्णन उपलब्ध होता है। कालान्तर में इसी के आदर्श पर प्राचीन महाकाव्य शाहनामा लिखा गया।

पाँचवीं शताब्दी के अन्त में रोम-साम्राज्य के निष्कासित नेस्टोरियन ईसाई भाग कर ईरान आये। ये अपने साथ यूनानी तथा रोमन दार्शनिक एवं वैज्ञानिक ग्रन्थों को ले आये थे। इनमें से कुछ यूनानी चिकित्सा-शास्त्र से संबन्धित थे। इनका अनुवाद तैयार किया गया। गैलेन के ग्रन्थों का भी अनुवाद प्रस्तुत हुआ। इस समय की पुस्तकों में प्लेटो एवं अरस्तू के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिद्धान्तों के संग्रह भी उल्लेखनीय हैं। हिब्रू-बन्दनाओं का पहलवी रूपान्तर भी प्रस्तुत किया गया। नौशीरवाँ ने भारतवर्ष से पञ्चतन्त्र की प्रतिलिपि मँगाई थी। उसकी आज्ञा के द्वारा इसका पहलवी भाषा में अनुवाद तैयार किया गया। इसके पहले शापुर प्रथम ने भी कुछ भारतीय ग्रन्थों का अनुवाद कराया था। चिकित्सा-शास्त्र के ऊपर अनूदित साहित्य के अतिरिक्त मौलिक ग्रन्थ भी लिखे गये। इस समय के साहित्य के ऊपर पाश्चात्य प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। बुज़ों की कृति में समाज, धर्म एवं आचार-विषयक अध्यायों के ऊपर यूरोपीय विचारों की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है। इस काल के ग्रंथों में सदाचार एवं विचार-स्वातंत्र्य की भावनाओं को महत्त्व प्रदान किया गया है। इस समय की कुछ कृतियों में जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं प्राचीन रूढ़ियों के खंडन का समर्थन उपलब्ध होता है।

कला—ससैनियन कला एक मौलिक कला थी और इसका विकास पूर्णतः राष्ट्रीय था। इस वंश के नरेश नगर-निर्माण के प्रेमी थे। साम्राज्य के विभिन्न भागों में इनके समय में नगरों की स्थापना की गई।[१] अर्देशिर के द्वारा स्थापित नगर वृत्ताकार थे। शापुर प्रथम ने बिशपुर के नगर का निर्माण कराया, जो आयताकार था। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि भारतीय नगरों का भी रूप वृत्ताकार एवं आयताकार हुआ करता था। वृत्ताकार नगर का उल्लेख मत्स्य पुराण में हुआ है। इसके अनुसार यह पुर का श्रेष्ठ आकार था। महाभारत तथा रामायण के अनुसार द्वारका एवं अयोध्या के नगर आयताकार थे। मत्स्य पुराण में आयताकार नगर को नागरिकों के लिये मंगलदायक कहा गया है (आयतं वाकारयेत्पुरम्)। ब्रह्म पुराण में आयताकार नगर को प्रशस्त पुर कहा गया है (आयतं दिव्यं प्रशस्तं, तैः पुरं कृतम्)। यह समानता भारतवर्ष एवं ईरान के बीच सांस्कृतिक संबन्ध प्रमाणित करती है। ईरान में कालान्तर में आयताकार नगर अधिक लोकप्रिय

१. "The Sassanians were great builders of towns and the historical sources record urban development in most regions."

—Ghirshman.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थे। शापुर प्रथम ने गुन्देशपुर तथा शापुर द्वितीय ने सूसा में आयताकार प्रासादों का निर्माण किया था। इन नगरों में चौड़े राजमार्ग एक दूसरे को समकोण पर काटते थे।

साखामनीष सम्राटों की भाँति ससैनियन नरेश भी विविध राजप्रासादों के निर्माण के प्रेमी थे। इनके निर्माण में प्रस्तर-खंडों का उपयोग किया गया था। फिरोज़ाबाद का प्रासाद गढ़े हुये पत्थरों के द्वारा निर्मित था। इसमें पलस्तर का भी काम सुन्दर ढंग से किया गया था। महलों के निर्माण में कभी-कभी पत्थर के स्थान पर ईंटों का उपयोग किया जाता था। टेसीफन का राजप्रासाद अंशतः पकी ईंटों के द्वारा भी निर्मित था। इसके भीतर मेहराबदार विशाल सभाभवन बना हुआ था। इन प्रासादों में पृथक प्रयोजन के निमित्त पृथक कमरे बनाये गये थे। इनमें विशाल कमरे (हाल) हुआ करते थे, जिनमें स्तंभों की संख्या अधिक हुआ करती थी। यह ईरान की एक प्राचीन परंपरा थी। इस प्रकार के स्तंभयुक्त विशाल कमरे साइरस एवं दारा के राजमहलों में विद्यमान थे। वास्तुकला-संबन्धी इस विशेषता का प्रभाव भारतवर्ष में प्रारंभिक मौर्य-कला के ऊपर पड़ा था। सौन्दर्य की अभिवृद्धि के हेतु महलों में यथास्थान छज्जे, गुम्बद तथा मेहराब बनाने की परंपरा यहाँ प्रचलित थी। नगरों के चतुर्दिक चहारदीवारी बनाने की परंपरा ईरान में विद्यमान थी। इस समय की ईंट की बनी हुई एक सुदृढ़ नगर-दीवाल के अवशेष स्तख में उपलब्ध हुये हैं, जो कि उस समय की वास्तुकला के परिचायक हैं। ससैनियन कला के विषय में बुर्ज़-निर्माण का भी उल्लेख किया जा सकता है। बिशपुर के किले में सुदृढ़ बुर्ज़ बनाये गये थे।

ईंटों की दीवाल बनाने की प्रथा भारतवर्ष में लोकप्रिय थी। कौटिल्य ने इसे 'ऐष्टक प्राकार' कहा है। पाणिनि ने 'प्राकारीया इष्टकाः' का उल्लेख किया है (अर्थात् वे ईंटें जिनका प्रयोग दीवाल के निर्माण में किया जाता था)। समराङ्गण-सूत्रधार में कहा गया है कि प्राकार (दीवाल) के निर्माण में ईंटों का प्रयोग किया जाय (कुर्यात् प्राकारमुद्दामं यद्वा पक्वेष्टकामयम्)। बुर्ज़ बनाने की प्रथा भारतवर्ष में बहुत पहले से चली आ रही थी। मेगस्थनीज़ लिखता है कि पाटलिपुत्र के किले में ५७० बुर्ज़ बने हुये थे। समराङ्गण-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सूत्रधार के अनुसार नगर के प्राकार की प्रत्येक दिशा में बुर्ज़ बनाये जायँ (प्राकारेऽट्टालकास्तस्मिन्दिक्षु दिक्षु चतुर्दिशम्)। यह प्रथा-साम्य ईरान-भारत-संपर्क का एक अन्य दृष्टान्त है। ससैनियन काल के एक बुर्ज़ का उदाहरण फिरोज़ाबाद के समीप उपलब्ध हुआ है। इसकी चोटी पर अग्निकुंड का निर्माण मिलता है। इसके निर्माण का उद्देश्य पूजा के अवसर पर शुद्धता के हेतु खुले आकाश में अग्नि का जलाना था। ससैनियन काल में देवालयों का भी निर्माण किया गया। मंदिर के भीतर एक गर्भगृह बनाया जाता था, जिसे लोग देव-अधिष्ठान मानते थे। गर्भगृह के चतुर्दिक बरामदे बनाये जाते थे। राजमहलों की दीवालों के ऊपर मूर्तियों का अंकन किया जाता था। इतिहासकारों ने ससैनियन मूर्ति-कला की काफी प्रशंसा की है। भवन-भित्ति के ऊपर आकृतियों के अंकन के द्वारा मृगया, युद्ध तथा राजदरबार आदि का दृश्य प्रदर्शित किया गया। इस प्रकार के दृश्य बिशपुर के राजप्रासाद की दीवालों पर अंकित किये गये थे।

यहाँ की मूर्ति-कला के उदाहरणों में उत्कीर्ण-भास्कर (बेस रिलीफ) विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस कोटि के प्रसिद्ध उदाहरण में ईरानी देव-समूह (अहुरमज़्द, मिथ्र तथा अनहित) अंकित किया गया है। तके बुस्तन के उत्कीर्ण-भास्कर में सम्राट अपने दलबल के साथ विविध वन्य पशुओं का आखेट करता हुआ दिखाया गया है। शिकारी हाथी तथा अश्वपृष्ठ पर आरूढ़ हैं। उनसे आतंकित होकर जानवर अपनी सुरक्षा के हेतु इधर-उधर भागते हुये प्रदर्शित किये गये हैं। एक अन्य उदाहरण में अर्देशिर अहुरमज़्द के समक्ष क्षमायाचना के भाव में खड़ा है। उत्कीर्ण भास्कर-कला में ससैनियन सम्राट राजकीय वेशभूषा में सुसज्जित सिंहासनारूढ़ अंकित हैं। एक स्थान पर विजयी ससैनियन नरेश अपने शत्रु का वीरता पूर्वक मर्दन करता हुआ देखा जा सकता है। एक अन्य दृष्टान्त में शापुर प्रथम के द्वारा रोम-सम्राट वलेरियन बन्दी बनाया जाता हुआ दिखाया गया है। यहाँ के कलाकारों ने अपनी कला का परिचय सुन्दर प्याले, बोतल तथा तश्तरी आदि के निर्माण में भी दिया। इनके ऊपर विभिन्न प्रकार की सुन्दर आकृतियाँ चित्रित की जाती थीं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उड़ते हुये पक्षी, सुरम्य सरिता-तट पर मधुर जल का आस्वादन करते हुये वन्य पशु तथा उगते हुये पेड़ पौदे आदि के भी दृश्यों का यहाँ की चित्र-कला में अपना स्थान है। एक अन्य चित्रकारी में सुन्दर वेशभूषा से सुसज्जित राजमहिषी सिंहासनारूढ़ दिखाई गई है। कुछ परिचारिकायें उसे चँवर डुलाती तथा कुछ उसकी आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़ी प्रदर्शित की गई हैं। यहाँ की चित्रकला के विषय ऐतिहासिक एवं धार्मिक भी हैं। टेसीफोन के एक भित्तिचित्र में अन्तियोक के घेरे का दृश्य प्रदर्शित किया गया है। राजकीय स्मारकों के ऊपर अहुरमज़्द की पूजा के सुन्दर दृश्य चित्रित हैं। वहाँ की कलात्मक विशेषताओं को बाहरी देशों में अपनाया गया। विद्वानों का कथन है कि ससैनियन चित्रकला का प्रभाव मध्य एशिया के बौद्ध देवालयों के भित्तिचित्रों पर परिलक्षित होता है।[१] इन विशेषताओं को दृष्टि में रखते हुये कहा जा सकता है कि विश्व-सभ्यता के इतिहास में ससैनियन सभ्यता अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

१. "Sassanian art also inspired the painters of the frescoes in the Buddhist sanctuaries in Central Asia" —Ghirshman.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ६

भारतीय सभ्यता

मौर्यकालीन सभ्यता—चन्द्रगुप्त मौर्य ने नन्द वंश के अंतिम शासक का विनाश कर ३२२ ई० पू० में मौर्य-साम्राज्य की स्थापना की थी। उसके पौत्र अशोक के काल में यह साम्राज्य अपने अभ्युदय की पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था। इस समय इसकी सीमा उत्तर-पश्चिम में अफगानिस्तान से लेकर पूर्व में बंगाल तक तथा उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में चित्तल-दुर्ग जिले तक प्रसरित थी। अशोक के उपरांत उसके उत्तराधिकारियों ने १८४ ई० पू० तक राज्य किया। हर्षचरित के अनुसार पुष्यमित्र शुंग ने अंतिम मौर्य सम्राट बृहद्रथ को मारकर इस समय शुंग-वंश की स्थापना की। ३२२ ई० पू० से लेकर १८४ ई० पू० तक के काल के सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास के विषय में कौटिल्य के अर्थशास्त्र, मेगस्थनीज के यात्राविवरण तथा अशोक एवं उसके उत्तराधिकारियों के अभिलेखों के द्वारा सूचना प्राप्त होती है। उनके आधार पर मौर्य-संस्कृति का वर्णन कुछ निम्नलिखित ढंग पर किया जा सकता है।

शासन-व्यवस्था:—सम्राट—मौर्य सम्राट शासनव्यवस्था का केन्द्रविन्दु था। उनके सैनिक तथा न्याय एवं शासन-सम्बन्धी अधिकार सर्वोच्च थे। मेगस्थनीज के अनुसार वह शासन के कार्यों में सर्वदा व्यस्त रहता था। उसे दिन में विश्राम के निमित्त अवकाश नहीं मिलता था। वह मुकदमों के निर्णय तथा लोकहित के निमित्त अपना संपूर्ण दिन राजदरबार में व्यतीत करता था। कौटिल्य के अनुसार सम्राट प्रजा के दुख को सुनने के निमित्त सर्वदा तत्पर रहता था। सेनापति की सहायता से वह युद्ध की योजनायें स्वयं बनाता था। कौटिल्य ने सम्राट के लिये 'धर्म-प्रवर्तक' शब्द का प्रयोग किया है। इससे उसके कानून-विषयक अधिकार व्यक्त होते हैं। वह अपने साम्राज्य में समस्त महत्त्वपूर्ण नियुक्तियाँ स्वयं करता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मंत्रिपरिषद—सम्राट की सहायता के निमित्त एक मंत्रिपरिषद होता था। डिओडोरस के अनुसार इसके सदस्य 'सम्राट के परामर्शदाता' कहलाते थे। इन्हें अमात्य कहा जाता था[1]। कौटिल्य के अनुसार अमात्य संपूर्ण प्रकार के आकर्षणों से परे हुआ करता था (**सर्वोपधाशुद्धान् मंत्रिणः कुर्यात्**)। उसके वर्णन से ज्ञात होता है कि मंत्रिपरिषद के सदस्यों की संख्या बारह हुआ करती थी (**मंत्रिपरिषदं द्वादशामात्यान्कुर्वीत**)। उन्हें आवश्यक विषयों में सम्राट को मंत्रणा प्रदान करना पड़ता था। अमात्यों को कभी-कभी न्यायाधीश का भी कार्य करना पड़ता था। अतएव उनसे आशा की जाती थी कि उनका आचरण सब प्रकार से शुद्ध (**धर्मोपशुद्ध**) हो तथा उनमें किसी प्रकार की अर्थ-लोलुपता न हो (**अर्थोपशुद्ध**)।

उच्च कर्मचारी—शासन-कार्य के सुसंचालन के निमित्त उच्च पदाधिकारी हुआ करते थे। यूनानी लेखकों के अनुसार वे पृथक् विभागों के प्रधान थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इनके लिये अध्यक्ष शब्द आता है, उदाहरणार्थ—पण्याध्यक्ष, सुराध्यक्ष, सूनाध्यक्ष, गणिकाध्यक्ष तथा नावध्यक्ष। पण्याध्यक्ष नगर में बेची जाने वाली वस्तुओं का मूल्यनिर्धारण करता था। सुराध्यक्ष का प्रधान कर्त्तव्य राजकीय नियमों के अनुसार मदिरा के क्रय-विक्रय तथा प्रयोग का संचालन था। सूनाध्यक्ष इस बात को देखता था कि मांस बेचने वाले हड्डियों को निकाल कर स्वच्छ मांस बेचते हैं अथवा नहीं। यदि कोई हड्डियों के साथ मांस बेचता था, तो उसे वह दण्ड देता था। गणिकाध्यक्ष का कार्य गणिकाओं की आय का निर्धारण करना तथा उस पर कर लगाना था। नावध्यक्ष बंदरगाहों में रहते थे। उनका प्रधान कर्त्तव्य विदेशी यात्रियों से शुल्क वसूल करना था। राजकीय जलपोत से उतरने वाले नावध्यक्ष को यात्रावेतन देते थे। यूनानी लेखकों के 'मजिस्ट्रेट' से तात्पर्य संभवतः अध्यक्ष पदाधिकारियों से है। उनके अनुसार ये क्रय-विक्रय, जनसंख्या तथा राजकीय करों के अलग-अलग प्रधान अधिकारी हुआ करते थे। कौटिल्य ने समाहर्तृ तथा सन्निधातृ नामक पदाधिकारियों का भी उल्लेख किया है। समाहर्तृ कर-संग्रह-संबन्धी प्रधान अधिकारी तथा सन्निधातृ कोषाध्यक्ष था। यह राजकीय आय एवं व्यय का पूर्ण विवरण रखता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रांतीय शासन—संपूर्ण साम्राज्य प्रान्तों में विभक्त था। प्रांत को भुक्ति कहा जाता था। प्रान्तों का वर्गीकरण जिलों में किया गया था। जिला को विषय कहा जाता था। अभिलेखों में मौर्य-साम्राज्य के कुछ प्रांतों के नाम उल्लिखित मिलते हैं; उदाहरणार्थ उत्तरापथ, अवंतिरट्ठ, दक्षिणापथ, कलिंग एवं प्राच्य। इनकी राजधानी क्रमशः तक्षशिला, उज्जयिनी, सुवर्णगिरि, तोशाली एवं पाटलिपुत्र में विद्यमान थी। राजधानी के सन्निकट वाले प्रांतों का शासन सम्राट स्वयं करता था। दूरवर्ती प्रान्तों के शासन के निमित्त राजकुमार राज्यपाल नियुक्त किये जाते थे। अशोक के अभिलेखों के अनुसार तक्षशिला एवं उज्जयिनी में मौर्य राजकुमार प्रांतपति के रूप में निवास करते थे। कौटिल्य के अनुसार राज्यपाल का वेतन बारह हजार पण था। कभी-कभी विदेशी भी प्रांतपति नियुक्त किये जाते थे। उदाहरणार्थ अशोक के काल में यवनराज तुषास्फ सौराष्ट्र प्रांत का राज्यपाल बनाया गया था। रुद्रदामन के गिरिनार के लेख के अनुसार उसने प्राचीन गुजरात के प्रसिद्ध ऐतिहासिक तटाक सुदर्शन के तट पर एक सुदृढ़ बाँध का निर्माण कराया था।

न्याय-शासन—सम्राट साम्राज्य का सर्वोच्च न्यायाधीश था। उसकी अधीनस्थता में दो प्रकार के न्यायालय हुआ करते थे—(१) धर्मस्थीय तथा (२) कण्टक-शोधन। यद्यपि कण्टकशोधन तथा धर्मस्थीय न्यायालयों का अन्तर स्पष्ट नहीं है, तथापि लगता है कि धर्मस्थीय न्यायालय आज के दीवानी अदालतों तथा कण्टकशोधन फौजदारी अदालतों से मिलते-जुलते थे। छोटे अपराधों के लिये अर्थदण्ड दिया जाता था। कारीगरों की अंगहानि के लिए मृत्यु की सजा दी जाती थी। कभी-कभी अपने आपको निर्दोष सिद्ध करने के लिये अभियुक्त को दिव्यपरीक्षा का प्रयोग करना पड़ता था; उदाहरणार्थ अग्नि-परीक्षा, जल-परीक्षा तथा विष-परीक्षा आदि।

गुप्तचर विभाग—सम्राट को गुप्त सूचना प्रदान करने के लिये एक गुप्तचर विभाग रहता था। कौटिल्य ने तीन प्रकार के गुप्तचरों का उल्लेख किया है—(१) सिर मुँड़ा कर घूमने वाले गुप्तचर (मुंडः), (२) जटाजूट बाँधकर घूमने वाले गुप्तचर (जटिलः) तथा (३) तपस्वी का रूप धारण कर विचरण करने वाले गुप्तचर (तापसव्यंजनः)। कालान्तर के ग्रंथ नीतिसार में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी कहा गया है कि गुप्तचर तपस्वी, धूर्त तथा सौदागर एवं व्यावसायिक का वेष बनाकर घूमें। बस्ती के प्रत्येक भाग में हर छोटी बड़ी बात की सूचना लेने के लिये इन्हें भ्रमण करना पड़ता था। नीतिसार में गुप्तचर को 'नृपति-चक्षु' (राजा का नेत्र) कहा गया है।

नगर-पालिका—नगर-शासन के लिये एक सभा भी होती थी। इसका कार्य पुर के भीतर शान्ति की व्यवस्था तथा नागरिकों के हित के लिये प्रयत्न करना था। मेगस्थनीज ने चन्द्रगुप्त मौर्य के काल की पाटलिपुत्र-सभा का उल्लेख किया है। उसके अनुसार इस सभा के ६ विभाग थे तथा प्रत्येक विभाग में ५ सदस्य थे। पहला विभाग औद्योगिक कला तथा दूसरा विदेशियों की सुविधा की देख-रेख करता था। तीसरा प्रजा के जन्म एवं मरण का विवरण रखता तथा चौथा व्यापार एवं वाणिज्य का संचालन करता था। पाचवाँ व्यावसायिक विकास का पर्यवेक्षण तथा छठाँ बाजारों में नाप तोल की जाँच करता था।

जनसंख्या—मेगस्थनीज के यात्राविवरण से विदित होता है कि बड़े नगरों में जनसंख्या का हिसाब रखा जाता था। उसने पाटलिपुत्र में प्रजा के जीवन तथा मरण का विवरण प्रस्तुत करने वाले अधिकारियों के वर्तमान होने का उल्लेख किया है। कौटिल्य के अनुसार गोप तथा स्थानिक नामक पदाधिकारी जनसंख्या की गणना करते थे। गोप नगर के दस, बीस तथा चालीस कुलों के सदस्यों की गणना करता था। वह उनकी जाति, गोत्र तथा नाम का पूरा व्यौरा तैयार करता था। स्थानिक गोप से बड़ा था। उसके खाते में नगर के चारो भागों के निवासियों के नाम दर्ज रहते थे। इन अधिकारियों को बाहर से आने वाले व्यक्तियों का भी नाम तथा पता सुरक्षित रखना पड़ता था। इसके लिये धर्मशालाओं के संचालकों को रुकने वाले यात्रियों का नाम तथा पता गोप एवं स्थानिक के पास भेजना पड़ता था। नागरिकों को भी अपने अतिथियों की सूचना इन्हें देनी होती थी। इस प्रकार की व्यवस्था के कारण नगर में बाहरी आदमियों की संख्या तथा उनके संबन्ध मे पूरा परिचय मिल जाता था।

अशोक के शासन-सुधार—अशोक ने मौर्यशासन-पद्धति को उदार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
बनाने की चेष्टा की। उसके एक अभिलेख के अनुसार सम्राट एवं उसकी प्रजा के बीच पिता एवं पुत्र जैसा संबन्ध होना चाहिए। अपने द्वितीय कलिंग-लेख में वह कहता है कि "मेरे साम्राज्य के समस्त नागरिक मेरी संतान हैं। जिस प्रकार मैं अपनी संतति को चाहता हूँ कि वह इस लोक तथा पर-लोक में सुख-समृद्धि का उपभोग करे, ठीक उसी प्रकार मैं अपनी प्रजा की लौकिक एवं पारलौकिक उन्नति एवं कल्याण की अभिलाषा करता हूँ।" वह प्रजा-हित को अपना प्रधान कर्त्तव्य समझता था। उसने अपने साम्राज्य के प्रत्येक भाग में मनुष्य-चिकित्सालयों एवं पशु-चिकित्सालयों का निर्माण किया। उसके काल में राज्य की ओर से स्थान-स्थान पर उपयोगी औषधियों एवं जड़ी-बूटियों का आरोपण किया गया (**ओसुदानि च यानि मनुसोपगानि च पसोपगानि च यत तत नास्ति सर्वत्र हारापितानि च रोपापितानि च—गिरिनार का लेख**)। जनता की दशा के ज्ञान के निमित्त वह अपने साम्राज्य के प्रत्येक भाग में दौड़ा करता था।

उसके काल में उच्च पदाधिकारियों को अपने-अपने अधिकार-क्षेत्र में प्रत्येक पाँचवें वर्ष दौड़ा करना पड़ता था। अशोक के अभिलेखों में इस प्रकार के पंचवर्षीय दौड़ा के लिये 'अनुसंयान' शब्द आता है। ऐसे अवसर पर उन्हें प्रजा के साथ किये गये हुये राजकीय अन्याय एवं उसके दुःख का निवारण करना पड़ता था। अशोक जनता के कष्ट को सुनने के निमित्त सर्वदा प्रस्तुत रहता था।

जनहित की दृष्टि से उसने कुछ नवीन पदाधिकारियों की नियुक्ति की। इनमें महामात्र, राजुक, प्रादेशिक, युत तथा प्रतिवेदक उल्लेखनीय हैं। उसने महामात्रों की नियुक्ति प्रत्येक प्रसिद्ध नगर में की थी; उदाहरणार्थ तक्ष-शिला, उज्जयिनी, कौशाम्बी, तोसाली, समापा, सुवर्णगिरि तथा पाटलिपुत्र। महामात्रों का कर्त्तव्य गृहस्थ एवं साधु के हित की व्यवस्था करना था। अशोक ने अपने एक अभिलेख में बौद्ध संघ, ब्राह्मण एवं आजीवक, निर्ग्रन्थ तथा विभिन्न धर्मावलंबियों के लाभ की देख-रेख के लिये महामात्रों की नियुक्ति का उल्लेख किया है। उसके लेखों में 'धर्ममहामात्र' नामक पदाधिकारियों का उल्लेख मिलता है। वे उनके चारित्रिक उत्थान एवं आध्यात्मिक विकास के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निमित्त प्रयत्न करते थे ।

बूलर ने राजुक की एकता जातकों के 'रज्जुग्राहक' (रस्सी के द्वारा भूमि का नाप-जोख करने वाले) से की है । इससे प्रतीत होता है कि राजुक का कार्य कृषि-योग्य भूमि का विवरण प्रस्तुत करना तथा कर-निर्धारण था । इसके अतिरिक्त उसे ग्रामीण जनता के कल्याण के निमित्त प्रयास भी करना पड़ता था । अपने चौथे स्तंभ-लेख में उसने राजुकों में अपना पूर्ण विश्वास प्रगट किया है—'जिस प्रकार लोग अपने नवजात शिशु को निपुण धात्री को सौंप-कर विश्वासयुक्त हो जाते हैं, उसी प्रकार मैंने ग्रामीण जनता के सुख एवं समृद्धि की व्यवस्था के निमित्त (**जनपदस हितसुखाये**) राजुकों की नियुक्ति की है ।

प्रादेशिकों की नियुक्ति जिलों में की जाती थी । उन्हें न्याय-शासन का निरीक्षण करना पड़ता था । युत अर्थ-संबन्धी पदाधिकारी थे । वे राजकीय आय एवं व्यय में संतुलन स्थापित करने के लिये चेष्टा करते थे । प्रतिवेदक दूत का कार्य करते थे । वे सम्राट को प्रजा की आवश्यकताओं की सूचना देते थे ।

आर्थिक दशा

कृषि एवं पशुपालन—लोगों की जीविका का प्रधान साधन खेती थी । कृषि का कार्य ग्रामीण जनता के द्वारा संपादित होता था । कौटिल्य ने खेत के लिये ग्राम-क्षेत्र शब्द का प्रयोग किया है । उन्होंने ग्राम-क्षेत्र का वर्गीकरण कई भागों में किया है; उदाहरणार्थ कृष्ट (जुती हुई भूमि), अकृष्ट (परती) तथा आराम (जिसमें वृक्ष-वाटिका लगाई गई हो) । इस समय के अन्न, फल तथा वनस्पतियों में गोधूम (गेहूँ), इक्षु (ईख), सर्शप (सरसों), यव (जौ), मसूर (दाल) तथा शाक (साग) आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । कृषि के विकास के निमित्त राज्य की ओर से सिंचाई की व्यवस्था की गई थी । खेती को क्षति पहुँचाने वाले जीव जन्तुओं को नष्ट करने के लिये शिकारियों को राज्य की ओर से पुरस्कार मिलता था । यूनानी लेखकों ने भारत-भूमि की उर्वरता और प्राकृतिक समृद्धि की भूरि-भूरि प्रशंसा की है । कृषि-कार्य के संबन्ध में पशु-पालन की भी आवश्यकता पड़ती थी । कौटिल्य ने अर्थशास्त्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में ग्रामीण जनता के द्वारा गाय, भैंस, बकरी और भेंड़ के पालने का उल्लेख किया है। इस ग्रन्थ में चरागाहों का भी उल्लेख आता है। इसमें पशु चराने वालों को गोपालक कहा गया है।

व्यवसाय—मौर्य-काल में व्यवसाय उन्नत दशा में था। कपड़ा बुनने का उद्योग अभ्युदय पर था। कौटिल्य ने लिखा है कि मथुरा, अपरान्त, कलिंग, काशी, वंग, वत्स तथा महिष क्षेत्र में उत्कृष्ट सूती कपड़ा तैयार किया जाता था। काशी तथा पुण्ड्र में बने हुये सिल्क प्रसिद्ध थे। अर्थशास्त्र में कई प्रकार के चमड़ों का उल्लेख मिलता है। एरियन ने भारतवर्ष में बने हुये सुन्दर जूतों की प्रशंसा की है। कौटिल्य ने सुगंधित लकड़ियों में चंदन, अगरु तथा कालेयक का उल्लेख किया है। अर्थशास्त्र में ताँबा, शीशा, टिन, पीतल, काँसा, सोना तथा चाँदी को शुद्ध करने तथा उनसे बनी हुई वस्तुओं का वर्णन उपलब्ध होता है। इस देश के जौहरी भारतीय एवं विदेशी मोती, मणि, वज्र तथा मूँगा से आभूषणों को तैयार करते थे। रामायण में एक स्थान पर प्रमुख व्यावसायिकों का नामोल्लेख किया गया है; उदाहरणार्थ—(१) सुनार (सुवर्णकार), (२) जौहरी (मणिकार), (३) कपड़े बुनने वाले (सूत्रकर्मविशेषज्ञ), (४) कुम्हार (कुंभकार), (५) हथियार बनाने वाले (शस्त्रोपजीवी), (६) मोर की पूँछ से पंखा बनाने वाले (मायूरक), (७) आराकस (क्राकचिक), (८) मोतियों में छेद बनाने वाले (बेधक), (९) रंगसाज (रोचक), (१०) हाथीदाँत की चीज़ें बनाने वाले (दन्तकार), (११) चूना बनाने वाले (सुधाकार), (१२) गंधी (गंधोपजीवी), (१३) कंबल बुनने वाले (कम्बल-कारक), (१४) धूप बनाने वाले (धूपक), (१५) शराब बनाने वाले (शौण्डिक), (१६) दर्जी (तुन्नवाय) तथा (१७) धोबी (रजक)। पुर के भीतर एक ही प्रकार के व्यवसाय का पालन करने वाले अपना संगठन बना कर रहते थे। इस संगठन के लिये प्राचीन साहित्य में 'श्रेणी' शब्द आता है। जातकों में १८ प्रकार की श्रेणियों के नाम मिलते हैं; उदाहरणार्थ बढ़ई, सुवर्णकार, जुलाहे, चर्मकार, कुंभकार, दंतकार, रँगरेज, जौहरी, मल्लाह, सूपकार, नाई, मालाकार, चित्रकार, तेली, कसेरा, ग्वाले, टोकरी बनाने वाले तथा गंधकार।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यापार—व्यावसायिक विकास के कारण इस समय व्यापारिक विकास का भी होना स्वाभाविक ही था। देश के विभिन्न नगर व्यापारिक मार्गों के द्वारा दृढ़संबद्ध थे। इस प्रकार का एक व्यापारिक मार्ग बंगाल के समुद्रतट पर स्थित ताम्रलिप्ति के बंदरगाह से उत्तर-पश्चिम में पुष्कलावती तक जाता था। इसको 'उत्तर पथ' कहा जाता था। इस मार्ग पर चंपा, पाटलिपुत्र, वैशाली, राजगृह, गया, वाराणसी, प्रयाग, कौशाम्बी, कान्यकुब्ज, हस्तिनापुर, शाकल तथा तक्षशिला आदि नगर वर्तमान थे।

दूसरा व्यापारिक मार्ग पश्चिम में पाटल से प्रारंभ होकर पूर्व में कौशाम्बी तक आकर 'उत्तर पथ' में मिल जाता था। पालि साहित्य में इसे 'पुब्बन्तापरन्त' (पूर्व-पश्चिम) महाजनपथ कहा गया है। तीसरा व्यापारिक मार्ग दक्षिण में प्रतिष्ठान से उत्तर में श्रावस्ती तक जाता था। इस पर माहिष्मती, उज्जयिनी, गोनर्द्ध, विदिशा तथा कौशाम्बी स्थित थे। चौथा प्रसिद्ध व्यापारिक मार्ग भृगुकच्छ से मथुरा तक जाता था। इस रास्ते पर उज्जयिनी का नगर स्थित था। इन व्यापारिक मार्गों से होकर सौदागर वस्तु-विक्रय के निमित्त देश के सुदूर भागों में निकल जाते थे। महाभारत में एक ही स्थान से निकलने वाले व्यापारियों के समूह 'कारवाँ' को 'सार्थ' कहा गया है। जातकों में 'सार्थ' को 'सत्थ' कहा गया है। जरुदपन जातक से विदित होता है कि गाड़ियों में भाण्डों को भरकर श्रावस्ती के व्यापारियों का एक लंबा सार्थ सुदूर क्षेत्र में जाने के निमित्त निकला था। गुट्टिल जातक के अनुसार वाराणसी के व्यापारियों ने उज्जयिनी के लिये अपना एक समूह बनाकर प्रस्थान किया था। पंडर जातक में भी इस प्रकार की व्यापार-मंडली का उल्लेख मिलता है। सुप्पारक जातक के अनुसार सात सौ व्यापारियों के एक लंबे 'सार्थ' ने व्यापार के लिये विदेश को प्रस्थान किया था। महाभारत के वनपर्व में एक 'महासार्थ' का वर्णन मिलता है। इसमें हाथी, घोड़े तथा रथों का बाहुल्य था। इसमें गाय, खरोष्ट्र, अश्व तथा पैदल चलने वालों की बहुसंख्या थी। इसमें युवक, स्थविर, बालक तथा स्त्रियाँ भी सम्मिलित थीं। विशालता के कारण यह महासार्थ मनुष्यों का समुद्र सा प्रतीत हो रहा था। महाभारत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में सार्थ के नेता को 'सार्थवाह' कहा गया है।[१]

इस समय विदेशी व्यापार पश्चिम में भृगुकच्छ तथा पूर्व में ताम्रलिप्ति के बंदरहगाह के द्वारा संपादित होता था। भृगुकच्छ के कतिपय अन्य नाम भी थे; उदाहरणार्थ भरुकच्छ, भृगुपुर तथा भृगुतीर्थ। पश्चिमी समुद्रतट का यह सबसे बड़ा बंदरगाह था। सुप्पारक जातक में भृगुकच्छ के बंदरगाह से भारतीय व्यापारियों की जहाज-यात्रा का उल्लेख मिलता है। सुस्सोंदि जातक में इस नगर के व्यापारियों के द्वारा जलमार्ग से सुवर्णभूमि जाने का वर्णन मिलता है (**तदा च भरुकच्छवणिजा नावाय सुवण्णभूमिं गच्छति**)। ताम्रलिप्ति उत्तर-पूर्व भारतवर्ष में सामुद्रिक व्यापार का सबसे प्रधान केन्द्र था। बौद्धग्रंथों में इसे 'तामलित्त' कहा गया है।

नगर—मौर्यकालीन प्रसिद्ध नगरों में पाटलिपुत्र, कौशाम्बी, उज्जयिनी, तक्षशिला तथा पुष्कलावती उल्लेखनीय हैं। मौर्यकाल में पाटलिपुत्र अपने अभ्युदय की पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था। मेगस्थनीज इसके वैभव पर प्रकाश डालता हुआ लिखता है कि पाटलिपुत्र भारतवर्ष का प्रधान नगर था। उसने गंगा एवं सोन के संगम पर इसके सन्निवेश को स्वीकार किया है। उसके अनुसार यह नगर साढ़े नव मील लम्बा तथा पौने दो मील चौड़ा था। इसके चतुर्दिक ७०० फीट चौड़ी एवं १५ गज गहरी खाईं तथा एक ऊँची दीवाल थी, जिसमें ६४ द्वार एवं ५७० बुर्ज़ बने हुये थे। पुर के बीच राजप्रासाद की स्थिति का निर्देश करता हुआ यवनयात्री लिखता है कि यह भवन पारसीक सम्राटों के राजप्रासाद से भी अत्यधिक सुन्दर था। उसके चारो ओर देशीय वृक्षों से युक्त अनेक उद्यान थे, जिनका दृश्य नितांत अनुपम था। प्रांगण में अनेक सुन्दर मछलियों से युक्त रमणीय सरोवर बने हुये थे। मौर्य-काल में उज्जयिनी एक प्रांत-अधिष्ठान था। अशोक के एक अभिलेख के अनुसार यहाँ पर एक मौर्य राजकुमार रहता था, जो राज्यपाल का काम करता था। मौर्यों के शासन-काल में कौशाम्बी एक प्रसिद्ध राजनीतिक, धार्मिक तथा व्यापारिक केन्द्र था। इस नगर की महत्ता के कारण ही अशोक

१ "अहं सार्थस्य नेता वै सार्थवाहः शुचिस्मिते" वनपर्व, ६१, १२२।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ने कौशाम्बी में स्तंभों पर अपने लेखों को उत्कीर्ण कराया था। यह नगर भी इस समय संभवतः प्रान्त-अधिष्ठान था। कौशाम्बी के एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि अशोक ने इस स्थान पर महामात्रों की नियुक्ति की थी। लगभग इसी काल में इस नगर के भिक्षु-संघ में एक महान भेद उत्पन्न हुआ, जिसको रोकने के लिए अशोक ने सक्रिय प्रयास किया।

तक्षशिला एवं पुष्कलावती की प्रतिष्ठा बाहरी देशों में भी थी। एरियन ने तक्षशिला को समृद्धिशाली तथा जनाकीर्ण नगर बताया है। स्ट्रेबो के अनुसार यह विशाल एवं धनधान्य से संपन्न था। प्लिनी ने भी इसके महान् उत्कर्ष का उल्लेख किया है। मौर्यों के शासनकाल में यह नगर उनके साम्राज्य के उत्तर-पश्चिम प्रान्त का प्रधान केन्द्र था। बिन्दुसार के शासन-काल में अशोक तक्षशिला का राज्यपाल था। इस नगर के नागरिकों में अशोक बहुत ही प्रिय था। बौद्ध कथाओं के अनुसार अशोक के काल में कुणाल तक्षशिला का राज्यपाल था। टालमी एवं एरियन ने पुष्कलावती को भी विशाल एवं घनी आबादी वाला नगर बताया है। पेरिप्लस के अनु-सार यह नगर प्रसिद्ध व्यापारिक मार्गों पर स्थित था।

सामाजिक दशा—मौर्य-काल में वर्णव्यवस्था पर्याप्त रूप में जटिल हो चुकी थी। विवाह एवं वंशानुगत व्यवसाय के बंधन इस प्रथा के अभिन्न अंग बन चुके थे। यूनानी लेखकों ने मौर्य-कालीन जातिव्यवस्था की जटि-लता का उल्लेख किया है। मेगस्थनीज ने भारतीय समाज के सात वर्गों का वर्णन किया है—(१) दार्शनिक, (२) कृषक, (३) पशुपालक (४) कारी-गर, (५) योद्धा, (६) निरीक्षक तथा (७) मंत्री एवं न्यायाधीश। लगता है कि मेगस्थनीज ने भारतीय समाज का यह वर्गीकरण व्यवसाय के आधार पर किया है। यूनानी लेखक हेरोडोटस ने भी मिश्र के समाज का वर्गीकरण व्यवसाय के आधार पर कई भागों में किया था; उदाहरणार्थ पुरोहित, योद्धा, गोपालक, व्यापारी तथा नाविक।

यूनानी लेखकों ने दार्शनिक वर्ग की सबसे अधिक प्रशंसा की है। उनके अनुसार यह वर्ग समाज का बुद्धिजीवी वर्ग था। उच्च चरित्र एवं शिक्षा के कारण समाज एवं दरबार में दार्शनिकों को पर्याप्त सम्मान प्राप्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था। दार्शनिक वर्ग में ब्राह्मण एवं श्रमण सम्मिलित थे। ब्राह्मण का जीवन सरल एवं पवित्र होता था। वह विद्याभ्यास तथा धार्मिक क्रियाओं के संपादन में रत रहता था। यूनानी लेखकों ने श्रमणों का वर्गीकरण दो भागों में किया है—(१) वन में रहने वाले श्रमण तथा (२) चिकित्सक। वन में रहने वाले श्रमण फल-मूल खाते, वृक्ष की छाल पहनते तथा सुरा एवं स्त्री से दूर रहते थे। यहाँ पर संकेत संभवतः वानप्रस्थ आश्रम में जीवन व्यतीत करने वालों से है। चिकित्सक-श्रमण रोगियों को निःशुल्क सेवा करते थे। वे सर्प के द्वारा काटे हुये व्यक्ति को अच्छा कर लेते थे।

कृषक वर्ग समाज का बहुसंख्यक वर्ग था। कृषक युद्ध-कर्म एवं अन्य सेवाओं से मुक्त थे तथा कृषि-कार्य में सर्वदा लिप्त रहते थे। एरियन लिखता है कि युद्ध-काल में सैनिक कृषि को क्षति नहीं पहुँचा सकते थे तथा कृषकों को किसी रूप में तंग नहीं कर सकते थे। अतएव जिस समय सैनिक युद्ध में एक दूसरे को मारने में रत होते थे, समीप ही कृषक शांति के साथ अपने खेत को जोतते अथवा फसल को काटते हुये देखे जा सकते थे। कृषक सादगी का जीवन व्यतीत करते तथा नगर की चहल पहल से दूर रहते थे।

पशुपालक खानाबदोश का जीवन व्यतीत करते थे। कृषि को क्षति पहुँचाने वाले जीवजंतुओं को मारने के लिये उन्हें राज्य की ओर से पुरस्कार मिलता था। समाज में कारीगरों का सम्मान था। यदि कोई कारीगर को शारीरिक क्षति पहुँचाता था, तो उसे राज्य की ओर से दण्ड मिलता था। मेगस्थनीज का योद्धा वर्ग से तात्पर्य क्षत्रिय जाति से है। उसके अनुसार इस वर्ग के सदस्य स्वतंत्र एवं विलासप्रिय थे। वे युद्ध के अतिरिक्त अन्य सभी सेवाओं से मुक्त थे। निरीक्षक वर्ग में गुप्तचर आते थे। वे साम्राज्य में होने वाली प्रत्येक घटना के विषय में गुप्त सूचना रखते थे। सातवें वर्ग में मंत्री एवं न्यायाधीश सम्मिलित थे।

स्त्री-दशा—समाज में स्त्रियों की स्थिति संतोषजनक थी। विवाह के पूर्व स्त्रियाँ विद्याभ्यास कर सकती थीं। विवाहित स्त्रियाँ गृह-कार्यों में संलग्न रहती थीं। उच्च कुलों में बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी। उस समय संयुक्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिवारों के वर्तमान होने के प्रमाण मिलते हैं। विवाहित महिला का आभूषण उसका स्त्री-धन होता था। यूनानी लेखकों के अनुसार चंद्रगुप्त मौर्य के काल में सम्राट की अंगरक्षक स्त्रियाँ हुआ करती थीं। अशोक के अभिलेखों में स्त्रियों के द्वारा निरर्थक एवं अंधविश्वासमूलक आचारों के संपादन के उल्लेख मिलते हैं। अर्थशास्त्र में अवरोधन तथा अंतःपुर का उल्लेख हुआ है। इससे उच्च कुलों में पर्दे की प्रथा के प्रचलन का संकेत मिलता है। मेगस्थनीज के यात्राविवरण से ज्ञात होता है कि उस समय सती-प्रथा विद्यमान थी। कौटिल्य ने गणिकाओं का उल्लेख किया है।

चरित्र-संगठन—यूनानी लेखकों ने भारतीयों के शिष्ट एवं सादगी के जीवन पर प्रकाश डाला है। मेगस्थनीज के अनुसार उस समय चोरी कम होती थी तथा लोग घरों में ताला नहीं लगाते थे। भारतीयों का चरित्र-संगठन उच्च था। वे झूठ नहीं बोलते थे और न्यायालयों में कम जाते थे। लोग मदिरा का सेवन कम करते थे। भोजन करते समय स्वच्छता पर पर्याप्त ध्यान दिया जाता था।

दास-प्रथा—मौर्य-काल में दास-प्रथा विद्यमान थी। कौटिल्य ने इसका उल्लेख किया है। लगता है कि अन्य देशों की समता में इस समय भारतवर्ष में दासों की स्थिति संतोषजनक थी। कौटिल्य ने कहा है कि यदि स्वामी दास के साथ अनुचित व्यवहार करे, तो उसे दण्ड दिया जाय। यदि दास ऋण को चुकता कर दे, तो स्वामी उसे स्वतंत्र कर दे। स्मृतियों में कहा गया है कि यदि दास स्वामी के प्राण को बचा ले, तो राजा उसे स्वयं मुक्त कर दे (**स्वामीप्राणदोभक्तः त्यागान्तन्निष्क्रियादपि-याज्ञवल्क्य**)। मेगस्थनीज ने लिखा है कि भारतवर्ष में दास-प्रथा का नाम निशान नहीं था। उसके अनुसार भारतवर्ष के लोग विदेशियों तक को दास नहीं बनाते थे। भारतवर्ष में दासों की दशा यूनान की अपेक्षा निश्चयात्मक रूप में अच्छी थी। उन्हें संपत्ति रखने और देने का अधिकार था तथा कतिपय अवस्थाओं में वे स्वतंत्र हो सकते थे। अतएव मेगस्थनीज़ को संभवतः यूनान के कड़े नियमों की समता में कोई भी भारतीय दास न लगा हो।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कला

चन्द्रगुप्त मौर्य के काल की कला—मेगस्थनीज के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में भवनों के निर्माण में लकड़ी का प्रयोग किया जाता था। उसकी राजधानी पाटलिपुत्र के चतुर्दिक लकड़ी की एक चहारदीवारी थी। यह नगर ९ मील लम्बा तथा १½ मील चौड़ा था। आकार में यह समानान्तर चतुर्भुज के तुल्य था। इसके चारो ओर लगभग ७०० फीट चौड़ी खाईं थी। कौटिल्य ने भी नगर के चतुर्दिक चौड़ी परिखा (खाईं) के निर्माण का आदेश दिया है। यह परंपरा भारतवर्ष में पहले से चली आ रही थी। पाणिनि ने अष्टाध्यायी में 'पारिखेयी भूमि' का उल्लेख किया है (अर्थात् वह भूमि जहाँ खाईं का निर्माण किया जाय)। मेगस्थनीज के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य का राजप्रासाद पुर के मध्य में स्थित था। यह सूसा एवं एकबतना में बने हुये पारसीक सम्राटों के राजप्रासाद से अधिक सुंदर था। इसमें विशाल कमरे (हाल) बने हुये थे, जिनमें लकड़ी के स्तंभों का निर्माण किया गया था। इन स्तंभों के ऊपर सोने तथा चाँदी की पालिश की गई थी तथा उन्हें विभिन्न प्रकार की आकृतियों से सुसज्जित किया गया था।

अशोक-कालीन कला—अशोक के काल में वास्तुकला के क्षेत्र में परिवर्तन हुआ। यह नरेश बौद्धमतावलम्बी था, अतएव इसके समय का स्थापत्य इस धर्म से पर्याप्त रूप में प्रभावित दृष्टिगोचर होता है। अशोक-कालीन कला के विषय बौद्ध धर्म से घनिष्ठ रूप में सम्बन्धित हैं। उसके समय में हमारे देश के कारीगरों का परिचय यूनानी वास्तुकला के साथ विशेष रूप से हुआ। सिकन्दर ने उत्तर-पश्चिम भारतवर्ष में उपनिवेशों की स्थापना की थी। इनमें रहने वाले यूनानी शिल्पियों से भारतवर्ष के निवासियों ने भवन-निर्माण में प्रस्तर-खंडों का उपयोग करना सीखा। यही कारण है कि जहाँ चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में कारीगर गृह-विन्यास में लकड़ी का विशेष प्रयोग करते थे, वहाँ अशोक के समय में प्रस्तर-खंडों का प्रचुर उपयोग किया गया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अशोक-कालीन स्मारकों को हम कई भागों में विभक्त कर सकते हैं, उदाहरणार्थ—(१) स्तम्भ, (२) स्तूप, (३) वेदी तथा (४) चैत्यगृह। स्तंभ अशोक-कालीन वास्तुकला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं। ये चुनार के बालूदार स्तम्भों को काटकर बनाये गये हैं। उनका निर्माण एक ही प्रस्तर-खंड के द्वारा हुआ है। यह विशेषता विशेष रूप से सराहनीय है। अन्य देशों में एक ही स्तम्भ के निर्माण में कई प्रस्तर-खंडों का उपयोग किया गया था। अशोक ने लगभग तीस स्तम्भ बनवाये थे, जिनमें से केवल दस अवशिष्ट हैं। इनमें से कुछ बौद्ध तीर्थों से उपलब्ध हुये हैं (उदाहरणार्थ लुम्बिनी, सांकाश्य, कौशाम्बी एवं सारनाथ) तथा कुछ बौद्ध तीर्थों के समीपस्थ स्थानों से प्राप्त हुये हैं (उदाहरणार्थ—बखिरा, रामपुरवा, लौरिया नन्दनगढ़ तथा लौरिया अरेराज)।

बनावट की दृष्टि से बखिरा का स्तंभ अशोक के काल का पहला स्तंभ ज्ञात होता है। यह बनावट में सादा एवं अनलंकृत है। इसके शीर्ष-स्थान पर एक साधारण सिंह-प्रतिमा बनी हुई है। विद्वानों का मत है कि बखिरा दिया जाता था अशोककालीन स्तम्भ-निर्माण के का स्तम्भ अ... के प्रथम प्रयास का द्योतक है। रामपुरवा एवं सांकाश्य के स्तम्भ इसके उपरांत निर्मित किये गये होंगे। बखिरा-स्तम्भ की अपेक्षा इनके निर्माण में अधिक बारीकी दृष्टिगोचर होती है। सारनाथ का स्तम्भ अशोक के काल का सर्वोत्कृष्ट स्तम्भ है। यह उस समय के स्तम्भ-निर्माण की अन्तिम अवस्था का द्योतक है।

अशोक के स्तम्भों का निचला भाग गोलाकार है। ये प्रारम्भ में मोटे तथा उत्तरोत्तर क्रमशः पतले होते गये हैं। इनमें किसी प्रकार का काट-छाँट अथवा नक्काशी का काम नहीं मिलता। इन स्तम्भों का ऊपरी भाग कला की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसमें सर्वप्रथम एक अधोमुख कमल तथा तदनन्तर एक वृत्ताकार अथवा आयताकार निर्माण मिलता है जिसके किनारे चतुर्दिक विविध प्रकार की आकृतियों का अंकन किया गया है। इन आकृतियों में चक्र विशेष रूप से उल्लेखनीय है। विद्वानों का कथन है कि यह 'धर्म-चक्र' का द्योतक है। सबसे ऊपरी भाग में पशु-प्रतिमायें उपलब्ध होती हैं। सारनाथ स्तम्भ के शीर्ष-स्थान पर चार सिंह-प्रतिमायें बनी हुई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
हैं। ये मौर्यों की शक्ति, ऐश्वर्य एवं उनके प्रभाव के द्योतक हैं। अशोक के स्तम्भों में एक चिकनी पालिश उपलब्ध होती है, जिससे उनका सौन्दर्य निखर उठता है।

भारतीय परम्परा के अनुसार अशोक ने कई स्तूपों का निर्माण किया था, पर वे सब विनष्ट हो चुके हैं। विद्वानों का कथन है कि उसने साँची में जिस स्तूप का निर्माण किया, उसी के ऊपर वहाँ का वर्तमान वृहत् स्तूप कालान्तर में निर्मित हुआ था। बोधिगया की वेदी अशोक के काल में बनाई गई थी। इसे 'बोधिमण्ड' कहा जाता है। उसके समय में नागार्जुनी तथा बराबर पहाड़ियों की गुफाओं में आजीवकों के निवास के निमित्त चैत्यगृह बनाये गये। इन चैत्यगृहों में दो कमरे (प्रकोष्ठ) मिलते हैं—(१) बहिर्प्रकोष्ठ तथा (२) अंतःप्रकोष्ठ। बहिर्प्रकोष्ठ अंतःप्रकोष्ठ से बड़ा हुआ करता था। बराबर पहाड़ी के एक चैत्यगृह के बहिर्प्रकोष्ठ की लम्बाई ३२ फीट ६ इंच तथा चौड़ाई १९ फीट ६ इंच है। बहिर्प्रकोष्ठ की बाहरी दीवालों के ऊपर विविध आकृतियों का अंकन मिलता है। अंतःप्रकोष्ठ वृत्ताकार हुआ करता था। इन दोनों के बीच एक केन्द्रीय द्वार हुआ करता था। इन चैत्यगृहों के आधार पर कालान्तर में दक्षिण भारत में प्रचुर संख्या में चैत्यगृहों का निर्माण किया गया।

शुंगकालीन सभ्यता—(१८४ ई० पू०-७५ ई० पू०)

ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान—शुंगकाल ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थानकाल माना जाता है। अशोक एवं उसके अनुयायिओं ने बौद्ध धर्म का अवलम्बन किया। कलिंग-युद्ध के अनन्तर उसने युद्ध बन्द कर दिया। उसने घोषित किया कि भेरी-घोष धर्म-घोष होगा न कि युद्ध-घोष। मौर्यों की इस अहिंसात्मक नीति के कारण उनका ब्राह्मण सेनानायक पुष्यमित्र शुंग जलता था। हर्षचरित के अनुसार उसने अन्तिम मौर्य सम्राट बृहद्रथ की हत्या कर डाली और तदनन्तर वह स्वयं शासक बन बैठा। (**सेनानी अनार्यो पिपेष पुष्यमित्रः मौर्यं स्वामिनं बृहद्रथम्**)। पुराणों में भी वर्णन मिलता है कि पुष्यमित्र शुंग ने बृहद्रथ की हत्या कर ३६ वर्षों तक राज्य किया—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

"पुष्यमित्रस्तु सेनानी उद्धृत्य बृहद्रथम् ।
कारयिष्यति वैराज्यं षड्त्रिंशत् समा नृप ॥"

पुष्यमित्र ब्राह्मण धर्म का कट्टर अनुयायी था। वह वैदिक रीति प्रथाओं के पुनरुज्जीवन में संलग्न हो उठा। हरिवंश पुराण के अनुसार उसने परम्परागत आधार पर उस अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया, जिसका संपादन चिरकाल से नहीं हुआ था—

"औद्भिजो भविता कश्चित् सेनानी काश्यपो द्विजः।
अश्वमेधं तु कलियुगे पुनः प्रत्याहरिष्यति ॥"

अयोध्या के एक लेख के अनुसार पुष्यमित्र ने दो अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान किया (**द्विरश्वमेधयाजिनः सेनापतेः पुष्यमित्रस्य**)। उसके प्रथम अश्वमेध यज्ञ का उल्लेख पतंजलि के महाभाष्य में हुआ है। इसमें वे प्रधान पुरोहित थे (**इह पुष्यमित्रं याजयामः**)। उसके द्वितीय अश्वमेध यज्ञ का उल्लेख कालिदास के 'मालविकाग्निमित्रम्' नामक नाटक में मिलता है।

बौद्ध ग्रंथों के अनुसार उसने इस धर्म के अनुयायियों को दबाना प्रारंभ किया। दिव्यावदान के अनुसार जो उसे श्रमण-सिर प्रस्तुत करता था, उसे वह एक सौ दीनार दान में देता था (**यो मे श्रमणशिरो दास्यति, तस्याहं दीनारशतं दास्यामि**)। उसके अत्याचारों से बचने के निमित्त बौद्ध भिक्षुओं ने यवन-राज मिलिन्द की राजधानी शाकल में शरण लिया। मिलिन्द बौद्ध धर्म का अनुयायी था। क्षेमेन्द्र के अवदानकल्पलता के अनुसार उसने भारतवर्ष में स्तूपों का निर्माण कराया था—

"तत्र संदर्शनायातं भगवानिन्द्रमब्रवीत् ।
मिलिन्दो नाम राजास्मिन्देशे स्तूपं करिष्यति ॥"

मिलिन्द की मुद्राओं के ऊपर 'सोतर' (रक्षक) शब्द उत्कीर्ण मिलता है। यह पुष्यमित्र शुंग के द्वारा सताये हुये बौद्ध भिक्षुओं की रक्षा की ओर संकेत करता है। आर्यमंजुश्रीमूलकल्प में भी पुष्यमित्र शुंग को बौद्ध भिक्षुओं के संहारक के रूप में चित्रित किया गया है—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

"प्राचीं दिशिमुपादाय काश्मीरद्वारमेव तु।
नाशयिष्यति मूढः विहारान् धातुवरांस्तथा ॥
भिक्षवः शीलसंपन्नाः नाशयिष्यति स दुर्मतिः ॥

पुष्यमित्र शुंग के उत्तराधिकारियों ने बौद्ध धर्म के प्रति सहिष्णुता की नीति अपनाई। भरहुत के स्तूप पर एक स्थान पर 'शुंगानां राज्ये' शब्द उत्कीर्ण मिलते हैं। इससे स्पष्ट है कि इसका निर्माण शुंगों के काल में हुआ था। विद्वानों का अनुमान है कि पुष्यमित्र शुंग के उत्तराधिकारियों ने इसे बनवाया था।

सामाजिक दशा—जाति-प्रथा—शुङ्ग-काल में जाति-प्रथा अधिक जटिल हो गई। ब्राह्मणों के प्रधानतः छः कर्तव्य माने जाते थे—अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान एवं प्रतिग्रह। क्षत्रियों का प्रधान कार्य राज्य की रक्षा के निमित्त शस्त्र का धारण करना था। वैश्यों का प्रधान कर्त्तव्य वाणिज्य था। शूद्रों की स्थिति समाज में सबसे निम्न थी। सेवा करना इनका प्रमुख कर्त्तव्य समझा जाता था।

विवाह—शास्त्रों के अनुसार विवाह धर्म का एक आवश्यक अंग था। मनुस्मृति में कहा गया है कि जिस प्रकार संपूर्ण जीव वायु की सहायता से जीते हैं, उसी प्रकार मानव-समाज के सुसंचालन के निमित्त विवाह अनिवार्य है (**यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः। तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्वमानवाः**)। अविवाह पापतुल्य समझा जाता था (**अपतीनां तु नारीणामद्यप्रभृति पातकम्-महाभारत**)। इस समय आठ प्रकार के विवाहों के प्रचलन की सूचना मिलती है—ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, असुर, गांधर्व, राक्षस तथा पैशाच। पैशाच, असुर तथा राक्षस विवाह समाज में निम्न दृष्टि से देखे जाते थे। कन्या का विक्रय करना महा पाप समझा जाता था (**शुल्केन ये प्रयच्छन्ति स्वसुतां लोभमोहिताः। पतन्ति नरके घोरे घ्नन्ति चासप्तमात्कुलम् ॥ बौधायन**)। गांधर्व विवाह आदर की दृष्टि से देखा जाता था। ब्राह्म विवाह भी शास्त्रसम्मत था। प्राजापत्य विवाह का भी विशेष प्रचार था।

बहुविवाह—धनिक वर्ग में बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी। बहुपत्नी-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कत्व राजाओं का विलास था। ललितविस्तर में कहा गया है कि शुद्धोधन के अंतःपुर में उनकी अनेक पत्नियाँ थीं। बुद्धचरित में उनकी पत्नी माया देवी को समस्त देवियों में प्रधान बताया गया है। विलासिता को उद्देश्य बनाकर भार्यात्याग तथा नवपाणिबंध हेय दृष्टि से देखा जाता था। महाभारत में अकारण भार्यात्याग के कारण पुरुष की अधोगति बताई गई है **(एवं हि त्यजतां भार्यां नराणां नास्ति निष्कृतिः)।**

विवाह-विच्छेद—इसके भी यत्र-तत्र संकेत मिलते हैं। कण्हदिपायन जातक में एक स्त्री पति के प्रति प्रेम के अभाव के कारण विवाह-निराकरण घोषित करती है। मज्झिम निकाय में एक स्त्री को पतिपरित्यक्ता होने के कारण हम पुनर्विवाह के लिये प्रस्तुत पाते हैं। ऐसी परिस्थिति में मनु ने स्त्री का पुनर्विवाह शास्त्रसम्मत बताया है। धर्मसूत्रों में भी प्रोषितभर्तृका को पति की पंचवर्षप्रतीक्षा के उपरान्त दूसरे विवाह की आज्ञा दी गई है, उदाहरणार्थ—वसिष्ठ धर्मसूत्र। पति के क्लीव हो जाने पर पराशर ने स्त्री को दूसरा पति स्वीकार करने की आज्ञा दी है।

विधवा-विवाह—नागरिकों के उदार वर्ग में विधवा-विवाह का प्रचलन था। महाभारत में पति की मृत्यु के पश्चात् देवर से विवाह के लिये अनुमति दी गई है (नारी तु पत्यभावे देवरं कृणुते पतिम्)। इस ग्रन्थ में स्पष्ट शब्दों में विधवा युवती का पुनर्विवाह धर्मसंगत बताया गया है। उसके पुत्र को देवपूजा तथा पिंडदान का पूर्ण अधिकार था। वसिष्ठ ने संयोग के पूर्व ही पति के मर जाने पर बाला को अक्षतयोनि तथा उसके पुनर्विवाह को लोकाचार के अनुकूल बताया है—

"पाणिग्रहे मृते बाला केवलं मंत्रसंस्कृता।
सा चेदक्षतयोनिः स्यात्पुनः संस्कारमर्हति॥"

स्त्री-दशा—समाज में स्त्रियों की स्थिति संतोषजनक थी। महाभारत में भार्याहीन गृहस्थ का जीवन शून्य माना गया है (भार्याहीनगृहस्थस्य शून्यमेव गृहं भवेत्)। भार्या संपूर्ण रोगों तथा दुःखों के निदान का कारण मानी जाती थी—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"न च भार्यासमं किंचिद्विद्यते भिषजां मतम् ।
औषधं सर्वदुःखेषु सत्यमेतद्ब्रवीमिति ॥"
(महाभारत)

गृहिणीहीन गृह कान्तार-तुल्य समझा जाता था (गृहं तु गृहिणीहीनं कान्तारादतिरिच्यते—महाभारत)। वाल्मीकि ने रामायण में पति तथा पत्नी के शाश्वत् एवं चिरसम्बन्ध के आदर्श का प्रतिपादन किया है। मनु ने भर्ता तथा अंगना को अभिन्न स्वीकार किया है। स्त्री-समाज में शिक्षा का प्रचार विशेष रूप में था। मनु ने सभ्य कुल की महिलाओं के द्वारा दैनिक, मासिक तथा वार्षिक आय एवं व्यय का विवरण प्रस्तुत किये जाने का उल्लेख किया है। उच्च कुल की कन्यायें विदुषी हुआ करती थीं। पत्र लिखने एवं समझ लेने का अभ्यास विवाहिता के लिये अनिवार्य समझा जाता था। कुलीन महिलायें कभी-कभी शास्त्र-निपुण हुआ करती थीं। ललितविस्तर के अनुसार गोपा नामक राजकन्या विविध शास्त्रों में प्रवीण थी (शास्त्र विधिज्ञकुशला)। इसमें उसे बहुश्रुता तथा कलामर्मज्ञा बताया गया है।

पर्दा-प्रथा—उच्च कुलों में पर्दे की प्रथा प्रचलित थी। रामायण में कहा गया है कि जिस सीता को आकाशचारी भी नहीं देख पाते थे, उस सीता को वनगमन के अवसर पर राजमार्ग के लोग देख रहे थे—

"या न शक्या पुरा द्रष्टुं भूतैराकाशगैरपि।
तामद्य सीतां पश्यन्ति राजमार्गगता जनाः ॥"

केवल विवाह, स्वयंवर, पूजा तथा व्यसन के अवसर पर ही स्त्रियाँ बाहर आ सकती थीं (न क्रतौ न विवाहे च दर्शनं दुष्यति स्त्रियः—रामायण)। महाभारत में राजकुल की स्त्रियों को सूर्य तथा चन्द्रमा द्वारा भी अदर्शनीय बता कर पर्दे की प्रथा का समर्थन किया गया है—

"या नापश्यच्चन्द्रमा नैव सूर्यो रामाः काश्चिता एतस्मिन्नरेन्द्रे।
महावनं गच्छति कौरवेन्द्रे शोकेनार्ता राजमार्गं प्रपेदुः ॥"

ललितविस्तर में गोपा नामक राजकन्या मुख का प्रतिच्छादन कर राजसभा में आती है। इस समय समाज में इस प्रथा के विरुद्ध धीरे-धीरे जागृति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होने लगी थी। ललितविस्तर में मन की शुद्धता को प्रधान तथा अवगुण्ठन का गौण बताकर इस प्रथा का खंडन किया गया है।

सती-प्रथा—उच्च कुल की महिलायें पति की मृत्यु के पश्चात् सती हो जाती थीं। महाभारत में हम माद्री को सती होने की कामना करते हुये पाते हैं (**अहमेवानुयास्यामि भर्तारमपलायिनम्**)। स्मृतिकारों ने इस प्रथा को प्रोत्साहन प्रदान किया था। विष्णुस्मृति के अनुसार सती होने पर भार्या पति के साथ दूसरे लोक में भी जा सकती है—

"मृतोऽपि बांधवः शक्तो नानुगन्तुं प्रियं जनम्।
जायावर्जं हि सर्वस्य याम्यः पंथा विरुध्यति॥"

आर्थिक दशा

व्यवसाय—इस समय व्यवसाय का दूरतर विकास हुआ। मिलिन्द-प्रश्न में व्यावसायिकों की एक लम्बी तालिका उपलब्ध होती है—उदाहरणार्थ माला बनाने (मालाकार), सुनार (सुवण्णकार), चाँदी पर काम करने वाले (सज्झकार), शीशे पर काम करने वाले (सीसकार), टिन पर काम करने वाले वाले (तिपुकार), लोहार (लोहकार), ताम्रकार (वट्टकार), पीतल पर काम करने वाले (अयकार), जौहरी (मणिकार), कुम्हार (कुंभकार), वेणु बनाने वाले (वेणुकार), नमक बनाने वाले (लोणकार), चर्मकार (चम्मकार), रस्सी बनाने वाले (रज्जुकार), सूत बनाने वाले (सुत्तकार), धनुष की प्रत्यंचा बनाने वाले (जियकार), बाण तैयार करने वाले (उसुकार), चित्रकार (चित्त-कार), रँगरेज (रंगकार), धोबी (रजक), जुलाहे (तन्तुवाय), दर्जी (तुन्नवाय), गंध तैयार करने वाले (गंधिक), रथ बनाने वाले (रथकार), हाथीदाँत पर काम करने वाले (दन्तकार), टोकरी बनाने वाले (विलिवकार) तथा धनुष बनाने वाले (धनुकार)।

इस समय श्रम-विभाजन के सिद्धान्त का प्रचार हुआ तथा व्यवसाय वंशानुगत होने लगा। प्रत्येक व्यवसाय यथा शिल्प के पालन करने वाले लोग बहुधा बस्ती के एक ही भाग में संगठन बनाकर रहते थे। इस संगठन को श्रेणी कहा जाता था। प्रत्येक श्रेणी का एक प्रधान होता था, जिसे लोग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'ज्येष्ठक' कहते थे। श्रेणी के सदस्यों को समुदाय के द्वारा बनाये हुये नियम तथा व्यवस्था का सम्मान एवं पालन करना पड़ता था। शिल्पी तथा व्यावसायिक प्रायः जनाकीर्ण केन्द्रों में रहते थे, क्योंकि उनकी कला का मूल्य क्रय-विक्रय की सुविधा के कारण वहीं पर था।

मुद्रायें—इस काल में मुद्रा को पूर्ण रूप से क्रय-विक्रय का साधन बनाया जा चुका था। इस समय के ग्रंथों में सोने, चाँदी तथा ताँबे के सिक्कों के पर्याप्त उल्लेख मिलते हैं। सुवर्ण-मुद्रा को 'निष्क', 'सुवर्ण', 'सुवर्णमासक' तथा 'हिरण्य' कहा जाता था। ताँबे के सिक्कों को 'कार्षापण' कहा जाता था तथा उनका प्रचार विशेष रूप से था।

व्यापार—मुद्रा-व्यवहार, शिल्पियों की निपुणता तथा व्यावसायिक केन्द्रीकरण ने अन्तःप्रांतीय व्यापार के विकास को सरल किया। व्यापारी वस्तुओं को उत्पादन-केन्द्रों से एकत्र करते थे तथा धन-लाभ के निमित्त उन्हें सुदूर भागों में विक्रय के निमित्त भेजते थे। मार्ग में चोर तथा डाकुओं के भय के कारण इस प्रकार का व्यापार अकेले ही करना दुष्कर था, अतएव सहभागिता के सिद्धान्त पर वे संघ बनाते थे तथा वस्तुओं को गाड़ियों में भरकर एक बड़ी व्यापार-मंडली के साथ बाहर निकलते थे। बड़े व्यापारी 'श्रेष्ठि' कहलाते थे। इस समय के एक श्रेष्ठि के कोष में अस्सी करोड़ मुद्रायें वर्तमान थीं।

इस समय सामुद्रिक व्यापार का भी विकास हुआ। जलपोत-निर्माण इस काल का एक प्रिय व्यवसाय था। अधिक संख्या में यात्रियों के बैठने तथा व्यापारिक वस्तुओं के रखने की सुविधा के दृष्टिकोण से बड़े जहाजों का निर्माण होने लगा। समुद्र-तट पर उनके रुकने तथा माल को लादने एवं उतारने की आवश्यकता के प्रश्न ने अनेक बंदरगाहों को जन्म दिया, जिन्हें 'पत्तन' कहा जाता था। इनमें भृगुकच्छ, शूर्पारक, रोरुक तथा ताम्रलिप्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन बंदरगाहों से हाथीदाँत, मोती, रेशमी वस्त्र तथा हीरे बाहरी देशों में भेजे जाते थे।

नगर—उच्च व्यावसायिक संवर्द्धन तथा व्यापारिक विकास के कारण इस समय समृद्धिशाली नगर वर्तमान थे; जिनमें पाटलिपुत्र, कौशाम्बी, वैशाली,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मथुरा, हस्तिनापुर, वाराणसी तथा तक्षशिला विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पतंजलि ने पाटलिपुत्र के प्रासादों एवं प्राकारों का उल्लेख किया है (**पाटलिपुत्रकाः प्रासादाः, पाटलिपुत्रकाः प्राकाराः इति-महाभाष्य**)। लगता है कि शुंगों के काल में पाटलिपुत्र के ऊपर यवनों का आक्रमण हुआ था, जिसका उल्लेख युग पुराण में हुआ है—

"ततः पुष्पपुरे प्राप्ते कर्दमे प्रथिते हि ते।
आकुलाः विषयाः सर्वे भविष्यन्ति न संशयः॥"

ललितविस्तर में मथुरा को एक वैभवशाली नगर के रूप में चित्रित किया गया है (**इयं मथुरा नगरी ऋद्धा च स्फीता च क्षेमा च सुभिक्षा चाकीर्णबहुजनमनुष्या**)। पतंजलि ने मथुरा के निवासियों को सांकाश्य एवं पाटलिपुत्र के निवासियों से अधिक सभ्य बताया है (**सांकाश्यकेभ्यश्च पटलिपुत्रकेभ्यश्च माथुरा अभिरूपतरा इति-महाभाष्य**)। महाभारत के अनुसार विभिन्न शस्त्रों के द्वारा सुरक्षित होने के कारण हस्तिनापुर के भीतर शत्रुओं का प्रवेश पाना दुष्कर था। इसके प्राकार में गोपुर बने हुये थे। नगर का भीतरी भाग कई राजमार्गों के द्वारा विभक्त था। सड़कों के दोनों ओर हर्म्य, प्रासाद तथा आपण सुशोभित थे। राजमहल नगर के मध्य में स्थित था। इसमें अनेक सरोवर एवं उद्यान सुशोभित थे। इसके नागरिक धन्यधान्य से संपन्न थे। वे वर्णाश्रम-व्यवस्था के पालन करने वाले, धर्मनिरत, होमपरायण तथा यज्ञादि में श्रद्धा रखते थे। इसके भीतर सूत, मागध तथा वंदी आदि अपने कर्म में निरत थे।

कला—शुंग-काल में वास्तुकला का भी विकास हुआ। पुरातत्त्ववेत्ताओं के अनुसार साँची-स्तूप के तोरणों का निर्माण शुंग-काल में हुआ। इनमें कपिलवस्तु, श्रावस्ती तथा कुशीनगर आदि नगरों का अंकन मिलता है। इन नगरों की ऊँची दीवालें, गहरी खाईं तथा पुर-द्वार (अट्टालक) आदि स्पष्ट रूप से इन तोरणों पर अंकित किये गये हैं। इनसे तत्कालीन वास्तुकला की विशेषताओं को समझने में योग मिलता है।

शुंग-काल में बेसनगर (विदिशा) कला का एक केन्द्र था। इस स्थान पर एक शुंगकालीन प्रस्तर-स्तंभ अद्यावधि विद्यमान है। यह हिन्दू धर्म से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संबन्धित प्रथम प्रस्तर-स्मारक है। इसके पूर्वकालीन अशोक के प्रस्तर-स्मारकों का संबन्ध बौद्ध-धर्म से था। वेसनगर के स्तंभ के ऊपर एक लेख उत्कीर्ण मिलता है, जिसके अनुसार तक्षशिला-निवासी एवं वैष्णवमताव-लंबी हेलिओडोरस यवन-राज अन्तिआलकिदास के राजदूत के रूप में महा-राज भागभद्र के दरबार में विदिशा आया हुआ था।

कुषाणकालीन सभ्यता

बौद्ध धर्म का संरक्षण एवं विकास—बौद्ध धर्म के इतिहास में कनिष्क का राज्यकाल सीमाचिन्ह के समान प्रमुख माना जाता है। वह बौद्ध धर्म का महान संरक्षक था। उसके राज्यकाल में बौद्ध धर्म के विकास के निमित्त विविध कार्य संपन्न किये गये। इस समय बौद्ध भिक्षुओं ने मध्य एशिया एवं चीन में इस धर्म का प्रसार किया। कनिष्क ने पुरुषपुर में एक विशाल स्तूप का निर्माण किया। इस स्तूप का वर्णन चीनी ग्रंथों में भी मिलता है। विदेशी यात्री इसे देखकर आश्चर्य-चकित हो उठते थे। फाहियान के अनुसार भारतवर्ष का सबसे सुन्दर स्तूप यही था। कनिष्क ने काश्मीर के कुंडलवनविहार में बौद्ध भिक्षुओं की एक वृहत् सभा की थी। इसके आयो-जन का उद्देश्य बौद्ध संघ के भेद को रोकना था। इस सभा में त्रिपिटकों के अलिखित भागों को लेखबद्ध किया गया। हुयेनसांग लिखता है कि इस सभा में सूत्रपिटक, विनयपिटक एवं अभिधर्मपिटक की टीकाओं (विभाषा) का संग्रह किया गया। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि कनिष्क अशोक के समान एक धर्मसहिष्णु सम्राट था। वह यूनानी, पारसीक एवं हिन्दू देवताओं को आदर की दृष्टि से देखता था।

बौद्धिक प्रगति—कनिष्क का दरबार तत्कालीन प्रसिद्ध विद्वानों के द्वारा सुशोभित था; उदाहरणार्थ पार्श्व, वसुमित्र, अश्वघोष, चरक, नागार्जुन, संघरक्ष, बुद्धदेव, घोषक तथा धर्मत्रात। पार्श्व कनिष्क का धार्मिक आचार्य था। वह सर्वास्तिवाद संप्रदाय का उन्नायक था। काश्मीर की बौद्धसभा का वह अध्यक्ष निर्वाचित किया गया था। इस सभा में उसके लगभग ५०० शिष्य सम्मिलित थे। वसुमित्र भी कनिष्क के समय का एक प्रसिद्ध बौद्ध

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आचार्य माना जाता था। उपर्युक्त बौद्ध सभा में उसने सक्रिय भाग लिया था। त्रिपिटकों की टीका के संकलन में उसका योगदान सबसे अधिक था। प्रकरणपद एवं धातुकाय के संपादन का श्रेय इसी को था। उसने संगीत-सूत्र की भी रचना की थी। अश्वघोष एक बहुमुखी प्रतिभा वाला विद्वान था। भारतीय परंपरा के अनुसार कनिष्क उसे पाटलिपुत्र से पुरुषपुर ले आया था। वह बुद्धचरित, सूत्रालंकार, सारिपुत्रप्रकरण, सौन्दरानन्द, श्राद्धोत्पाद-शास्त्र तथा राष्ट्रपाल नाटक आदि ग्रंथों का रचयिता माना जाता है। चरक ने चरकसंहिता की रचना की, जो कि चिकित्साशास्त्र का एक उच्चकोटि का ग्रंथ माना जाता है।

धर्मत्रात वसुमित्र का मातुल था। उसने 'उदानवर्ग' नामक ग्रन्थ का संग्रह किया, जो 'धम्मपद' का संस्कृत पाठांतर है। घोषक 'अभिधर्मामृत शास्त्र' नामक ग्रन्थ का रचयिता माना जाता है। बुद्धदेव का नाम मथुरा के स्तंभलेख में भी उत्कीर्ण मिलता है। काश्मीर की बौद्ध सभा के कार्यों में उसने भी सक्रिय भाग लिया था।

कला—कनिष्ककालीन पुरुषपुर नामक नगर कला का एक उत्कृष्ट उदाहरण माना जाता था। उसने इस नगर में मठ बनवाये। उसके द्वारा पुरुषपुर में निर्मित बुर्ज़ वास्तुकला का एक ज्वलंत प्रतीक था। विद्वानों का कथन है कि इस के भग्नावेष पर आधुनिक पेशावर स्थित है। कनिष्क ने काश्मीर में कनिष्कपुर नामक एक नगर का निर्माण किया था। कनिंघम का मत है कि श्रीनगर का यह एक समीपस्थ नगर था। स्ताइन तथा स्मिथ महोदयों ने कनिष्कपुर की पहचान काश्मीर में स्थित आधुनिक कानिसपुर से की है।

महायान धर्म के प्रभाव के कारण कनिष्क के काल में गौतम बुद्ध की मूर्तियाँ बनाई गईं। इन मूर्तियों का निर्माण गंधार-शैली में हुआ। इनमें भगवान् बुद्ध खड़े (स्थानक) तथा बैठे हुये (आसीन) प्रदर्शित किये गये हैं। इनमें केश कुटिल मिलते हैं।

गुप्तकालीन सभ्यता

शासन-व्यवस्था—फाहियान ने अपने यात्राविवरण में गुप्त सम्राटों की शासन-व्यवस्था की पर्याप्त प्रशंसा की है। उसके अनुसार साम्राज्य में चतुर्दिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
शांति एवं ऐश्वर्य का वातावरण था। लोगों के व्यक्तिगत मामलों में राज्य की ओर से कोई भी हस्तक्षेप नहीं था। मार्ग में चोर डाकुओं का कहीं भी भय नहीं था। सम्राट प्रजा की भलाई में संलग्न रहता था। दण्डविधान बहुत साधारण था। मृत्युदण्ड नहीं दिया जाता था। बारंबार अपराध करने पर केवल करच्छेद की सजा दी जाती थी। दण्डविधान की सरलता की ओर स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ के लेख में भी संकेत किया गया है।

सम्राट का स्थान—सम्राट साम्राज्य का सर्वोच्च पदाधिकारी था। उसकी दैवी उत्पत्ति में लोगों का विश्वास था। प्रयाग की प्रशस्ति में समुद्रगुप्त को देव कहा गया है। इसके अनुसार वह मनुष्य वहीं तक था, जहाँ तक कि वह लौकिक क्रियाओं का अनुष्ठान करता था। अन्यथा वह और बातों में देवता था। प्रयाग-प्रशास्ति में उसकी तुलना कुवेर, वरुण, इन्द्र तथा यमराज आदि से की गई है (**धनदवरुणेन्द्रान्तकसमस्य**)। वह 'परमदैवत' उपाधि धारण करता था। यह उपाधि उसकी दैवी उत्पत्ति की ओर संकेत करती है।

मंत्रिमंडल—सम्राट की सहायता के लिये एक मंत्रिमंडल हुआ करता था। इसके सदस्यों को अमात्य तथा सचिव कहते थे। उदयगिरि के लेख के अनुसार सचिव-पद परंपरागत था (**अन्वय-प्राप्तसाचिव्य**)। अमात्य की नियुक्ति में योग्यता को भी प्रधानता दी जाती थी। उदाहरणार्थ चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का सांधिविग्रहिक अमात्य वीरसेन एक निपुण कवि तथा व्याकरण न्याय एवं राजनीति का पंडित था (**शब्दार्थन्यायलोकज्ञः कविः पाटलिपुत्रकः**—उदयगिरि का लेख)। समुद्रगुप्त का मंत्री हरिषेण एक निपुण कवि एवं गद्यकार था। याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार सम्राट विद्वान् एवं पवित्र आचरण वाले व्यक्तियों को अपना मंत्री बनाता था (**सः मंत्रिणः प्रकुर्वीत् प्राज्ञान्मौलान् स्थिरान् शुचीन्**)।

प्रान्तीय शासन—शासन की सुविधा के निमित्त साम्राज्य का वर्गीकरण प्रान्तों में किया जाता था। प्रान्त को भुक्ति कहा जाता था। गुप्तकालीन प्रांतों में अहिच्छत्र भुक्ति, श्रावस्ती भुक्ति, कौशाम्बी भुक्ति, वैशाली भुक्ति तथा पुंड्रवर्द्धन भुक्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। राज्यपाल को 'उपरिकमहाराज' कहा जाता था। सीमा-प्रान्तों के राज्यपाल को 'गोप्ता' कहा जाता था। इस

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पद पर प्रायः राजकुमार नियुक्त किए जाते थे। उदाहरणार्थ चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के काल में उनका कनिष्ठ पुत्र गोविन्दगुप्त वैशाली प्रान्त का राज्यपाल था।कभी-कभी सुयोग्य कर्मचारी भी राज्यपाल के पद पर नियुक्त किये जाते थे। जूनागढ़ के लेख के अनुसार पर्णदत्त अपनी विलक्षण योग्यता के कारण सुराष्ट्र प्रान्त का राज्यपाल बनाया गया था—

**"सर्व्वेषु भृत्येष्वपि संहतेषु यो मे प्रशिष्यान्निखिलान्सुराष्ट्रान्।
आं ज्ञातमेकःखलु पर्णदत्तो भारस्य तस्योद्वहने समर्थः॥**

अपने सहायक कर्मचारियों की नियुक्ति राज्यपाल स्वयं करता था।

जिला-शासन—प्रान्तों का वर्गीकरण जिलों में किया जाता था। जिले को 'विषय' कहा जाता था। जिलाधीश की सहायता के लिये एक समिति होती थी, जिसमें चार सदस्य हुआ करते थे—(१) नगरश्रेष्ठि (पुर के पूँजीपतियों का मुखिया), (२) सार्थवाह (जिले के व्यापारियों का प्रधान), (३) प्रथम कुलिक (व्यवसायिकों का प्रतिनिधि) तथा (४) प्रथम कायस्थ (लेखक)। जिले का एक प्रधान नगर हुआ करता था, जिसे 'अधिष्ठान' कहते थे। जिलाधीश का कार्यालय यहीं पर विद्यमान होता था।

नगर-शासन—नगर-शासन के निमित्त एक प्रधान कर्मचारी हुआ करता था। इसके दो प्रधान कर्त्तव्य थे—(१) नगर की रक्षा तथा (२) दुष्टों का दमन। इस पदाधिकारी से आशा की जाती थी कि उसका व्यवहार पुरवासियों के साथ सहानुभूति एवं आत्मीयता से परिपूर्ण हो। जूनागढ़ के लेख में गिरिनगर के प्रधान अधिकारी चक्रपालित का उल्लेख हुआ है। वह यहाँ के नागरिकों को अपने पुत्र के समान मानता एवं उनके दोषों को दूर करने की चेष्टा करता था (**यो लालयामास च पौरवर्गान् स्वस्येव पुत्रान्सुपरीक्ष्य दोषा.**)। उसने नागरिकों के लाभ के निमित्त सुदर्शन कासार का जीर्णोद्धार किया था। नगराधीश के पद पर प्रायः योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति की जाती थी। जूनागढ़ के लेख के अनुसार चक्रपालित सब प्रकार से योग्य था तथा उसमें संपूर्ण वांछनीय गुण विद्यमान थे। वह क्षमा, प्रभुत्व विनय, नय, शौर्य, दाक्ष्य, दान तथा दाक्षिण्य आदि सद्‌गुणों का केन्द्रविन्दु था। नगर-शासन के लिये एक सभा भी होती थी, जिसे प्राचीन ग्रंथों में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
'पौर' कहा गया है। बृहस्पति के अनुसार यह नगर में 'शान्तिक कर्म' अर्थात् शांति की व्यवस्था करती थी। इसके अतिरिक्त 'पौष्टिक कर्म' अर्थात् नागरिकों के हित में कार्य करना इसका कर्तव्य समझा जाता था। नगर-सभा के अन्य सार्वजनिक कार्यों में सभागृह, सरोवर, मन्दिर एवं विश्रामशाला का निर्माण तथा अनाथ एवं दरिद्रों की सहायता उल्लेखनीय है। नगर-सभा का एक कार्यालय होता था, जहाँ इसकी बैठक होती थी। प्रयाग के सन्निकट भीटा नामक स्थान में इस प्रकार के एक कार्यालय के एक भग्नावशेष प्राप्त हुये हैं। नालंदा से एक मुद्रा मिली है, जिस पर 'पुरिका' शब्द उत्कीर्ण मिलता है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि नगर-सभा की एक मुद्रा भी होती थी, जिससे इस सभा के विशिष्ट लेख मुद्रित किये जाते थे।

ग्राम-शासन—ग्राम शासन की सबसे छोटी इकाई थी। ग्राम-शासन का कार्य प्रधानतः ग्राम-सभा के द्वारा संपादित होता था। इसे ग्राम की भूमि का विवरण प्रस्तुत करना पड़ता था। ग्रामवासियों के लाभ के निमित्त इसे विविध चेष्टायें करनी पड़ती थीं; उदाहरणार्थ सभा-गृह का निर्माण, रक्षाव्यवस्था, स्वच्छताव्यवस्था, सरोवर-निर्माण तथा असहाय व्यक्तियों के भोजन एवं वस्त्र का प्रबंध। ग्राम-सभा का सबसे प्रधान सदस्य 'ग्रामिक' (मुखिया) होता था। अन्य सदस्यों को 'महत्तर' कहा जाता था। 'महत्तर' ग्राम के प्रतिष्ठित एवं कुलीन व्यक्तियों को कहा जाता था। गुप्तकालीन अभिलेखों में ग्राम-सभा के लिये 'पंचमंडली' तथा 'ग्रामजनपद' शब्द आते हैं।

न्याय-शासन—न्याय-शासन का कार्य प्रधानतः राजकीय न्यायालयों द्वारा संपन्न किया जाता था। मृच्छकटिक में न्यायालय के लिये 'अधिकरण-मण्डप' तथा न्यायाधीश के लिये 'अधिकरणिक' शब्द आते हैं। 'अधिकरणिक' के पद पर योग्य व्यक्ति की नियुक्ति की जाती थी। मृच्छकटिक में अधिकरणिक की योग्यता के विषय में कहा गया है कि उसे शास्त्रज्ञ, छल कपट को जानने में कुशल, वाग्मी, क्रोधरहित, शत्रु एवं मित्र दोनों के लिये समान, पूरी बातों को सुनने के अनंतर निर्णय देने वाला, दुर्बलों का रक्षक, धूर्तों के लिये दण्ड का दाता, धार्मिक, निर्लोभी, वास्तविक रहस्य का प्रकाशक, दूसरों के हृदय को जानने में कुशल तथा सम्राट के क्रोध का निवारक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होना चाहिये। न्यायाधीश की सहायता पहुँचाने के निमित्त कुछ अन्य कर्मचारी भी हुआ करते थे; उदाहरणार्थ इसे मंत्रणा प्रदान करने वाले कर्मचारी, दूत, गुप्तचर तथा मुहर्रिर आदि।

न्यायालयों में प्रमाण भी लिया जाता था। सभी प्रकार के मनुष्यों की गवाही ठीक नहीं मानी जाती थी। केवल तपस्वी, दानशील, कुलीन, सत्यवादी, ऋजु तथा चरित्रवान् व्यक्तियों का प्रमाण ठीक माना जाता था। स्त्री, बालक, वृद्ध, पाखण्डी, उन्मत्त तथा लूले-लँगड़े प्रमाण के अयोग्य माने जाते थे। लोगों का विश्वास था कि सत्य प्रमाण देने वाला व्यक्ति मरने पर श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त करता है और इस लोक में उत्तम कीर्ति पाता है।

इस स्थान पर उल्लेखनीय है कि राजकीय न्यायालयों में बहुधा बड़े मुकदमें ही निर्णय के निमित्त आते थे। छोटे मुकदमों का फैसला प्रायः स्थानीय समितियों एवं समुदायों द्वारा किया जाता था। स्थानीय न्यायालयों में तीन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—(१) श्रेणी, (२) पूग तथा (३) कुल। इन तीनों समितियों को अपने-अपने क्षेत्रों में निर्णय देने का अधिकार राज्य की ओर से प्राप्त था। श्रेणी व्यावसायिक समिति को कहते थे। इस समिति के कुछ रीति-रवाज़ थे, जिन्हें स्मृतियों में श्रेणी-धर्म कहा गया है। यह समिति श्रेणीधर्म के अनुसार झगड़े का निपटारा करती थी। पूग जातिसमिति को कहा जाता था। कुल एक ही परिवार के सदस्यों के समूह को कहा जाता था। श्रेणी के समान पूग तथा कुल के भी निश्चित नियम थे, जिन्हें क्रमशः पूगधर्म तथा कुलधर्म कहा जाता था। इन्हें राज्य की ओर से मान्यता प्राप्त थी। ये समितियाँ इन्हीं के अनुसार झगड़ों का फैसला करती थीं। यदि कुल, जाति तथा श्रेणी के सदस्य अपने धर्म का पालन नहीं करते थे, तो राज्य उन्हें दण्ड देता था—

"कुलानि जातीः श्रेणीश्च गणाञ्जानपदानपि।
स्वधर्माच्चलितान्राजा विनीय स्थापयेत्पथि॥"

कर-व्यवस्था—राजकीय आय के प्रधान साधन कर थे। गुप्त-अभिलेखों में 'उद्रंगकर' का उल्लेख मिलता है। कुछ क्षेत्रों में इसे 'भागकर' भी कहा जाता था। यह भूमिकर था। लगता है कि भूमि का छठा भाग कर के रूप

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
में वसूल किया जाता था। इसीलिये सम्राट को 'षष्टांशवृत्ति' कहा जाता था (**षष्टांशवृत्तेरपि धर्म एषः**—अभिज्ञानशकुन्तलम्)। गुप्त-अभिलेखों में 'भागकर' का भी उल्लेख मिलता है। यह भोगविलास की सामग्री के ऊपर लगाया जाता था। चुंगी से राज्य को काफी आमदनी होती थी। चुंगी को 'शुल्क' कहा जाता था। चुंगी का कार्यालय प्रायः नगर के प्रवेश-द्वार पर बना होता था। यहाँ पर सौदागरों से नाम, पता तथा बेची जाने वाली वस्तु की संख्या एवं तौल आदि पूछ लेने के उपरान्त उनसे चुंगी वसूल की जाती थी। कभी-कभी नगर की बाजारों में भी सौदागरों से चुंगी वसूल करने के लिये राजपुरुष घूमते रहते थे। मृच्छकटिक में कहा गया है कि नगरों में चुंगी वसूल करने वाले कर्मचारी उसी प्रकार चक्कर काटते हैं, जिस प्रकार भौंरे वृक्ष तथा पुष्पों के चतुर्दिक मँडराते रहते हैं। माप और तौल को भली भाँति जाँचकर उन पर राजकीय मुहर लगाई जाती थी तथा इस रूप में उन्हें प्रमाणित किया जाता था। इसके लिये बनियों को कर देना पड़ता था। इस कर को 'प्रातिवेधनिक कर' कहा जाता था। कारीगरों से उद्योग-कर वसूल किया जाता था। इसे अभिलेखों में 'कारुकर' (अर्थात् कारीगरों से लिया जाने वाला कर) कहा गया है। यह कर दो रूपों में वसूल किया जाता था—(१) विष्टि अर्थात् बेगार के रूप में तथा (२) द्रव्य के रूप में। विष्टि छोटे कारीगरों से लिया जाता था; उदाहरणार्थ कुम्हार, बढ़ई तथा लोहार। स्मृतियों के अनुसार सम्राट छोटे कारीगरों से महीने में एक बार सार्वजनिक कार्यों में विष्टि ले सकता था। पर बड़े कारीगरों से कारुकर द्रव्य के रूप में लिया जाता था। इनमें सुनार तथा जुलाहे उल्लेखनीय हैं।

साहित्यिक विकास

काव्य—गुप्तकाल श्रेष्ठ कवियों का काल था। इस काल के कवियों का वर्गीकरण दो भागों में किया जा सकता है। पहले भाग में वे कवि आते हैं, जिनके विषय में हमारा परिचय एकमात्र अभिलेखों पर अवलम्बित है। इनकी कोई कृतियाँ उपलब्ध नहीं हैं। इस कोटि के कवियों में हरिषेण, वीरसेन तथा वत्सभट्टि उल्लेखनीय हैं। समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति के रचयिता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हरिषेण थे। यह अभिलेख गद्यपद्यमिश्रित (चंपू) शैली का उत्कृष्ट उदाहरण माना जाता है। वीरसेन चन्द्रगुप्तविक्रमादित्य के सांधिविग्रहिक अमात्य थे। ये उदयगिरि के द्वितीय गुहा-लेख के रचयिता थे। इस अभिलेख में इन्हें व्याकरण, राजनीति तथा दर्शन का मर्मज्ञ बताया गया है। वत्सभट्टि कुमार-गुप्त प्रथम के काल की मन्दसोर-प्रशस्ति के रचयिता थे। इसमें वैदर्भी शैली में रचित सुन्दर श्लोक मिलते हैं। इनकी शैली कविवर कालिदास का स्मरण दिलाती है।

द्वितीय वर्ग के कवियों की रचनायें प्राप्त हुई हैं। इन कवियों में कालि-दास, भारवि, भट्टि, मातृगुप्त तथा भर्तृमेण्ठ उल्लेखनीय हैं। कालिदास की रचनाओं में ऋतुसंहार, मेघदूत तथा रघुवंश उल्लेखनीय हैं। ऋतुसंहार में षड्-ऋतु-निरूपण मिलता है। शैली के आधार पर यह कवि की प्रथम रचना ज्ञात होती है। मेघदूत गीतिकाव्य है। इसमें विरही यक्ष मेघ को दूत बनाकर अपना प्रणय-संदेश अपनी प्रियतमा के पास भेजता है। रघुवंश संस्कृत का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य माना जाता है। यह एक अंतर्राष्ट्रीय ख्याति का ग्रन्थ माना जाता है। भारवि ने किरातार्जुनीयम् नामक महाकाव्य की रचना की। इसमें किरात एवं अर्जुन के युद्ध का वर्णन मिलता है। भट्टि ने भट्टिकाव्य की रचना की। इसका द्वितीय नाम रावणवध है। भारतीय परंपरा के अनु-सार मातृगुप्त काश्मीर के सम्राट थे। इन्होंने भर्तृमेण्ठ का सम्मान किया था। भर्तृमेण्ठ ने हयग्रीववध की रचना की थी। राजशेखर ने अपने से महान् कवि केवल वाल्मीकि तथा भर्तृमेण्ठ को स्वीकार किया है।

कथा—डाक्टर अल्टेकर का कथन है कि विष्णुशर्मा ने पंचतंत्र की रचना गुप्तकाल में की थी। इसमें कथाओं के माध्यम से जीवनोपयोगी शिक्षायें दी गई हैं। विश्व की लगभग ५० भाषाओं में इस ग्रंथ का अनुवाद हो चुका है। ५७० ई० में इसका अनुवाद पहलवी भाषा में हुआ था। सोल-हवीं शताब्दी के अंत तक इसका अनुवाद यूनानी, लैटिन, स्पैनिश, इटैलियन, जर्मन तथा अंग्रेजी भाषाओं में हो चुका था।

नाटक—इस काल के नाटककारों में कालिदास, शूद्रक तथा विशाख-दत्त उल्लेखनीय हैं। कालिदास ने तीन नाटकों की रचना की—(१) माल-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
विकाग्निमित्रम्, (२) विक्रमोर्वशीयम् तथा (३) अभिज्ञानशकुन्तलम्। मालविकाग्निमित्रम् एक ऐतिहासिक नाटक है। इसमें अग्निमित्र शुंग तथा मालविका की प्रणय-कथा का निरूपण मिलता है। इसमें पुष्यमित्र के यवनयुद्ध तथा अश्वमेध-यज्ञ का उल्लेख हुआ है। विक्रमोर्वशीयम् का नायक पुरूरवा तथा नायिका उर्वशी नामक एक अप्सरा है। अभिज्ञानशकुन्तलम् का नायक दुष्यन्त तथा नायिका शकुन्तला है। यह संस्कृत का सबसे उत्कृष्ट नाटक माना जाता है **(काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला)**। शूद्रक ने मृच्छकटिक की रचना की थी। इसे हम गुप्तकालीन सांस्कृतिक इतिहास का दर्पण मान सकते हैं। विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस तथा देवीचन्द्रगुप्तम् की रचना की। देवीचन्द्रगुप्तम् अपने वास्तविक स्वरूप में अभी तक उपलब्ध नहीं हो सका है। इसके कुछ अंश उद्धरण के रूप में रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र द्वारा रचित नाट्यदर्पण नामक ग्रन्थ में उपलब्ध हैं। देवीचन्द्रगुप्तम् की गणना ऐतिहासिक नाटकों में होती है। इसके प्राप्त उद्धरणों में चन्द्रगुप्त के द्वारा शकराज एवं रामगुप्त का वध तथा तदन्तर ध्रुवदेवी के साथ उसके विवाह का वर्णन मिलता है।

पारिभाषिक ग्रंथ—इस समय चन्द्रगोमिन् ने चान्द्र व्याकरण की रचना की। यह ग्रंथ बौद्धों में लोकप्रिय था। इसका एक तिब्बत भाषा में अनुवाद प्राप्त हुआ है। इसी समय अमरसिंह ने अमरकोष की रचना की। यह संस्कृत का सबसे प्रामाणिक कोष माना जाता है। डाक्टर अल्टेकर का कथन है कि अग्निपुराण तथा विष्णुधर्मोत्तर पुराण के कुछ भाग गुप्त-काल में लिखे गये थे। इसी समय कामन्दक ने नीतिसार की रचना की।

धार्मिक ग्रंथ—इस काल के धार्मिक ग्रंथों में स्मृतियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। याज्ञवल्क्य, नारद, कात्यायन एवं बृहस्पति गुप्त-काल की विभूति थे। इनकी रचनाओं में याज्ञवल्क्य-स्मृति सबसे विशिष्ट मानी जाती है। इसमें आचार (धार्मिक अनुष्ठान), व्यवहार (कानून) तथा प्रायश्चित्त (तपस्या) आदि का वर्णन मिलता है।

विज्ञान—गुप्त-काल में अंकगणित, नक्षत्रविद्या तथा चिकित्साशास्त्र के क्षेत्र में भी अनुसंधान किये गये। इस समय का सबसे बड़ा गणितज्ञ आर्य-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भट था। उसने आर्यभटीयम् नामक ग्रंथ की रचना की। उसने दशमलव से सम्बन्धित नवीन बातों का निर्देश किया। अलमसूदी तथा अल्बरूनी के अनुसार इनका अनुकरण कालान्तर में अरब में किया गया। आर्यभट ने पाई के मूल्य को निर्धारित किया। उसने बीजगणित के क्षेत्र में समीकरण पर कार्य किया। उसके अनुसार ग्रहण में राहु तथा केतु का कोई भी स्थान नहीं है। यह सूर्य तथा चन्द्रमा के ऊपर पृथ्वी की छाया का परिणाम है। भारतवर्ष में सर्वप्रथम उसने इस बात का निर्देश किया कि पृथ्वी अपनी धुरी पर सूर्य की परिक्रमा लगाती है। वराहमिहिर गुप्त-काल का दूसरा प्रसिद्ध वैज्ञानिक था। उसने बृहत्संहिता की रचना की। इस समय चिकित्साशास्त्र-सम्बन्धी कुछ संग्रहग्रंथ प्रस्तुत किये गये। वाग्भट प्रथम ने अष्टांगसंग्रह की रचना की। इसमें चरकसंहिता तथा सुश्रुतसंहिता का निचोड़ मिलता है। गुप्तकाल में नावनीतकम् नामक चिकित्साशास्त्र-संग्रह प्रस्तुत किया गया। इसमें भेलसंहिता, सुश्रुतसंहिता तथा चरकसंहिता के सिद्धान्तों का संकलन उपलब्ध होता है।

शिक्षा—इस समय शिक्षा का कार्य प्रधानतः गुरुकुलों के द्वारा संपादित होता था। इसके अतिरिक्त अग्रहार ग्राम भी शिक्षा के केन्द्र थे। उड़ीसा में इस समय ३६ अग्रहार ग्राम थे, जहाँ विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी। नालंदा विश्वविद्यालय का निर्माण गुप्त-काल में हुआ। हुयेन-सांग के अनुसार शक्रादित्य नामक नरेश ने उसकी नींव डाली थी। शक्रादित्य की एकता कुमारगुप्त प्रथम से की जाती है। इस नरेश के अनन्तर बुधगुप्त ने इस विश्वविद्यालय की कलेवरवृद्धि में सहयोग प्रदान किया था। तदुपरान्त तथागतगुप्त, बालादित्य तथा वज्र आदि नरेशों ने नालंदा में भवन बनवाये थे।

इस विश्वविद्यालय को लब्धप्रतिष्ठ विद्वान सुशोभित करते थे। ये अपने अध्यापन-कार्य एवं विद्वत्ता के लिए प्रसिद्ध थे। विश्वविद्यालय में प्रवेश पाना दुष्कर था। इसकी चहारदीवारी में द्वार बने थे, जहाँ पंडितों की नियुक्ति की गई थी। प्रवेश चाहने वाले विद्यार्थी की योग्यता और प्रतिभा की परीक्षा लेने के लिये दार्शनिक विषयों तथा जटिल समस्याओं पर कड़े प्रश्न पूछे जाते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थे। समुचित उत्तर देने के उपरांत ही उन्हें विश्वविद्यालय में प्रवेश मिल पाता था। बीस प्रतिशत विद्यार्थी बड़ी कठिनता के साथ इस परीक्षा में सफलता प्राप्त कर पाते थे।

इस विश्वविद्यालय में वाद-विवाद तथा विमर्श के द्वारा पठनपाठन होता था। यहाँ पर बौद्ध ग्रंथों का अनुशीलन तथा वेद, हेतुविद्या, शब्दविद्या, चिकित्साशास्त्र, योगशास्त्र, न्याय, कोष, विभाषा एवं अर्थविद्या की शिक्षा दी जाती थी। शिक्षाकार्य की सरलता के लिये नालंदा में एक बृहत् पुस्तकालय भी था, जिसमें संपूर्ण शास्त्रों के ग्रंथ एकत्र थे। इस विश्वविद्यालय की ख्याति से आकर्षित होने के कारण देश के नाना भागों तथा विदेशों से विद्यार्थी यहाँ अध्ययन के निमित्त आते थे।

सामाजिक जीवन

अन्नपान—भारतीय समाज में शाकाहार का प्रचार विशेष था। फाहियान ने संभवतः इसी ओर संकेत करते हुये लिखा है कि सारे देश में कोई अधिवासी न हिंसा करता है, न मद्य पीता है और न लहसुन प्याज खाता है। केवल चंडाल ही ऐसा करते हैं। जनपद में लोग न तो सूअर और न मुर्गी पालते हैं और न जीवित पशु ही बेंचते हैं। शाकाहार में चावल, यव, गेहूँ, दाल, फल, दूध, घी तथा मक्खन बहुत अधिक प्रचलित थे। शालि, मुहाशालि, कलम, महाब्रीहि तथा यवक नामक चावलों का व्यापक प्रयोग था। पके हुये चावल को ओदन एवं भक्त कहते थे। भोजन करते समय स्वच्छता पर पर्याप्त ध्यान दिया जाता था।

वेशभूषा—धनिक नागरिकों की वेशभूषा में पगड़ी, टोपी, कोट, दुपट्टा, पाजामा तथा जूता उल्लेखनीय हैं। पगड़ी में बेलबूटे काढ़े जाते थे तथा उनमें झालरें लटकाई जाती थीं। मुद्राओं के ऊपर भारतीय नरेश सुन्दर टोपी तथा कोट पहने हुये अंकित किये गये हैं। उत्तरीय वस्त्र के रूप में लोग बहुधा दुपट्टा धारण करते थे। राजकुल के लोग रेशमी वस्त्र का दुपट्टा ओढ़ते थे, जिसके ऊपर विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ अंकित की जाती थीं। मुद्रा-साक्ष्य के अनुसार भारतीय नरेश चूड़ीदार पाजामा पहनते थे। गुप्त-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुद्राओं के ऊपर भारतीय नरेश जूता पहने हुये दिखाये गये हैं।

आभूषण—नागरिकों के अलंकार-प्रसाधन में आभूषण विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पुरुषवर्ग केयूर, अंगुलीयक तथा वलय नामक आभूषण धारण करता था। आभूषणों का विशेष प्रचार प्रधानतः स्त्री-वर्ग में था। आभूषणों को बिना धारण किये हुये स्त्री का पति के सामने आना दोषपूर्ण समझा जाता था। वे केशपास को जूटिकाबंध नामक आभूषण से सुशोभित करती थीं। कान में कर्णाभूषण, कर्णपूर तथा बालिका नामक आभूषण धारण किये जाते थे। मालिका, मुक्तावली, हार तथा यष्टि आदि का प्रयोग आभूषण के रूप में किया जाता था। केयूर तथा कटक का प्रयोग भुजबंध के रूप में होता था। करधनी को रसना, मेखला, हेममेखला, कांची तथा कनक-किंकिणी कहा जाता था। आभूषणों को पहनने का अधिकार केवल सधवा को ही था। विधवा तथा प्रोषितभर्तृका आभूषण नहीं धारण करती थी।

उत्सव—फाहियान लिखता है कि भारतवर्ष के लोग उत्सवों के प्रेमी थे। गुप्तकालीन उत्सवों में कौमुदीमहोत्सव, वसंतोत्सव तथा रथयात्रा उल्लेखनीय हैं। शरद की पूर्णिमा के अवसर पर कौमुदीमहोत्सव मनाया जाता था। वसन्त के आगमन के अवसर पर वसंतोत्सव मनाया जाता था। इसको मधूत्सव तथा मदनोत्सव भी कहा जाता था। कौशाम्बी के नागरिक वसंतोत्सव बहुत ठाट-बाट से मनाते थे। फाहियान ने रथयात्रा के उत्सव का मनोरम विवरण किया है। उसने लिखा है कि वैशाख की अष्टमी को यात्रा निकलती है। "चार पहिये के रथ बनते हैं। रथ बीस हाथ ऊँचा होता है। ऊपर से सफेद चमकीला ऊनी कपड़ा मढ़ा जाता है। भाँति-भाँति की रँगाई होती है। देवताओं की भव्य मूर्तियाँ सोने, चाँदी तथा स्फटिक की बनती हैं। रेशम की ध्वजा तथा चाँदनी लगती हैं। चारों ओर कलँगियाँ लगती हैं। बीस रथ होते हैं। नियत दिन पर आस-पास के यति तथा गृही एकत्र होते हैं। गाने बजाने वालों को साथ ले लेते हैं। बारी-बारी से नगर में प्रवेश करते हैं। इसमें दो रात्रियाँ बीत जाती हैं। गाना, बजाना तथा पूजन होता है। प्रत्येक जनपद में ऐसा ही होता है।"

मनोविनोद के साधन—द्यूत नागरिकों के मनोरंजन का एक प्रिय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साधन था । मृच्छकटिक में एक जुआड़ी द्यूत की मुक्तकंठ से प्रशंसा करता हुआ कहता है कि जूआ खेलना मानों सिंहासनरहित राज्य प्राप्त करना है । इस ग्रन्थ में एक दूसरे स्थान पर द्यूत समस्त भौतिक सुखों की प्राप्ति का साधन माना गया है । जूये के खेल में हारा हुआ उज्जयिनी का एक नागरिक जूआ खेलने की इच्छा को जैसे-तैसे रोकता हुआ कहता कि कौड़ियों की आवाज़ मेरे मन को उसी प्रकार लुभा रही है, जिस प्रकार हाथ से राज्य के निकल जाने वाले किसी राजा के हृदय में भेरी का शब्द युद्धादि के लिये लालसा उत्पन्न कर देता है । मैं यद्यपि यह जानता हूँ कि जूआ सुमेरु शिखर से गिरने के समान हानिकर है, अतः नहीं खेलूँगा, तथापि कोकिल के कण्ठ से निकले हुये मधुर शब्द के समान पासे का शब्द मेरे मन को आकृष्ट कर रहा है । मैं तो द्यूत से अपने आप को हटाने में असमर्थ हूँ । जैसे बन्धन से छूटी हुई गर्दभी दूसरों को ताड़ित करती है, वैसे ही मैं इस गर्दभी (जूये में प्रयुक्त कौड़ी आदि) से बुरी तरह पछाड़ा गया हूँ । लोगों के मनोविनोद के कतिपय अन्य साधन भी थे, उदाहरणार्थ उद्यानयात्रा तथा पशुपक्षिपालन । वात्स्यायन ने कामसूत्र में उद्यानयात्रा का उल्लेख किया है । धनिक व्यक्तियों के घरों में एक पक्षिशाला बनी होती थी । उज्जयिनी-वेश्या वसंतसेना की पक्षिशाला में शुक, सारिका, कोयल, काक, तीतर, चातक, मोर, तथा हंस एवं कबूतर आदि पक्षी पाले गये थे । राजवर्ग के मनोविनोद का प्रिय साधन मृगया थी । शाकुन्तलम् में इसे दिलबहलाव का सर्वोत्तम साधन बताया गया है ।

दास-प्रथा—मृच्छकटिक के वर्णन से लगता है कि गुप्त-काल में दासों की स्थिति काफी शोचनीय थी। इस ग्रन्थ में एक दास स्वामी को अपने शरीर का अधीश्वर बताता है (प्रभवति भट्टकः शरीरस्य) । वह अपने दयनीय जीवन पर रोता हुआ दासता को धिक्कारता है । जब स्वामी उससे उज्जयिनी-वेश्या वसन्तसेना की हत्या कराना चाहता है, उस समय वह कहता है कि चाहे आप मुझे मारें अथवा पीटें, मैं पाप न करूँगा । इससे विदित होता है कि दास की कोई स्वतंत्रेच्छा नहीं थी तथा स्वामी उससे गलत से गलत काम ले सकता था । वह दास पाप से डरा हुआ कहता है कि मैं पूर्व जन्म के पापों से इस जन्म में दास बना हूँ । अब और अधिक अकार्य करके पाप न मोल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लूँगा। मैं कदापि अनर्थ नहीं कर सकता।

चण्डाल—समाज में चण्डालों का स्थान निम्न था। इन्हें शास्त्रों में अंत्यज तथा प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न कहा गया है। इनको लोग घृणा की दृष्टि से देखते थे। इन्हें नगर के बाहर अपना निवासस्थान बनाना पड़ता था। फाहियान ने लिखा है कि जब वे नगर में प्रवेश करते थे, तो सूचना देने के लिये लकड़ी से ढोल बजाते थे जिससे लोग उनके मार्ग से हट जायँ तथा स्पर्श बचाकर चलें।

गणिका—वेश्यायें प्रायः नगरों में रहती थीं। सामाजिक नियमों के अनुसार धन देने वाले सभी व्यक्तियों का सम्मान उसे करना पड़ता था। मृच्छकटिक में उसकी तुलना उस तालाब से की गई है जिसमें ब्राह्मण तथा शूद्र दोनों ही स्नान कर सकते हैं। उसे वह लता बताया गया है, जहाँ पर मयूर तथा कौवे समान रूप से बैठते हैं। उसकी तुलना उस नौका से की गई है, जहाँ पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र सभी बैठ सकते हैं। इस ग्रन्थ में वेश्या के घर को युवकों का निवासस्थान कहा गया है। उसे मार्ग की लता के समान जनसंपत्ति समझा जाता था। उसका शरीर पण्यभूत एवं धनहार्य था। प्रिय एवं अप्रिय की पाशविक मनोवृत्तियों एवं वासनाओं की तृप्ति उसे अपनी असहाय अवस्था के कारण करनी पड़ती थी। सभ्य कुल की महिलायें वेश्याओं से दूर रखी जाती थीं। उच्च कुल के नागरिकों के अन्तःपुर में इनका प्रवेश निषिद्ध था। वेश्यागामी को समाज निम्न दृष्टि से देखता था। यही कारण है कि मृच्छकटिक में न्यायाधीश के पूछने पर चारुदत्त नगर-वेश्या के साथ अपना सम्बन्ध स्वीकार करने में लज्जा का अनुभव करता है। इस ग्रन्थ के अनुसार कुल और शील से युक्त मनुष्य को श्मशान के पुष्प की भाँति वेश्याओं का परित्याग कर देना चाहिये (**तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन वेश्याः श्मशान सुमनाः इव वर्जनीयाः**)। स्मृतियों में गणिका के द्वारा छूये हुये अन्न को अखाद्य कहा गया है। गणिकाओं की गंधर्वशालाओं में उच्च कुल की कन्यायें कला-ज्ञान के निमित्त नहीं भेजी जाती थीं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आर्थिक जीवन

व्यवसाय—गुप्तकाल में व्यवसाय के क्षेत्र में दूरतर विकास हुआ। भारतीय नगरों में व्यावसायिक शिक्षा देने वाले आचार्य रहते थे। इन आचार्यों की प्रयोगशालाओं में नवागन्तुक विद्यार्थी अपने बन्धुओं की आज्ञा को पाने के उपरांत मनोवांछित शिल्प में प्रवीणता प्राप्त करने के लिये आता था। व्यावसायिकों की समिति को श्रेणी कहा जाता था। मंदसोर के लेख में 'पट्टवाय-श्रेणी' (रेशमी सूत बनाने वाले कारीगरों की समिति) का उल्लेख मिलता है। बृहस्पति ने व्यावसायिकों के श्रेणिबद्ध होने के दो कारण बताये हैं—(१) चोर, डाकुओं तथा अन्य मानवीय आपत्तियों से सुरक्षा तथा (२) सामूहिक लाभ। एक व्यवसाय के पालन करने वाले प्रायः पुर के एक ही भाग में रहते थे। श्रेणी का एक प्रधान होता था। वह समाज का एक सम्मानित व्यक्ति था। व्यवसाय वंशानुगत हुआ करता था। व्यावसायिक समितियाँ आधुनिक बैंक का भी कार्य करती थीं। वे द्रव्य को सुरक्षित रखतीं तथा उस पर सूद देती थीं। निक्षेपकर्त्ता से व्यावहारिक समय भी निश्चित कर लिया जाता था जिससे दोनों पक्षों में कालान्तर में कोई भेद न हो। द्रव्य के सूद से मन्दिर में दीपक जलाना अथवा किसी निर्दिष्ट उद्देश्य की पूर्ति भी उसे करना पड़ता था। इन्दौर के एक लेख के अनुसार यहाँ की एक 'तैलिक-श्रेणी' के पास रुपया जमा किया गया था, जिसके सूद से सूर्य-मन्दिर में दीपक जलाने के लिये तेल का खर्चा चलाया जाता था। दशपुर की 'पट्टवाय-श्रेणी' के ऊपर वहाँ के सूर्य-मन्दिर के पुनरुद्धार का भार था।

व्यापार—व्यावसायिक विकास के कारण वाणिज्य का विकास भी अवश्यंभावी था। इस समय तीन प्रकार के व्यापारी वर्तमान थे—(१) फेरी वाले, (२) फुटकर विक्रेता तथा (३) थोक विक्रेता। फेरी वाले छोटे व्यापारी थे। उनके पास कम सामान होता था, जिसको लिये हुये वे नगर के विभिन्न भागों में घूमा करते थे। फुटकर विक्रेताओं की दूकाने एक जगह होती थीं। वे छिटपुट सामान बेंचते थे। पर इसके विपरीत थोक विक्रेता बड़े व्यापारी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होते थे। वे काफी माल एक ही बार बेचते थे।

बड़े व्यापारी कभी-कभी साझापत्ती के सिद्धांत पर व्यापार करते थे। इस प्रकार के व्यापार को स्मृतियों में 'संभूय-समुत्थान-व्यवहार' कहा गया है। साझेदार अपनी लागत के अनुपात के हिसाब से लाभ में भाग पाते थे। साझेदारों में व्यवहार-संबन्धी आपसी समझौता भी होता था, जिसके लिये स्मृतियों में 'समय' शब्द का प्रयोग किया गया है। इस समझौते का पालन साझेदार का परम कर्त्तव्य था।

व्यापारिक समितियों को 'निगम' कहा जाता था। निगम के प्रधान को श्रेष्ठि कहते थे। वह अतुल धनराशि का स्वामी माना जाता था। उसका सम्मान राजा तथा व्यापारी दोनों करते थे। नगर एवं जनपद के लोग भी उसका आदर करते थे (**राजपूजितो नगरजनपदपूजितो**)। उसकी योग्यता, उपयोगिता तथा उच्च स्थान को देखते हुये कभी-कभी उसे शासनसमितियों में भी स्थान दिया जाता था। दामोदरपुर के एक लेख से ज्ञात होता है कि धृतिपाल नामक एक नगर-श्रेष्ठि उस समिति का सदस्य था, जो कि कुमारामात्य वेत्रवर्मा को सहायता पहुँचाती थी।

नगर—गुप्त काल में भारतवर्ष में एक नगर-जाल विस्तृत था। गुप्तकालीन नगरों में उज्जयिनी, दशपुर, पाटलिपुत्र तथा वैशाली उल्लेखनीय हैं। कालिदास ने उज्जयिनी के वैभव एवं समृद्धि पर मुग्ध होकर उसे स्वर्ग का एक चमकता हुआ टुकड़ा कहा है (**दिवः कांतिमत्खंडमेकम्—मेघदूत**)। मृच्छकटिक में उज्जयिनी-वेश्या वसंतसेना के भव्य प्रासाद के स्वर्णजटित सोपान, रत्नजटित गृहफलक तथा स्फटिकमणियुक्त वातायनों का वर्णन किया गया है। दशपुर नगर का सबसे मनोरम तथा रमणीय वर्णन मन्दसोर की प्रशस्ति में उपलब्ध होता है। इसके अनुसार यह नगर विश्व में अग्रणी था। इस नगर की झीलों में बतख तैर रहे थे। इनके कूल पर स्थित वृक्षों से पुष्पों के गिर जाने के कारण जल ने विभिन्न रंग धारण किया था। कहीं-कहीं उनमें राजहंस तैर रहे थे, जिनका शरीर कमल की पंखड़ियों के पराग से भूरा हो गया था तथा दूसरे स्थान पर कमल अपने पराग के कारण झुके हुये दिखाई पड़ रहे थे। वहाँ की वाटिकायें सुन्दर ढंग से बनी हुई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थीं। उन वाटिकाओं में वृक्ष पुष्प-भार से अवनत थे। उस स्थान के मतवाले भँवरे की गुंजार एवं नगर-वधुओं के भ्रमण से वाटिकाओं की शोभा बढ़ गई थी। इस नगर में स्वाध्याय, विद्या तथा तप आदि गुणों से पूर्ण कुशाग्र बुद्धि वाले ब्राह्मण रहते थे।

फाहियान ने पाटलिपुत्र को गुप्त-काल का सबसे सुन्दर नगर माना है। उसके अनुसार इस नगर के अधिवासी धनधान्य से सम्पन्न तथा समृद्धिशाली थे। नगर में श्रमणों के निवास के लिये मठों का निर्माण किया गया था। सार्वजनिक लाभ के लिये इसमें औषधालय बने हुए थे। दण्डी ने पाटलिपुत्र को समस्त नगरों की कसौटी (**समस्तनगरीनिकषायमाणा**) तथा भारतवर्ष का सर्वोत्तम पुर (**मगधदेशशेखरीभूता**) स्वीकार किया हैं। फाहियान ने वैशाली की समृद्धि की भी पर्याप्त प्रशंसा की है। उसके अनुसार इस नगर के चतुर्दिक दीवालें थीं, जिनमें बुर्ज़ तथा द्वार बनाये गये थे। सुरक्षा की दृष्टि से इसे परिखा के द्वारा परिवेष्ठित भी किया गया था। इस नगर की पहचान आधुनिक बसाढ़ से की जाती है। यहाँ से गुप्त-काल की कुछ मुहरें उपलब्ध हुई हैं।

धार्मिक दशा

वैष्णव धर्म—गुप्त-काल में वैष्णव धर्म का विशेष रूप से विकास हुआ। इस वंश के नरेश वैष्णवमतावलम्बी थे। अभिलेखों में उनके लिये 'परमभागवत' की उपाधि अंकित मिलती है। उनके आज्ञापत्रों के ऊपर गरुड़ध्वजांकित मुद्रा के चिन्ह बने होते थे। चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ने विष्णुपद नामक पर्वत के ऊपर विष्णुध्वज की स्थापना की थी (**प्रांशुर्विष्णुपदे गिरौ भगवतः भक्त्या ध्वजः स्थापितः—मेहरौली का लेख**)। उनकी मुद्राओं के ऊपर वैष्णव धर्म के प्रतीकों के चिन्ह उपलब्ध होते हैं, उदाहरणार्थ—शंख, चक्र, गदा, पद्म तथा लक्ष्मी। कतिपय गुप्त-कालीन अभिलेखों में विष्णु की पूजा की गई है।

शैव धर्म—गुप्त नरेश धर्मसहिष्णु थे। उन्होंने अन्य धर्मों के विकास में भी प्रोत्साहन प्रदान किया। उन्होंने शैवों को उच्च पदों पर नियुक्त किया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था। उदाहरणार्थ चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का सेनापति वीरसेन एक प्रकांड शैव था। उसने शैवों के निवास के निमित्त उदयगिरि की पहाड़ी में एक गुफा का निर्माण किया था (**भक्त्या भगवतः शंभोः गुहामेतामकारयत् —उदयगिरि का अभिलेख**)। कुमारगुप्त प्रथम का सेनापति पृथिवीषेण भी शैव धर्म का अनुयायी था। इसने करमदण्डा नामक स्थान में एक शिव-प्रतिमा की स्थापना की थी। गुप्तों के सामंत महाराज हस्तिन् का लेख शिव की पूजा के साथ प्रारम्भ होता है। दामोदरपुर के एक लेख में शिव-पूजा के निमित्त अग्रहारदान का वर्णन मिलता है। बिलसद के लेख के अनुसार ध्रुवशर्मा नामक ब्राह्मण ने एक शिवमन्दिर को दान दिया था। गुप्तों के काल में मथुरा में शिव-भक्तों का बाहुल्य था। यहाँ के एक अभिलेख के अनुसार उदिताचार्य नामक नागरिक ने शिव के प्रति अगाध श्रद्धा के कारण उपमितेश्वर तथा कपिलेश्वर नामक शिवलिंगों की स्थापना की थी।

बौद्ध धर्म—फाहियान के वर्णन के अनुसार गुप्त-काल में बौद्ध धर्म अपने स्वाभाविक रूप में विकसित हो रहा था। उसके अनुसार भारतीय नगरों में इस समय मठ बने हुये थे, जिनमें बौद्ध ग्रंथों का अनुशीलन किया जाता था। गुप्त-काल में प्रसिद्ध बौद्ध आचार्यों का आविर्भाव हुआ, जिन्होंने अपनी मर्मस्पर्शिनी विद्वत्ता के द्वारा भारतीय ज्ञान के विकास में योगदान किया। इनमें वसुबंधु, असंग तथा दिंगनाग उल्लेखनीय हैं। साँची के एक लेख के अनुसार चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने आम्रकार्दव नामक एक बौद्धमतावलम्बी को उच्च पद पर नियुक्त किया था। उसने काकनादवोट नामक एक बौद्ध विहार को एक ग्राम तथा पच्चीस दीनार दान किया था।

जैन धर्म—फाहियान के अनुसार गुप्तों के काल में भारतवर्ष के प्रसिद्ध नगरों में जैनियों के देवालय वर्तमान थे। इनमें प्रति दिन झाड़ू लगाया जाता तथा पानी छिड़का जाता था। जैन-पुजारी इनमें धूप एवं दीप जलाते तथा पूजा करते थे। पहाड़पुर से कई लेख मिले हैं जिनमें जैन मन्दिरों को भूमिदान का वर्णन किया गया है। कहौम के लेख के अनुसार स्कन्दगुप्त के काल में मद्र नामक व्यक्ति ने पाँच जैन तीर्थंकरों की मूर्तियों की स्थापना करायी थी—आदिनाथ, शांतिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मथुरा के एक अभिलेख के अनुसार कुमारगुप्त प्रथम के शासन-काल में हरिस्वामिनी नामक एक जैन-महिला ने एक जैन मन्दिर को दान दिया था। गुप्त-काल में वलभी में जैनों की एक बृहत् सभा का आयोजन किया गया था।

सूर्य-पूजा—गुप्तों के काल में सूर्योपासक वर्तमान थे। कुमारगुप्त के काल के मन्दसार के अभिलेख में सूर्य की वन्दना की गई है। इसी प्रकार स्कन्दगुप्तकालीन इन्दौर का ताम्रलेख सूर्य-पूजा से प्रारम्भ होता है। इस समय सूर्य-मन्दिर वर्तमान थे। मन्दसोर के लेख के अनुसार दशपुर के नगर में एक सूर्य-मन्दिर था। इसके प्रबन्ध का उत्तरदायित्व इस पुर की तंतुवाय-श्रेणी के ऊपर था।

वास्तु-कला

राजप्रासाद—फाहियान ने चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के राजप्रासाद का मनोरम विवरण किया है। इसे देखकर वह आश्चर्यचकित हो उठा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि उस विशाल भवन का निर्माण देवों ने किया था, मानव ने नहीं। उसके अनुसार सभा-भवन के द्वार तथा भीतों में पत्थर चुने गये थे। राजमहल के लिये इस समय के ग्रंथों में प्रासाद, राजप्रासाद, राजगृह, राज-वेश्म, राजगेह तथा राजनिवेशन आदि शब्द आते हैं।

नागरिक शालायें—नागरिक शालाओं का सुन्दर वर्णन मन्दसोर के अभिलेख तथा शूद्रक के मृच्छकटिक में उपलब्ध होता है। मन्दसोर के अभि-लेख के अनुसार दशपुर नगर के भवन फहराते हुए झंडों से सुशोभित थे। उनमें रहने वाली कोमलांगी स्त्रियों एवं ऊँचे स्वच्छ अट्टालों के द्वारा उसका सौन्दर्य बढ़ जाता था। भवनों का रंग विद्युत की चमक के कारण विचित्र ढंग का हो जाता था। उनमें संगीत की प्रतिध्वनि सुनाई देती थी। वे सुन्दर चित्रों के द्वारा विभूषित थे तथा वहाँ कदली वृक्षों की पंक्तियाँ सुशोभित थीं। यहाँ के भवन अनेक मंजिल वाले थे तथा चन्द्रमा की किरणों से सुशोभित थे। ऐसा ज्ञात होता था, मानों वे पृथ्वी को फाड़कर ऊपर निकले हों (**धरां विदार्यैव समुत्थितानि**)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मृच्छकटिक में उज्जयिनी की वेश्या वसन्तसेना के उत्तुंग भवन का मनोरम वर्णन मिलता है। अपनी ऊँचाई के कारण यह दर्शकों के मन को दूर से ही आकृष्ट करता था। इस भवन में सात प्रकोष्ठ (खंड) बने हुये थे। प्रथम प्रकोष्ठ में स्फटिकनिर्मित वातायनों से युक्त कमरे बने हुये थे। द्वितीय प्रकोष्ठ में वसन्तसेना की पशुशाला थी। इसमें कहीं तेल से मली हुई सींग वाले अत्यन्त पुष्ट बैल बाँधे गये थे, कहीं भेंड़ों की गर्दन मली जा रही थी, कहीं अश्वों के बाल सँवारे जा रहे थे और कहीं हाथी भक्त, तैल एवं घृत-मिश्रित पिण्ड का भक्षण कर रहा था। भवन के तृतीय प्रकोष्ठ में बैठने के लिये नाना प्रकार के आसन रखे हुये थे। चौथे प्रकोष्ठ का दृश्य और भी रमणीय था। वहाँ पर संगीतशाला बनी हुई थी, जिसमें नाना प्रकार के वाद्य एकत्र किये गये थे। पाँचवें प्रकोष्ठ में भोजन-गृह बना हुआ था। उसमें दरिद्रजनों के मन में लोभ उत्पन्न करने वाले विविध खाद्यपदार्थ बनाये जा रहे थे। छठें प्रकोष्ठ में शृङ्गारशाला थी। इसमें विविध अलंकार-प्रसाधन रखे हुये थे। सप्तम प्रकोष्ठ में पक्षिशाला थी। उसमें पिंजड़ों में पारावत, शुक तथा सारिका पाले गये थे। मयूर, लावक तथा राजहंस आदि नाना पक्षि-समूह उसमें दृष्टिगोचर हो रहे थे। भवन के बाह्य रूप की सजावट एवं बनावट अन्वेक्षणीय थी। उसके मंगलध्वज तथा मंगलकलश ने दर्शकों को आश्चर्यचकित कर दिया था।

मन्दिर—गुप्तकालीन मन्दिरों के कई उदाहरण उपलब्ध हुये हैं। इनके निर्माण में प्रधानतः प्रस्तर-खंडों का उपयोग किया गया है। ये एक चबूतरे के ऊपर बने हुये हैं, जिसके चतुर्दिक ऊपर आने के निमित्त सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। मन्दिर के भीतर एक गर्भ-गृह मिलता है, जिसमें देव-प्रतिमा की स्थापना की गई है। मन्दिर के द्वार के चौखट पर गंगा तथा यमुना की आकृतियों का अंकन मिलता है। इसके अतिरिक्त इस पर कुछ अन्य सुन्दर एवं शुभ आकार अंकित किये गये हैं, उदाहरणार्थ द्वारपाल (प्रतीहारी), उड़ते हुये हंस के जोड़े (मांगल्य विहग), पवित्र वृक्ष (श्रीवृक्ष), स्वस्तिक, कलश (पूर्ण घट), मिथुन तथा पत्रवल्ली। कभी-कभी चौखट पर शंख एवं पद्म के आकार प्रदर्शित किये गये हैं। इस प्रकार के निर्माण का उल्लेख मेघदूत में मिलता है

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
(द्वारोपान्ते-लिखित-वपुषौ-शंख-पद्मौ च दृष्ट्वा)।

गुप्तकालीन मन्दिरों में सात विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—(१) नागोद राज्य में स्थित भुमरा का शिव-मन्दिर, (२) जबलपुर जिले के तिगवा नामक स्थान पर निर्मित विष्णु-मन्दिर, (३) नचनाकुठार का पार्वती-मन्दिर, (४) देवगढ़ का दशावतार-मन्दिर, (५) खोह का मन्दिर, (६) भिटारगाँव का मन्दिर तथा (७) लाड़खान का मन्दिर। केवल भिटारगाँव के मन्दिर को छोड़कर ये सभी प्रस्तर-निर्मित्त मन्दिर हैं।

भुमरा का शिव-मन्दिर—इसका गर्भगृहमात्र अवशिष्ट है। इसके चौखट पर गंगा एवं यमुना की आकृतियाँ अंकित की गई हैं। गर्भगृह के चतुर्दिक प्रदक्षिणापथ के वर्तमान होने के प्रमाण मिलते हैं। गर्भगृह के समक्ष एक मंडप मिलता है। इस मन्दिर में खिड़कियाँ (गवाक्ष) बनी हुई हैं।

तिगवा का विष्णु-मन्दिर—इसके गर्भगृह के व्यास की चौड़ाई आठ फीट है। गर्भ-गृह के समक्ष सात फीट लम्बा एक मंडप है, जो कई स्तम्भों से युक्त है। इन स्तम्भों के शीर्ष स्थान पर मंगल कलश की आकृति का निर्माण किया गया है। गर्भ-गृह के चौखट पर कूर्मवाहिनी यमुना तथा मकरवाहिनी गंगा अंकित की गई हैं।

नचनाकुठार का पार्वती-मन्दिर—इसका निर्माण लगभग ५०० ई० में हुआ। यह एक वर्गाकार मन्दिर है। इसके गर्भ-गृह की चौड़ाई साढ़े आठ फीट है। इस मन्दिर का निर्माण एक वर्गाकार चबूतरे पर किया गया है, जिसके चतुर्दिक सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इस मन्दिर में एक प्रदक्षिणापथ भी मिलता है। इस मन्दिर की भीतरी एवं बाहरी दीवालों पर विभिन्न आकृतियाँ अंकित की गई हैं।

भिटारगाँव का मन्दिर—गुप्तकालीन मन्दिरों में केवल यही एक ऐसा मन्दिर है, जिसका निर्माण ईंटों के द्वारा किया गया था। इसकी बाहरी दीवालों में ताख बने हैं, जिनमें मृण्मयी मूर्तियाँ रखी हुई हैं। इनके द्वारा हिन्दू पौराणिक कथाओं के कतिपय दृश्यों को प्रदर्शित किया गया है।

लाड़खान का मन्दिर—यह ऐहोड़े के समीप लाड़खान नामक स्थान पर विद्यमान है। कुमारस्वामी के अनुसार इसका निर्माण ४५० ई० के लगभग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुआ। इसका गर्भगृह वर्गाकार है। इसमें गुप्तकालीन मन्दिरों की विशेषतायें परिलक्षित होती हैं।

खोह का मन्दिर—इसमें एकमुखलिंग शिवमूर्ति स्थापित की गई थी। इसमें कुछ गणों की भी मूर्तियाँ रखी हुई थीं, जो आज प्रयाग के संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

देवगढ़ का दशावतार मन्दिर—यह गुप्तकाल का सबसे सुंदर मन्दिर माना जाता है। इसके ऊपर एक शिखर मिलता है। यह इसकी एक प्रमुख विशेषता है। जहाँ अन्य गुप्तकालीन मन्दिरों में केवल एक ही मंडप मिलता है, वहाँ इसमें चार मंडप मिलते हैं। मंडप इसके गर्भगृह के चतुर्दिक बने हुये हैं। इस मन्दिर में सुंदर मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं। इनके द्वारा पुराणों में वर्णित गजेन्द्रमोक्ष के दृश्य तथा शेषशायी विष्णु को प्रदर्शित किया गया है। गर्भगृह की बाहरी दीवालों पर रामायण के कतिपय दृश्य अंकित किये गये हैं। यह मंदिर प्राचीन भारतीय वास्तुकला का एक उत्कृष्ट उदाहरण स्वीकार किया गया है।

स्तूप—कुमारस्वामी का कथन है कि सारनाथ का धमेख स्तूप प्रतिभाशाली गुप्त नरेशों के काल में निर्मित हुआ था। यह पृथ्वी की सतह के ऊपर बनाया गया था। इसमें चबूतरा नहीं मिलता। इस स्तूप के चार प्रधान कोनों पर बौद्ध प्रतिमाओं को रखने के निमित्त ताख बने हुये हैं। ताख के नीचे रेखागणित की विभिन्न आकृतियाँ तथा पुष्प एवं पत्तियों के नमूने अंकित किये गये हैं। गुप्तकाल का दूसरा प्रसिद्ध स्तूप राजगृह का जरासंध का बैठक है। इसका निर्माण एक चबूतरे के ऊपर हुआ है। इसका समय ५०० ई० माना जाता है।

गुफायें—गुप्तकालीन गुफायें तीन स्थानों से उपलब्ध हुई हैं; उदयगिरि, अजंता एवं बाघ। उदयगिरि की गुफा शैव धर्म से संबन्धित हैं। इसका निर्माण चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के सेनानायक वीरसेन ने कराया था। इस गुफा के भीतर गुप्तकालीन मन्दिरों की भाँति एक गर्भगृह तथा उसके सामने एक मंडप मिलता है।

अजन्ता की प्राप्त गुफायें बौद्ध धर्म से संबन्धित हैं। इनमें गुफा संख्या

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
१६, १७ तथा १६ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। स्थापत्य की दृष्टि से ये काफी महत्त्वपूर्ण हैं। इनका संबन्ध बौद्ध धर्म से है। इनके भीतर चैत्यगृह मिलते हैं। इनके निर्माण में कतिपय नवीनतायें परिलक्षित होती हैं—(१) जहाँ पूर्व काल के चैत्यगृहों में सादगी मिलती है, वहाँ अजन्ता के चैत्यगृहों में अलंकार तथा सजावट को प्रधानता दी गई है। (२) पूर्वकालीन चैत्यगृहों में गौतम बुद्ध की प्रतिमायें नहीं मिलतीं, पर अजन्ता के चैत्यगृहों में बौद्ध मूर्तियाँ बहुसंख्या में प्राप्त होती हैं। इसे हम महायान धर्म का प्रभाव मान सकते हैं। (३) इनमें हिन्दू प्रतिमायें भी मिलती हैं; उदाहरणार्थ यक्ष, यक्षिणी एवं नाग-मूर्तियाँ। (४) अजन्ता के चैत्यगृहों में चट्टान को काटकर स्तूप बनाये गये हैं। स्तूप के ऊपर हर्मिका एवं छत्र मिलता है।

गुफा संख्या १६ के चैत्यगृह में अंतःप्रकोष्ठ एवं बाह्य प्रकोष्ठ मिलता है। इसके अतिरिक्त भिक्षुओं के निवास के निमित्त ६ छोटे कमरे भी बने हुये हैं। इसमें प्रलम्बपाद मुद्रा में गौतम बुद्ध की एक प्रतिमा मिलती है। गुफा संख्या १७ के चैत्यगृह की बनावट गुफा संख्या १६ के चैत्यगृह के ठीक समान है। गुफा संख्या १७ का चैत्यगृह इस कोटि का सर्वश्रेष्ठ स्मारक है। इसमें गवाक्ष, स्तम्भ, चट्टाननिर्मित स्तूप तथा बौद्ध प्रतिमाओं के उत्कृष्ट उदाहरण उपलब्ध होते हैं। बाघ की गुफायें भी बौद्ध धर्म से संबन्धित हैं। इनकी दीवालों पर चित्रकारी मिलती है।

तक्षण-कला—गुप्तकाल में तक्षण-कला के क्षेत्र में नवीन विकास हुये। इस काल के मूर्तिकारों के लिये शिल्पशास्त्रों में तक्षक शब्द का प्रयोग मिलता है (**तक्षणात्स्थूलसूक्ष्माणां तक्षकः स तु स्मृतः**—अर्थात् तक्षक प्रस्तर को काटकर वृहत् एवं लघु मूर्तियाँ बनाता था)। गुप्तकाल के तक्षकों ने मूर्तियों के निर्माण में मौलिकता दिखाई। इन्होंने नग्नता के स्थान पर संयमित सौन्दर्य को प्रधानता दी। कुषाणकालीन मूर्तियों में पतले एवं महीन उत्तरीय वस्त्र के द्वारा शरीर-सौन्दर्य को उभाड़ने का प्रयास किया गया है। गुप्तकालीन मूर्तिकारों ने अपेक्षाकृत मोटे उत्तरीय वस्त्र की सहायता से इस आकर्षण को ढकने का प्रयास किया। इस समय सारनाथ केन्द्र में जो मूर्तियाँ बनाईं गईं, उनके ऊपर गंधार शैली का कोई भी प्रभाव परिलक्षित नहीं होता।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कुषाणकालीन मूर्तियों में प्रभामंडल सादा एवं अनलंकृत है। गुप्तकालीन मूर्तियों के प्रभामंडल को विविध आकृतियों से सुसज्जित किया गया है।

बौद्ध प्रतिमायें—गुप्तकाल में बौद्ध प्रतिमायें प्रचुर संख्या में बनाई गईं। मथुरा के एक लेख के अनुसार यहाँ के एक नागरिक ने गौतम बुद्ध की प्रतिमा की स्थापना की (**भिक्षुणा बुद्धवर्मणा भगवतः शाक्यमुनेः प्रतिमा प्रतिष्ठापिता सर्वबुद्धपूजार्त्थम्**)। इस समय की तीन बौद्ध प्रतिमायें विशेष रूप से प्रसिद्ध मानी जाती हैं—(१) सारनाथ की गौतम बुद्ध की प्रतिमा, (२) मथुरा-संग्रहालय की गौतम बुद्ध की खड़ी मूर्ति तथा (३) बरमिंघम-संग्रहालय की बुद्ध की ताम्र-मूर्ति। सारनाथ की मूर्ति में गौतम बुद्ध ध्यानमग्न मुद्रा में बैठे हुए प्रदर्शित किये गये हैं। मथुरा एवं बरमिंघम के संग्रहालयों की मूर्तियों में भी गुप्तकालीन तक्षणकला का चूड़ान्त निदर्शन उपलब्ध होता है। इनमें वे व्याख्यानमुद्रा में दिखाये गये हैं।

शिव-मूर्तियाँ—करमदंडा तथा बिलसद के अभिलेखों के अनुसार गुप्तकाल में शिव की प्रतिमाओं का निर्माण किया गया था। इस समय दो प्रकार की शिव-मूर्तियाँ बनाई गई थीं—(१) चतुर्मुख शिवलिंग मूर्ति—इसमें शिव के चार मुख दिखाये गये हैं तथा (२) एकमुख शिवलिंग मूर्ति—इसमें शिव का केवल एक ही मुख दिखाया गया है। पहले प्रकार की मूर्ति करमदंडा से प्राप्त हुई है। इसका निर्माण कुमारगुप्त के मंत्री तथा कुमारामात्य पृथिवीषेण ने किया था। वह चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के मंत्री तथा कुमारामात्य शिखरस्वामी का पुत्र था। दूसरे प्रकार की मूर्ति खोह से प्राप्त हुई है। इसमें शिव का जटाजूट, अर्द्धचन्द्र एवं तृतीय नेत्र तथा उनके गले में हार एवं कानों में कुंडल दिखाया गया है।

वैष्णव मूर्तियाँ—गुप्तकाल में वैष्णव मूर्तियाँ विशेष रूप से बनाई गईं। जूनागढ़ के लेख के अनुसार चक्रपालित नामक पदाधिकारी ने सुदर्शन कासार के तट पर विष्णु की प्रतिमा का निर्माण कराया था (**विष्णोश्च पादकमले समवाप्य तत्र**)। भितरी के लेख के अनुसार चक्रपालित ने शिवमूर्ति की स्थापना की थी (**कर्त्तव्या प्रतिमा काचित्प्रतिमां तस्य शार्ङ्गिणः**)। अधिकतर विष्णु की चतुर्भुजी मूर्तियाँ बनाई गईं। इनमें उनके सिर के ऊपर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुकुट, गले में हार एवं केयूर तथा कानों में कुंडल दिखाया गया है। तत्कालीन विष्णु की सर्वोत्तम मूर्ति देवगढ़ के दशावतार मन्दिर से उपलब्ध हुई है। इसमें वे शेषनाग को शय्या बनाकर लेटे हुये दिखाये गये हैं। उनके पैरों की ओर लक्ष्मी तथा दाहिनी ओर ऐरावतगज पर आरूढ़ इन्द्र एवं मयूर पर आसीन कार्तिकेय प्रदर्शित किये गये हैं। उनके बाईं ओर शिव एवं पार्वती तथा नाभिमंडल से निकले हुये कमल पर आसीन चार मुख वाले ब्रह्मा की आकृतियाँ अंकित की गई हैं।

वराह-प्रतिमायें—इस समय विष्णु के वराह (नृसिंह-वराह) अवतार की प्रतिमायें बनाई गईं। वराह की मूर्तियाँ दो प्रकार की प्राप्त हुई हैं—(१) इसमें शरीर मनुष्य का एवं मुख वराह का प्रदर्शित किया गया है तथा (२) इसमें वराह की वास्तविक आकृति दिखाई गई है। पहले प्रकार की आकृति उदयगिरि की गुफा की दीवाल पर अंकित मिलती है। इसमें वराह के वाम पद के नीचे शेष की आकृति एवं कंधे के ऊपर भूमि देवी की आकृति दिखाई गई है। दूसरे प्रकार की मूर्ति एरण से उपलब्ध हुई है। इसका निर्माण मातृविष्णु के अनुज धन्यविष्णु ने किया था। वह एरण में बुधगुप्त की अधीनता स्वीकार करता था।

चित्रकला—वास्यायन ने चित्रकला के लिये 'आलेख्य' शब्द का प्रयोग किया है। इसका ज्ञान सभ्य नागरिक के लिये अनिवार्य था। धनिक व्यक्तियों के घरों में 'चित्रशाला' बनी होती थी। इसे चित्रागार तथा चित्रसद्म भी कहा जाता था। कालिदास ने चित्रकला के शिक्षक के लिये 'चित्राचार्य' शब्द का प्रयोग किया है। वात्स्यायन ने कामसूत्र में चित्र के छह अंगों (चित्रं षडंगकम्) का उल्लेख किया है—(१) रूपभेद (आकृतिज्ञान), (२) प्रमाण (नाप), (३) भाव (रूप पर विचार का प्रभाव), (४) लावण्य-योजन (कलात्मक अभिव्यक्ति), (५) सादृश्य (तद्रूपता) तथा (६) वर्णिकाभंग (उपकरण का ठीक प्रयोग)। चीन में भी चित्र के छह अंग माने जाते थे। विद्वानों का अनुमान है कि चीनवासियों ने इसे भारतवर्ष से सीखा था।

गुप्तकालीन ग्रंथों में चित्रकला की सामग्री के नाम मिलते हैं। रंग की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पेटी को वर्णिकारंड, वर्णमंजूषा तथा प्रतोलिका कहा जाता था। कामसूत्र के अनुसार प्रतोलिका में हरा, लाल, श्याम, पीत तथा श्वेत रंग भरा रहता था (**शिलाहरितालहिंगुलश्यामवर्णकादीनाम्**)। कुमारसंभव में रंग की पेटी में हरा, लाल, काला तथा श्वेत रंग के रखे जाने का उल्लेख मिलता है (**पीतासितारक्तसितैः**)। चित्रकला के उपकरणों में वर्तिका तथा तूलिका उल्लेखनीय हैं। वर्तिका एक पेंसिल होती थी, जिससे चित्र का खाका तैयार किया जाता था। तूलिका से चित्र में रंग भरा जाता था। कुमारसंभव में कहा गया है कि पार्वती का शरीर नवयौवन से उसी प्रकार सुशोभित हो रहा था, जिस प्रकार तूलिका से उन्मीलित चित्र (**उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रम्**)। कभी-कभी खड़िया से भी चित्र का खाका खींचा तथा उसमें रंग भरा जाता था। मेघदूत में यक्ष लाल रंग की खड़िया से अपनी विरहिणी प्रियतमा का चित्र शिला-पट्ट पर बनाता हुआ दिखाया गया है (**त्वामालिख्य प्रणय-कुपितां धातुरागैश्शिलायाम्**)।

चित्र की पृष्ठभूमि को भलीभाँति स्वच्छ कर उसके ऊपर मृगनाभि अथवा चन्दन का अंगराग लगाया जाता था। पृष्ठभूमि में सौन्दर्य लाने के लिये उसमें प्राकृतिक दृश्य चित्रित किये जाते थे। उदाहरणार्थ मेघदूत में एक चित्रकार चित्र की पृष्ठभूमि को रेवा नदी तथा विंध्यश्रेणियों के दृश्य से सुसज्जित करता हुआ उल्लिखित किया गया है। शाकुंतलम् में दुष्यंत शकुन्तला के चित्र की पृष्ठभूमि में कुछ प्राकृतिक विषयों को चित्रित करना चाहते हैं, उदाहरणार्थ बालुकामय तट पर लीन हंसों की जोड़ी से युक्त मालिनी नदी, बैठे हुये हरिणों से युक्त हिमालय पर्वत की रमणीय श्रेणियाँ, लटकाये गये हुये वल्कलवस्त्र से युक्त वृक्षों की डालियाँ तथा कृष्ण मृग की सींग पर बाँयें नेत्र को खुजलाती हुई मृगी।

"कार्या सैकत-लीन-हंस-मिथुना स्रोतोवहा मालिनी
पादास्तामभितो निषण्ण-हरिणा गौरी-गुरोः पावनाः॥
शाखा-लम्बित-वल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः
शृंगे कृष्णमृगस्य वामनयनं कंडूयमानां मृगीम्॥"

इस प्रकार बने हुये चित्र को देखकर शकुन्तला की सखी आश्चर्यचकित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो कहती है—'अरे ! ऐसा लगता है, मानो मेरी सखी शकुन्तला सामने खड़ी हो। राजा दुष्यन्त के चित्राभ्यास को सचमुच ही धन्य है' (**अहो राजर्षेर्वर्तिकानिपुता ! जाने में सखी अग्रतोवर्तते इति**)।

अजन्ता की चित्रकला—गुप्तकाल की चित्रकला के सर्वोत्तम उदाहरण अजन्ता से प्राप्त हुये हैं। यहाँ पर चट्टानों को काट कर २६ गुफायें बनाई गई हैं। १८१८ ई० तक इनके विषय में कोई जानकारी नहीं थी। इस स्थान पर इतना अधिक जंगल था कि वहाँ कोई जा नहीं सकता था। इनको पता लगाने का श्रेय अंग्रेज़ों को है। पहले इन सभी गुफाओं की दीवालों पर चित्र बने हुये थे। पर अब इनमें से केवल छह ऐसी गुफायें हैं जिनमें चित्रकारी शेष रह गई है—गुफा संख्या १, २, ६, १०, १६ तथा १७। इन गुफाओं के चित्र कई समय के बने हुये हैं। गुफा संख्या १०, १६ तथा १७ की चित्रकारी गुप्तकालीन मानी गई है। गुफा संख्या १० के स्तंभों के चित्रों का निर्माण लगभग ३५० ई० में हुआ। इनकी आकृतियों के प्रभामंडल तथा उत्तरीय वस्त्र की शैली के ऊपर गुप्त-प्रभाव परिलक्षित होता है। गुफा संख्या १६ के भित्तिचित्र में 'मरती हुई राजकुमारी' का दृश्य दिखाया गया है। यह चित्र 'षडदंत जातक' की कथा का प्रतिनिधित्व करता है। ग्रिफिथ महोदय ने इस चित्र की पर्याप्त प्रशंसा की है। गुफा संख्या १७ के चित्र सबसे अधिक सुरक्षित अवस्था में हैं। इस गुफा में चित्र इतनी अधिक संख्या में मिले हैं कि इसे हम अक्षरशः 'चित्रशाला' मान सकते हैं। इन चित्रों में गौतम बुद्ध के जन्म, महाभिनिष्क्रमण, सम्बोधि तथा महापरिनिर्वाण का दृश्य दिखाया गया है। इस गुफा के चित्रों में 'माता और पुत्र' नामक चित्र काफी प्रसिद्ध है। इसमें गौतम बुद्ध की पत्नी यशोधरा अपने पुत्र राहुल को उन्हें समर्पित करती हुई चित्रित की गई हैं। इस गुफा के एक चित्र में सिंह के आखेट का दृश्य दिखाया गया है। इन चित्रों के निर्माण में विभिन्न रंगों वाली खड़िया का प्रचुर प्रयोग किया गया है। इन्हें हम 'धातुराग आलेखन' का सर्वोत्तम उदाहरण मान सकते हैं। बाणभट्ट ने लिखा है कि उज्जयिनी नगर के भित्तिचित्र विश्वरूप का प्रदर्शन करते थे (दर्शित विश्वरूप)। गुफा संख्या १७ के भित्तिचित्रों के विषय इतने विविध हैं कि उनकी तुलना हम बाणभट्ट

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के 'दर्शित विश्वरूप' चित्र से कर सकते हैं।

बाघ की चित्रकला—भित्तिचित्र के इतिहास में बाघ की चित्रकला का स्थान महत्त्वपूर्ण है। अजन्ता के चित्र समय-समय पर बनाये गये, अतएव उनसे समष्टि का भाव नहीं प्रकट होता। बाघ के चित्रों के बनाने की कल्पना एक ही समय पर की गई थी। अतएव वे दर्शक के समक्ष एक समग्र चित्र प्रस्तुत करते हैं, जो अधिक महत्त्वपूर्ण है। अजन्ता के चित्र धार्मिक विषयों से संबन्धित हैं। इसके प्रतिकूल बाघ के चित्रों के विषय मनुष्य के लौकिक जीवन से लिये गये हैं। इस कारण ऐतिहासिक दृष्टि से बाघ की चित्रकला की विशिष्टता अधिक है। इस स्थान के चित्र तत्कालीन वेशभूषा, केश-विन्यास तथा अलंकारप्रसाधन आदि को समझने में अधिक उपयोगी सिद्ध हुये हैं।

संगीत—वात्स्यायन ने कामसूत्र में संगीत की महत्ता का निरूपण किया है। राजवर्ग में इसके प्रचार की सूचना प्रयाग की प्रशस्ति से मिलती है। इस अभिलेख में समुद्रगुप्त को संगीत का मर्मज्ञ कहा गया है। उसने अपने संगीतज्ञान के द्वारा देवताओं के आचार्य तुम्बुरु तथा नारद को भी लज्जित कर दिया था (**व्रीडितत्रिदशपतिगुरुतुम्बुरुनारदादेः**)। भारतीय परंपरा के अनुसार नारद वीणावादन में निपुण थे। प्रयाग-प्रशस्ति के उपर्युक्त कथन से लगता है कि समुद्रगुप्त वीणा बजाने में निपुण रहा होगा। अपनी एक मुद्रा में वह वीणा बजाता हुआ प्रदर्शित किया गया है। गुप्तकालीन ग्रंथों में विभिन्न प्रकार के वाद्यों के नाम मिलते हैं। इनमें वीणा, वेणु तथा मृदंग अधिक प्रिय थे। भास के चारुदत्त नामक नाटक में वीणा को समुद्र से निकला हुआ रत्न बताया गया है (**वीणा नाम समुद्रोत्थितं रत्नम्**)। कालिदास ने रघुवंश में अग्निवर्ण को वीणावादन का प्रेमी बताया है। वेणु की प्रशंसा करते हुये वात्स्यायन ने लिखा है कि यह वाद्य प्रियतमा को आकर्षित करने का मूल मंत्र है (**वंशं वादयतो या शब्दं शृणोति सा वश्या भवति-कामसूत्र**)। ललित-विस्तर में कहा गया है कि पुर-सुन्दरियाँ वीणा का अभ्यास करती थीं (**नार्यो मुदितमनाः प्रसन्नचित्ताः वेणुभ्यो मधुरमनोरमं रमन्ते**)। बुद्धचरित में सभ्य महिलायें संगीत के अवसर पर मृदंग बजाती

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुई दिखाई गई हैं (**नारिकराग्राभिहतैः**)।

इन वाद्यों के अतिरिक्त भेरी, पणव तथा तूण आदि का भी विस्तृत प्रचार था। ललित-विस्तर के अनुसार कपिलवस्तु की स्त्रियाँ इनके वादन में परम निपुण थीं। धनिक व्यक्तियों के घरों में संगीतशाला बनी होती थी, जहाँ विभिन्न वाद्यों का अभ्यास किया जाता था। वसन्तसेना के भवन की संगीतशाला का वर्णन करते हुये कहा गया है कि इसमें युवतियों के कोमल करों से बजाये जाते हुये मृदंग मेघ के सामन गंभीर शब्द कर रहे थे। क्षीणपुण्या गगनतारिका के समान कांस्यताल के गिरने का शब्द भी हो रहा था। मधुकर की मधुर गुंजार के समान बाँसुरी अत्यन्त मधुरता के साथ बजाई जा रही थी।

अभिनय—नाटकों के अभिनय की गणना उच्चकला के अन्तर्गत होती थी। अभिनय का वास्तविक कार्य नाट्यशालाओं में किया जाता था। इन्हें प्रेक्षागृह तथा रंगशाला कहा जाता था। अभिनय की सफलता दर्शकों के परितोष से निर्धारित होती थी। शाकुंतल में सूत्रधार कहता है कि "सभ्यों को प्रसन्न करना अभिनेता का वास्तविक कार्य है। जब तक उन्हें संतुष्टि न हो जाय, तब तक मैं अपनी कला की श्रेष्ठता में विश्वास नहीं करता।" प्रेक्षागृह में नागरिक शांतिपूर्वक बैठते थे। शाकुंतल में कहा गया है कि जिस समय इस नाटक का अभिनय हो रहा था, उस समय दर्शक चित्रलिखित के समान बैठे हुये थे (**अहो रागवद्धचित्रवृत्तिरालिखित इव सर्वतो रंगः**)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ७

भारतवर्ष एवं पाश्चात्य विश्व

प्रागैतिहासिक पृष्ठभूमि—पुरातत्त्व साधनों से प्रमाणित होता है कि अत्यन्त प्राचीन काल से ही भारतवर्ष का पाश्चात्य देशों के साथ सम्बन्ध वर्तमान था। इतिहासकार अब इस बात को मानने लगे हैं कि सिंधु-उपत्यका में वर्तमान नगरों तथा सुमेरीय नगरों के बीच व्यापार-संबन्ध ३००० ई० पू० के लगभग स्थापित हो चुका था। इस समय हड़प्पा एवं मोहेनजोदड़ो के व्यापारी वस्तु-विक्रय के हेतु मेसोपोटामिया तथा मिश्र तक जाते थे। तत्कालीन सुमेर के नगरों में भारतीय सौदागरों के बसने के पुरातत्त्वप्रमाण भी उपलब्ध होते हैं। उर एवं किश की खुदाइयों में हड़प्पा की मुहरें एवं अन्य वस्तुयें प्राप्त हुई हैं। हड़प्पा में बने हुये कपास के कपड़ों की इन नगरों में अधिक माँग थी।

सिंधु घाटी के विशाल अन्नागारों के समान दजला-फरात घाटी के नगरों में भी बृहत् अन्नागार बने हुये थे। उर के एक लेख के अनुसार यहाँ के किसी अन्नागार में इतना अधिक अन्न एकत्र किया गया था कि उससे ४०२० दिनों तक श्रमिकों को वेतन दिया जा सकता था। इसी प्रकार उर के एक अन्य लेख से ज्ञात होता है कि यहाँ के एक दूसरे अन्नागार से १०, ६३० मजदूरों को दैनिक वेतन दिया जाता था।

मिश्र में १७०० ई० पू० के लगभग की कब्रों में कुछ भारतीय वस्तुयें प्राप्त हुई हैं, जो दोनों देशों के बीच के व्यापारिक संबन्ध की प्राचीनता को प्रमाणित करती हैं। सिंधु-उपत्यका के अन्नागारों की भाँति मिश्र में भी राजकीय आय के संकलन के हेतु विशाल अन्नागार बनाये जाते थे। इस समय तक सीरिया के साथ भी भारतवर्ष का वाणिज्य-संपर्क स्थापित हो चुका था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यहूदी लेखों के अनुसार सालोमन (८०० ई० पू०) के काल में टायर के शासक हिरम ने पूर्व की दिशा में एक जहाजी बेड़ा भेजा था, जो अपने साथ ओफिर के बंदरगाह से सुवर्ण, चाँदी, हाथीदाँत, बन्दर, मयूर तथा कीमती पत्थर लेकर स्वदेश वापस लौटा। यहूदी लेखों में ओफिर के सुवर्ण की पर्याप्त प्रशंसा की गई है। कुछ विदेशी लेखों में ओफिर को सोफारा भी कहा गया है। सौवीर एवं सोफारा में नामसाम्य है। अतएव कुछ विद्वानों ने ओफिर (सोफारा) की एकता सौवीर से की है। कतिपय इतिहासकारों ने ओफिर की पहचान आभीर तथा सोपारा (सुप्पार) से की है।

जो वस्तुयें इस जहाजी बेड़े के साथ लाई गईं, उनकी उत्पत्ति भारतीय लगती है। यहूदी लेख में हाथीदाँत को शेन हब्बिन कहा गया है। यह संस्कृत के इभ-दंत (हाथीदाँत) शब्द का हिब्रू रूपान्तर है। यहूदी लेख में बंदर को कोफ कहा गया है। इसकी एकता संस्कृत के कपि (बंदर) शब्द से की जा सकती है। यहूदी लेख में मयूर के लिये 'थुकि-इम' शब्द मिलता है। इसकी एकता तामिल के तोकेई शब्द से की जाती है। डाक्टर रमेशचन्द्र मजुमदार के शब्दों में इन वस्तुओं का भारतीय नाम पूर्ण रूप से स्पष्ट कर देता है कि वे भारतवर्ष से लाई गई थीं।[१]

महाशोध जातक में एक कथा आती है, जिसके अनुसार बोधिसत्व अपने किसी पूर्व जन्म में वाराणसी के सम्राट के मंत्री थे। एक नवजात शिशु के विषय में दो स्त्रियाँ अपने झगड़े को लेकर उनके पास निर्णय के लिये आईं। उनमें से प्रत्येक उसे अपना पुत्र बताती थी। उनमें से एक यक्षिणी थी, जिसने भक्षण के निमित्त उसे चुरा लिया था। बोधिसत्व ने एक को बच्चे का सिर तथा दूसरे को उसका पैर पकड़ कर अपनी ओर खींचने को कहा। यक्षिणी इसके लिये प्रस्तुत हो गई पर वास्तविक माता ने ऐसा करने से अस्वीकार कर दिया, क्योंकि इस खींचतान की क्रिया में बच्चे को शारीरिक

---

१. "The use of these Indian names for merchandise raises a strong presumption in favour of their Indian origin."

—R. C. Majumdar.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चोट पहुँचती। इस प्रकार उन्होंने शिशु की असली माता का पता लगा लिया और उसे बच्चे को समर्पित कर दिया। सालोमन के निर्णय (जजमेन्ट ऑफ सालोमन) के विषय में भी इसी प्रकार की कथा मिलती है। यह साम्य भी ८०० ई० पू० के लगभग पाश्चात्य विश्व के साथ भारतवर्ष के संपर्क को प्रमाणित करता है।

प्राचीन यूनानी ग्रंथों में 'संतलोन' शब्द 'चन्दन' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार हिब्रू भाषा का कर्पस शब्द संस्कृत के कर्पास शब्द से निकला है। बौद्ध ग्रंथों में भारतीय व्यापारियों के जलमार्ग द्वारा सुदूर पश्चिम में जाने का उल्लेख मिलता है। उदाहरणार्थ एक जातक में उनके 'बावेरु' जाने का वर्णन आता है। बावेरु की एकता बैबीलोनिया से की जाती है।

प्रागैतिहासिक काल में पश्चिमी एशिया के साथ भारतवर्ष के संपर्क के विषय में कुछ विशिष्ट पुरातत्त्व-प्रमाण उपलब्ध हुये हैं। शलमनेसर तृतीय (८६० ई० पू०) के प्रस्तर-स्तंभ पर भारतीय हाथी एवं बन्दर की आकृतियाँ अंकित की गई हैं। उर के एक देवालय के निर्माण में भारतीय सागौन (टीक) के लट्ठों का प्रयोग किया गया था। छठीं शताब्दी ई० पू० में नेबुक्रदनज़र के राजप्रासाद के निर्माण में भारतीय लकड़ियों का प्रयोग किया गया था। बोघाज़कोई से कुछ अभिलेख मिले हैं; जिनमें मित्र, वरुण तथा इन्द्र आदि वैदिक देवताओं का उल्लेख किया गया है। ये लेख इस बात के प्रमाण हैं कि चौदहवीं शताब्दी ई० पू० में भारतवर्ष तथा पश्चिमी एशिया के बीच घनिष्ठ संपर्क था।

प्रागैतिहासिक काल में पाश्चात्य विश्व के साथ भारतवर्ष का संपर्क विशेषतः व्यापारविषयक था। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि इनके बीच कोई राजनीतिक संबन्ध नहीं था। व्यापार-संपर्क के कारण कुछ सांस्कृतिक प्रभाव भी पड़े, पर वे अत्यल्प थे। रालिन्सन ने प्रागैतिहासिक काल में भारतवर्ष से पश्चिम को जाने वाले तीन मार्गों का निर्देश किया है।[१] पहला मार्ग सिंधु

---

१. "From Prehistoric times, three great trade routes have connected India with the west." —Rawlinson.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
नदी के मुहाने से समुद्र-तट को छूता हुआ फारस की खाड़ी में दजला-फरात की सम्मिलित धारा के मुहाने तक जाता था। दूसरा मार्ग हिन्दुकुश के दर्रों से होता हुआ बल्ख तथा ईरान को पार कर अन्तियोक तक जाता था। तीसरा एक घुमावदार जलमार्ग था। यह फारस तथा अरब के तट-प्रदेशों से होता हुआ लाल सागर को पार कर मिश्र तथा यूनान तक निकल जाता था।

ऐतिहासिक काल

भारतवर्ष एवं फारस का संबन्ध—ऐतिहासिक काल (छठीं शताब्दी ई० पू०) से पाश्चात्य देशों के साथ भारतवर्ष के संपर्क के विषय में हमें पर्याप्त सूचना मिलने लगती है। साइरस ने ५४७ ई० पू० तथा ५२५ ई० पू० के बीच लिडिया, सर्डिस और बैबीलन को जीतकर विशाल पारसीक साम्राज्य की स्थापना की। तदनन्तर कम्बुजीय तथा दारा ने इसका दूरतर विस्तार किया। दारा के पर्सिपोलिस तथा नक्शेरुस्तम के लेखों में हमें 'भारतवर्ष' (इंडिया) का प्रथम उल्लेख इस देश की सीमा के बाहर प्राप्त होता है। दारा ने स्काइलक्स नामक एक यूनानी को सिंधु नदी के उद्गम-स्थान से फारस तक समुद्री मार्ग का पता लगाने के निमित्त भेजा था। वह गंधार में एक विशाल जलबेड़ा तैयार कर सिंधु नदी से होता हुआ समुद्र-मार्ग से फारस तेरह महीने में पहुँचा।

दारा ने उत्तर-पश्चिम भारत के कुछ भागों को जीत कर अपने साम्राज्य में सम्मिलित किया। भारतवर्ष के ये भाग उसके साम्राज्य के बीसवें प्रान्त में आते थे। पारसीक साम्राज्य में सम्मिलित होने के उपरान्त पश्चिमी देशों के साथ भारतवर्ष का संपर्क विकासोन्मुख होने लगा। धनुष चलाने में निपुण भारतीय सैनिक ज़रज़ीज़ की सेना में सम्मिलित थे। उन्होंने इस सम्राट के यूनानी युद्ध में भाग लिया था। सिकन्दर के साथ दारा तृतीय की जिस सेना ने युद्ध किया था, उसमें भारतीय सैनिक भी सम्मिलित थे। इस निकट संपर्क के कारण दोनों देशों के ऊपर एक दूसरे का सांस्कृतिक प्रभाव पड़ना नितांत स्वाभाविक था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चन्द्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य पश्चिम में पारसीक साम्राज्य से मिला हुआ था। विद्वानों का कथन है कि भारतवर्ष के निवासियों ने इस समय पारसीक वास्तुकला की विशेषताओं से प्रेरणा ली। यूनानी लेखकों के अनुसार चन्द्रगुप्त के राजप्रासाद में स्तंभयुक्त कई विशाल कमरे बने हुये थे। इन स्तंभों पर विभिन्न प्रकार की सुन्दर आकृतियाँ बनी हुई थीं। पारसीक सम्राटों के राजप्रासादों में भी ये विशेषतायें विद्यमान थीं। इससे पुरातत्त्ववेत्ताओं का अनुमान है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने राजमहल के निर्माण में पारसीक कलाकारों की सहायता ली होगी।

कतिपय विद्वानों के अनुसार मौर्य साम्राज्य के संगठन, शासन-प्रबन्ध तथा दरबारी शिष्टाचारों पर भी पारसीक प्रभाव था। अशोक ने संभवतः पारसीक सम्राटों का अनुकरण कर अपनी धम्मलिपियों को पाषाणखंडों पर उत्कीर्ण किया। दारा के शिलालेखों के प्रारंभिक वाक्य 'दारयवौष् क्षायथिय वज्रक क्षायथिय्' की भाँति अशोक की धम्मलिपियों की आदि में 'देवानां पियो प्रियदसि राजा एवं आह' वाक्य उपलब्ध होता है। उत्तर-पश्चिम भारतवर्ष में प्रचलित खरोष्ठी लिपि का आविर्भाव साखामनीष साम्राज्य की एक राजकीय लिपि—आरमीकी लिपि—से ही हुआ। अशोक के शाहबाज़गढ़ी और मान्सेहरा के लेख खरोष्ठी में उल्लिखित हैं।

अशोक के स्तंभों की निर्माणशैली पर पारसीक प्रभाव परिलक्षित होता है। इनकी बनावट पर्सिपोलिस के स्तंभों की बनावट के समान है। अशोक के स्तंभों के ऊपरी भाग में एक अधोमुख कमल मिलता है, जिसका आकार पारसीक स्तंभों की घंटानुमा आकृति (पर्सिपोलिटन बेल) से मेल खाता है। विद्वानों का अनुमान है कि अशोक के राजप्रासाद का स्तंभयुक्त विशाल कमरा दारा के विशाल कमरे (हाल ऑफ हंड्रेड कालम्स) के आधार पर तैयार किया गया था।

भारतवर्ष का यूनान से सम्बन्ध—ऐतिहासिक काल से यूनान और भारतवर्ष के बीच घनिष्ठ संपर्क की स्थापना का प्रारंभ हुआ। हेरोडोटस (४८४ ई० पू०) के ग्रंथ में हम भारतवर्ष का प्रथम प्रामाणिक यूनानी विवरण पाते हैं। टेसियस नामक यूनानी लेखक की रचनाओं में हमें भारतवर्ष का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्णन मिलता है। उसका समय ४१८ ई० पू० से लेकर ३९८ ई० पू० तक माना जाता है। वह पारसीक नरेश के दरबार में राजकीय चिकित्सक के रूप में रहता था, अतएव सन्निकटता के कारण भारतवर्ष के प्रामाणिक वर्णन के लिये उसे एक अच्छा अवसर प्राप्त था। ४०० ई० पू० में एक भारतीय दार्शनिक सुकरात के पास आया था।

सिकन्दर के आक्रमण के समय से भारतवर्ष तथा पश्चिमी देशों के संबन्ध में एक नये प्रकरण का प्रारंभ होता है। उसकी विजयों के फलस्वरूप हेलेनिस्टिक विश्व की स्थापना हुई। परिणामतः पश्चिमी एशियाई तथा पूर्वी यूरोप के देशों के साथ भारतवर्ष का सीधा सम्पर्क स्थापित हुआ। सिकन्दर ने उत्तर-पश्चिम भारतवर्ष में नगरों के रूप में कुछ उपनिवेशों की नींव डाली; उदाहरणार्थ बुकाफेला (झेलम नदी के तट पर), (निकाइया जहाँ पोरस के साथ उसका युद्ध हुआ था), सिकन्दरिया (सिंधु और चेनाब नदियों के संगम पर स्थित) तथा सोग्डिआन सिकन्दरिया (पंचनद के दक्षिण में स्थापित)। मिलिन्द-प्रश्न तथा महावंश में काबुल के समीप स्थित सिकन्दरिया को 'अलसन्द' कहा गया है। इन उपनिवेशों की स्थापना के कारण भारतवर्ष का यूनान के साथ विशेष संपर्क स्थापित हुआ।

विद्वानों का कथन है कि अशोक ने इन उपनिवेशों में रहने वाले यूनानी कलाकारों से अपने प्रस्तर-स्मारकों का निर्माण कराया था। उसके काल से हमारे देश में प्रस्तर-वास्तु का प्रारम्भ माना जाता है। इसके पहले यहाँ भवन आदि के निर्माण में लकड़ी का प्रयोग किया जाता था। इस यूनानी सम्पर्क के कारण ही मौर्य काल में भारतीय कलाकारों ने स्थापत्य के क्षेत्र में पत्थरों का उपयोग करना प्रारम्भ किया। अशोक की लाटें तथा गुफायें पत्थरों को काट कर बनाई गई हैं। चीनी यात्री फाहियान के अनुसार अशोक के राजमहल के खंभों और दीवालों में पत्थरों की चुनाई की गई थी। यह राजप्रासाद चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के काल में वर्तमान था। फाहियान उसे देखकर आश्चर्यचकित हो उठा था।

यद्यपि सिकन्दर द्वारा स्थापित साम्राज्य उसकी अकाल मृत्यु के कारण विनष्ट हो गया, तथापि यूनान और भारतवर्ष का संबन्ध अविच्छिन्न रूप

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से बना रहा। चन्द्रगुप्त मौर्य ने सेल्यूकस की पुत्री के साथ अपना विवाह किया। उसके दरबार में मेगस्थनीज़ नामक यूनानी राजदूत रहता था, जिसका विवरण मौर्यकालीन इतिहास का एक प्रमुख साधन माना जाता है। बिन्दुसार के दरबार में डिमेकस नामक यूनानी राजदूत रहता था। सेल्यूकस की मृत्यु के उपरान्त उसके उत्तराधिकारी अन्तियोकस सोटर ने भारतवर्ष के साथ अपना संबन्ध पूर्ववत् स्थापित रखा। हेगेसेण्डर और एथिनाइसस नामक यूनानी लेखकों के द्वारा ज्ञात होता है कि बिन्दुसार ने अन्तियोकस सोटर से मीठी शराब, अंजीर तथा सोफिस्ट दार्शनिक माँगा था। अन्तियोकस सोटर ने मीठी शराब तथा अंजीर भेज दिया और सोफिस्ट के विषय में लिखा कि यूनानी परंपरा के अनुसार दार्शनिक खरीदना या बेचना अवैध है।

अशोक ने यूनानियों का सम्मान किया। उसने यवनराज तुषास्फ को सुराष्ट्र प्रान्त का राज्यपाल नियुक्त किया। इसका नामोल्लेख रुद्रदामन के गिरिनार के लेख में हुआ है। उसने बाढ़ से नागरिकों की सुरक्षा के निमित्त सुदर्शन झील के किनारे एक बाँध बनवाया था (अशोकस्य मौर्यस्य कृते यवनराजेन तुषास्फेनाधिष्ठाय)। अशोक के शाहबाज़गढ़ी के लेख में पाँच यवनराजाओं के नाम आते हैं—(१) अन्तियोक (सीरिया का शासक ऐन्टायकस द्वितीय), (२) तुरमाय (मिश्र का टालमी द्वितीय), (३) अन्तेकिन (मैसीडन का शासक ऐंटिगोनस गोनैटस) (४) मक (उत्तरी अफ्रीका के साइरेन का शासक मग) तथा (५) अलिकसुन्दर (एपिरस का शासक सिकन्दर)। इन यवन शासकों के पास उसने धर्म के प्रचार में निमित्त राजदूत भेजे। महावंश के अनुसार अशोक के काल में तीसरी बौद्ध सभा हुई। इस सभा ने महारक्षित नामक दूत को यवन देश में धर्म-प्रचार के निमित्त भेजा था।

मौर्य साम्राज्य के अधःपतन के अनन्तर बैक्ट्रिआ के यवनों ने पुष्यमित्र शुंग के काल में भारतवर्ष के ऊपर आक्रमण किया। इन यवन-आक्रमणकारियों में डेमेट्रिअस तथा मेनेन्डर उल्लेखनीय हैं। पतंजलि के महाभाष्य में शुंगकालीन यवन-आक्रमण का उल्लेख हुआ है। उनके अनुसार यवनों ने साकेत तथा माध्यमिका के ऊपर घेरा डाला (अरुणद् यवनः साकेतम्,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अरुणद् यवनः माध्यमिकाम्)। इस आक्रमण का उल्लेख युग-पुराण में भी हुआ है। इसके अनुसार यवनों ने साकेत, पांचाल तथा मथुरा को जीत कर कुसुमध्वज (कान्यकुब्ज) पर आक्रमण किया—

"ततः साकेतमाक्रम्य पाञ्चालान्मथुरांस्तथा।
यवनाः दुष्टविक्रान्ताः प्राप्स्यन्ति कुसुमध्वजम्॥"

तदन्तर उन्होंने पाटलिपुत्र पर आक्रमण किया। युग पुराण के अनुसार उनके अत्याचारों के कारण यहाँ के नागरिकों में हाहाकार मच गया :—

"ततः पुष्पपुरे प्राप्ते कर्दमे प्रथिते हि ते।
आकुलाः विषयाः सर्वे भविष्यन्ति न संशयः।"

इन यवनों को परास्त कर पुष्यमित्र शुंग ने अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया, जिसका उल्लेख पतंजलि के महाभाष्य तथा कालिदास के मालविकाग्निमित्रम् नामक नाटक में हुआ है।

इस समय का यवन-शासक मेनेन्डर (मिलिन्द) यहाँ पर विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उसके सम्बन्ध में विशद सूचना मिलिन्द-प्रश्न नामक ग्रंथ से प्राप्त होती है। उसकी राजधानी शाकल (स्यालकोट) में विद्यमान थी। मिलिन्द-प्रश्न में शाकल को यवन-नगर (योनकानं नगरम्) कहा गया है। इसमें आराम, उद्यान तथा तड़ाग बने हुये थे (पवनतड़ागपोक्खरणी-संपन्नम्)। इसके चतुर्दिक प्राकार एवं परिखा का निर्माण किया गया था। प्राकार में द्वार (गोपुर) तथा बुर्ज़ बने हुये थे (वरगोपुरतोरणं गम्भीरपरिखा-पंडरपाकार-परिक्खित)। नगर के भीतर सुन्दर राजमार्ग, गलियाँ तथा चौराहे बने हुये थे (सुविभक्तवीथिचच्चरचतुक्कसिंघाटकम्)। बाजारों में अनेक प्रकार के भाण्ड सुसज्जित थे (सुप्पसारितानेकविधवरभण्डपरिपूरितन्तरापणम्)। इसमें तरह-तरह के पुष्पों एवं सुगन्धित द्रवों की महक आ रही थी (बहुविधपुष्प-गन्धापणगन्धगन्धितम्)। नगर के भीतर श्रेष्ठ उत्तुंग प्रासाद थे। यहाँ के नागरिकों के कोष में कार्षापण तथा रजत एवं सुवर्ण मुद्रायें बहुसंख्या में भरी थीं (कहापणरजतसुवर्णकंसपत्थरपरिपूरं)। इस नगर में रहने वाले पुरुष तथा स्त्रियाँ शिष्ट थीं (अभिरूपनरनारीगणानुचरितम्)। निरन्तर हाथियों, अश्वों, रथों तथा नगर-महिलाओं के संभ्रमण के कारण इसकी वीथियों की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शोभा अन्वेक्षणीय थी। यह नगर विभिन्न धर्मों के अनुयायियों तथा नाना संप्रदायों के सदस्यों से परिपूर्ण था। लगता था मानो साक्षात् देवपुरी पृथ्वी पर उतर आई हो (आलकमन्दा विय देवपुरम्)। क्षेमेन्द्र के अवदानकल्पलता के अनुसार मिलिन्द ने इस देश में स्तूपों का निर्माण किया था (मिलिन्दो नाम राजास्मिन्देशे स्तूपं करिष्यति)।

बेसनगर के गरुड़-स्तंभ-लेख में तक्षशिला के यवनराज अन्तलिकित (अन्तिआलकिदास) का उल्लेख हुआ है। उसने हेलिओदर (हेलिओडोरस) नामक यवन को राजदूत बनाकर विदिशा के शासक कौत्सीपुत्र भागभद्र के दरबार में भेजा था। हेलिओडोरस वैष्णव धर्म का अनुयायी था। उसने बेसनगर में गरुड़स्तंभ की स्थापना की थी जिस पर यह लेख उत्कीर्ण मिलता है (देवदेवस वासुदेवस गरुड़ध्वजे अयं कारिते इअ हेलिओदोरेण भागवतेन दियसपुत्रेण तखसिलाकेन योनदूतेन आगतेन महाराजस अंतलिकितस सकासं रजो कोसीपुत्रस भागभद्रस त्रातारस वसेन चतुदसेंन राजेन वधमानस)।

भारतवर्ष के नरेश राजदूतों का पर्याप्त सम्मान करते थे। राजनीतिक कारणों से आये हुये राजदूत की सुरक्षा को इस देश के सम्राट अपना कर्त्तव्य समझते थे (दूता न वध्याः समयेषु राजन् सर्वेषु सर्वत्र वदन्ति सन्तः-रामायण)। विदेशियों की देख-रेख हमारे देश की एक प्राचीन परंपरा थी। मेगस्थनीज लिखता है कि पटलिपुत्र की प्रबन्धकारिणी सभा की एक समिति का कार्य विदेशियों की सुविधा का प्रबन्ध था। यदि वे बीमार पड़ते थे, तो यह उनकी औषधि की व्यवस्था करती थी। बैक्ट्रिआ के यवनराजाओं का काल यूनानी एवं भारतीय सभ्यताओं का वास्तविक संगम-काल माना जाता है। संगम-साहित्य में यवन व्यापारियों के उल्लेख मिलते हैं। तामिल नरेश यवन अंगरक्षक नियुक्त करते थे।[१] संगमसाहित्य में एक स्थान पर जहाजों

१. "And Tamil Rajas employed bodyguards of western mercenaries the valliant eyed Yavanas whose bodies were strong and of terrible aspect and who, equipped with murderous swords, were excellent guardians of the gates of the fort-walls."

—Wheeler

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में माल को भरकर यवन व्यापारियों के भारतवर्ष पहुँचने का वर्णन आता है। संगम-साहित्य में एक दूसरे स्थान पर एक पांड्य राजकुमार यूनानी शराब को पीता हुआ उल्लिखित किया गया है।

भारतवर्ष का रोम के साथ सम्बन्ध—ई० पू० पहली शताब्दी में रोम-साम्राज्य अपनी शक्ति के लिये विशेष रूप से प्रख्यात था। आगस्टस का शासनकाल (२६ ई० पू०-१४ ई०) रोम के इतिहास का स्वर्णकाल माना जाता है। उसके समय में भारतवर्ष से राजदूत आये थे। स्ट्रेबो लिखता है कि पोरस नामक एक भारतीय सम्राट ने आगस्टस के पास एक दूतमंडल भेजा था। मार्ग की यातनाओं के कारण इसके केवल तीन सदस्य वहाँ पर बचकर आ पाये थे। वे अपने साथ बिना बाँह का एक आदमी, साँप तथा कछुआ ले आये थे। पोरस ने इस दूतमंडल के द्वारा रोम-सम्राट के पास मैत्री का प्रस्ताव भेजा था। इस पोरस की पहचान के विषय में कुछ निश्चयात्मक रूप से कहना कठिन है।

स्ट्रेबो के अनुसार सुदूर दक्षिण में शासन करने वाले पांड्य नरेश ने भी आगस्टस के पास अपना एक राजदूत भेजा था। प्रायलक्स के अनुसार आगस्टस चाहता था कि भारतवर्ष के नरेश रोम-सम्राट तथा वहाँ के निवासियों के साथ मित्रता स्थापित रखें।[१] आगस्टस के उपरांत के नरेशों के काल में भी भारतवर्ष से राजदूत रोम भेजे गये थे। प्लिनी लिखता है कि क्लाडिअस के काल में भारतवर्ष से चार राजदूत रोम आये थे। ट्रेजन के काम में १०७ ई० में एक भारतीय राजदूत वहाँ आया हुआ था। अपनी वृद्धावस्था में फारस की खाड़ी में भारतवर्ष को जाने वाले जहाज को देखकर वहाँ जाने के लिये उसकी इच्छा बलवती हो उठी। उसने कहा था कि यदि दैववश उस समय वह नवयुवक होता, तो इसके द्वारा वह भारत अवश्य

१. "The Indians also and the Scythians, who were known only by report, he (Augustus) attracted to solicit voluntarily, through ambassadors, the friendship of himself and the Roman people."
—Prialux.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाता। इसके अतिरिक्त हैड्रिअन (११७ ई०-१३८ ई०), एँटोनिअस पियस (१३८ ई०-१६१ ई०), गेबेलस (२१८ ई०-२२२ ई०), कांस्टैन्टाइन (२२३ ई०-२५३ ई०), आरेलिअन (२७० ई०-२७५ ई०) तथा जुलिअन (३६१ ई०-३६३ ई०) के काल में भी भारतीय राजदूत रोम आये थे।

रोम के साथ भारतवर्ष के व्यापारिक संबन्ध के विषय में हमें सूचना 'पेरिप्लस ऑफ दी ईरीथिअन सी' नामक ग्रंथ से मिलती है। इसके अनुसार डिओस्कोराइड जिसकी पहचान आधुनिक सोकोत्रा नामक द्वीप से की जाती है, व्यापार का एक प्रतिष्ठित केन्द्र था। वहाँ पर अरब, यूनान तथा भारतवर्ष के व्यापारी बसे हुये थे। हमारे देश के सौदागर वहाँ गेहूँ, चावल, कपड़ा तथा दासियाँ लाते थे और बदले में कछुये की खाल स्वदेश ले जाते थे। भारतवर्ष के जहाज फारस और अरब के समुद्रतट से होते हुये लालसागर तथा वहाँ से मिश्र और रोम की ओर निकल जाते थे।

हिप्पालस नामक नाविक ने ४५ ई० के आसपास जलपोत के संचालन में मानसून की उपयोगिता का अनुसंधान किया। मानसून की सहायता से अब जहाज लालसागर के ओकेलिस नामक बंदरगाह से चल कर भारत के मुजिरिस (आधुनिक क्रान्गानोर) नामक बंदरगाह पर लगभग ४० दिनों में पहुँचता था। बीच समुद्र से होकर जाने के कारण मार्ग में समुद्री डाकुओं का खतरा कम हो गया तथा यात्रा भी संक्षिप्त हो गई।

रोम-सम्राट भी जलमार्ग के द्वारा भारतवर्ष के साथ व्यापार को प्रोत्साहित करना चाहते थे, क्योंकि स्थलमार्ग से सामग्री पार्थियन राज्य से होकर ही भारतवर्ष जा सकती थी। पार्थिया रोम-साम्राज्य का कट्टर शत्रु था। तालिम ग्रंथों के अनुसार मामल्लपुरम्, पुहार तथा कोर्कइ में विदेशी व्यापारी रहते थे। वे इन बंदरगाहों पर अपने जहाजों को भरते और खाली करते रहते थे। इन विदेशी व्यापारियों में रोम के सौदागर भी सम्मिलित थे।

रोम में भारतवर्ष के विलास की सामग्री की काफी माँग थी। यहाँ की बाज़ारों में भारतीय मलमल, जवाहरात, मोती, जटामांसी, हाथीदाँत तथा सिल्क भरे रहते थे। प्लिनी ने हार्दिक क्लेश प्रगट किया है कि उसके देश के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निवासी अपनी विलासिता के कारण अपने देश की अतुल धनराशि भारतवर्ष भेज देते थे। उसके अनुसार रोम की लगभग ५ करोड़ मुद्रायें हमारे देश में प्रति वर्ष आती थीं। पांपिआई से भारतवर्ष में बनी हुई हाथीदाँत की राजलक्ष्मी की एक मूर्ति मिली है। यह पाश्चात्य देशों के साथ भारतवर्ष के घनिष्ठ संबन्ध को प्रमाणित करती है।[१] अरिकमेडू के उत्खनन में रोम के एक दीप का टुकड़ा प्राप्त हुआ है। इससे स्पष्ट है कि रोम से भी भारतवर्ष में वस्तुयें आती थीं।

मिश्र के साथ भारतवर्ष का संबन्ध—जलमार्ग के द्वारा भारतवर्ष का मिश्र के साथ सीधा संपर्क था। एथेनास लिखता है कि टालमी फिलाडेल्फस (२८५ ई० पू०-२४६ ई० पू०) के राजमहल के प्रांगण में भारतीय स्त्रियाँ, भारतीय शिकारी कुत्ते तथा भारतीय गायें विद्यमान थीं। इस समय यहाँ पर भारतवर्ष से मसाले भी मँगाये जाते थे। एथेनास के अनुसार टालमी फिलोपेटर के काल में भारतवर्ष से पत्थर मँगाया जाता था। एगाथर्काइडीज़ लिखता है कि सिंधु नदी के मुहाने पर स्थित पोटन नामक बंदरगाह से भारतीय सौदागर मिश्र आये हुये थे। इस पोटन की एकता भारतीय बंदरगाह पाटल से की जाती है, जो सिंधु नदी के मुहाने पर स्थित था। अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार-हेतु मिश्र में राजदूत भेजा था। सिकन्दरिया के क्लिमेन्ट ने बुद्ध का उल्लेख किया है। उसका समय १५० ई० से लेकर २१८ ई० तक माना जाता है।

टालमी फिलाडेल्फस ने लाल सागर के मिश्र-तट पर बेरेनिस नामक बंदरगाह का निर्माण किया था। उसने इस बंदरगाह से लेकर कोप्टोस नामक व्यापारिक केन्द्र तक एक मरुस्थल-मार्ग का निर्माण कराया। कोप्टोस नील नदी के तट पर स्थित था। यह मार्ग २५८ मील लम्बा था। इसके द्वारा भारतीय वस्तुयें बेरेनिस के बंदरगाह से कोप्टोस लाई जाती थीं।

---

१ "Best or the rare survivors is the well-known ivory statuette of Lakshmi, the Indian goddess of good luck and prosperity, found at Pompeii." —Wheeler.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस मार्ग को तय करने में १२ दिन लग जाते थे। इसके दोनों किनारों पर भारतीय सौदागरों की सुविधा के लिये यथास्थान विश्रामगृह बनाये गये थे तथा जल की व्यवस्था की गई थी। कोप्टोस से सामान नील नदी के द्वारा सिकन्दरिया के बंदरगाह को लाया जाता था।

टालमी फिलाडेल्फस ने २७४ ई० पू० में बेरेनिस से १८० मील उत्तर मिश्रोस होर्मोस में एक बंदरगाह बनवाया। यहाँ से स्थल-मार्ग के द्वारा भारतीय व्यापारी सात दिनों में कोप्टोस पहुँचते थे। हमारे देश के सौदागरों के लिये यह बंदरगाह बेरेनिस के बंदरगाह से अधिक सुविधाजनक पड़ता था। इस बंदरगाह से मिश्र के व्यापारी भारतवर्ष आते थे। आगस्टसकालीन स्ट्रेबो लिखता है कि वह मिश्रोस होर्मोस आया हुआ था। उसके अनुसार इस बंदरगाह से एक ही मौसम में मिश्र के लगभग १२० जलपोत भारत गये थे। इस समय मिश्र के कुछ साहसिक व्यापारी गंगा नदी के मुहाने तक पहुँचे थे। स्पष्ट है कि वे बंगाल के समुद्र-तट पर स्थित ताम्रलिप्ति के बंदरगाह पर उतरे होंगे।

भारतीय बंदरगाह—पश्चिमी देशों के साथ जिन भारतीय बंदरगाहों से व्यापार होता था, उनका वर्णन कुछ निम्न ढंग पर किया जा सकता है—

भृगुकच्छ—इसको पेरिप्लस में बैरीगाज़ा कहा गया है। इसकी पहचान आधुनिक भड़ौच से की जाती है। यहाँ से बाहर जाने वाली वस्तुओं में हातीदाँत, रेशमी तथा सूती वस्त्र, मिर्च, बहुमूल्य पत्थर, मलमल, जटामांसी, कुष्ठ, गुगुल, अकीक, लोहितांक तथा लिसियम उल्लेखनीय हैं। पेरिप्लस के अनुसार बाहरी देशों से इस नगर में मदिरा, कस्तीर, सीसक, सूक्ष्म वस्त्र, कटिसूत्र, सुवर्ण एवं रजत मुद्रायें, बहुमूल्य बर्तन, संगीतनिपुण बालक, सुंदर युवतियाँ तथा अनुलेप, ताँबा, राँगा, मूँगा, पोखराज, संखिया, सुरमा तथा अच्छे रोगन आते थे।

बाहरी देशों में भेजने के निमित्त यहाँ तत्कालीन नगरों से माल आता था। उदाहरणार्थ उज्जयिनी से मलमल एवं मलय वस्त्र आता था। जातकों में इस बंदरगाह से भारतीय व्यापारियों के विदेश जाने का उल्लेख मिलता है। सुस्सोंद जातक के अनुसार भृगुकच्छ के वणिक (भरुकच्छ-वणिजा)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
व्यापार के लिये सुदूर पश्चिमी देशों में जाते थे। सुप्पारक जातक से विदित होता है कि बोधिसत्व ने अपने मित्रों के साथ सात मणियों वाले समुद्र के लिये इस नगर से प्रस्थान किया था।

सुपारा—इसे संस्कृत के प्राचीन ग्रंथों में शूर्पारक कहा गया है। जातकों में इसे 'सुप्पारक' कहा गया है। इसकी पहचान आधुनिक सोपारा से की जाती है। पेरिप्लस के अनुसार शातकर्णि नामक नरेश के समय में बाहरी देशों के साथ इस बंदरगाह का घनिष्ठ व्यापारिक संबन्ध था।

कल्याण—यह भड़ौंच का समीपवर्ती व्यापारिक केन्द्र था। पेरिप्लस में इसे 'कल्लियेन' कहा गया है। इसके अनुसार यहाँ पर यूनानी जहाज लंगर डालते थे।

टिंडिस—पेरिप्लस ने इसकी गणना तत्कालीन प्रसिद्ध बंदरगाहों में की है। उसके अनुसार यहाँ से हाथीदाँत, मोती, रेशमी वस्त्र तथा हीरे बाहर भेजे जाते थे।

मुजिरिस—इस बंदरगाह का उल्लेख 'पेरिप्लस' तथा तामिल ग्रंथों में हुआ है। यहाँ पर यवनों के माल से भरे सुंदर जहाज आते थे। इसकी बाज़ारें मिर्च के बोरों से भरी हुई थीं। यूनानी अपने जहाजों में इन्हें भर कर स्वदेश लौटते थे।

नेलकिंडा—यह मुजिरिस से पचास मील दूर पांड्यों के राज्य में स्थित था। यहाँ सिक्के, पुष्पराग, महीन वस्त्र, क्षौम पट, ताँबा, राँगा, सीसा तथा मदिरा आदि वस्तुयें बाहरी देशों से आती थीं। यहाँ से मोती, हाथीदाँत, रेशमी वस्त्र, जटामांसी, हीरे, नीलम तथा कछुये की खपड़ियाँ बाहर भेजी जाती थीं।

कावेरीपत्तन—यह नगर कावेरी नदी के मुहाने के समीप समुद्र-तट पर स्थित था। यहाँ पर अनेक देशों के जहाज आकर लगते थे। समुद्र-तट पर यवन तथा विदेशी व्यापरियों की बस्तियाँ बनी हुई थीं। अपने देश से लाई हुई सामग्री के ऊपर इन्हें कर देना पड़ता था। वहाँ के स्थानीय व्यापारियों के कोष में अतुल धनराशि संचित थी। नगर में सर्वत्र माल ही दृष्टिगोचर होता था। इसकी गलियों में यदि कहीं स्नान-चूर्ण, धूप तथा अतर बेचे जाते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थे, तो कहीं कौशेय वस्त्र, मूँगे, चन्दन, बहुमूल्य ग्राभरण तथा सुन्दर मोती एवं सुवर्ण ग्रादि का विक्रय किया जाता था। वस्तु का भार, तौल, परिमाण तथा स्वामी का नाम राजकीय लेखों में सुरक्षित रहता था।

मदुरा—यह भी वाणिज्य का एक विशिष्ट केन्द्र था। इस नगर के व्यापारी सोना, रत्न, मोती तथा विदेशी माल का व्यापार करते थे। यहाँ की शंखदार चूड़ियाँ काफी प्रसिद्ध थीं। इस नगर से वस्त्र तथा सुगंधित द्रवों का भी निर्यात होता था। बाहरी देशों के व्यापारियों के ग्रागमन के कारण इस नगर की पण्यवीथिकाग्रों में कोलाहल तथा जनरव निरंतर सुनाई देता था।

पत्तन—प्राचीन ग्रंथों में इन बंदरगाहों के लिये पत्तन शब्द ग्राता है। जैन साहित्य में इन्हें 'जलपट्टन' कहा गया है (ग्रर्थात् वह नगर जहाँ विदेशी माल उतारा जाता था तथा देशी माल का निर्यात होता था)। ग्रमरकोष में भी पत्तन शब्द का उल्लेख हुग्रा है। क्षीरस्वामी की ग्रमरकोष-टीका के ग्रनुसार पत्तन वह केन्द्र है, जहाँ पर चारों दिशाग्रों से माल ग्राता है (पतन्त्यस्मिन्पत्तनम्)। पत्तन शब्द की इस व्याख्या से समुद्री बन्दरगाह का बोध होता है। शिल्पशास्त्रों में भी समुद्री बन्दरगाह को पत्तन कहा गया है। मानसार के ग्रनुसार उस नगर को पत्तन कहते हैं; जो कि समुद्रतट पर स्थित होता है, जिसमें विशेषतः बनिये रहते हैं, जहाँ वस्तुयें सर्वदा खरीदी तथा बेची जाती हैं तथा जो द्वीपान्तर से विक्रय के निमित्त लाई गई सामग्री से परिपूर्ण होता है। मयमत में पत्तन को सागर के किनारे बसा हुग्रा, क्रय-विक्रय के वातावरण से परिपूर्ण तथा विदेश की वस्तुग्रों से युक्त कहा गया है। शिल्परत्न में भी पत्तन को समुद्र-तट पर वर्तमान (सागरानूपसंश्रितम्) तथा व्यापारियों एवं जहाज चलाने वालों से परिपूर्ण (सायंत्रिकवणिग्जुष्टम्) कहा गया है।

संपर्क का प्रभाव

पाश्चात्य सभ्यताग्रों का भारतीय संस्कृति पर प्रभाव—इस दीर्घ-कालीन संपर्क के कारण भारतीय संस्कृति एवं पाश्चात्य सभ्यतायें एक दूसरे से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रभावित हुई। इस बात का पहले निर्देश किया जा चुका है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के काल की कला के ऊपर पारसीक प्रभाव पड़ा था। भारतीय गंधार शैली यूनानी तक्षणकला से प्रभावित थी। रोम की सुवर्ण मुद्रायें भारतवर्ष के कई स्थानों से प्राप्त हुई हैं। कुषाण तथा गुप्त-सम्राटों ने अपने सिक्कों की तौल रोम की मुद्राओं की तौल (रोमन वेट स्टैंडर्ड) के आधार पर निर्धारित की। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में सुवर्ण मुद्रा के लिये दीनार शब्द मिलता है। यह नाम रोम की मुद्राओं के 'डेनैरियस' नाम का अनुकरण प्रतीत होता है।

वेबर आदि विद्वानों ने भारतीय नाटकों पर यूनानी नाटकों के प्रभाव को सिद्ध करने की चेष्टा की है। भारतीय नाटक यूनानी नाटकों की भाँति भयंकर दृश्यों का उल्लेख नहीं करते। मृच्छकटिक की तुलना न्यू एटिक कामेडी' से की जाती है।[1] भारतीय नाटकों में पर्दे के लिये 'यवनिका' शब्द आता है। डायोक्रायसोस्टोम ने लिखा है कि भारतवर्ष के लोगों ने होमर की कृतियों का अनुवाद किया था। वे उसकी कविताओं को सुनाते थे। लगता है कि उसने महाभारत एवं रामायण को भ्रमवश होमर के ग्रन्थों के नाम से उल्लिखित किया है।

ज्योतिषशास्त्र में भारतवर्ष यूनान का ऋणी है। गार्गी संहिता में कहा गया है कि कि 'यवन लोग बर्बर हैं। पर ज्योतिष शास्त्र का जन्म उनसे हुआ है, अतएव वे पूजनीय हैं।' भारतीय ग्रन्थों में ज्योतिष के पाँच सिद्धान्तों का उल्लेख मिलता है—(१) पैतामह सिद्धान्त, (२) वाशिष्ठ सिद्धान्त, (३) सूर्य सिद्धान्त, (४) पौलिश सिद्धान्त, तथा (५) रोमक सिद्धान्त। रोमक सिद्धान्त का उल्लेख वराहमिहिर की बृहत्संहिता तथा पंचसिद्धान्तिका में हुआ है।

रोमक सिद्धान्त का सम्बन्ध रोम से लगता है। पर रालिन्सन आदि विद्वान् इस मत से सहमत नहीं हैं। उनका कथन है कि रोमक सिद्धान्त के

---

१. "The Toy Cart is compared by critics to plays of the type of the New Attic Comedy." —Rawlinson.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सम्बन्ध में वराहमिहिर ने जिन नक्षत्रों का नामोल्लेख किया है, वे यूनानी नाम लगते हैं। अतएव रोमक सिद्धान्त यूनान की देन है। वराहमिहिर के होराज्ञान के ऊपर यूनानी प्रभाव परिलक्षित होता है। इस कारण यही मानना ठीक होगा कि हमारे देश के निवासियों ने रोमक सिद्धान्त को यूनान से सीखा। पौलिश सिद्धान्त सिकन्दरिया के पाल के अनुसंधानों के आधार पर लिखा प्रतीत होता है। चरकसंहिता में चिकित्साशास्त्र के विद्यार्थी के लिये जिस प्रतिज्ञा का वर्णन मिलता है, वह हिप्पाक्रेटीज़ के द्वारा उल्लिखित यूनानी-चिकित्सक की प्रतिज्ञा से साम्य रखती है।

भारतवर्ष का पाश्चात्य सभ्यताओं पर प्रभाव—इसी प्रकार भारतवर्ष का भी पाश्चात्य सभ्यताओं पर प्रभाव पड़ा। कई विदेशियों ने भारतीय धर्म को स्वीकार कर लिया। उदाहरणार्थ यवन नरेश मिलिन्द बौद्ध मतावलंबी था। हेलिओडोरस वैष्णव धर्म का अनुयायी था। इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि उसने बेसनगर में गरुड़ध्वज की स्थापना की थी। भारतीय पुनर्जन्म के सिद्धान्त ने पाइथागोरस को प्रभावित किया। प्लेटो के रिपब्लिक में भारतीय कर्म-सिद्धान्त का प्रतिपादन मिलता है। पाइथागोरस ने मांस तथा सुरा आदि के परित्याग का जो उपदेश दिया है, वह बौद्ध धर्म के अहिंसा के सिद्धान्त से प्रभावित लगता है। निओ-प्लेटोनिक विचारधारा पर भारतीय प्रभाव निःसंदेह रूप में परिलक्षित होता है। इसमें ध्यान के द्वारा आत्मा को शरीर से मुक्त करने के सिद्धान्त का प्रतिपादन मिलता है। यह पतंजलि के योग-सिद्धान्त से प्रभावित है। गार्बे तथा वेबर आदि ने भारतीय एवं यूनानी दर्शन के बीच अनेक समानताओं का निर्देश किया है। गार्बे ने उपनिषद् के अद्वैत सिद्धान्त एवं 'इलीटिक्स' दर्शन में साम्य सिद्ध किया है। वैदिक विचारधारा के अनुसार सृष्टि-निर्माण का मूलभूत तत्व जल है। थेलीज़ भी सृष्टिरचना का प्रधान तत्व जल को ही मानता था। सांख्य दर्शन के मूलभूत सिद्धान्तों का प्रभाव अनैक्सीमेंडर, हेराक्लिटस, एम्पिडाक्लीज़, अनैक्सेगोरस, डेमाक्रिटस तथा एपिक्यूरस के विचारों पर सिद्ध किया जाता है।

अशोक ने अपने लेखों में उत्तरी अफ्रीका, पश्चिमी एशिया तथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दक्षिण-पूर्व यूरोप के यूनानी राज्यों में बौद्ध धर्म के प्रचार के हेतु अपनी कृतियों का उल्लेख किया है। पार्थिया में बौद्ध धर्म के प्रचार के सम्बन्ध में चीनी साधनों से सूचना मिलती है। अल्बरूनी ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि खोरासान, फारस, ईराक तथा मोसुल आदि देशों में बौद्ध धर्म का प्रचार था। कुछ इतिहासकारों का कथन है कि मनीच धर्म बौद्ध धर्म से प्रभावित था। मनीच धर्म से संबन्धित एक ग्रंथ में इसके प्रवर्तक मनी को तथागत कहा गया है। इसमें बुद्ध एवं बोधिसत्व का उल्लेख मिलता है। कुछ विद्वानों का कथन है कि ईसाई धर्म में अस्थि-पूजा, संघजीवन तथा माला फेरना आदि जो विशेषतायें मिलती हैं, वे भारतीय देन हैं। पाश्चात्य देशों में संन्यास की भावना का उद्गम संभवतः भारतीय प्रभाव के कारण हुआ।

कतिपय पाश्चात्य धर्म-प्रचारकों ने बुद्ध का नाम धारण किया। टेरेबिन्थस अपने आप को अभिनव बुद्ध कहता था। सेंट जोसफत के नाम से गौतम बुद्ध की गणना ईसाई साधुओं में होने लगी। पश्चिमी एशिया में बौद्ध धर्म के प्रचार के सम्बन्ध में सीरिया के लेखक ज़ेनाब के द्वारा सूचना मिलती है। उसके अनुसार द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व में दजला फरात घाटी के टेरोन नामक स्थान पर दो भारतीय मन्दिर वर्तमान थे। इनमें १८ फीट तथा २२ फीट ऊँची देव-प्रतिमायें स्थापित की गई थीं। जब सेंट ग्रिगोरी ३०४ ई० में इन मन्दिरों के विनाश के निमित्त वहाँ आया था, उस समय वहाँ के भारतवासियों ने उसका विरोध किया। वहाँ पर एक भारतीय उपनिवेश वर्तमान था। पंचतंत्र का पश्चिमी देशों में अनुवाद किया गया। इसका अनुवाद सर्वप्रथम फारस में हुआ। इसकी सहायता से बगदाद के इब्न-जाफर अल्मन्सूर नामक नरेश के काल में पंचतंत्र का अरबी भाषा में अनुवाद किया गया। तत्पश्चात् इसका अनुवाद यूरोप में हुआ। दमिश्क के सेन्ट जान के 'बलराम ऐंड जोज़फत' नामक ग्रन्थ में कई बौद्ध कथायें मिलती हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ८

भारतवर्ष और ईरान

मूलभूमि एक—परिच्छेदान्तर में इस बात का निर्देश किया जा चुका है कि भारतवर्ष एवं ईरान का पारस्परिक संबन्ध कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं था। ऋग्वेद एवं अवेस्ता में कतिपय ऐसे समान उल्लेख मिलते हैं, जिनसे लगता है कि भारतीय आर्यों एवं प्राचीन ईरानियों के पूर्वज प्रारंभिक काल में एक ही स्थान पर रहते थे। उनकी भाषा एक थी तथा धर्म एवं सामाजिक प्रथायें समान थीं। अधिकांश विद्वान इस बात को मानते हैं कि वेदों के 'असुर' ही अवेस्ता के 'अहुर' हैं। अवेस्ता के अहुरमज़्द तथा वेदों के असुरवरुण में पर्याप्त समानतायें दृष्टिगोचर होती हैं। वरुण की एक उपाधि 'मेधस' थी, जिसकी तुलना 'मज़्द' से की जा सकती है। ऋग्वेद में वरुण का वर्णन सर्वज्ञ के रूप में किया गया है। अवेस्ता में अहुरमज़्द को सर्वशक्तिमान् कहा गया है। यदि वरुण को प्रवंचित करना असंभव था, तो अहुरमज़्द को भी। दोनों ही देवताओं को स्रष्टा एवं क्षमा-कर्ता माना जाता था। वरुण का उल्लेख अवेस्ता में भी हुआ है। इस ग्रन्थ में अहुरमज़्द के १०१ नाम आते हैं, जिनमें उसका ४४ वाँ नाम वरुण बताया गया है। इसी प्रकार वेदों के मित्र एवं अवेस्ता के मिथ्र देवताओं में भी समानतायें दृष्टिगोचर होती हैं।

वैदिक 'सोम-पूजा' तथा ईरानी 'हओम-पूजा' एक जैसी थी। यदि भारतीय आर्य सोमरस को 'सूक्रतू' (सुबुद्धि का प्रदाता) एवं 'मधू' (मीठा) मानते थे, तो ईरानी हओम-रस को हूखतू (विवेक का दायक) एवं मधो (सुस्वादु)। दोनों ही धर्मों के अनुसार हओम तथा सोम के पौदे पर्वत पर उगते थे तथा दोनों के ही रस स्फूर्ति एवं प्रसन्नता के कारण थे। सोम-पूजा कराने वाले पुरोहित को 'होता' तथा हओम-पूजा संपन्न कराने वाले पुरोहित को 'ज़ओता' कहा जाता था। ऋग्वेदिक आर्य-प्रार्थनाओं को मन्त्र तथा अवेस्ता की प्रार्थ-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नाओं को मन्थ की संज्ञा दी गई थी। दोनों की प्रार्थनाओं का लक्ष्य स्वर्ग की प्राप्ति तथा देवताओं को प्रसन्न करना था। वैदिक 'स्तोम' तथा 'वज'-पूजा की तुलना अवेस्ता की 'स्तओमन्' एवं 'वच'-पूजाओं से की जा सकती है। इसी प्रकार भारतीय आर्यों के 'यम' तथा 'त्रित' की तुलना ईरानियों के 'यिम' तथा 'थ्रित' से करना तथ्यों से रहित न होगा। वेदों के 'कविउशन' तथा अवेस्ता के 'कविउशन' एक ही हैं। ये समानतायें हमारा ध्यान इस ओर आकर्षित करती हैं कि किसी समय ईरानी एवं भारतीय आर्यों के पूर्वज एक ही स्थान पर रहते थे तथा उनकी सामाजिक एवं धार्मिक प्रथायें एक थीं। कतिपय विद्वानों का अनुमान है कि दोनों की यह मूल भूमि कहीं मध्य एशिया में रही होगी।

विभेद—कालान्तर में किंचित् आर्थिक एवं धार्मिक कारणों से दोनों में झगड़ा हुआ तथा परिणामतः ये दो शाखाओं में विभक्त हो गये। एक शाखा आकर ईरान में बस गई तथा दूसरी और आगे बढ़ती हुई भारतवर्ष में पंजाब में बस गई। इनके इस भेद का प्रभाव इनके विचारों के ऊपर भी पड़ा। उदाहरणार्थ पहले दोनों ही 'देव' शब्द से तात्पर्य देवता से समझते थे, परन्तु भेद के अनन्तर केवल भारतीय आर्यों ने ही इस शब्द का प्रयोग देवता के अर्थ में किया। ईरानियों ने देव शब्द का अर्थ अब प्रतिकूल अर्थ (दानव के रूप) में करना प्रारंभ कर दिया। ईरानियों ने देव के स्थान पर असुर शब्द को देवता के अर्थ में प्रयुक्त किया। अवेस्ता में 'असुर' शब्द का अर्थ देवता होता है। भारतीय आर्यों ने इस शब्द का प्रयोग इसके प्रतिकूल राक्षस के रूप में करना प्रारंभ कर दिया। वेदों में 'असुर' शब्द का अर्थ राक्षस होता है। इनमें इन्द्र को एक प्रमुख देवता माना गया है, पर अवेस्ता में इसे घृणा की दृष्टि से देखा गया है।

हप्त हिन्दु—भारतीय आर्यों ने अपने नवीन प्रदेश (पंजाब) का नाम 'सप्त सिन्धु' (सात नदियों वाला प्रदेश) रखा। ऋग्वेद में 'सप्त सिन्धु' का नामोल्लेख हुआ है। ये सात नदियाँ इस प्रकार थीं :—(१) सिन्धु (इंडस), (२) वितस्ता (झेलम), (३) असिकनी (चन्द्रभागा = आधुनिक चेनाब), (४) परुष्णी (इरावती = रावी), (५) विपाशा (व्यास), (६) शतद्रू (सतलज) तथा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(७) कुभा (काबुल)। 'सप्त सिन्धु' को अवेस्ता में 'हप्त हिन्दु' कहा गया है। ईरानी लोग 'सप्त सिन्धु' के प्रारंभिक अक्षर स को ह कहने लगे। वेन्दीदाद (जो अवेस्ता का एक भाग है) के प्रथम अध्याय में सोलह देशों का नाम आता है, जिसमें पंदरहवें देश का नाम 'हप्त हिन्दु' है—"मैंने (अहुरमज़्द ने) 'हप्त हिन्दु' का निर्माण किया, जो पंदरहवाँ देश है। यह हिन्दु (सिन्धु) के पूर्व से लेकर उसके पश्चिम तक फैला हुआ है।" कालान्तर में 'सप्त सिन्धु' से सप्त शब्द हट गया तथा हिन्दु से हिन्दुस्तान (अर्थात् हिन्दु = सिन्धु नदी का देश) नाम निकला। अवेस्ता में 'हप्त हिन्दु' को पूर्वी सीमा माना गया है। इस ग्रन्थ के सरोश यष्ट नामक भाग के अनुसार सरोश नामक देवता रथ में आरूढ़ होकर पूर्व में 'हप्त हिन्दु' से पश्चिम में निनवेह तक भ्रमण करते हैं। अवेस्ता के एक अन्य भाग (मेहरयष्ट) में वर्णन मिलता है कि मिथ्र देवता उस व्यक्ति की सहायता करते हैं, जो अपने वचन का पालन करता है—चाहे वह व्यक्ति पूर्व में 'हप्त हिन्दु' में रहता हो अथवा पश्चिम में निनवेह में।

साखामनीष साम्राज्य का भाग—दारा प्रथम (दारयवहुश—धारयद्वसुः) के लेखों से ज्ञात होता है कि सिन्धु घाटी के कुछ प्रदेश (पंजाब तथा सिन्ध) उसके समय में साखामनीष साम्राज्य के भाग थे। बहिस्तुन के लेख में गंदार (गन्धार) को उसके साम्राज्य का एक प्रान्त कहा गया है। पर्सिपोलिस के लेख में दारा के द्वारा जीते हुये प्रदेशों में गन्दार (गन्धार) तथा हिन्दुश (सिन्ध) का नामोल्लेख हुआ है। नक्शेरुस्तम के लेख के अनुसार इस नरेश ने अहुरमज़्द की कृपा से निम्न प्रान्तों एव जातियों को जीता था :—माद (मीडिया), पर्शव (पार्थिया), बाख्त्री (बैक्ट्रिआ), सुग्द (सोग्डिआना), सरस्वती (अरेकोशिया), **गन्दार (गन्धार), हिन्दुश (सिन्ध)**, बावेरु (बैबीलोनिया), अशुर (असीरिया), अरबाय (अरब), मुद्राय (मिश्र), अरमिण (अर्मेनिया), कुषियाः (कुषाण) तथा शक एवं यवन आदि। इन लेखों से स्पष्ट है कि दारा के समय में उत्तर-पश्चिम भारतवर्ष के कतिपय भाग (सिन्ध एवं पंजाब) उसके साम्राज्य में सम्मिलित थे।

पश्चिमी ईरान से प्राप्त हमडन के लेख से भी इसी प्रकार का निष्कर्ष

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निकलता है। इसके अनुसार विष्टाश्वपुत्र हखामनीष (साखामनीष) दारयवहुष (दारा) महान् सम्राट, राजाधिराज एवं विभिन्न जनपदों के स्वामी थे। महत्तम देवता अहुरमज़्द (असुरमेधस) की कृपा से उन्हें एक विशाल साम्राज्य उपलब्ध हुआ। यह शकों (ईरान की उत्तरी सीमा पर स्थित सिथिया) से लेकर (जो कि सुग्द (सोग्डिआना) के बाहर फैले हुये हैं) कुश (दक्षिण-पश्चिम में एथिओपिया) तक तथा हिन्दौव (सिन्धौ = सिन्धु अर्थात् सिन्धु-जनपद) से लेकर स्पार्दा (उत्तर-पश्चिम में स्पार्दा) तक प्रसरित है। उसके वंश की रक्षा अहुरमज़्द (असुरमेधस) स्वयं करें।

दारा को अपने भारतीय प्रान्त (पंजाब एवं सिन्ध) से काफी आय हुआ करती थी। हेरोडोटस लिखता है :—"जितनी जातियों से हम अभी तक परिचित हैं, भारत के लोग जनसंख्या में सबसे अधिक हैं। यह साम्राज्य का बीसवाँ प्रान्त था। यह प्रान्त सबसे अधिक कर (तीन सौ साठ टैलेंट = एक तरह की सुवर्णमुद्रा) देता था।" दारा के भारतीय प्रान्त की उर्वरता एवं संपन्नता का सबसे बड़ा कारण सिन्धु नदी थी। हेरोडोटस लिखता है कि दारा के मन में सिन्धु नदी के मुहाने का पता लगाने की उत्कंठा उत्पन्न हुई। इस कार्य के लिये उसने कई व्यक्तियों को नियुक्त किया। इसका नायक स्काइलक्स था। नदी की धारा की ओर नौ-यात्रा करते हुये उसने उस स्थान का पता लगा लिया जहाँ पर सिन्धु नदी समुद्र में मिल जाती है। जब दारा को इस विषय में सूचना प्राप्त हुई, उस समय उसने सिन्धु-जनपद को जीत लिया तथा इस भाग के समुद्री प्रदेश का उसने पूर्ण लाभ उठाया। दारा के नक्शे-रुस्तम की समाधि पर कुछ आकृतियाँ अंकित हैं। हर्ज़फेल्ड का कथन है कि इनकी वेशभूषा इन्हें भारतीय प्रमाणित करती है।

दारा प्रथम के उत्तराधिकारी जरक्सीज़ (खशयार्शा क्षयार्षा) के साम्राज्य में गन्दार (गन्धार) तथा हिन्दुश (सिन्धु) दोनों ही प्रान्त सम्मिलित थे। इसका उल्लेख उसके पर्सिपोलिस के लेख में हुआ है। उसने ४८६ ई० पू० से लेकर ४६५ ई० पू० तक राज्य किया। हेरोडोटस लिखता है कि जरक्सीज की जिस सेना ने यूनानियों के विरुद्ध भाग लिया, उसमें भारतीय सैनिक सम्मिलित थे। उसके अनुसार ये बेंत के धनुष तथा तेज़ बर्छे एवं भाले से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

युद्ध करने में पटु थे। उनकी तीरों में लोहे की नोक लगी होती थी। साखामनीष अर्तजरक्सीज (४०५ ई० पू० ३५८ ई० पू०) को भारतवर्ष से बहुमूल्य भेंट मिलती थी। उसके पर्सिपोलिस के लेख में अधीनस्थ प्रदेशों की तालिका में गंदार (गन्धार) तथा हिन्दुश (सिन्धु) नाम मिलते हैं।

अष्टाध्यायी का प्रमाण—पाणिनि ने अष्टाध्यायी में पर्शु (५, ३, ११७) जाति का उल्लेख आयुधजीवी संघ के अन्तर्गत किया है। पर्शु का बहुवचन पर्शवः होता है। इस संघ का सदस्य पार्शव कहलाता था। पर्शुओं का सबसे पहला उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है। वेबर तथा लुडविग ने उनकी पहचान ईरानी पारसीकों से की है, जिन्हें अपने देश में पार्श कहा जाता था। कीथ ने भी इस मत का समर्थन किया है। यह प्राचीनकाल में ईरानियों और भारतवासियों के घनिष्ठ सम्पर्क का प्रमाण है (द्रष्टव्य, डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल, पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृष्ठ ४५६)।

प्राचीन महाकाव्यों के उल्लेख—महाभारत एवं रामायण में कुछ ऐसे आकस्मिक उल्लेख मिलते हैं, जिनके द्वारा भारतवर्ष एवं ईरान के सांस्कृतिक संबन्ध के ऊपर प्रकाश पड़ता है। महाभारत के आदि पर्व में शक, यवन, म्लेच्छ तथा पह्लव नाम मिलते हैं। पह्लव से तात्पर्य पार्थियन लोगों (पार्थव जो कि ईरान में शासन करते थे) से है। इस ग्रन्थ के सभा पर्व में वर्णन मिलता है कि युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहते थे। अतएव उन्होंने अपने भाइयों को विभिन्न दिशाओं में दिग्विजय के हेतु भेजा। पश्चिम दिशा की ओर बढ़ते हुये नकुल ने किरात, यवन, शक तथा पह्लवों को परास्त किया। सभा पर्व में मय दानव नामक एक स्थापत्यकार का उल्लेख हुआ है, जिसने युधिष्ठिर के लिये स्तंभयुक्त राजप्रासाद का निर्माण किया था। मयदानव की समता मग दानव से की जा सकती है। मग से तात्पर्य ईरानी से था। उद्योगपर्व के अनुसार जिस समय कौरवों एवं पांडवों का युद्ध छिड़ने वाला था, उस समय द्रुपद ने युधिष्ठिर को शक एवं पह्लवों से सहायता प्राप्त करने के हेतु परामर्श दिया था। महाभारत के भीष्मपर्व में पश्चिमोत्तर भारतवर्ष में रहने वाली जातियों में पह्लवों का उल्लेख मिलता है। अन्य जातियाँ थीं :—यवन, चीन, कम्बोज, म्लेच्छ, शक एवं हूण।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

"यवनाश्चीनकम्बोजा दारुणा म्लेच्छजातयः ॥
सकृद्ग्रहाः कुलत्त्थाश्च हूणाः पारसिकैः सह ।"
(भीष्मपर्व, ६, ६५-६६)

पौराणिक वर्णन—विष्णु पुराण में वर्णन मिलता है कि किसी समय शक, यवन, पारद तथा पह्लवों को राजा सगर के द्वारा अपना पूर्ण विनाश निश्चित दीख पड़ा। परिणामतः वे भयभीत होकर सगर के आचार्य वशिष्ठ के पास पहुँचे तथा उनसे सहायता की याचना की। उनकी सहायता से वे बच तो गये, पर उन्हें कठिन दण्ड दिया गया जिसके अनुसार यवनों को अपने सिर के पूरे बाल घुटा देने पड़े, शकों को अर्द्धमुंडित होना पड़ा, पारदों को लम्बे बाल बढ़ाने पड़े तथा पह्लवों को लंबी दाढ़ी बढ़ानी पड़ी :—

"यवनान्मुण्डितशिरसोऽर्द्ध मुण्डिताञ्छकान् ।
प्रलम्बकेशान् पारदान् पह्लवाञ्श्मश्रुधरान् ।"
(विष्णु पुराण)

भविष्य पुराण के १३९वें अध्याय में कथा आती है कि दुर्वासा के शाप के कारण कृष्ण-पुत्र साम्ब कुष्ठ रोग से पीड़ित हो उठा। जब कोई भी उपचार उसे लाभप्रद नहीं सिद्ध हुआ, तब उसने उपवास एवं सूर्योपासना करना प्रारम्भ किया और इससे वह शीघ्र ही रोगमुक्त हो गया। अपनी कृतज्ञता के प्रतीक-स्वरूप उसने चन्द्रभागा (चेनाब) के तट पर एक भव्य सूर्य-मन्दिर का निर्माण किया। ब्राह्मणों ने इसमें पुजारी का कार्य करने से इन्कार कर दिया। इस पर पुरोहित गौरमुख ने परामर्श दिया कि सूर्योपासक मगी (मग) इस कार्य को सुचारु रूप से संपन्न कर सकेंगे तथा उन्हें आमन्त्रित किया जाय। साम्ब का निमन्त्रण पाने पर अठारह मग परिवार आये तथा उपर्युक्त सूर्य-मन्दिर में आवश्यक पूजा-उपासना आदि करने लगे। ये मग ईरान से आये थे। अतएव इनकी रीति प्रथायें ईरानी थीं। इनका प्रधान आचार्य जरशष्ट था। प्रत्यक्षतः इसकी समता प्राचीन ईरान के पैगम्बर जरथुस्त्र से की जा सकती है।

वे अपने कमर के चारो ओर अवयंग नामक पवित्र सूत्र धारण करते थे। अवेस्ता में अवयंग को ही ऐव्याओंघ कहा गया है। वे दाढ़ी रखते थे, जो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रसिद्ध ईरानी प्रथा थी। वे अपने मुँह को ढकने के लिये पदान (एक प्रकार का वस्त्र) धारण करते थे। पदान की समता अवेस्ता के पैतिदान से की जा सकती है। आज भी पारसी पुजारी अपने मुख पर पदान नामक वस्त्र बाँधते हैं, ताकि पूजा के अवसर पर मुँह से कोई दूषित तत्त्व अग्नि में गिरने न पाय। मग नियमित रूप से स्नान करते थे तथा व्यक्तिगत स्वच्छता को प्रधानता दिया करते थे। रजस्वला स्त्रियाँ पुरुष-समाज से दूर रहा करती थीं। ज़रथुस्ट्र-धर्म में भी मन एवं काय दोनों से ही शुद्धता को प्रधानता दी गई है। इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि ईरान से भारतवर्ष में आनेवाले मग ज़रथुस्ट्र मतानुयायी थे। वे लोग सूर्य (मिहिर अथवा मिथ्र) की पूजा करते थे। क्रमशः इन्होंने भारतीय धर्म को स्वीकार कर लिया। अपना विवाह-संबन्ध इन लोगों ने क्षत्रिय-कन्याओं के साथ स्थापित किया और भारतीय वर्ण-व्यवस्था में ये लोग मिल गये। इनको मग ब्राह्मण की संज्ञा दी गई। इतिहासकारों का अनुमान है कि इन लोगों के आगमन के फलस्वरूप भारतवर्ष में सूर्योपासना अधिक लोकप्रिय हो सकी। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि बृहत्संहिता, वराह पुराण तथा साम्ब पुराण के भी प्रमाण से स्पष्ट है कि मगों के आगमन के कारण भारतवर्ष में सूर्योपासना का व्यापक प्रचार संभव हो सका था।

गुप्त-काल से सूर्य-पूजा के प्रमाण अधिक मिलने लगते हैं। वराहमिहिर (जो गुप्त-युग की विभूति माने जाते हैं) की बृहत्संहिता के प्रारम्भ में सूर्य की स्तुति की गई है :—'उस भगवान सविता की जय हो; जो जगत की उत्पत्ति के कारण हैं, जो विश्व की आत्मा माने जाते हैं, जो आकाशमंडल के सहजभूषण हैं तथा जो सुवर्ण-तुल्य सहस्र रश्मि रूपी मालाओं से सुशोभित हैं।'

"जयति जगतः प्रसूतिर्विश्वात्मा सहजभूषणं नभसः।
द्रुतकनकसदृशदशशतमयूखमालार्चितः सविता।"

(बृहत्संहिता, अध्याय १, श्लोक १)

मन्दसोर के लेख के प्रारम्भ में सूर्य-पूजा से संबन्धित तीन सुन्दर श्लोक मिलते हैं :—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रथम श्लोक :—

"योवृत्यत्र्थमुपास्यते सुरगणैस्सिद्धैश्च सिद्धयर्त्थिभि-
द्धयानैकाग्र-परैर्व्विधेय-विषयैम्मोक्षार्त्थिभिर्य्योगिभिः ।
भक्त्या तीव्रतपोधनैश्च मुनिभिश्शाप-प्रसाद-क्षमै-
र्हेतुर्य्यो जगतक्षयाभ्युदययो पायात्सवो भास्करः ॥"

"सूर्य आपकी रक्षा करें जिनसे संसार का प्रारम्भ तथा नाश है, देव लोग अपने रक्षार्थ जिनकी पूजा करते हैं, सिद्ध लोग अपनी यौगिक सिद्धि के लिये पूजा किया करते हैं, वे योगी जो सदा ध्यानावस्थित रहते हैं, जिनकी इच्छायें वशीभूत हैं तथा वे साधु जो तपस्या करते हैं और जिनमें शाप एवं आशीर्वाद देने की शक्ति है, भक्ति से जिसकी पूजा करते हैं ।"

द्वितीय श्लोक :—

"तत्वज्ञानविदोऽपि यस्य न विदुर्ब्रह्मर्षयोऽभ्युद्यता-
कृत्स्नं यश्च गभिस्तिभिः प्रवृसृतैपुष्णाति लोकत्रयम् ।
गन्धर्व्वामर-सिद्ध-किन्नर-नरैस्संस्तूयतेऽभ्युत्थितो
भक्तेभ्यश्च ददाति योऽभिलषितं तस्मै सवित्रे नमः ॥"

"जिस सूर्य के स्वरूप को सत्य के ज्ञाता ब्रह्मर्षि नहीं बतला सकते, जो फैले हुये रश्मियों से तीनों लोकों की रक्षा करते हैं, जिसके निकलते ही गन्धर्व देव, किन्नर तथा मनुष्य प्रशंसा करते हैं तथा जो अपने भक्तों की इच्छाओं को पूरा करते हैं ।"

तृतीय श्लोक :—

"यः प्रत्यहं प्रतिविभात्युदयाचलेन्द्र-
विस्तीर्ण्ण-तुङ्ग-शिखर-स्खलितांशुजालः ।
क्षीबाङ्गना-जन-कपोल-तलाभिताम्र-
पायात्स वस्सुकिरणाभरणो विवस्वान् ॥"

"वह भगवान् सूर्य आपकी रक्षा करें, जो रश्मियों से सुशोभित हैं । उस सूर्य भगवान् को नमस्कार है, जिनकी किरणें प्रतिदिन पूर्व के उदयाचल-विस्तृत पर्वतश्रृङ्गों पर फैलती हैं, और जो मतवाली स्त्री के कपोल के सदृश लाल हैं ।"

मन्दसोर के लेख के अनुसार वहाँ एक सूर्य-मन्दिर वर्तमान था । इन्दौर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के ताम्रलेख के प्रारम्भ में सूर्य की पूजा की गई है। स्कन्द पुराण के अनुसार मूलस्थान (मुल्तान) में एक सूर्य-मन्दिर था :—

"ततो गच्छेन्महादेवि मूलस्थानमिति श्रुतम्।
देविकायास्तटे रम्ये भास्करं वारितस्करम्॥"

(प्रभासक्षेत्रमाहात्म्य, अध्याय २७८)

मुल्तान के इस मन्दिर का उल्लेख चीनी यात्री य्वान्-च्वांग ने भी किया है। वह लिखता है कि सिन्ध से १५० मील (६०० ली) की यात्रा करने के पश्चात् सिन्धु नदी को पार कर वह मूलस्थान (मोउ-लो-सन-पु-लु) देश पहुँचा। इसकी परिधि ७०० मील (४००० ली) तथा इसकी राजधानी की परिधि ५ मील (३० ली) थी। यहाँ की भूमि उपजाऊ एवं जलवायु नम थी। इसके निवासी सत्यवादी, चरित्रवान् तथा विद्यासंपन्न थे। बौद्धमतावलंबियों की संख्या थोड़ी थी। केवल दस ही मठ थे। वे भग्नावशेष को प्राप्त हो चुके थे। वहाँ उस समय एक सूर्य-मन्दिर वर्तमान था। इसके भीतर एक सुवर्णजटित प्रतिमा स्थापित की गई थी। यह चामत्कारिक एवं अलौकिक शक्तियों से संपन्न मानी जाती थी। दूर देशों में भी इसका काफी नाम था। इस मन्दिर में पूरी रात रोशनी जलती रहती थी। मन्दिर का वातावरण धूप एवं विविध सुगन्धियों से सुवासित रहता था। यहाँ पर भारतीय सम्राट आकर सूर्यदेव की मूर्ति का दर्शन करते और उसे बहुमूल्य भेंट चढ़ाते थे। पूजा करने वालों की भीड़ वहाँ निरन्तर बनी रहती थी। इस देवालय के चतुर्दिक सरोवर एवं उपवन आदि थे, जिनसे इसका दृश्य नितान्त अनुपम था। इसके आसपास विश्रामगृह बने थे, जहाँ रुग्ण एवं असहाय व्यक्तियों को भोजन, वस्त्र एवं औषधियाँ निःशुल्क मिला करती थीं (वाटर्स, २, २५४)।

पुरातत्त्व साक्ष्य—भारतीय अभिलेखों में भी यत्र-तत्र ईरानियों के उल्लेख मिलते हैं। रुद्रदामन प्रथम के जूनागढ़ के लेख में (१५० ई०) पह्लव (पारसीक) सुविशाख का उल्लेख मिलता है, जो आनर्त एवं सुराष्ट्र (काठियावाड़ एवं गुजरात) का राज्यपाल था। वह इन प्रदेशों की रक्षा के निमित्त नियुक्त किया गया था (पालनार्थन्नियुक्तेन)। डा० भाऊ दाजी का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुमान है कि सुविशाख ईरानी नाम सिआउश का भारतीय रूपान्तर है। कार्ले के गुहालेख (१५४ ई०) से ज्ञात होता है कि इस स्थान की गुफा का निर्माण हरफरण नामक व्यक्ति ने किया था, जो ईरानी लगता है। लेख इस प्रकार है :—"कल्याण हो। सम्राट वासिष्ठीपुत्र श्रीपुलुमावी के राज्यकाल के चौबीसवें वर्ष में हेमन्त-ऋतु के तृतीय पक्ष के द्वितीय दिवस को उपासक हलफरण ने, जो कि सेतफरण का पुत्र था तथा सुवास देश में उत्पन्न एवं अबुलाम का रहने वाला था, बौद्ध आचार्य-विशेषों एवं अखिल देशवर्ती संघ के सदस्यों को उद्देश्य में रख कर माता-पिता के कल्याण एवं संपूर्ण जीवों के सुख के लिये नव कोठरियों से युक्त इस गुहामंडप का निर्माण किया।" बूलर का कथन है कि हरफरण तथा सेतफरण ईरानी रहे होंगे। इनके नाम के अन्त का फरण शब्द ईरानी शब्द फ्रन (स्वामी) का समानार्थी है। अबुलाम 'ओबोलह' लगता है, जो कि फारस की खाड़ी के किनारे स्थित है। अजन्ता की चित्रकला से ऐसा आभास मिलता है कि भारतीय एवं ईरानी नरेशों के बीच राजदूतों का आदान-प्रदान संभवतः हुआ करता था। गुहा-संख्या एक के एक चित्र में चालुक्य-नरेश पुल्केशिन द्वितीय पारसीक नरेश खुशरो परवेज़ के द्वारा भेजे हुये राजदूतों का स्वागत करता हुआ प्रदर्शित किया गया है। यह घटना ६२६ ई० तथा ६२८ ई० के बीच घटी होगी। दूतों की वेशभूषा एवं बालों के सँवारने का ढंग ईरानी लगता है। उनके हाथ में भेंट की सामग्री दृष्टिगोचर होती है।

मार्शल को तक्सिला (तक्षशिला) की खुदाइयों में किसी शिखरयुक्त मन्दिर के अवशेष प्राप्त हुये। यह लगभग १५८ फीट लंबा तथा ८५ फीट चौड़ा था एवं अग्निपूजा से संबन्धित था। इस मन्दिर की निर्माण-शैली के आधार पर मार्शल का अनुमान है कि यह एक ईरानी देवालय था। इसमें मूर्तियों की स्थापना का अभाव इसे अभारतीय सिद्ध करता है। मार्शल महोदय इस मन्दिर का संबन्ध ज़रथुस्ट्र धर्म से मानते हैं। इसके पुजारी शिखर पर चढ़ कर सूर्य की पूजा करते होंगे। आज भी नवसारी (जहाँ पारसी बहुसंख्या में रहते हैं) के अग्नि-मन्दिर में यह विशेषता मिलती है। यह देवालय शिखरयुक्त है। पुजारी इस शिखर पर आकर सूर्य तथा चन्द्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आदि की पूजा करते हैं।

छिटपुट सन्दर्भ—संस्कृत साहित्य में पारसीकों (ईरानियों) के विषय में छिटपुट उल्लेख अन्य स्थलों पर भी मिलते हैं। रघुवंश में वर्णन मिलता है कि महाराज रघु ने पारसीकों को परास्त करने लिये स्थलमार्ग से यात्रा की थी। इस ग्रन्थ के अनुसार भी ईरानी लोग दाढ़ी बढ़ाते थे। इसमें वर्णन मिलता है कि वहाँ की महिलायें सुन्दरी हुआ करती थीं :—

"पारसीकास्ततो जेतुं प्रतस्थे स्थलवर्त्मना।
इन्द्रियाख्यानिव रिपूंस्तत्वज्ञानेन संयमी॥
भल्लापवर्जितैस्तेषां शिरोभिः श्मश्रुलैर्महीम्।
तस्तार सरघाव्याप्तैः स क्षौद्रपटलैरिव॥"

(रघुवंश, सर्ग ४, श्लोक ६० तथा ६३)

वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में पह्लवों (पार्थियन जो कि ईरानी थे) का उल्लेख किया है। पारसीकों का उल्लेख मुद्राराक्षस में भी हुआ है। इस ग्रन्थ के अनुसार उन्होंने चन्द्रगुप्त मौर्य की सहायता की थी। यद्यपि यह सन्दर्भ ऐतिहासिक तथ्यों से रहित है, तथापि यह निर्विवाद है कि इसका रचयिता ईरानियों से परिचित था। बाणभट्ट लिखता है कि किसी पारसीक ने सम्राट तारापीड़ को इन्द्रायुध नामक घोड़े को भेंट में दिया था। सोमदेव के कथासरित्सागर में एक दुष्ट पारसीक नरेश की हत्या का उल्लेख मिलता है। संस्कृत साहित्य के इन आकस्मिक सन्दर्भों से आभास मिलता है कि भारतवर्ष का ईरान के साथ संपर्क कालान्तर में भी बना रहा।

ईरान की देन—स्मिथ का कथन है कि भारतवर्ष के ऊपर ईरानी प्रभाव की सीमा के विषय में भले ही विद्वानों में मतभेद हो, पर इतना तो अवश्यमेव संशयरहित है कि इस देश को ईरान की देन कई दृष्टियों से महत्त्व-पूर्ण थी।[१] इस योगदान का वर्णन कुछ निम्न ढंग से किया जा सकता है—

(१) शिलालेख-परंपरा—अशोक के पूर्व भारतवर्ष में शिलालेख उत्कीर्ण

---

१. "Whatever may be the fate of the various hypotheseis debated by scholars, there can be no doubt that ancient India was largely indebted to Iranian ideals and practices." —Smith.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कराने की परंपरा अज्ञात थी। ईरान में सबसे पहले दारा ने शिलालेख खुदवाने की प्रथा प्रारंभ की। बहिस्तुन का लेख इस बात का प्रमाण है। यह लेख सतरह सौ फीट की ऊँचाई पर चट्टान-खंड पर खुदा हुआ है। जब अशोक अपने पिता के राज्यकाल में तक्षशिला में राज्यपाल था, उस समय वह इस ईरानी प्रथा से परिचित हुआ होगा तथा सम्राट होने पर उसने इसका सूत्रपात अपने साम्राज्य में किया। यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय हो जाता है कि अशोक की अभिलेख-शैली दारा के लेखों की शैली से प्रभावित लगती है। दारा के लेख—'सम्राट (ख्शायथिय) दारा (दारयवहुश) इस प्रकार कहते हैं'—इन शब्दों से प्रारंभ होते हैं। इनसे मिलते-जुलते शब्द अशोक के लेखों के प्रारंभ में मिलते हैं—'देवानांप्रिय प्रियदर्शि राजा इस प्रकार कहते हैं' (देवानंप्रियो प्रियदसि राजा एवं आह)।

(२) **अशोक-स्तम्भ**—अपने जीवन की प्रमुख घटनाओं को अक्षुण्ण बनाने के हेतु दारा ने स्तम्भों का निर्माण किया तथा उन पर अपने लेख उत्कीर्ण कराये। हेरोडोटस लिखता है कि जिस समय वह सिथिया को जीतने के हेतु जा रहा था, उस समय उसे बास्फोरस की खाड़ी को पार करने के लिये पुल बनवाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। उसने इस कार्य को पूर्ण किया। इस पुल के निर्माण के स्मारक-रूप में उसने दो संगमरमर के स्तम्भों का निर्माण किया एवं उन पर लेख भी खुदवाये। इसी तरह उसने दो अन्य स्थानों पर भी स्तम्भ खड़े किये थे। अशोक ने इस प्रथा का भी अनुकरण किया। यही कारण है कि भारतवर्ष में स्तम्भ सबसे पहले उसी के काल से मिलते हैं। अशोक की लाटों की निर्माण-शैली ईरानी शैली से प्रभावित लगती है। ईरानी स्तम्भों के ऊपरी भाग में एक घंटानुमा आकृति अंकित मिलती है, जिसे 'पर्सिपोलिटन बेल' कहा गया है और शीर्षस्थान पर पशु-प्रतिमा का निर्माण मिलता है। अशोक के स्तम्भों के शिरोभाग में अधोमुख कमल (इनवर्टेड लोटस) की आकृति उपलब्ध होती है। यह आकार 'पर्सिपोलिटन बेल' की आकृति से साम्य रखता है। अशोक की लाटों पर भी शीर्ष-प्रतिमायें (बैल अथवा सिंह की आकृतियाँ) मिलती हैं। इस समानता के आधार पर विद्वान् निष्कर्ष निकालते हैं कि अशोक ने ईरानी स्तम्भों के आदर्श पर अपने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्तम्भों का निर्माण किया होगा।

(३) **खरोष्ठी लिपि**—खरोष्ठी लिपि ईरान की देन मानी जाती है। खखामनीष सम्राटों ने उत्तर-पश्चिम भारतवर्ष में आर्मेइक लिपि का प्रचार किया। इसके महत्त्वपूर्ण भाग (गन्धार तथा सिन्ध) उनके साम्राज्य में सम्मिलित थे। भारतवर्ष में उनका आधिपत्य समाप्त होने के बाद भी आर्मेइक लिपि यहाँ प्रचलित थी। तक्षशिला (तक्सिला) से आर्मेइक लिपि एवं भाषा में लिखा हुआ एक खंड-लेख मिलता है, जो अशोक का लेख प्रतीत होता है। इसमें एक स्थान पर 'प्रियदर....' तथा दूसरे स्थान पर 'प्रियदर्श....' लेख अंकित मिलता है। यह प्रियदर्शि (अशोक) का अपूर्ण पाठ लगता है। इसी आर्मेइक लिपि से खरोष्ठी लिपि निकली। अशोक ने अपने लेखों में दो लिपियों का व्यवहार किया था—(१) ब्राह्मी तथा (२) खरोष्ठी। उसके जो लेख उत्तर-पश्चिम भारतवर्ष से मिले हैं, वे खरोष्ठी में लिखे गये हैं; उदाहरणार्थ मानसेहरा (हजारा जिला) के दोनों शिलालेख तथा शाहबाज़गढ़ी (पेशावर जिला) का शिलालेख। इन लेखों की भाषा प्राकृत तथा लिपि खरोष्ठी है। लगता है कि अशोक के समय में पश्चिमोत्तर भारतवर्ष के इन स्थानों में खरोष्ठी लिपि अधिक प्रचलित थी और यही कारण है कि अशोक को इसी लिपि में यहाँ लेखों को उत्कीर्ण कराने की आवश्यकता प्रतीत हुई। ब्राह्मी लिपि भारतीय थी। अतएव यह बायें से दायें लिखी जाती थी। खरोष्ठी लिपि ईरानी लिपि (आर्मेइक) से निकली और इस कारण यह दायें से बायें लिखी जाती थी।

(४) **मौर्य-कला**—स्तम्भों के अतिरिक्त मौर्य-कला के अन्य अंगों पर भी कुछ अंशों में ईरानी प्रभाव परिलक्षित होता है।[१] मेगस्थनीज़ लिखता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के राजप्रासाद में स्तम्भयुक्त विशाल कमरे वर्तमान थे। ये स्तम्भ लकड़ी के बने थे। उन पर सोने और चाँदी की सुन्दर पालिश चढ़ाई गई

१. "The imposing fabric of the Achaemenian Empire evidently impressed the Indian mind, the several facts indicate the existence of a strong Persian influence on the Indian civilization of Maurya Age." —Smith.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थीं तथा फूल, पत्ते एवं पशु-पक्षी आदि की आकृतियाँ बनाई गईं थीं जिनके कारण राजमहल का सौन्दर्य निखर उठता था। पॉलिबियस साखामनीष सम्राटों के राजप्रासाद के विषय में लिखता है कि उसके खम्भे लकड़ी के बने थे तथा उन पर सोने एवं चाँदी की परत चढ़ाई गई थी और वे बेलबूटों से सुसज्जित थे। यह समानता चन्द्रगुप्तकालीन मौर्य कला पर ईरानी प्रभाव का संकेत करती है। उसका राज्य उत्तर-पश्चिम में पारसीक साम्राज्य को छूता था। अतएव भारत एवं ईरान का सम्बन्ध और आगे बढ़ा तथा इसके फलस्वरूप भारतीय कलाकारों का पारसीक कला से प्रेरणा प्राप्त करना नितान्त स्वाभाविक ही था। यह भी सम्भव हो सकता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के राजप्रासाद का निर्माण किसी ईरानी कलाकार के पर्यवेक्षण में सम्पन्न हुआ हो।

स्पूनर को कुमराहर की खुदाइयों में अशोककालीन एक विशाल कमरे के अवशेष प्राप्त हुये, जिसमें एक सौ स्तम्भ लगे हुये थे। ये दस पंक्तियों में विभक्त थे। प्रत्येक पंक्ति में दस स्तम्भ थे। इन स्तम्भों की ऊँचाई बीस फीट तथा परिधि ढाई फीट थी। इन पर चमकदार पालिश मिलती है जो कि अशोककालीन स्तम्भों की विशेषता थी। पर्सिपोलिस में दारा ने एक विशाल कमरा बनवा रखा था, जिसमें एक सौ स्तम्भ थे। इसमें उसका दरबार लगता था। स्थापत्य की दृष्टि से दारा एवं अशोक के इन स्तम्भयुक्त कमरों में पर्याप्त साम्य है। स्पूनर का कथन है कि कुमराहर का अशोकनिर्मित विशाल कमरा दारा के पर्सिपोलिस में निर्मित विशाल कमरे का अनुकरण था।

(५) दाढ़ी की प्रथा—ईरान के लोग लम्बे बाल तथा दाढ़ी बढ़ाने के शौकीन थे। ईरानी राजकीय प्रतिमाओं से स्पष्ट है कि वहाँ के सम्राट लम्बी दाढ़ी रखते थे एवं उनके बाल अधिक बढ़े होते थे। शिलाखंड एवं स्तम्भों पर पारसीक नरेशों की जो आकृतियाँ बनी हुई हैं, उनसे भी यह विशेषता स्पष्ट है। इस ईरानी प्रथा का उल्लेख हेरोडोटस ने भी किया है। नील नदी के तट पर होने वाले मिश्र ईरान-युद्ध का वर्णन करता हुआ वह लिखता है कि लड़ाई समाप्त होने के अनन्तर समर-भूमि का दृश्य बड़ा ही रोमांचकारी था। चतुर्दिक रक्तधारा बहती हुई दृष्टिगोचर होती थी। कहीं पर ईरानी सिपा-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हियों की खोपड़ियाँ बिखरी पड़ी थीं। वे इतनी कमजोर थीं कि हल्की चीज़ से भी मारने पर उनमें छेद हो जाता था। इसके प्रतिकूल मिश्र के सैनिकों की खोपड़ियाँ मजबूत थीं। पत्थर के द्वारा जोर से प्रहार करने पर भी वे नहीं टूट पाती थीं। इसका कारण यह था कि मिश्र के लोग अधिकतर सिर को घुटा देते थे, जिससे इन पर सूर्य की किरणें तेज पड़ती थीं। फलतः उनकी खोपड़ी की हड्डियाँ मोटी और कठोर हो जाती थीं। अतएव चोट का उन पर कोई असर न होता था। इसके प्रतिकूल ईरानी लोग लम्बे बाल रखते तथा सिर पर पगड़ी बाँध लेते थे। फलतः रवि-रश्मियों का उनसे विशेष संपर्क न हो पाता था और इस कारण उनकी खोपड़ी कमजोर रह जाती थी।

इस ईरानी प्रथा को भारतवर्ष के लोगों ने अपना लिया। मेगस्थनीज लिखता है कि यदि कोई दुष्ट कार्य करता था, तो उसके बाल कटवा दिये जाते थे। इससे लगता है कि भारतवासी भी इस समय बड़े बालों को महत्त्व देने लगे थे। कर्टियस लिखता है कि उच्च कुल के लोग अपने सिर के बालों को खूब सँवारते पर उन्हें शायद ही कटाते थे। ठुड्डी के बालों को वे कभी नहीं कटाते थे। स्ट्रेबो भी लिखता है कि भारतवर्ष के लोग बड़े बाल एवं दाढ़ी रखते थे। वे सिर के बालों को गूथने के पश्चात् उस पर फीता चढ़ा देते थे। एरियन के अनुसार यहाँ के लोग अपनी रुचि के अनुसार दाढ़ी पर विभिन्न प्रकार के रंग चढ़ाते थे; उदाहरणार्थ नीला, हरा, लाल, श्वेत एवं बैगनी।

(६) **केश-स्नान**—प्राचीन ईरानी अपने जन्म-दिवस के अवसर पर अपने केशों को विधिवत् स्नान कराते थे। मौर्य-काल में भारतीय राजाओं ने इस प्रथा को अपना लिया। स्ट्रेबो लिखता है कि भारतीय राजदरबार का एक विशेष अवसर सम्राट के केश-स्नान का दिन था। उसके अनुसार "जब सम्राट अपने बालों को धोता था, उस समय वे एक बड़ा उत्सव मनाते थे। इस अवसर पर लोग उसके पास भेंट की वस्तुयें भेजते थे। इस समय वे एक दूसरे से बढ़ जाने की स्पर्द्धा रखते थे।" कर्टियस भी लिखता है कि राजा के केश का स्नान विधिपूर्वक किया जाता था। उसके अनुसार "जिस समय राजा के बालों को नहलाया एवं सँवारा जाता था, उस समय राजदरबार में प्रवेश

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
सभी के लिये खुला रहता था।"

(७) जन्म-दिवस-समारोह—ईरान में सम्राट की वर्षगाँठ अत्यन्त समारोह के साथ मनाई जाती थी। इस समय एक बड़ा प्रीतिभोज भी दिया जाता था। इस ईरानी प्रथा का उल्लेख करता हुआ हेरोडोटस लिखता है कि सम्राट जरक्सीज अपने जन्म-दिवस के अवसर पर लोगों को बड़ी दावतें देता था। इस समय वह दान भी करता था। स्ट्रेबो लिखता है कि भारतीय नरेश अपने जन्म-दिवस के अवसर पर बड़ी खुशियाँ मनाते थे तथा प्रीतिभोज का आयोजन भी करते थे। संभव है कि यह प्रथा भी ईरान की देन रही हो।

भारतीय प्रभाव—ईरानी वाह्य सभ्यताओं की विशेषताओं को अपनाने के पक्ष में थे। हेरोडोटस लिखता है कि जितनी शीघ्रता के साथ ईरान के लोग बाहरी प्रथाओं को ग्रहण कर लेते हैं, उतना और किसी भी देश के निवासी नहीं। आमोद-प्रमोद के नवीन साधनों के विषय में वे ज्योंही सुनते हैं, उसे अपना लेते हैं। दारा और उसके उत्तराधिकारियों (जरक्सीज तथा अर्तजरक्सीज) की समाधियाँ पर्वत की चट्टान पर ऊँचाई पर निर्मित हैं। इस प्रथा का अनुकरण उन्होंने मिश्र से किया था। मिश्र साखामनीष सम्राटों के राज्य के अन्तर्गत् था। पर्सिपोलिस की कला में पक्षयुक्त पशुओं की प्रतिमाओं का अंकन मिलता है। ईरानी लोगों ने इसका अनुकरण बैबीलोनिया तथा असीरिया से किया था।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि पारसीकों ने शतरंज का खेलना भारतवर्ष से सीखा था। वात्स्यायन के कामसूत्र में (जो कि गुप्तकालीन ग्रंथ माना जाता है) शतरंज के फलक (आकर्षफलक) तथा जूआ खेलने वाले फलक (द्यूतफलक) का उल्लेख मिलता है। बाणभट्ट ने शतरंज खेलने की प्रथा का उल्लेख आलङ्कारिक ढंग से किया है। वह लिखता है कि महाराज हर्ष के शासन-काल में चतुरंग-कल्पना अर्थात् हाथी, घोड़े, रथ और प्यादे की रचना केवल शतरंज में ही होती थी, अपराधियों के संबन्ध में चतुरंगकल्पना (दोनों हाथ तथा दोनों पैर के कटाने की चर्चा) नहीं सुनी जाती थी (अष्टपदानां चतुरंगकल्पना)। फारस के खुसरो प्रथम के दरबार में किसी भारतीय नरेश ने भेंट की सामग्री भेजी, जिसमें शतरंज का एक फलक भी था। उस समय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वहाँ यह खेल अज्ञात था। सभी दरबारियों ने बारी-बारी चेष्टा की, पर इसके रहस्य को वे न समझ पाये। अन्त में बुज़र्गमेहर नामक वजीर ने, जो कि अपनी कुशाग्रता के लिये विख्यात था, बड़ी माथापच्ची के अनन्तर इस खेल की विधि का पता लगाया। अरबों ने कालान्तर में इसे फारस से सीखा और उनके माध्यम से इसका प्रचार यूरोप में हुआ।

ईरान पर अरबी आक्रमण (६५१ ई०) के कारण वहाँ पर राजनीतिक उथल-पुथल हुआ। वहाँ की कुछ जनसंख्या स्वदेश को छोड़ कर भारतवर्ष चली आई। सिन्ध, काठियावाड़, गुजरात तथा राजपूताना में पारसीक उपनिवेशों के होने के प्रमाण मिलते हैं। गौडवहो में पारसीकों का उल्लेख हुआ है, जो सातवीं शताब्दी में काठियावाड़ तथा सिन्ध में रहते थे। दसवीं शताब्दी का मुसलमान लेखक मसूदी लिखता है कि सिन्ध में अग्नि-मन्दिर बने हुये थे। उसके समकालीन इब्न हौकल के अनुसार सिन्ध में पारसीक लोग रहते थे। ग्यारहवीं शताब्दी के यात्री अल्बरूनी ने भी लिखा है कि उस समय भारतवर्ष में फारस से आये हुये परिवार वर्तमान् थे। यहाँ पर कुछ समय तक रह लेने के अनन्तर ये भारतीय भाषाओं एवं सामाजिक प्रथाओं को अपनाने लगे; उदाहरणार्थ ललाट पर टीका लगाना तथा महिलाओं के द्वारा साड़ी का प्रयोग आदि।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ६

भारतवर्ष एवं मध्य एशिया

भूमिका—मध्य एशिया के साथ भारतवर्ष का संबन्ध प्रधानतः सांस्कृतिक था। यहाँ के निवासी हिन्दुकुश को पार कर अफगानिस्तान एवं बैक्ट्रिआ होते हुये मध्य एशिया जाते थे। अफगानिस्तान के साथ भारतवर्ष का संबन्ध काफी प्राचीन था। ऋग्वेद में कुभा, सुवास्तु, क्रुमु तथा गोमती आदि नदियों के उल्लेख मिलते हैं। इनकी एकता क्रमशः काबुल, स्वात, कुरम तथा गोमल नदियों से की जाती है। अफगानिस्तान के कुछ क्षेत्र भारत के राजनीतिक प्रभाव के अन्तर्गत रह भी चुके थे। इस कारण वहाँ भारतीय सभ्यता के प्रसरण के हेतु अवकाश मिला। मुसलमानों के आक्रमण के समय तक अफगानिस्तान एवं बिलोचिस्तान ब्राह्मण धर्म एवं बौद्ध धर्म के द्वारा प्रभावित थे। ये दोनों प्रदेश मौर्य साम्राज्य के अन्तर्गत रह चुके थे। पूर्वी अफगानिस्तान की मुद्राओं, उत्कीर्ण लेखों एवं कलात्मक वस्तुओं के ऊपर भारतीयता की पर्याप्त छाप थी। टालमी (द्वितीय शताब्दी) ने पूर्वी अफगानिस्तान को भारतवर्ष का एक भाग माना है। चैरेक्स इसिडोर ने कन्दहार क्षेत्र को श्वेत भारत कहा है। अबुलफ़ज़ल ने काबुल एवं कन्दहार को भारतवर्ष का दो द्वार कहा है।

संबन्ध की प्राचीनता—मौर्य साम्राज्य की विशालता एवं अशोक के प्रचार-कार्य के फलस्वरूप हिन्दुकुश के बाहर भारतीय संस्कृति का प्रसरण होता रहा। यूनानी, शक, यूची तथा पार्थियन आदि जातियों ने भारतीय धर्म, लिपि एवं भाषा को अपना लिया। जब इन लोगों ने भारतवर्ष के कुछ भागों को जीत लिया, उस समय हिन्दुकुश के बाहरी प्रदेश भारतीय संस्कृति के और निकट संपर्क में आये। ईसा की प्रारंभिक शताब्दियों में यूची, सोग्डिअन तथा मध्य एशिया की कई जातियाँ भारतीय सभ्यता को स्वीकार

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

करती थीं। गुप्त-काल तक काशगर से लेकर चीन की सीमा तक संपूर्ण पूर्वी तुर्किस्तान सांस्कृतिक दृष्टि से 'विशाल भारत' के रूप में परिवर्तित हो चुका था।[१]

पूर्वी तुर्किस्तान के राज्य—पूर्वी तुर्किस्तान के दक्षिण भाग में शैल देश (काशगर), यारकंद, खोतान तथा शानशान नामक राज्य विद्यमान थे। इसके उत्तरी भाग में भरुक (उच-तुर्फान), कूची, अग्निदेश (करसहर) तथा तुर्फान नामक राज्य सम्मिलित थे। इन विभिन्न राज्यों में खोतान तथा कूची के ऊपर भारतीय सस्कृति का विशेष प्रभाव था।

संबन्ध का सामान्य परिचय—पूर्वी तुर्किस्तान के दक्षिणी राज्यों एवं भारतवर्ष के उत्तर-पश्चिम भाग के बीच वाणिज्य-सपर्क था। इस व्यापार-संबन्ध के कारण इनमें भारतीय उपनिवेशों की स्थापना हुई। गुप्तकाल में बौद्ध धर्म के द्वारा संपूर्ण पूर्वी तुर्किस्तान प्रभावित हुआ। इसके पूर्व यहाँ के विभिन्न राज्यों में खरोष्ठी लिपि प्रचलित थी। पर गुप्त काल में इनमें भारतीय लिपि को विकसित होने के लिये अवकाश प्राप्त हुआ। काशगर, खोतान तथा शानशान में इस समय उत्तरी भारतवर्ष की ब्राह्मी लिपि का प्रयोग होता था। इन राज्यों में शिष्ट वर्ग में संस्कृत भाषा का भी प्रचार हुआ। फाहियान के अनुसार इनके निवासी भारतीय पुस्तकों का अध्ययन करते तथा भारतवर्ष की भाषा को सीखते थे। पूर्वी तुर्किस्तान के बौद्ध भिक्षु संस्कृत में लिखे हुये बौद्ध ग्रंथों का अनुशीलन करते थे। यहाँ पर कई स्थानों से बौद्ध रचनाओं की प्रतिलिपियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनकी भाषा संस्कृत है।

यहाँ कई बौद्ध ग्रन्थों की हस्तलिपियाँ एक ओर भारतीय लिपि तथा दूसरी ओर स्थानीय लिपि में प्रस्तुत की गई थीं। कुछ भारतीय ग्रन्थ स्थानीय भाषाओं में अनुवादसहित प्राप्त हुये हैं। काश्मीर एवं गंधार के बौद्ध विद्वानों ने वहाँ जाकर इस धर्म का प्रचार किया। पूर्वी तुर्किस्तान में बौद्ध ग्रन्थों के

---

१ "The whole of Eastern Turkestan from Kashgar right up to the frontiers of China had grown up in to a sort of Greater India by the beginning of fourth century A. D."

—P. C. Bagchi

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्ययन के प्रचार का वास्तविक श्रेय इन्हीं विद्वानों को है। तृतीय शताब्दी में खोतान का गोमती विहार बौद्ध अनुशीलन का सबसे प्रधान केन्द्र था। २६० ई० के लगभग चीन का चु-शे-हिंग नामक भिक्षु इस विहार में अध्ययनार्थ आया हुआ था। फहियान के अनुसार इसमें भारतीय बौद्ध भिक्षु अध्यापन का कार्य करते थे। वह लिखता है कि यहाँ पर 'सिं-क्यू-किंग-शेंग' नामक एक चीनी राजकुमार भारतीय आचार्यों से बौद्ध ग्रंथों को पढ़ने के निमित्त आया हुआ था। डॉ० बागची के अनुसार खोतान का गोमती विहार बौद्ध अनुशीलन का एक भारतीय केन्द्र समझा जाता था।[१]

पूर्वी तुर्किस्तान में भारतीय चिकित्साशास्त्रसंबन्धी ग्रंथ आदर्श माने जाते थे। यहाँ विविध स्थानों से कई भारतीय चिकित्सा-ग्रन्थ उपलब्ध हुये हैं। इनमें से कुछ का स्थानीय भाषाओं में अनुवाद किया गया। उदाहरणार्थ कुचर की प्राचीन भाषा में एक भारतीय चिकित्सा-ग्रन्थ का अनुवाद प्रस्तुत किया गया था। यहाँ की मूर्ति-कला पर उत्तर-पश्चिम भारत की गंधार-शैली का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इस क्षेत्र से प्राप्त बौद्ध मूर्तियाँ भारतीय प्रतिमाओं का स्मरण दिलाती हैं। यहाँ के भित्ति-चित्रों एवं भारतीय भित्ति-चित्रों में साम्य परिलक्षित होता है।

भारतीय स्तूपों के आदर्श पर निर्मित स्तूपों के उदाहरण भी यहाँ से उपलब्ध हुये हैं। पुरातत्त्ववेत्ताओं के द्वारा पूर्वी तुर्किस्तान के विविध स्थानों से भारतीय भाषा एवं लिपि में लिखे हुये कई प्राचीन राजकीय लेख प्रकाश में लाये गये हैं। काष्ठ-पट्टिकाओं के ऊपर यहाँ के सम्राटों की 'महानुअ महरय' उपाधि अंकित मिलती है। यह 'महानुभाव महाराज' उपाधि का अनुकरण है। यहाँ के प्राचीन लेखों में कुछ नाम आते हैं, जो भारतीय नामों से साम्य रखते हैं, उदाहरणार्थ भीम, बंगुसेन, नंदसेन, शभसेन, शितक तथा उपजिव। कुछ नाम भारतीय नामों के अनुकरण प्रतीत होते हैं, उदाहरणार्थ अंगच तथा कुशनसेन। यहाँ पर गुप्तचर को चर तथा राजदूत को दूतक कहा जाता था।

---

१. "It was, therefore, considered by the outsiders as good as Indian centre of Buddhist learning." —Bagchi.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपलब्ध ग्रन्थ—पूर्वी तुर्किस्तान से प्राप्त भारतीय ग्रन्थों में धम्मपद, उदानवर्ग तथा सारिपुत्रप्रकरण विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। धम्मपद खोतान से तेरह मील की दूरी पर एक स्थान से उपलब्ध हुआ है। बूलर महोदय का अनुमान है कि इस ग्रंथ को कोई भारतीय भिक्षु अपने साथ तुर्किस्तान ले गया था। इसकी भाषा प्राकृत है। यह दूसरी शताब्दी की खरोष्ठी लिपि में लिखा गया है। उदानवर्ग बौद्ध धर्म की सर्वास्तिवाद शाखा से संबन्धित है। यह ग्रंथ भारतवर्ष में अप्राप्य था। इस दृष्टि से इसकी उपयोगिता बहुत अधिक है। यह ग्रंथ भारतवर्ष के बाहर काफी लोकप्रिय था। इसका अनुवाद चीन, तिब्बत तथा मध्य एशिया की कई भाषाओं में हो चुका था। सारिपुत्र-प्रकरण तुर्फान से उपलब्ध हुआ है। इसका लेखक अश्वघोष था, जिसने बुद्धचरित तथा सौन्दरानन्द की रचना की थी।

खोतान—मध्य एशिया के जिन भागों के साथ भारतवर्ष का विशेष रूप से संबन्ध था; उनमें खोतान, कूची तथा करसहर विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। खोतान भारतीय औपनिवेशीकरण का एक महान् केन्द्र था।[१] बौद्ध परंपराओं के अनुसार अशोक का पुत्र कुणाल, जो कि तक्षशिला का राज्यपाल था, अपनी सौतेली माता के व्यवहारों से ऊब कर खोतान चला गया था। यहाँ पर उसने एक स्वतंत्र राजवंश की नींव डाली थी।

तिब्बत के ग्रन्थों में कुणाल को कुस्तन कहा गया है। उसके पौत्र का नाम विजितसंभव था। इसके उपरान्त उसके सभी उत्तराधिकारियों ने अपने नाम के प्रारंभ में विजित शब्द को धारण करना प्रारंभ किया। खोतान के एक लेख में उसकी उपाधि 'महाराज राजातिराज देव विजितसंभव' आती है। उसके उपरान्त ग्यारह पीढ़ी के शासकों के अनन्तर विजितधर्म नामक नरेश सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने कई शक्तियों को परास्त किया था। बाद में चल कर उसने एक बौद्ध भिक्षु का जीवन व्यतीत करना प्रारंभ

---

१ "Khotan seems to be a particulary important centre of Indian colonization." —R.C. Majumdar.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किया। विजितधर्म के उपरान्त विजितसिंह तथा विजितकीर्ति ने राज्य किया।

बौद्ध धर्म का प्रचार—फाहियान के आगमन के समय खोतान में बौद्ध धर्म का काफी प्रचार था। वह लिखता है कि इस देश के नागरिकों ने बौद्ध धर्म को स्वीकार कर लिया था। वहाँ पर विशेषतः महायान शाखा के अनुयायी भिक्षु रहते थे। प्रत्येक नागरिक अपने घर के सामने एक लघु 'पगोडा' का निर्माण करता था। यह ऊँचाई में बीस फीट तक हुआ करता था। फाहियान ने गोमती विहार का बहुत सुन्दर वर्णन किया है। उसके अनुसार इसके पुजारी महायान धर्म के अनुयायी थे। इसमें लगभग तीन हजार भिक्षु रहते थे। घंटा बजते ही वे सब भोजन के निमित्त एक स्थान पर एकत्र हो जाते थे। उनके व्यवहार में बड़ी गंभीरता थी। वे शांतिपूर्वक यथास्थान बैठ जाते थे। भोजन करते समय वे बोलते नहीं थे। घटने पर केवल संकेत के द्वारा ही वे खाद्यपदार्थ और जल आदि माँगते थे।

प्रतिमाओं का जलूस—फाहियान लिखता है कि खोतान में चौदह बड़े मठ बने हुये थे। इसके अतिरिक्त वहाँ छोटे मठ भी वर्तमान थे। यहाँ पर भारतीय रथयात्रा की भाँति मूर्तियों का जलूस निकाला जाता था। इस अवसर पर नगर के भीतर स्वच्छता की व्यवस्था की जाती थी। सड़कें भली-भाँति साफ कर दी जाती थीं। उसने गोमती बिहार के प्रतिमा-जलूस का रोचक वर्णन किया है। वह लिखता है कि नगर से कुछ दूर चार पहिये के रथ को भली-भाँति सजाया जाता था। इसकी ऊँचाई तीस फीट होती थी। इसके ऊपर गौतम बुद्ध की एक विशाल प्रतिमा रखी जाती थी। उसके दोनों ओर बोधिसत्वों की मूर्तियाँ रखी जाती थीं। ये प्रतिमायें सोने और चाँदी की बनी होती थीं। जब रथ नगर से केवल १०० कदम दूर रहता था, उस समय सम्राट बिना मुकुट एवं जूता पहने हुये समीप आकर गौतम बुद्ध की मूर्ति की आरती उतारता एवं पुष्पाञ्जलि अर्पित करता था।

मठ—फाहियान ने अपने यात्राविवरण में 'सम्राट के नये मठ' का उल्लेख किया है। उसके अनुसार तीन पीढ़ी के राजाओं ने इसका निर्माण अस्सी वर्षों में किया था। यह २५० फीट ऊँचा था।

हस्तलिपियाँ—भारतवर्ष से चीन जाने वाले बौद्ध प्रचारकों ने लिखा है

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि खोतान में संस्कृत की कुछ ऐसी हस्तलिपियाँ वर्तमान थीं, जो कि भारतवर्ष में अनुपलब्ध थीं। ४३३ ई० में धर्मक्षेत्र नामक एक भारतीय विद्वान् महायान शाखा के 'महापरिनिर्वाणसूत्र' की हस्तलिपि की प्राप्ति के लिये खोतान गया था, क्योंकि यह ग्रन्थ उस समय भारतवर्ष में अनुपलब्ध था। खोतान के पार्श्ववर्ती स्थानों (उदाहरणार्थ योत्कन, रवाक तथा निय) से भी बौद्ध ग्रंथों की हस्तलिपियाँ तथा इस धर्म से संबन्धित प्रतिमायें एवं चित्रकारियाँ प्राप्त हुई हैं।[१]

कूची (आधुनिक कूचा)—जिस प्रकार मध्य एशिया के दक्षिणी भाग में खोतान भारतीय सभ्यता का सबसे प्रसिद्ध केन्द्र था उसी प्रकार इसके उत्तरी भाग में कूचो की ख्याति सर्वश्रेष्ठ थी।[२] वहाँ के नरेश भारतीय नाम धारण करते थे; उदाहरणार्थ सुवर्णपुष्प, हरिपुष्प, हरदेव तथा सुवर्णदेव। लगता है कि भारतवर्ष के लोग कूची में भी बसे हुये थे। उन्होंने स्थानीय निवासियों के साथ अपना विवाह-संबन्ध स्थापित किया।

कुमारायण—भारतवर्ष से कूची आने वाले व्यक्तियों में सबसे प्रसिद्ध कुमारायण थे। वे एक सचिव-परिवार के सदस्य थे। उन्होंने भावी सचिव-पद के आकर्षण का परित्याग कर धार्मिक जीवन बिताना प्रारंभ किया। इस रूप में वे कूची के सम्राट के पास आये। वह उनकी प्रतिभा से प्रभावित हो उठा। वे वहाँ पर राजगुरु नियुक्त किये गये। वहाँ पर जीवा नामक राजकुमारी के साथ उनका प्रेम हो गया। इस कारण उसके साथ इन्हें अपना विवाह करना पड़ा। उससे इन्हें एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो कि कुमारजीव के नाम से विश्व-इतिहास में प्रख्यात है। उनका यह नाम पिता एवं माता के नाम के आधार पर पड़ा था।

प्रारंभ से ही कुमारजीव की प्रतिभा प्रखर थी। जीवा ने इनके विद्या-व्यसन

---

१. "The art of Buddhist Khotan can be shown to have remained to the last under the predominating influence of Indian model."—Sten Konow.

२. "The kingdom of Kuchi played the same important role in the north as that of Khotan in the south." —Bagchi.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को देख कर इन्हें उच्च शिक्षा देना चाहा। अपने द्वितीय पुत्र पुष्यदेव के जन्म के अनन्तर जीवा भिक्षुणी हो गई। वह कुमारजीव को लेकर काश्मीर आई। वहाँ पर उन्होंने बुधदत्त नामक एक विद्वान से आगमों एवं अन्य शास्त्रों का अध्ययन किया। तदनन्तर उन्होंने काशगर में चारो वेद तथा ब्राह्मण-दर्शन एवं ज्योतिष में उच्च ज्ञान प्राप्त किया। उन्होंने महायान बौद्ध धर्म में दीक्षा प्राप्त की तथा नागार्जुन एवं आर्यदेव जैसे महायान आचार्यों के ग्रथों का अध्ययन किया। तत्पश्चात् वे कूची लौट आये और वहाँ एक मठ में भिक्षु-जीवन व्यतीत करने लगे।

वहाँ पर कुमारजीव से शिक्षा प्राप्त करने के लिये मध्य एशिया के विभिन्न भागों से लोग आये। पूर्वी तुर्किस्तान में बौद्ध धर्म के प्रचार के निमित्त उन्होंने महत्त्वपूर्ण चेष्टायें कीं। इसी समय कूची के ऊपर एक चीनी आक्रमण हुआ। वहाँ का सम्राट पराजित हो गया। कई लोग बन्दी बनाये गये, जिसमें कुमारजीव भी थे। कालान्तर में चीन के सम्राट् ने उनकी प्रतिभा को समझा और उन्हें सम्मान प्रदान किया। उनकी मृत्यु चीन में ४१३ ई० में हुई।

बौद्ध स्मारक—चीनी साधनों के अनुसार कूची में चतुर्थ शताब्दी के प्रारम्भ में कई स्तूप एवं बौद्ध देवालय बने हुये थे। प्रथम चिन वंश के इतिहास में कूची में बौद्ध धर्म के प्रचार के सम्बन्ध में निम्न कथा आती है—

"कूची के राज्य में अनेक मठ विद्यमान थे। उनका सौन्दर्य उत्कृष्ट कोटि का था। राजप्रासाद के सामने गौतम बुद्ध की एक प्रतिमा स्थापित की गई थी। वहाँ के तमु नामक मठ में १७० भिक्षु रहते थे। उत्तर की पहाड़ी पर वर्तमान चेलि नामक मठ में ५० भिक्षु रहते थे। कियेनमु नामक सम्राट् के नवीन मठ में ६० भिक्षु रहते थे। वेनसु के शासक के मठ में ७० भिक्षु थे। ये चारो मठ बुद्धस्वामी के निर्देश द्वारा संचालित होते थे। इन मठों के भिक्षु प्रत्येक तीन महीने के उपरान्त अपने कमरे को बदल देते थे। दीक्षा के पाँच वर्ष उपरान्त वे राजकीय मठ में एक रात भी न रुक सकते थे। यहाँ के एक मठ में कुमारजीव नामक भिक्षु रहते थे, जिनकी योग्यता उच्च कोटि की थी। उन्होंने महायान् धर्म के समस्त ग्रन्थों का अनुशीलन किया था। बुद्धस्वामी उनके शिक्षक थे।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"एलि के मठ में १८० भिक्षुणियाँ, लिग्रन-जो-कन के मठ में ५० भिक्षुणियाँ तथा ए-लि-पो के मठ में ३० भिक्षुणियाँ रहती थीं। ये तीनों मठ भी बुद्धस्वामी के पर्यवेक्षण के अन्तर्गत आते थे। भिक्षुणियों को शिक्षा नियमित रूप से दी जाती थी। बाहरी देशों के नियमों के अनुसार भिक्षुणियों को स्वशासन का अधिकार नहीं प्राप्त था। इन मठों में पामीर के पूर्व के राजाओं एवं राजकुमारों की स्त्रियाँ एवं बहनें भी भिक्षुणी के रूप में रहती थीं। वे इन मठों में ज्ञानार्जन के निमित्त सुदूर भागों से आती थीं। इन मठों का नियम कड़ा था। उन्हें इनका पालन करना पड़ता था। वे प्रत्येक तीन महीने के उपरान्त अपने कमरे को बदल देती थीं। केवल तीन प्रधान भिक्षुणियों को छोड़कर अन्य को बाहर जाने की अनुमति नहीं थी। उन्हें धर्म के लगभग पाँच सौ नियमों का पालन करना पड़ता था।"

भारतीय अनुशीलन—कूची में संस्कृत के ग्रंथों का भी पठन-पाठन होता था। यहाँ पर कातंत्रपद्धति के अनुसार लोग व्याकरण पढ़ते थे। ज्योतिष एवं चिकित्साशास्त्र के ग्रंथों का यहाँ पठन-पाठन होता था। कूची एक ऐसा महत्त्वपूर्ण केन्द्र था, जिसके माध्यम से बाहरी देशों में बौद्ध धर्म का संतोषजनक प्रचार किया गया।[१]

करसहर—यह भी भारतीय सभ्यता के प्रसरण का एक विशिष्ट केन्द्र था। इसका प्राचीन नाम अग्नि देश था। इसके नरेश भारतीय नाम धारण करते थे; उदाहरणार्थ इन्द्रार्जुन तथा चन्द्रार्जुन। कूची के समान यह प्रदेश भी चीन में बौद्ध धर्म के प्रसरण का माध्यम था।

बज़क्लिक—यह भी बौद्ध धर्म का एक केन्द्र था। इसमें कई देवालय बने हुये थे, जिनकी भित्तियों के ऊपर भिक्षुओं के चित्रों का निर्माण किया गया था। इन चित्रों में भारतीय भिक्षु पीत वस्त्र धारण किये हुये प्रदर्शित किये गये हैं। इन चित्रों के नीचे उनके नाम ब्राह्मी लिपि में उल्लिखित मिलते हैं। अन्य भिक्षुओं के नाम स्थानीय लिपि में लिखे गये हैं। यहाँ भित्तिओं के ऊपर गणेश एवं कुबेर के भी चित्र बनाये गये थे।

---

१ "Kuchi was also an inportant centre for propaganda of Buddhism in other countries." —R. C. Majumdar.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय १०

भारतवर्ष एवं दक्षिण-पूर्व एशिया

भूमिका—अनेक साहित्यिक एवं पुरातत्त्व प्रमाणों से स्पष्ट है कि इस देश की उज्ज्वल संस्कृति सदियों से दक्षिणपूर्व एशिया को प्रकाशित करती रही है। वहाँ पर हिन्दू राज्यों की स्थापना तथा भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का प्रसरण हमारे देश के इतिहास का स्वर्णिम परिच्छेद कहा जा सकता है। बर्मा, मलाया, स्याम, अनाम, लाओस, कम्बोडिया, जावा, सुमात्रा तथा बोर्नियो के उत्कीर्ण लेखों एवं साहित्यिक साधनों के द्वारा ईसा की निकटतम शताब्दियों में इनमें हिन्दू औपनिवेशिक राज्यों की स्थापना के प्रमाण उपलब्ध होते हैं। मातृभूमि से हजारों मील दूर बस कर हिन्दू उपनिवेशिकों ने अपने देश की पुण्य स्मृति को अक्षुण्ण बनाने के निमित्त वहाँ के कई केन्द्रों का भारतीय नाम रखा; उदाहरणार्थ अयोध्या, कौशाम्बी, द्वारवती, मथुरा, चम्पा, कलिंग, कम्बुज तथा गंधार।

मार्ग—ऐतिहासिक काल में दक्षिणपूर्व एशिया जाने के लिये लोग अधिकतर ताम्रलिप्ति के बंदरगाह से जाते थे। फाहियान भारत से लौटते समय यहीं पर जहाज में बैठा था। पेरिप्लस और टालमी के अनुसार हमारे देश के वणिक् जलमार्ग के द्वारा ताम्रलिप्ति से पलोरा होते हुये मलय प्रायद्वीप तक जाते थे। इसके अतिरिक्त अंडमन एवं निकोबार द्वीप से होकर एक सीधा रास्ता मलाया की ओर जाता था। स्थलमार्ग के द्वारा लोग बंगाल, मनीपुर, आसाम तथा बर्मा से होकर पूर्वी द्वीप-समूह की ओर जाया करते थे।

संबन्ध की प्राचीनता—भारतवर्ष और दक्षिणपूर्व एशिया के पारस्परिक संबन्ध की प्राचीनता के विषय में कुछ साहित्यिक एवं पुरातत्त्व सामग्री उपलब्ध होती है। अर्थशास्त्र में जनसंख्या के भार को संतुलित करने के निमित्त जनता को नवीन केन्द्रों में स्थानांतरित करने का सुझाव दिया गया है। इससे प्रतीत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के समय से ही लोग बाहर जाने लगे थे। जातक, मिलिन्दप्रश्न तथा बृहत्कथा समुद्रयात्रा की कथाओं से परिपूर्ण हैं। सिलवाँ लेवी ने 'निद्देश' में आये हुये संस्कृत नामों की एकता दक्षिणपूर्व एशिया के विभिन्न स्थानों से की है। टालमी के भूगोल में दक्षिणपूर्व एशिया के जिन स्थानों के नाम आते हैं, वे संस्कृत में हैं। चीनी साधनों के अनुसार जावा में हिन्दू राज्य की स्थापना प्रथम शताब्दी के उत्तरार्द्ध अथवा द्वितीय शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हो चुकी थी।

चीन के इतिहासकारों के अनुसार एक ब्राह्मण ने फूनन के हिन्दू राज्य की नींव प्रथम शताब्दी ईसवी में डाली थी। कालिदास ने पूर्वी द्वीपसमूह को द्वीपान्तर कहा है। उनके अनुसार हमारे देश के व्यापारी वहाँ से मसाले लाते थे—

"अनेन सार्धं विहराम्बुराशेः तीरेषु तालीवनमर्मरेषु।
द्वीपान्तरानीतलवंगपुष्पैरपाकृतास्वेदलवा मरुद्भिः॥"

(रघुवंश)

सुमात्रा, स्याम, अनाम, बोर्नियो एवं पूर्वी जावा में अमरावती शैली में निर्मित मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं। इनका निर्माण पाँचवीं शताब्दी के पूर्व हो चुका था। हिन्द चीन में दक्षिणी अनाम के वोचन्ह नामक स्थान से संस्कृत का सबसे प्राचीन लेख एक प्रस्तरखंड पर उत्कीर्ण मिला है। लिपि के आधार पर इसका समय तृतीय शताब्दी निश्चित की गई है। मध्य स्याम में पांगतुक नामक स्थान पर एक मन्दिर के चबूतरे का निर्माण अमरावती शैली में किया गया था। इसके साथ द्वितीय शताब्दी का एक कांस्यनिर्मित दीप तथा अमरावती शैली में निर्मित एक बुद्ध-प्रतिमा भी उपलब्ध हुई है। पश्चिमी कोचीन के एक स्थान से प्राप्त ताबीज के ऊपर ब्राह्मण धर्म के प्रतीकों की आकृतियाँ उत्कीर्ण मिलती हैं। इसके अतिरिक्त कुछ स्वर्णाभूषण भी मिले हैं, जिन पर द्वितीय शताब्दी की भारतीय लिपि में लेख उत्कीर्ण हैं। इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि द्वितीय शताब्दी तक भारतवर्ष एवं दक्षिणपूर्व एशिया के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो चुका था।

उपनिवेशों की स्थापना के कारण—इस औपनिवेशिक प्रसार के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सम्बन्ध में विभिन्न कारणों का निर्देश किया जाता है। एक मत के अनुसार अशोक के कलिंग-युद्ध में त्रस्त लोगों ने भाग कर दक्षिणपूर्व एशिया में शरण लिया, जिसके फलस्वरूप वहाँ हिन्दू-उपनिवेशों का श्रीगणेश हुआ। एक अन्य मत के अनुसार ईसा की प्रारंभिक शताब्दियों में बाह्य आक्रमणों के कारण हमारे देश की एक विशाल जनसंख्या को मातृभूमि छोड़कर विदेश में शरण लेनी पड़ी। समुद्रगुप्त के द्वारा पराजित राजाओं ने भी दक्षिणपूर्व एशिया के देशों में शरण लिया होगा।

फ्रांसीसी विद्वान् Coedes का मत है कि बौद्ध धर्म के उत्थान ने भी औपनिवेशीकरण को प्रोत्साहित किया। इस धर्म ने स्पर्श्यास्पर्श्य तथा जाति-प्रथा का तिरस्कार किया। ऐसी परिस्थिति में समुद्रयात्रा विशाल मापदंड पर सम्भव हुई। इस औपनिवेशिक प्रसार का सबसे बड़ा कारण व्यापारिक प्रलोभन था। ईसा पूर्व द्वितीय एवं प्रथम शताब्दी में बहुमूल्य धातुयें साइबेरिया से आती थीं। बर्बर जातियों की कृतियों के फलस्वरूप बैक्ट्रिआ से होकर जाने वाला मार्ग असुरक्षित हो गया। परिणामतः भारतवर्ष के लोगों को बहुमूल्य धातुओं की पूर्ति के निमित्त 'सुवर्णभूमि' की ओर मुड़ना पड़ा। दक्षिणपूर्व एशियाई देशों के लिये प्राचीन भारतीय साहित्य में ताम्रद्वीप, यवद्वीप, शंखद्वीप, कर्पूरद्वीप तथा नारिकेलद्वीप का उल्लेख किया गया है। इन नामों से व्यापारिक सम्बन्ध की प्राचीनता पर प्रकाश पड़ता है।

ईसा की निकट शताब्दियों में भारतवर्ष में नौका-निर्माण के क्षेत्र में प्रगति हुई। ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय हिन्द महासागर में ऐसे जहाजों का प्रयोग प्रारम्भ हुआ, जिन पर ६०० से ७०० तक यात्री बैठ सकते थे। ईसा की प्रथम शताब्दी में हिप्पालस नामक यूनानी ने जलपोत के संचालन में मानसून की महत्ता का अनुसंधान कर लिया था। यूनानी संपर्क के कारण भारतवर्ष के निवासियों ने भी द्वितीय शताब्दी में इसकी उपयोगिता को सीख लिया था। इस कारण जलमार्ग के द्वारा विभिन्न देशों के साथ भारतीय व्यापार में अभिवृद्धि हुई। उपलब्ध साधनों के आधार पर इस कथन को मानने में कोई ऐतिहासिक भूल न होगी कि राजाओं एवं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साम्राज्यवादियों के पहले भारतीय व्यापारी ही इन देशों में आये। जिस प्रकार अंग्रेज व्यापारियों ने भारतवर्ष में समुचित वातावरण पाकर बाद में अपने राज्य की यहाँ स्थापना कर ली, उसी प्रकार कालान्तर में हमारे देश के अनेक असन्तुष्ट राजाओं तथा राजकुमारों, सामन्तों एवं राजकीय पदाधिकारियों ने यहाँ आकर अपने राज्यों को स्थापित किया। इन परिस्थितियों में दक्षिणपूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति के प्रसार को स्वर्णिम अवकाश उपलब्ध हुआ।

प्रमुख हिन्दू राज्य—हिन्दू राज्यों में प्राचीनतम् नाम फूनन का आता है। यह राज्य कम्बोडिया में वर्तमान था। चीनी साधनों से ज्ञात होता है कि इस राज्य की स्थापना 'कौण्डिण्य' नामक एक भारतीय ने की थी। वह ब्राह्मण मतावलम्बी था। उसके आगमन के पूर्व यहाँ के लोग असभ्य थे। वे लोग नंगे रहते थे। कौण्डिण्य ने उन्हें वस्त्र पहनने के लिये बाध्य किया तथा सभ्य बनाया। उसके वंशजों ने यहाँ लगभग १०० वर्षों तक राज्य किया। चीनी साधनों के अनुसार चौथी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में फूनन में एक दूसरा 'कौण्डिण्य' नामक ब्राह्मण शासक राज्य करता था। उसने वहाँ भारतीय कानून तथा रीति प्रथाओं को प्रचलित किया। उसके उत्तराधिकारियों में जयवर्मन् सबसे प्रसिद्ध था। उसने ५१४ ई० तक राज्य किया। उसने ४८४ ई० में नागसेन नामक एक भारतीय साधु को चीन-सम्राट के पास भेजा था। जयवर्मन महेश्वर का पूजक था। उसका उत्तराधिकारी रुद्रवर्मन था। वह फूनन का अन्तिम भारतीय शासक था, जिसका नाम अब तक ज्ञात हो सका है।

द्वितीय भारतीय राज्य कम्बुज (कम्बोडिया) में वर्तमान था। परम्परा के अनुसार इसकी नींव ऋषि 'कम्बुस्वायम्भुव' नामक व्यक्ति ने डाली थी। उसी के नाम पर इसका नाम कम्बुज पड़ा। इसके प्रथम ऐतिहासिक शासक श्रुतवर्मन तथा उसका पुत्र श्रेष्ठवर्मन हैं, जिनके वंश के राजाओं ने कम्बुज को फूनन की अधीनता से मुक्त किया था। कम्बुज के द्वितीय ऐतिहासिक राजवंश की नींव भववर्मन् ने डाली। उसने भवपुर नामक नगर की स्थापना की थी। महेन्द्रवर्मन् तथा ईशानवर्मन् नामक उसके उत्तराधिकारियों के काल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में कम्बुज राज्य कोचीन-चीन तथा पूरे कम्बोडिया में फैल गया। सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में शैलेन्द्रों ने कम्बुज को जीत लिया। पर कुछ काल के पश्चात् जयवर्मन द्वितीय नामक पराक्रमी सम्राट ने इसे उनकी अधीनता से मुक्त कर लिया।

इन्द्रवर्मन् नामक व्यक्ति ने ८७७ ई० के लगभग कम्बुज में एक अन्य भारतीय राजवंश के शासन को जन्म दिया। इस राजवंश ने ८७७ ई० से लेकर १००१ ई० तक राज्य किया। इसके नरेशों में यशोवर्मन्, राजेन्द्रवर्मन् तथा जयवर्मन् पंचम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनके राज्यकाल में कम्बुज राज्य अपने अभ्युदय के चरमोत्कर्ष पर पहुँच चुका था। यशोवर्मन संस्कृत का प्रेमी था। उसने वामशिव नामक आचार्य से शिक्षा ली थी। उसके संस्कृत भाषा में लिखे हुये कई अभिलेख उपलब्ध हुये हैं। ये उत्कृष्ट काव्य-शैली के उदाहरण माने जा सकते हैं। उसने पतंजलि के महाभाष्य के ऊपर एक टीका लिखी थी। राजेन्द्र वर्मा ने चम्पा पर आक्रमण किया तथा सम्भवतः कुछ अन्य प्रदेशों को विजित किया। जयवर्मन् पंचम के उपरान्त इस राजवंश में कुछ वर्षों तक उथल-पुथल तथा आन्तरिक कलह चलता रहा।

ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में सूर्यवर्मन् प्रथम नामक नरेश ने कम्बुज की शक्ति का पुनरुद्धार किया। वह भाष्य, काव्य, दर्शन एवं धर्मशास्त्र का ज्ञाता था। वह बौद्ध धर्म का अनुयायी था, परन्तु उसने शैव एवं वैष्णव मन्दिरों का भी निर्माण किया। उसकी मृत्यु के अनन्तर सूर्यवर्मन् द्वितीय सिंहासनारूढ़ हुआ। वह एक पराक्रमी सम्राट था। उसने चीन में एक राज-दूत भेजा था। उसने अपने आचार्य दिवाकरमित्र की सहायता से कोटिहोम तथा लक्षहोम आदि यज्ञों का अनुष्ठान किया। वह विष्णु का अनन्य भक्त था। उसने सुप्रसिद्ध अंकोरवट का निर्माण किया। उसने चंपा एवं अनाम के ऊपर आक्रमण किया था। वहाँ उसे प्रारम्भ में कुछ सफलता उपलब्ध हुई थी।

पूर्वी द्वीपसमूह तथा मलाया के क्षेत्र में आठवीं शताब्दी में शैलेन्द्र नामक एक प्रख्यात राजवंश का उदय हुआ, जिसने शीघ्र ही अपनी शक्ति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का विस्तार कर तत्कालीन राजनीति में प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया। इसके शासक 'महाराज' उपाधि धारण करते थे और भारत, चीन एवं अरब आदि देशों से इसका व्यापारिक तथा राजनीतिक संबन्ध था। प्रारम्भ में इसका मुख्य केन्द्र संभवतः जावा का मध्यवर्ती प्रदेश था, परन्तु इसके हाथ से निकल जाने पर इसकी शक्ति आधुनिक सुमात्रा में श्रीविजय नामक प्रख्यात नगर तथा बंदरगाह में केन्द्रित हो गई। ग्यारहवीं शताब्दी में दक्षिणी भारत के चोल शासकों ने हिन्द महासागर तथा बंगाल की खाड़ी के व्यापारिक मार्गों के नियंत्रण के लिये शैलेन्द्र वंश से घोर संघर्ष किया परंतु इसका कोई निश्चित परिणाम न हुआ और अंततः परिस्थिति पूर्ववत् हो गई। शैलेन्द्र वंश की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। डाक्टर मजुमदार के मतानुसार यह एक भारतीय राजवंश था, जिसका संबन्ध संभवतया उड़ीसा और उसके पार्श्ववर्ती क्षेत्रों के गंग, शैलोद्भव अथवा शैल वंशों से रहा होगा।

जावा में शैलेन्द्रों की शक्ति के क्षीण हो जाने पर एक नवीन राज्य की स्थापना हुई। इसे इतिहासकारों ने पूर्वी जावा-साम्राज्य की संज्ञा दी है। इसका प्रमुख शासक ऐलंग हुआ। इसके पश्चात् यह साम्राज्य कडिरि तथा सिंहसारि नामक दो भागों में विभक्त हो गया। इन्हीं राज्यों द्वारा निर्मित नींव पर कुछ काल उपरांत मजपहित के विशाल साम्राज्य की सृष्टि हुई। ऐलंग तथा उसके उत्तराधिकारियों के तत्त्वावधान में जावा में भारतीय संस्कृति, कला तथा धर्म को प्रचुर प्रोत्साहन मिला।

आधुनिक स्याम अथवा थाईलैंड में प्रारंभ में मौन् जाति के लोग निवास करते थे, जिन्होंने बहुत कुछ अंशों में भारतीय सभ्यता को ग्रहण कर लिया था। इनके प्रमुख राज्य द्वारावती इत्यादि थे। कालान्तर में यह प्रदेश कम्बुज-साम्राज्य के अन्तर्गत हो गया, परन्तु तेरहवीं शताब्दी में चीन से आने वाली थाई जाति के योद्धाओं ने इस पर अधिकार कर लिया। क्रमशः थाई लोग भी यहाँ की भारतीय परंपरा से प्रभावित होने लगे और आज संभवतः सम्पूर्ण दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीयता का अंश इसी प्रदेश में विद्यमान है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बर्मा देश में भी भारतीय संस्कृति का पदार्पण बहुत प्राचीन काल में हो चुका था। प्रारंभ में दक्षिणी बर्मा में सुधम्मवती इत्यादि भारतीय संस्कृति तथा बौद्ध धर्म के प्रमुख केन्द्र थे। दसवीं शताब्दी के मध्य के लगभग महान् सम्राट अनिरुद्ध के राज्यारोहण से इस देश के इतिहास में एक नवीन अध्याय प्रारंभ होता है। अरिमर्दनपुर (पेगन) के शासक अनिरुद्ध ने न केवल दक्षिणी बर्मा तथा अरकान को जीत कर प्रथम ऐतिहासिक बर्मी सार्वदेशिक साम्राज्य का निर्माण किया, अपितु उत्तरी बर्मा में सिंहलीय बौद्ध धर्म तथा भारतीय सभ्यता के अन्य तत्त्वों को भी दृढ़ रूप से प्रतिष्ठित करने में योग दिया। उसके क्यानज़ित्थ तथा नरपति सथु इत्यादि उत्तराधिकारी भी उसी प्रकार भारतीयता के पोशक थे, जिन्होंने गया के सुप्रसिद्ध बौद्ध मंदिर का जीर्णोद्धार करने में धनराशि का व्यय किया। इस वंश के राजाओं की अमर कीर्ति अरिमर्दनपुर के आनंद मन्दिर के रूप में आज भी विद्यमान है।

भारतीय संस्कृति का प्रभाव

शासन-प्रबंध—इन औपनिवेशिक राज्यों में शासन-पद्धति, न्याय तथा राजकीय नियमों के आदर्श भारतीय थे। राजा सर्वोत्तम पदाधिकारी माना जाता था। जावा के इन्द्रलोक तथा नीतिप्रिय नामक ग्रंथों से ज्ञात होता है कि वहाँ सम्राट निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी होता था। उपर्युक्त पुस्तकों में राजा के कर्त्तव्यों की व्याख्या के संबन्ध में महाभारत तथा रामायण से कथायें दृष्टान्त के स्वरूप में प्रस्तुत की गई हैं। ये ग्रन्थ मनुस्मृति के द्वारा भी प्रभावित लगते हैं। भारतीय आदर्शों के अनुसार यहाँ भी राजत्व में देवत्व की कल्पना की गई थी। चम्पा के डोंग डुआंग नामक स्थान से प्राप्त लेख में सम्राट को 'पृथ्वी पर निवास करने वाला देवता' कहा गया है। वहाँ राजा का ज्येष्ठ पुत्र ही प्रायः उसका उत्तराधिकारी होता था। सम्राट की सहायता के लिये सचिव हुआ करते थे। मंत्री का पद परंपरागत हुआ करता था। उच्च राजकर्मचारियों को जागीरें दी जाती थीं। चम्पा के अमरावती, विजय एवं पांडुरंग नामक प्रान्तों में पदाधिकारियों को वेतन के स्थान पर जागीरें दी जाती थीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्राट् राज्य का सर्वोच्च न्यायाधीश हुआ करता था। राजा के अधीनस्थ न्यायालय नगरों में वर्तमान होते थे। भारतवर्ष की भाँति जावा में न्यायाधीश को धर्माधिकरण कहा जाता था। सेना चार भागों में विभाजित होती थी; पैदल, हाथी, घुड़सवार तथा नौसेना। भारतवर्ष की भाँति इन देशों में हस्ति-सेना का काफी महत्त्व था। भारतीय सेनाओं की भाँति चम्पा की सेनायें भी कई बार हाथियों के भगदड़ के कारण पराजित हुई थीं। सेना के अध्यक्ष को सेनापति अथवा महासेनापति कहा जाता था।

सामाजिक दशा

वर्णव्यवस्था—इन हिन्दू औपनिवेशिक राज्यों में हिन्दू रीतिप्रथाओं एवं सामाजिक नियमों का प्रचार था। इनके शिलालेखों का 'चतुर्वर्ण' शब्द समाज की चार जातियों को व्यक्त करता है। यहाँ अभिलेखों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र जातियों का उल्लेख हुआ है। भारतवर्ष की भाँति इनमें अन्तर्जातीय विवाह होता था। चम्पा के सम्राट् रुद्रवर्मन के पिता ब्राह्मणवंश तथा माता क्षत्रियवंश की राजकुमारी थीं। चम्पा में ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों के बीच अनेक विवाह से एक नवीन जाति (ब्रह्मक्षत्रिय) का प्रादुर्भाव हुआ। भारतवर्ष में भी ब्रह्मक्षत्रिय जाति विद्यमान थी। बंगाल के सेन राजा इसी जाति के थे।

समाज में ब्राह्मणों का स्थान सर्वोच्च था। अध्ययन एवं अध्यापन उनका परम कर्त्तव्य माना जाता था। चम्पा के एक शिलालेख में ब्राह्मण को मनुष्यों में देवता कहा गया है। बाली के पदण्ड नामक पुरोहित ब्राह्मण जाति के माने जाते हैं। क्षत्रियों का कर्त्तव्य युद्धकर्म एवं राज्य-संचालन था। शिलालेखों के अनुसार यहाँ के राजवंश अधिकतर क्षत्रिय जाति के थे। धनाढ्य व्यापारी वैश्य जाति के अन्तर्गत आते थे। यहाँ पर शूद्र अस्पृश्य नहीं माने जाते थे।

स्त्री-दशा—भारत की अपेक्षा यहाँ स्त्रियों को उच्च स्थान प्राप्त था। पर्दा-प्रथा का प्रचलन नहीं था। सामाजिक एवं धार्मिक कृतियों में वे पुरुषों के साथ भाग लेती थीं। भारत की भाँति यहाँ भी विवाह को लोग एक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पवित्र संस्कार मानते थे। अधिकतर विवाह सजातीय ही हुआ करते थे। परन्तु भारतवर्ष की भाँति एक ही जाति में निषिद्ध श्रेणियाँ नहीं थीं। वहाँ विवाह की विधि भारतवर्ष जैसी ही थी। ब्राह्मण पुरोहित विवाह निश्चित करने का माध्यम होता था। विवाह मंत्रों के उच्चारण के साथ सम्पन्न होता था।

सती-प्रथा—इस प्रथा के प्रचार के भी प्रमाण उपलब्ध होते हैं। यह प्रथा केवल ब्राह्मण एवं क्षत्रिय वर्ग में ही प्रचलित थी। शिलालेखों के द्वारा राजाओं के मरने पर उनकी रानियों और यहाँ तक कि रखेलियों के सती हो जाने की सूचना प्राप्त होती है। जावा में पति की मृत्यु के अनन्तर स्त्रियाँ या तो छुरा भोंक कर मर जाती थीं या पति के शव के साथ जल जाती थीं।

अन्त्येष्ठि संस्कार—यहाँ शव को फेंकने, जीव जंतुओं को खाने के लिये खुला छोड़ देने तथा जलाने की प्रथा प्रचलित थी। दूसरे प्रकार की विधि में जब हड्डियाँ बच रहती थीं, उस समय मृत व्यक्ति के सम्बन्धी लोग उसे जला-कर उसकी राख को जल में फेंक देते थे। शव को जलाने का ही विशेष प्रचार था। चम्पा में विशिष्ट लोगों के शव को पाँच या छह दिन बाद जलाया जाता था। शव को जलाने के अनन्तर उसकी राख को एक घड़े में रख कर पानी में डाल दिया जाता था। किसी सामन्त या उच्च पदाधिकारी के शव को नदी के मुहाने पर जलाया जाता था तथा तदुपरान्त ताँबे के घड़े में राख को बन्द कर फेंक दिया जाता था। राजा के शव की राख को सोने के घड़े में रख कर समुद्र में डाल दिया जाता था।

वेशभूषा—यहाँ की मूर्तियों एवं भित्तिचित्रों के द्वारा लोगों के वस्त्र तथा आभूषण आदि के विषय में सूचना प्राप्त होती है। इनका अधोवस्त्र प्रायः घुटने तक लटकता रहता था। साधु एवं भृत्यवर्ग लँगोटी धारण करता था। विभिन्न आकृतियों से चित्रित कपड़ों के पहनने की यहाँ विशेष प्रथा थी। भारतवर्ष की भाँति स्त्रियों के आभूषणों में कंगन, कर्णपूर, करधन, पायल तथा हार आदि का प्रमुख स्थान था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मनोरंजन के साधन—यहाँ पर जूआ विशेष रूप से प्रचलित था। साधारण वर्ग के लोग मुर्गे लड़ाते थे। मनोविनोद के अन्य साधनों में संगीत, नाटक तथा नृत्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। चम्पा के भित्ति-चित्रों में वहाँ के बाजों की आकृतियाँ दिखाई गई हैं। भारतीय ढोल एवं मजीरा का वहाँ व्यापक प्रचलन था। उच्च वर्ग की महिलायें नृत्य का अभ्यास करती थीं।

साहित्य—कम्बोडिया, जावा, सुमात्रा तथा बोर्नियो के कुछ प्राचीन लेख संस्कृत भाषा में लिखे गये हैं। इनमें शार्दूलविक्रीडित, बसन्ततिलका, स्रग्धरा, अनुष्टुप, पुष्पतिलका तथा उपेन्द्रवज्रा आदि सस्कृत-छन्दों के सुन्दर उदाहरण उपलब्ध होते हैं। इन संस्कृत-अभिलेखों में पाणिनि के व्याकरण-सम्बन्धी नियमों का पालन किया गया है। इसमें श्लेष तथा अनुप्रास से अलंकृत काव्यमयी शैली के उदाहरण उपलब्ध होते हैं। ये कादम्बरी, नैषध और शिशुपालवध की शैली का स्मरण दिलाते हैं। इस प्रकार का एक उदाहरण निम्न श्लोक में उपलब्ध होता है—

"भूता भूतेशभूता भवतिभवोद्भावभावात्मभावा।
भावाभावास्वभावा भवभवभवाभावभावैकभावा॥
भावाभावाग्रशक्तिः शशिमुकुटतनोर्द्धकायासुकाया।
काये कायेशकाया भगवति नमतो नो जयेव स्वसिद्धया॥"
(परमेश्वरवर्मन् का शिलालेख—शकसंवत् ६७२)

चंपा, कंबोडिया और जावा में महाभारत और रामायण का पठनपाठन विशेष रूप से होता था। यहाँ के लेखों में वेद, वेदांग तथा सामवेद के ज्ञाता ब्राह्मणों का उल्लेख मिलता है। ब्राह्मण तथा बौद्ध धर्म के सभी ग्रंथों का अनुशीलन किया जाता था। यहाँ के शिलालेखों में सेतुबन्ध के रचयिता प्रवरसेन तथा सूर्यशतक के लेखक मयूर का नामोल्लेख मिलता है। कम्बोडिया के प्रेरुप-शिलालेख के चार श्लोकों पर रघुवंश के चार श्लोकों की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है। इन शिलालेखों में मनुस्मृति, नारदस्मृति, विशालाक्ष के नीतिशास्त्र, वात्स्यायन के कामसूत्र तथा सुश्रुत के चिकित्साशास्त्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
का उल्लेख हुआ है। इनमें पाणिनि के अष्टाध्यायी तथा उसके भाष्यों का भी नाम आता है।

जावा के काव्य, नाटक एवं साहित्य की अन्य शाखाओं को भारतीय साहित्य ने प्रभावित किया। इनमें स्थान-स्थान पर भारतीय ग्रंथों से श्लोक उद्धृत किये गये हैं। महाभारत के अनुकरण पर यहाँ कुछ ग्रन्थ लिखे गये; उदाहरणार्थ अर्जुनविवाह, कृष्णायन, सुमनसान्तक, हरिवंश, भरतयुद्ध तथा स्मरदहन। यहाँ के पौराणिक ग्रंथों में ब्रह्माण्डपुराण प्रमुख है। कथावस्तु एवं शैली की दृष्टि से यह संस्कृत के मौलिक ग्रन्थ का अनुक ण है। अमर-कोष के आधार पर जावा में शब्दकोष सकलित किये गये। नालन्दा के एक ताम्रलेख से ज्ञात होता है कि इस स्थान पर वर्तमान विश्वविद्यालय के अन्तर्राष्ट्रीय यश से प्रभावित होकर सुवर्ण द्वीप के शासक बालपुत्रदेव ने वहाँ एक विहार का निर्माण कराया तथा अपने मित्र (बंगाल के पाल-नरेश) देवपाल से उसकी आर्थिक सहायता के लिये पाँच ग्राम दान में दिलवाया था—

"नालंदगुणलुब्धमनसा भक्त्या च शौद्धोधने।
नानाभिक्षुसघवसतितस्यां विहारः कृतः॥
सुवर्णद्वीपाधिपमहाराजश्रीबालपुत्रदेवेन वयं विज्ञापिताः।
यथा मया श्रीनालंदायां विहारः कृतः॥"

प्राचीन तथा मध्यकालीन जावा के साहित्य पर भारतीय छाप इतनी गहरी और स्पष्ट है कि इसे "इन्डो-जैवेनीज़-लिटरेचर" कह कर पुकारा जाता है। जावा के अतिरिक्त बर्मा और स्याम में भी प्राचीन तथा मध्यकाल में प्रभूत मात्रा में साहित्य का सृजन हुआ। यह साहित्य अधिकांशतः धार्मिक है और पाली भाषा में लिखा गया है।

धर्म

बौद्ध धर्म—इन देशों में बसने वाले व्यक्तियों के साथ भारतीय धर्मों तथा धार्मिक विश्वासों का भी वहाँ समावेश हुआ। जैन धर्म के अतिरिक्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतवर्ष के अन्य सभी धर्मों और संप्रदायों का यहाँ के लोगों में विस्तृत प्रचार हुआ। लगता है कि यहाँ सभी धर्मों का प्रसार साथ-साथ और लगभग समान रूप से हुआ। दक्षिणपूर्व एशिया में बौद्ध धर्म के प्रसार की प्राचीनता के विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ कहना कठिन है। साधारणतया लोगों का कथन है कि बर्मा में बौद्ध धर्म का प्रवेश अशोक के प्रयत्न के फलस्वरूप हुआ। लंका की एक अनुश्रुति के अनुसार अशोक ने सोण और उत्तर नामक दो प्रचारकों को सुवर्णभूमि भेजा था। विद्वानों का अनुमान है कि यहाँ पर सुवर्णभूमि से तात्पर्य बर्मा से है। हमवज़ा के निकट मौगन नामक स्थान से सोने के चद्दरों पर पाली भाषा में उत्कीर्ण कुछ बौद्ध लेख मिले हैं। फिनों ने लिपि के आधार पर उनकी तिथि पाँचवीं शताब्दी माना है।

कुछ विद्वानों के अनुसार इंडोचीन के वोचन्ह का शिलालेख चम्पा में तृतीय शताब्दी में बौद्ध धर्म का प्रचार प्रमाणित करता है। केदा के एक शिलाखंड पर पल्लव-लिपि में बौद्ध धर्म से संबन्धित कुछ संस्कृत के श्लोक उत्कीर्ण मिलते हैं। ६०५ ई० में एक चीनी सेनानायक चंपा से कुछ बौद्ध ग्रन्थ स्वदेश ले गया था। चम्पा में बौद्ध धर्म को राजाश्रय भी प्राप्त था। यहाँ के सम्राटों ने मठों का निर्माण किया। उदाहरणार्थ जय-इन्द्रवर्मन् नामक सम्राट् ने स्थानीय भिक्षुसंघ के लिये एक मठ बनवाया था; जिनमें भोजन, वस्त्र एवं विश्राम की सुविधायें सुचारु रूप में उपलब्ध थीं।

कम्बुज में भी बौद्ध धर्म का प्रचार था। काश्मीर के राजकुमार गुणवर्मन् ने जावा में बौद्ध धर्म के प्रसार के हेतु महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। श्रीविजय (आधुनिक पालेम्बंग) में पाँचवीं शताब्दी की बौद्ध प्रतिमायें उपलब्ध हुई हैं। सातवीं शताब्दी में इत्सिंग के आगमन के अवसर पर वहाँ के धार्मिक वातावरण के ऊपर बौद्ध धर्म का पर्याप्त प्रभाव था। सातवीं शताब्दी तक दक्षिणपूर्व एशिया के प्रायः सभी देशों में बौद्ध धर्म का प्रचार हो चुका था। फूनन में इस समय बोधिसत्व की पूजा होती थी। इस साक्ष्य से वहाँ बौद्ध धर्म का प्रचार प्रमाणित होता है। श्रीक्षेत्र (आधुनिक प्रोम) में इस समय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
बौद्ध धर्म की चार शाखायें प्रचलित थीं; उदाहरणार्थ महासंगीत, स्थविर-वाद, मूलसर्वास्तिवाद तथा सम्मतीय।

वैष्णव धर्म—दक्षिणपूर्व एशिया के हिन्दू राज्यों की विशिष्टता यह थी कि यहाँ पर बौद्ध धर्म के अतिरिक्त ब्राह्मण धर्म का भी विशेष रूप से प्रचार था। कम्बुज के दो प्राचीनतम शिलालेख वैष्णव धर्म से संबन्धित हैं। सूर्यवर्मन् द्वितीय विष्णु का पुजारी था। उसने अंकोरवट के विशाल मन्दिर में विष्णु-मूर्ति की स्थापना की थी। चम्पा में विष्णु के लिये पुरुषोत्तम, नारायण, गोविन्द, माधव तथा विक्रम आदि अनेक नाम प्रचलित थे। कृष्णावतार की विभिन्न कथाओं का यहाँ विशेषरूप से प्रचार था। कृष्ण गोवर्धन पर्वत के धारण करने वाले और कंस केशी आदि दैत्यों के संहारक के रूप में प्रसिद्ध थे। विष्णु की चतुर्भुजी रूप की यहाँ पूजा होती थी। उनका वाहन गरुड़ माना जाता था। जावा से अनन्तशायी विष्णु की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। लक्ष्मी विष्णु की अर्द्धाङ्गिनी एवं धन-देवी मानी जाती थीं। जावा में भी विष्णु की पूजा होती थी। वहाँ के कई शिलालेखों में शेषशायी विष्णु के रूप का वर्णन किया गया है। वैष्णव धर्म के प्रतीक शंख, चक्र, गदा तथा पद्म आदि माने जाते थे। जावा से विष्णु के विभिन्न अवतारों से संबन्धित कृष्ण, राम, मत्स्य, वराह और नरसिंह की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं।

शैव धर्म—यह चम्पा का प्रमुख धर्म था। शिव की पूजा महेश्वर, महादेव, अमरेश, वृद्धेश्वर, ईशान्, ईशानेश्वर, शंभु, शंकर, शर्व, भीम, उग्र तथा रुद्र आदि नामों से की जाती थी। चम्पा के लेखों और साहित्य में शिव को सर्वश्रेष्ठ देवता माना गया है। वहाँ के लोगों का विश्वास था कि शिव संपूर्ण विश्व में व्याप्त हैं तथा जल, अग्नि, पृथ्वी, वायु एवं आकाश आदि उनके प्रगट रूप हैं। शिव-मूर्तियों से पता चलता है कि चंपा के लोग उनके त्रिनेत्रयुक्त, त्रिशूलधारी, तांडवनृत्यकारी तथा जटाधारी आदि रूपों से परिचित थे। जनमत में प्रतिष्ठित था कि उनकी जटा से गंगा निकलती हैं तथा वे गिरिराजतनया पार्वती के पति हैं। सिद्ध, चारण, यक्ष तथा किन्नर आदि उनके सेवक हैं। शिव की कृतियों में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कामदेव को भस्म करना तथा त्रिपुर नामक राक्षस की हत्या आदि विशेष रूप से प्रसिद्ध थे।

शैव धर्म का जावा में भी विशेष रूप से प्रचार था। यहाँ के श्रीसंजय नामक सम्राट् ने एक पहाड़ी पर शिवलिंग की स्थापना की थी। जावा से शैव मन्दिरों एवं मूर्तियों के कई उदाहरण प्राप्त हुये हैं। यहाँ कतिपय स्थानों पर शिव-मन्दिर के दोनों पार्श्वों पर विष्णु एवं ब्रह्मा के लघु मन्दिर बनाये जाते थे। पार्वती, कार्तिकेय एवं गणेश की भी पूजा होती थी। बाली में ब्रह्मा और विष्णु शिव के अन्य रूप माने जाते थे। यहाँ पर शैव धर्म एवं बौद्ध धर्म में एकता लाने की चेष्टा की जा रही थी। धार्मिक अवसरों पर शैव एवं बौद्ध पुरोहित दोनों ही बैठते थे। यह परम्परा अभी तक चली आ रही है।

अन्य देवों की पूजा—इन देशों में ब्रह्मा की भी पूजा की जाती थी। चंपा के लेखों में उन्हें चतुरानन कहा गया है। मूर्तियों में ब्रह्मा के चार मुख दिखाये गये हैं। जावा में यम, वरुण, इन्द्र, अग्नि तथा कुवेर की पूजा का प्रचलन था। यहाँ पर सूर्योपासना तथा सर्प-पूजा होती थी। चम्पा के लेखों में सूर्य-पूजा के उल्लेख मिलते हैं। दक्षिणपूर्व एशिया के प्रत्येक देश में विविध भारतीय सम्प्रदाय एवं मत प्रचलित थे, पर सभी लोग एक दूसरे के धर्म का आदर करते थे तथा उनमें किसी प्रकार का धार्मिक वैमनस्य नहीं था।

धार्मिक विश्वास—यज्ञों के अनुष्ठान में लोगों का विश्वास था। सूर्यवर्मा द्वितीय के काल में कोटिहोम, लक्षहोम तथा महाहोम आदि यज्ञों का सम्पादन किया गया था। इनके अन्य धार्मिक विश्वासों में जन्म-जन्मान्तर के कर्मों का प्रभाव, ज्योतिष के प्रति श्रद्धा तथा स्वर्ग एवं नरक जैसे लोकों की कल्पना उल्लेखनीय हैं। वे सत्-युग, द्वापर तथा कलियुग में विश्वास करते थे। महाभारत, रामायण तथा पुराणों का नियम से पाठ होता था।

कला—डॉ० आनन्द कुमारस्वामी का कथन है कि दक्षिण-पूर्व एशिया की कला को भारतीय कला का एक अंग माना जा सकता है। यहाँ के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राचीन भवनों एवं मूर्तियों को देखने से लगता है, मानों वे भारतीय कलाकारों के द्वारा बनाई गई हों। डॉक्टर रमेशचन्द्र मजुमदार के अनुसार दक्षिणपूर्व एशिया की कला के प्रत्येक अंग पर भारतीय कला की छाप परिलक्षित होती है। कम्बोडिया, चम्पा तथा जावा के प्रारम्भिक मन्दिर भारतीय देवालयों के आदर्शों पर निर्मित हैं। वे शुद्ध भारतीय कला के उदाहरण लगते हैं। प्रेइ कुक के मन्दिर में देवगढ़ के मन्दिर के समान अनन्तशायी विष्णु की चतुर्भुजी मूर्ति मिलती है। इसका मुख्यकक्ष भारतीय मन्दिरों के गर्भगृह से साम्य रखता है। अश्राम महारोसी का मन्दिर पल्लव-मन्दिर के आदर्श पर निर्मित है।

नगर निर्माण—यहाँ पर नगर-निर्माण शैली पूर्णतः भारतीय थी। यहाँ पर कम्बुज की राजधानी अंकोरथौम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसकी स्थापना जयवर्मन् सप्तम् ने की थी। यह नगर वर्गाकार था। प्रत्येक ओर इसकी लम्बाई २ मील से ऊपर थी। नगर के चतुर्दिक ३३० फीट चौड़ी एक परिखा थी। यह पत्थर की ऊँची दीवालों से घिरा हुआ था। परिखा को पार करने के निमित्त पाँच पुल बनाये गये थे जो नगर के पाँच प्रधान द्वारों से मिले हुये थे। इन प्रधान नगर-द्वारों से राजमार्ग नगर के केन्दीय भाग की ओर जाते थे। नगर अनेक सरोवरों एवं भव्य भवनों से सुशोभित हुआ करते थे।

अंकोरवट—इसका पता सबसे पहले १८६० ई० में हेनरी मूहोट ने लगाया था। उसके अनुसार विश्व की कला के इतिहास में दक्षिणपूर्व एशिया की यह एक आश्चर्यजनक देन है। इसकी तुलना विश्व के कतिपय प्राचीन भवन ही कर सकते हैं। इसका निर्माण सूर्यवर्मा द्वितीय ने कराया था। संपूर्ण मन्दिर पत्थर का बना हुआ है। इसमें कहीं भी लकड़ी का प्रयोग नहीं हुआ है। इसके चतुर्दिक एक ऊँची एवं लम्बी चहारदीवारी तथा गहरी खाईं बनी हुई है। मन्दिर में प्रवेश करने के निमित्त इसकी पश्चिमी दिशा में एक प्रधान द्वार बना हुआ है। इसमें प्रदक्षिणामार्ग बने हुये हैं। इसकी दीवालों पर हिन्दू धर्म की कथायें आकृतियों के द्वारा दिखाई गई हैं। १४४० ई० में कम्बुज की राजधानी अंकोरवट से आधुनिक नामपेन्ह में स्थानांतरित की गई। तब से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक यह मन्दिर अपने स्थान पर अवहेलना की परिस्थिति में विद्यमान था। शताब्दियों तक प्रकृति के रौद्र रूप का सामना करता हुआ यह अपने मौलिक स्वरूप को सुरक्षित किये हुये है।

बोरोबोदुर का स्तूप—यह निर्माण शैलेन्द्र राजाओं की समृद्धि एवं वैभव का शानदार स्मारक है। इसकी स्थापना स्थापत्य की भव्यता, कौशल, विशालता एवं पवित्रता का प्रतिनिधित्व करती है। यह 'केदू' में एक पहाड़ी पर आश्चर्ययजनक ढंग से बनाया गया है। संपूर्ण निर्माण सीढ़ीनुमा पिरेमिड के रूप में है। हर निचला चबूतरा बड़ा तथा ऊपरी चबूतरा क्रमशः छोटा होता गया है। नीचे के पाँच चबूतरे वर्गाकार हैं तथा ऊपर के तीन चबूतरे गोलाकार हैं। नीचे के चबूतरे की दीवालों पर सुन्दर आकृतियाँ अंकित की गई हैं। इनमें जातक-कथाओं के दृश्य प्रदर्शित किये गये हैं। इन दीवालों में ताख बने हुये हैं, जिनमें ध्यानी बुद्ध की मूर्तियाँ स्थापित की गई हैं। इनमें रत्नसंभव, अमिताभ तथा अमोघसिद्ध की मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं। नीचे से पहले गोल चबूतरे में ३२, दूसरे में २४ तथा तीसरे में १६ स्तूप बने हुये हैं। सबसे ऊपरी चबूतरे के मध्म भाग में एक अर्द्धगोलाकार स्तूप बना हुआ है, जो संपूर्ण पिरेमिडनुमा आकृति के शीर्षस्थान का निर्माण करता है। इन सभी स्तूपों में ताख बने हुये हैं, जिनमें धर्मचक्रमुद्रा में बुद्ध की मूर्तियाँ स्थापित की गई हैं। इस पूरे निर्माण को बौद्ध स्थापत्य का एक अति सुन्दर उदाहरण माना जा सकता है।

अंकोरवट तथा बोरोबुदुर के अतिरिक्त बर्मा का आनन्द मन्दिर, अंकोरथौम का बेयोन-मन्दिर, चम्पा के माइसोन मन्दिर तथा पूर्वी जावा के लाराजोंगरम वर्ग के मन्दिर भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन सभी पर भारतीय स्थापत्य का गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

मूर्ति कला—यहाँ के प्रायः प्रत्येक देश से बौद्ध प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं। चम्पा के डांगडुअंग नामक स्थान पर गौतम बुद्ध की एक मूर्ति बैठी हुई अवस्था में उपलब्ध है। यहाँ से उनकी एक सुन्दर ताम्रमूर्ति भी खड़ी हुई अवस्था में प्राप्त हुई है। कम्बोडिया के रोमलोक तथा ताकियो नामक स्थानों से गौतम बुद्ध की प्रस्तर-मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। बनावट की दृष्टि से ये सारनाथ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की बुद्ध-प्रतिमा का स्मरण दिलाती हैं। आनन्द पगोडा में ८१ 'रिलीफ लक्षण' प्राप्त हुये हैं, जो ललितविस्तर में वर्णित बुद्ध के जीवन की घटनाओं का स्मरण दिलाते हैं। स्पष्टता, सौन्दर्य एवं सजीवता की दृष्टि से ये प्रतिमायें दर्शनीय हैं। बोरोबोदुर-स्तूप की बौद्ध प्रतिमाओं की विविधता, सरलता एवं पवित्रता सराहनीय है।

गौतम बुद्ध की प्रतिमाओं के अतिरिक्त ब्राह्मण धर्म से संबन्धित देवताओं की अनेक मूर्तियों के उदाहरण इन देशों से उपलब्ध हुये हैं; उदाहरणार्थ शिव, विष्णु, ब्रह्मा, गणेश, लक्ष्मी तथा स्कन्द। चम्पा के बियन होआ नामक स्थान से विष्णु की चतुर्भुजी मूर्ति मिली है। विष्णु के हाथों में शंख, चक्र, गदा एवं पद्म तथा गले में केयूर एवं वनमाल सुशोभित हैं। चम्पा एवं कंबोडिया के मन्दिरों में शेषशायी विष्णु की मूर्ति मिलती है। उनकी नाभि से निकले हुये कमल पर आसीन ब्रह्मा की आकृति का अंकन किया गया है। पुराणों में विष्णु के इस प्रकार के रूप का वर्णन मिलता है।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ११

भारत-चीन-संपर्क

संबन्ध की प्राचीनता—चीन के साथ भारतवर्ष का संपर्क संभवतः तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व से प्रारंभ हुआ। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में चीन के रेशमी वस्त्र का उल्लेख मिलता है। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि चीन का नाम वहाँ के चिन वंश (२२१ ई० पू०—२२० ई०) के नाम के आधार पर पड़ा। तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व में उत्तर-पश्चिम चीन में इस नाम का एक लघु राज्य था। कतिपय इतिहासकारों का कथन है कि संपूर्ण देश के लिये चीन नाम इस छोटे राज्य के नाम के आधार पर उसी प्रकार पड़ा, जिस प्रकार सिन्धु (हिन्दु) नाम के आधार पर संपूर्ण हिन्दुस्तान का नाम पड़ गया था। महाभारत के द्रोणपर्व (द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व) में चीन नाम का उल्लेख मिलता है।

> "यवनाः चीन—काम्बोजा दारुणा म्लेच्छजातयः।
> सकृद्ग्रहाः कुलत्थाश्च हूणाः पारसिकैः सह॥"

चीन एवं भारतवर्ष के प्राचीन संपर्क को घनिष्ठ बनाने में बौद्ध धर्म ने सबसे अधिक योग दिया था। चीन की एक प्राचीन परंपरा के अनुसार बौद्ध धर्म के कुछ प्रचारक २१७ ई० पू० में चिन वंश की राजधानी में आये हुये थे। वहाँ की एक अन्य परंपरा के अनुसार १२१ ई० पू० में एक चीनी सेना-नायक गौतम बुद्ध की एक सुवर्ण-प्रतिमा अपने साथ स्वदेश ले आया था। परंतु कतिपय विद्वानों के अनुसार ये परंपरायें ऐतिहासिक तथ्यों से रहित एवं अश्रद्धेय प्रतीत होती हैं। अधिकांश इतिहासकार इस मत से सहमत हैं कि चीन में बौद्ध धर्म का प्रथम वास्तविक प्रवेश २ ई० पू० में हुआ था। यूची शासकों ने इस समय वहाँ कुछ बौद्ध ग्रंथों एवं मूर्तियों को भेजा था। भारत-वर्ष से कतिपय बौद्ध धर्म के प्रचारक ६५ ई० के लगभग चीन आये हुये

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थे। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि भारतवर्ष एवं चीन का प्राचीन संपर्क प्रधानतः बौद्ध धर्म से संबन्धित था। डाक्टर रमेशचन्द्र मजुमदार के शब्दों में दोनों देशों का संपर्क, जो प्रारंभ में वाणिज्यविषयक प्रेरणा का प्रभाव था, कालान्तर में बौद्ध प्रचारकों की कृतियों के प्रभाव से आच्छादित हो उठा।[१]

मार्ग—पहला मार्ग उत्तर-पश्चिम भारत से प्रारंभ होकर काबुल की घाटी से होता हुआ हिद्द, नगरहार (जलालाबाद) तथा तदनंतर बमियान की ओर जाता था। बमियान का उल्लेख चीनी ग्रंथों में मिलता है। यहाँ पर बौद्ध धर्म का पर्याप्त प्रचार था। भारतवर्ष से चीन वाले बौद्ध भिक्षु विश्राम-हेतु इस स्थान पर कुछ काल तक रुकते थे। यहाँ पर प्रायः सभी देशों के व्यापारी आया करते थे। एक बौद्ध परंपरा के अनुसार कोशल-नरेश ने कपिलवस्तु का संहार कर डाला था। इस घटना के परिणामस्वरूप शाक्यवंश के चार राजकुमार इस नगर को छोड़ कर अन्यत्र चले गये। इनमें से एक बमियान आया हुआ था। हुयेनसांग लिखता है कि उसके आगमन के समय वहाँ पर एक शाक्यवंशी नरेश राज्य कर रहा था। यह स्थान हिन्दुकुश की श्रेणियों के द्वारा परिवेष्ठित है। अजन्ता के गुहा-मन्दिरों की भाँति यहाँ पर भी पर्वत को काट कर बौद्ध गुहा-मन्दिर निर्मित किये गये थे। इन गुफाओं में बौद्ध भिक्षु रहते थे। यहाँ से गौतम बुद्ध की प्रतिमायें तथा भारतीय लिपि में लिखी हुई बौद्ध धर्म से संबन्धित पुस्तकें उपलब्ध हुई हैं।

बमियान से यह मार्ग बल्ख आता था। चीनी ग्रंथों में इसे फोन्हो कहा गया है। भारतवर्ष के लोग इसे बाह्लीक कहते थे। वहाँ पर भी बौद्ध धर्म का पर्याप्त प्रचार था। हुयेनसांग लिखता है कि बल्ख में नवसंघाराम नामक एक विहार बना हुआ था। उसके अनुसार इसमें कई आचार्य रहते थे। बौद्ध साहित्य में उनका अध्ययन उच्चकोटि का था। कालान्तर में

१. "Although original intercourse might have been inspired by commercial enterprise, it was soon overshadowed by missionary activity leading to a more or less complete cultural conquest over extensive regions." —R. C. Majumdar.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुसलमान आक्रमणकारियों ने इस मठ का विनाश कर डाला था। इसके पुजारी पकड़ कर बगदाद लाये गये। अल्बरूनी के अनुसार इन्होंने वहाँ पर भारतीय ज्योतिष एवं गणित का प्रचार किया था। बल्ख से भारतीय यात्री काशगर आते थे। वहाँ से दो मार्ग चीन को जाते थे। पहला उत्तरी मार्ग था। इस पर उचतुर्फान, भरुक, कूची, अग्निदेश (करसहर) तथा तुर्फान आदि स्थित थे। दूसरा दक्षिण मार्ग था। इस पर यारकंद तथा खोतान आदि विद्यमान थे। परिच्छेदान्तर में इस बात का निर्देश किया जा चुका है कि इन स्थानों की सभ्यता पर भारतीय प्रभाव पर्याप्त था।

भारतवर्ष से चीन जाने वाला दूसरा स्थलमार्ग आसाम-बर्मा मार्ग था। यह पाटलिपुत्र से चंपा (भागलपुर), कजंगल (राजमहल) तथा पुंड्रवर्द्धन (उत्तरी बंगाल) होता हुआ कामरूप (गौहाटी) आता था। यहाँ से तीन रास्ते बर्मा की ओर जाते थे। पहला पटकोई की श्रेणियों से होता हुआ उत्तरी बर्मा की ओर जाता था। दूसरा आधुनिक मनीपुर से चिंदविन की घाटी तक जाता था। तीसरा अर्कान से होता हुआ इरावती की घाटी तक आता था। ये तीनों मार्ग बर्मा के सरहद पर स्थित भामो नामक स्थान पर मिलते थे। यहाँ से भारतीय यात्री कुन्मिंग आते थे, जो चीन के दक्षिणी प्रान्त का प्रधान नगर था।

हुयेनसांग के वर्णन से ज्ञात होता है कि आसाम से बर्मा तक जाने वाला मार्ग यात्रियों के लिये काफी कठिन सिद्ध होता था। उसके अनुसार कामरूप के पूर्व का प्रदेश पर्वतमालाओं के द्वारा आच्छादित था। उनमें साँप तथा बिच्छू के काटने का भय बराबर बना रहता था। पर्वत-श्रेणियों को पार करना कठिन कार्य था। मार्ग में कोई अच्छा स्थान नहीं था, जहाँ पर यात्री विश्राम कर सकें। हुयेनसांग तथा कामरूप-नरेश भास्करवर्मा के बीच जो संवाद हुआ, उसके अनुसार उस समय पूर्वी भारत में एक चीनी गीत का व्यापक प्रचार था। लोग उसे बहुत अभिरुचि के साथ गाते थे। तीसरा स्थल-मार्ग नेपाल से तिब्बत होता हुआ चीन जाता था। इस मार्ग से हुअन-चाऊ तथा कि-यी नामक चीनी यात्री भारतवर्ष आये हुये थे। इनके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
विवरण से ज्ञात होता है कि तिब्बत के लोग भारत जाने वाले चीनी यात्रियों को पर्याप्त सुख एवं सुविधायें प्रदान करते थे।

भारतवर्ष एवं चीन के व्यापार-संबन्ध के उन्नत दशा में होने पर जल-मार्ग के द्वारा भी भारतीय यात्री चीन जाने लगे। कालिदास के अनुसार भारतवर्ष के व्यापारी चीन से रेशमी वस्त्र लाते थे। 'अभिज्ञानशकुन्तलम्' में कण्व के आश्रम से हस्तिनापुर जाता हुआ दुष्यन्त कहता है :—"मैं केवल शरीरमात्र से ही अपनी राजधानी की ओर जा रहा हूँ। मेरा मन तो कण्व के आश्रम में पीछे छूटा हुआ है। मेरी स्थिति इस समय वैसी ही है, जिस प्रकार वायु की विपरीत दिशा में जाते हुये जलपोत में लगा चीन के रेशमी वस्त्र का झंडा पीछे की ओर फहराता रहता है।"

"गच्छति पुरः शरीरं पश्चाद् संस्थितं चेतः।
चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य॥"

भारतवर्ष के पश्चिम समुद्र-तट से प्रस्थान करने वाले यात्री भृगुकच्छ (भड़ौंच) एवं शूर्पारक (सोपारा) होते हुये लंका तथा वहाँ से यवद्वीप (जावा) एवं श्रीविजय (सुमात्रा का पूर्वी तट) होते हुये चीन जाते थे। पूर्वी समुद्र-तट से प्रस्थान करने वाले भारतीय यात्री जावा तथा सुमात्रा होते हुये चीन जाते थे। कभी-कभी ताम्रलिप्ति के बंदरगाह से लोग जहाज के द्वारा कावेरी-पत्तन (पुहार) तथा लंका होते हुये चीन जाते थे। विदेशी विवरण में ताम्रलिप्ति एवं कावेरी-पत्तन का उल्लेख मिलता है। ताम्रलिप्ति से लंका होकर चीन जाने वाला जलमार्ग घुमावदार था। फाहियान इसी मार्ग से चीन वापस लौटा था। ताम्रलिप्ति से लंका पहुँचने में उसे १४ दिन लग गये थे। वह लंका से जावा ९० दिनों की कठिन यात्रा के उपरान्त पहुँचा। चीनी यात्री इत्सिंग भारतवर्ष से चीन लौटते समय जावा होता हुआ श्री-विजय पहुँचा। वह यहाँ चार वर्षों तक रुका था। वह लिखता है कि श्री-विजय बौद्ध अनुशीलन एवं संस्कृत विद्या का एक प्रतिष्ठित केन्द्र था। उसके अनुसार इसकी राजधानी के चतुर्दिक एक उच्च प्राकार बना हुआ था। वहाँ पर लगभग एक हजार बौद्ध पुजारी रहते थे। वे विभिन्न बौद्ध शाखाओं के प्रकांड विद्वान् माने जाते थे। वे भारतवर्ष की सभी उच्च विद्याओं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का अध्ययन करते थे। उनकी प्रथायें एवं विधियाँ पूर्ण रूप से भारतीय थीं।

इत्सिंग के कथन की प्रामाणिकता में संदेह उत्पन्न करना अनैतिहासिक होगा। पुरातत्त्व-साक्ष्य इस बात का प्रमाण है कि श्रीविजय भारतीय सभ्यता से पर्याप्त रूप में प्रभावित था। वहाँ के कतिपय प्राचीन अभिलेखों की भाषा संस्कृत है। वहाँ धार्मिक एवं लौकिक साहित्य को आदर की दृष्टि से देखा जाता था। चीन जाते समय मार्ग में पड़ने वाले कुछ अन्य बंदरगाहों के विषय में भी सूचना उपलब्ध होती है; उदाहरणार्थ पांडुरंग, विजयपुर तथा कौठार। ये अनामी समुद्र-तट पर स्थित थे। चीनी बंदरगाहों में कैंटन तथा शांतुंग सबसे प्रसिद्ध थे। फाहियान शांतुंग के बंदरगाह पर उतरा था। जावा से शांतुंग पहुँचने में उसे ८२ दिन लग गये थे। उसे इस बीच की यात्रा में भी काफी कठिनाई का सामना करना पड़ा। तूफान के कारण एक बार उसका जहाज समुद्र-तट से दूर हट आया। यह जलपोत दूर-समुद्र में १२ दिनों तक भटकता रहा। खाद्य-सामग्री कें समाप्त हो जाने के कारण यात्री अधीर हो उठे थे। नाविकों के अदम्य धैर्य एवं कठिन परिश्रम के फलस्वरूप जहाज किसी भाँति शांतुंग बंदरगाह पर पहुँच सका था।

बौद्ध धर्म का प्रचार—अन्यत्र इस बात का निर्देश किया जा चुका है कि प्रारंभ में बौद्ध धर्म को चीन में प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। परिणामस्वरूप बौद्ध प्रचारकों ने अपनी सफलता के लिये वहाँ सतर्कता, अध्यवसाय एवं संलग्नता के साथ कार्य करना प्रारंभ किया। काश्यपमातंग तथा धर्मरक्ष नामक बौद्ध प्रचारकों ने चीनवासियों को बौद्ध धर्म की विशेषताओं से परिचित कराने के लिये भारतीय ग्रंथों का चीनी भाषा में रूपान्तर करना प्रारंभ किया। उन्होंने बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों एवं गौतम बुद्ध के जीवन की प्रधान घटनाओं का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया। उनकी कृतियों के फलस्वरूप चीन के निवासी धीरे-धीरे बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों से प्रभावित होने लगे। यहाँ के कतिपय आचार्यों ने इसका प्रचार भी करना प्रारंभ कर दिया। इस कोटि के चीनी विद्वानों में सर्वप्रथम मोत्सू उल्लेखनीय है। उसने बौद्धों की पवित्रता, सरलता एवं अनासक्ति की प्रशंसा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की। उसने बौद्ध धर्म के प्रति चीनवासियों के हृदय में श्रद्धा उत्पन्न करने के लिये सराहनीय कार्य किया।

कालान्तर में चीन के सम्राटों ने भी बौद्ध धर्म को प्रोत्साहित किया। उदाहरणार्थ वू (Wu) ने २६५ ई० से लेकर २९० ई० तक विभिन्न स्थानों पर कई मठों का निर्माण किया। चतुर्थ शताब्दी के प्रारंभ में नानकिंग एवं चंगन में चीन-सम्राटों के द्वारा निर्मित कई मठ विद्यमान थे। इनमें रहने वाले भिक्षुओं की संख्या ३७०० थी। चीन-सम्राटों की प्रेरणा के फलस्वरूप ३१७ ई० से ४१७ ई० तक ३६३ भारतीय ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद किया गया। युअन-ति (३१७ ई०-३२२ ई०) ने नानकिंग में दो मठों का निर्माण किया। पहले मठ का नाम व-कुअन-सी तथा दूसरे का नाम लंग-कुअन-सी था। इनमें से प्रत्येक में एक हजार भिक्षु रहते थे। मिंग-ती (३२२ ई०-३२५ ई०) ने मिंग-हिंग-सी तथा ताओ-चंग-सी नामक दो मठों का निर्माण कराया था। इनमें से प्रत्येक में एक सौ भिक्षु रहते थे। चेंग-ती (३२६ ई०-३४२ ई०) ने चंग-हिंग-सी तथा लु-यि-सी नामक मठ निर्मित किया था। इनमें से प्रत्येक में एक सहस्र भिक्षु रहते थे। वेन-ती (३७१ ई०-३७२ ई०) ने बौद्ध उपासकों के लिये कई प्रतिमाओं का निर्माण कराया। लगता है कि वह महायान धर्म से प्रभावित था।

उत्तरी चीन के शे-हु नामक सम्राट् ने बौद्ध धर्म के प्रति सहिष्णुता की नीति अपनाई तथा ३८६ ई० में निम्नलिखित राजाज्ञा घोषित की—"बुद्ध एक ऐसे देवता हैं, जिनकी उपासना बाहरी देशों में की जाती है। अतएव यह उचित ही है कि मैं भी उनकी आराधना करूँ। मैं अपनी प्रजा को बुद्ध की उपासना के निमित्त आज्ञा देता हूँ। यदि मेरे राज्य के लोग चाहें, तो वे बौद्ध धर्म का अनुसरण कर सकते हैं।"

उत्तरी चीन में वेई-वंश के शासकों ने इसके प्रचार के निमित्त पर्याप्त कार्य किया था। उदाहरणार्थ वूती (३८६ ई०-४०७ ई०) ने १५ चैत्यों का निर्माण किया था। उसने बौद्धों की एक सभा बुलाई थी, जिसमें तीन हज़ार भिक्षु उपस्थित थे। चेंग-ती (४५३ ई०-४६५ ई०) के काल में भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों की संख्या तीस हजार के लगभग थी। हुयेन-बेंग-ती (४६५ ई०-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

४७६ ई०) ने दो मठों का निर्माण किया, जिनमें ध्यानवाद संप्रदाय के बौद्ध आचार्य रहते थे। हिश्रो-वेन-ती (४७६ ई०-४७९ ई०) के काल में बौद्ध-मतावलंबियों की संख्या ४०,००० थी। वेइ वंश के १७० वर्षों के शासन-काल में लोयंग तथा चंगन में ४७ विशाल मठ निर्मित किये गये थे। इनके समय में ये दोनों स्थान बौद्ध प्रचार-संबन्धी सबसे महान् केन्द्र थे।[१]

चीनी यात्री

चू-शे-हिंग—बाल्यावस्था में ही उसने बौद्ध धर्म में दीक्षा ली थी। उसने लोयंग के पो-मा-सी नामक मठ में बौद्ध ग्रंथों का अनुशीलन किया था। उसने २६० ई० में अपनी भारतीय यात्रा प्रारंभ की थी। मध्य एशिया में विभिन्न स्थानों का पर्यटन करता हुआ वह खोतान आया। वहाँ इस समय बौद्ध धर्म का पर्याप्त प्रचार था। इस स्थान पर उसे भारतीय आचार्यों से भेंट हुई। उनसे इसे बौद्ध ग्रंथों के अनुशीलन का सुअवसर उपलब्ध हुआ। इस कारण उसने अपनी भारतीय यात्रा यहाँ पर समाप्त कर दी। उसने अपने जीवन के अवशिष्ट भाग को यहीं पर व्यतीत किया।

इत्सिंग के विवरण के अनुसार तृतीय शताब्दी के मध्य भाग में चीन के कुछ बौद्ध भिक्षु स्थलमार्ग के द्वारा बर्मा तथा आसाम होते हुये भारतवर्ष आये थे। गुप्तवंश के संस्थापक श्रीगुप्त (चेलिकेतो) ने उनके निवास के निमित्त मृगशिखावन में एक मठ बनवाया था। उसे चीनी संघाराम कहा जाता था। उसने इस मठ की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये कुछ ग्राम भी दान में दिया था।

चतुर्थ शताब्दी के उपरांत चीन के बौद्धों ने भारतवर्ष में विशेष अभि-रुचि लेना प्रारंभ किया। उदाहरणार्थ **ताओन्गन** नामक चीनी भिक्षु ने मध्य एशिया में रहने वाले भारतीय भिक्षुओं को चीन आमंत्रित किया। उसने कई चीनी आचार्यों को एकत्र कर उन्हें बौद्ध धर्म में उच्च शिक्षा दी

१. "Under the patronage of the Wei, Loyang and Ch'an-gngan became the greatest centres of Buddhist activities in China."

—P. C. Bagachi.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
थी। तदनन्तर इसके प्रचार के निमित्त उसने उन्हें देश के विभिन्न भागों में भेजा। उसने भारतीय भिक्षुओं की सहायता से कुछ बौद्ध ग्रंथों का चीनी भाषा में प्रामाणिक अनुवाद किया था।

फाहियान—उसका जन्म चीन में वु-यंग नामक स्थान में हुआ था। उसका पिता बौद्धमतावलंबी था। वह फाहियान को बौद्ध धर्म में दीक्षा देना चाहता था। उसके तीन बड़े भाई थे, जो अल्पावस्था में ही मृत्यु के शिकार हो गये। परिणामतः फाहियान के माता-पिता ने उसकी काफी सेवा-शुश्रुषा करना प्रारंभ किया। एक बार वह बहुत बीमार पड़ा तथा उसके बचने की कोई भी आशा नहीं थी। इस पर उसके पिता ने उसे एक समीपवर्ती बौद्ध मठ में भेज दिया, जहाँ पर भिक्षुओं की सेवा के कारण वह पूर्ण रूप से चंगा हो गया। इसके उपरांत वह बौद्ध मठ में ही बराबर रहने लगा। इस कारण तथागत के प्रति उसकी आस्था दिन प्रति दिन द्विगुणित होती गई। उसने अपने परिवार से पूर्ण रूप से संबन्ध-विच्छेद किया तथा श्रमणों का जीवन बिताना प्रारंभ किया। उसने बौद्ध ग्रंथों का अनुशीलन किया। तथागत की जन्मभूमि के दर्शन के निमित्त उसकी स्पृहा बलवती हो उठी। बौद्ध तीर्थों का दर्शन कर वह अपनी आत्मा तथा नेत्रों को संतुष्ट करना चाहता था। इसके अतिरिक्त वह सुप्रसिद्ध बौद्ध ग्रंथ विनयपिटक की एक प्रतिलिपि भी प्राप्त करना चाहता था।

भारतीय यात्रा—उसने अपनी यात्रा चंगन से प्रारंभ की। चंग-यिह, शेन-शेन तथा वू-ई आदि स्थानों का पर्यटन करता हुआ वह खोतान पहुँचा। वहाँ से कई दिनों की यात्रा करता हुआ वह पुष्कलावती पहुँचा। यहाँ पर हीनयान मतावलंबियों की बहुसंख्या थी। उसने इस नगर में एक विशाल स्तूप देखा, जो सुवर्ण तथा रजत आदि बहुमूल्य धातुओं से जटित था। वहाँ से पूर्व की ओर चलता हुआ सात दिनों में वह तक्षशिला पहुँचा। उसके अनुसार यहाँ कई स्तूप बने हुये थे। इस नगर में बौद्ध मत के अनुयायी प्रचुर संख्या में रहते थे। वहाँ से दक्षिण की ओर यात्रा करता हुआ वह चार दिनों में पुरुषपुर पहुँचा। कनिष्क के द्वारा निर्मित स्तूप वहाँ इस समय भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विद्यमान था। यह लगभग ४०० फीट ऊँचा था। फाहियान के अनुसार यह भारतवर्ष का सबसे सुन्दर स्तूप था।

वहाँ से पश्चिम की ओर १६ योजन की यात्रा करता हुआ वह नगर देश में पहुँचा। इसकी राजधानी में एक सुन्दर स्तूप बना हुआ था। जनमत के अनुसार उसके भीतर गौतम बुद्ध का एक दाँत था। यही कारण है कि लोग बहुत श्रद्धा के साथ इस स्तूप पर पूजा चढ़ाते थे। उत्तर-पश्चिम भारतवर्ष में फाहियान ने कुछ अन्य स्थानों का भी पर्यटन किया था जो बौद्ध धर्म से संबन्धित थे। इसके अनन्तर वह कई दिनों की यात्रा के पश्चात् मथुरा पहुँचा। यहाँ पर मठ तथा स्तूप वर्तमान थे। बौद्धमतावलंबियों की संख्या इस नगर में भी अधिक थी।

इसके उपरांत दक्षिणपूर्व की दिशा में वह १४ दिनों की यात्रा करता हुआ सांकाश्य पहुँचा। यह स्थान भी बौद्ध धर्म का एक पवित्र तीर्थ माना जाता था। भारतीय परंपरा के अनुसार भगवान् बुद्ध अपनी माता से मिलने के निमित्त यहाँ पर त्रयस्त्रिंश से उतरे थे। इस स्थान से सात योजन की यात्रा करता हुआ वह कान्यकुब्ज पहुँचा। इस नगर में दो मठ थे, जिनमें हीनयान मतावलंबी रहते थे। वहाँ से तीन योजन की दूरी पार करता हुआ वह साकेत पहुँचा। इस स्थान से आठ योजन की दूरी पर श्रावस्ती स्थित था। फाहियान के आगमन के अवसर पर यह नगर काफी उजड़ चुका था। इसकी नीरवता को देख कर चीनी यात्री को बहुत कष्ट हुआ। इसमें अब भी कुछ मठ तथा स्तूप विद्यमान थे। सुदत्त के द्वारा निर्मित विहार अच्छी दशा में था। उसने इस नगर में जेतवन को भी देखा था। फाहियान ने श्रावस्ती के नागरिकों की दानपरायणता तथा अतिथि-सत्कार की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है।

इसके उपरांत वह कपिलवस्तु पहुँचा। उस समय तक यह नगर काफी ध्वस्त हो चुका था। यहाँ रहने वालों की संख्या अत्यल्प थी। इसके भीतर जंगली जानवरों के आक्रमण का भय बराबर बना रहता था। इसके अनंतर वह कुशीनगर तथा वैशाली होता हुआ पाटलिपुत्र पहुँचा। फाहियान के वर्णन से ज्ञात होता है कि उस समय भारतवर्ष का सर्वश्रेष्ठ नगर यही था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐसा होना स्वाभाविक ही था, क्योंकि गुप्तों की राजधानी इसी नगर में प्रतिष्ठित थी।

वहाँ से वह नव योजन की दूरी तय करता हुआ राजगृह पहुँचा। यह नगर उस समय काफी वीरान हो चुका था। इसके पश्चात् वह गया आया। यह पुर भी उजड़ी हुई स्थिति में था। तदनंतर वह चम्पा होता हुआ ताम्रलिप्ति पहुँचा। वहाँ पर जहाज में आरूढ़ होकर उसने चीन के लिये प्रस्थान किया था।

शासनपद्धति—उसने गुप्त सम्राटों की शासनव्यवस्था की पर्याप्त प्रशंसा की है। उसके अनुसार भारतवर्ष के निवासी सुखी तथा संपन्न थे। वे अपने घरों में ताला नहीं लगाते थे। उन्हें न्यायालयों में बहुत कम जाना पड़ता था। उन्हें कर भी कम देना पड़ता था। नागरिक को व्यक्तिगत स्वतंत्रता अधिक मात्रा में प्राप्त थी। लोग अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करते थे। मृत्युदंड नहीं दिया जाता था। कड़े अपराधों के लिये प्रायः अर्थदंड दिया जाता था। बारंबार अपराध करने पर शरीर का कोई अंग काट लिया जाता था, पर फाँसी की सजा नहीं दी जाती थी। जूनागढ़ के लेख में एक स्थान पर गुप्त शासन-व्यवस्था की उदारता की ओर संकेत किया गया है :—

"तस्मिन्नृपे शासति नैव कश्चिद् धर्मादपेतो मनुजः प्रजासु।
आर्तो दरिद्रो व्यसनी कदर्यो दण्ड्यो न यो वा भृशपीडितः स्यात्॥"

इस साक्ष्य से स्पष्ट है कि फाहियान का कथन असत्य नहीं है।

समाज—फाहियान ने इस देश के निवासियों के चरित्रसंगठन की पर्याप्त प्रशंसा की है। वह लिखता है कि भारतवर्ष के निवासी जानवरों को नहीं मारते थे। वे मदिरा का पान नहीं करते थे तथा लहसुन, प्याज आदि नहीं खाते थे। उसने चारों जातियों में वैश्यों की सबसे अधिक प्रशंसा की है। इसके अनुसार उन्होंने नगरों में दानगृह एवं औषधालय बनवाया था। निर्धन, अपंग, अनाथ, विधवा, निस्संतान, लूले, लँगड़े तथा रोगी आदि को इनमें भोजन, वस्त्र तथा समस्त सुविधायें प्राप्त होती थीं। उन्होंने गौतम बुद्ध के परिनिर्वाण के अनन्तर स्तूपों एवं मठों का निर्माण किया था। वैश्यों ने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिक्षा-संस्थाओं का भी निर्माण किया था। उनकी दीवालों के ऊपर उनके नाम उत्कीर्ण किये जाते थे। फाहियान लिखता है कि भारतीय नागरिक अतिथि-प्रेमी थे। जब कोई अभ्यागत उनके द्वार पर पहुँचता था, उस समय लोग वस्त्र तथा भोजन आदि से उसका स्वागत करते थे।

उसके वर्णन से ज्ञात होता है कि चण्डालों की सामाजिक स्थिति काफी निम्न थी। उन्हें ग्राम एवं नगर के बाहर रहना पड़ता था। जब वे नगर के भीतर प्रवेश करते थे, उस समय लोगों की सूचना के निमित्त ढोल बजाते थे। वे मछली मारते, मृगया करते तथा मांस बेचते थे। वे श्मशान की रखवाली करते तथा शव के कफन को स्वीकार करते थे।

उत्सव—फाहियान के अनुसार भारतीय समाज उत्सवों का प्रेमी था। लोग रथयात्रा के उत्सव को पर्याप्त उत्साह के साथ मनाते थे। भारतवर्ष के प्रत्येक नगर के वैशाख की अष्ठमी को रथों का एक जलूस निकलता था। रथ चार पहिये के हुआ करते थे। उनकी ऊँचाई लगभग बीस हाथ होती थी। विभिन्न प्रकार की रँगाई के द्वारा उन्हें सुसज्जित किया जाता था। उनके ऊपर बहुमूल्य धातुओं से जटित मूर्तियाँ रखी जाती थीं। रथ के पीछे नागरिक ढोल बजाते, गाना गाते तथा विविध खुशियाँ मनाते हुये चलते थे। रथ-यात्रा के अवसर पर रात्रि में दीपोत्सव भी मनाया जाता था।

अन्य सूचनायें—फाहियान के अनुसार साम्राज्य के विभिन्न भागों में पुलिस का कड़ा पहरा था। उसे मार्ग में कहीं भी चोर तथा डाकुओं का सामना नहीं करना पड़ा था। उसके अनुसार भारतीय व्यापार उन्नत दशा में था। इस देश का वाणिज्य-संबन्ध सुदूर देशों के साथ था। उस समय के भारतीय बंदरगाह आयात एवं निर्यात के प्रतिष्ठित केन्द्र थे। सम्राट् ने प्रजा को धार्मिक सहिष्णुता प्रदान की थी। भारतीय नरेश विद्या के प्रेमी थे। उन्होंने आचार्यों का सम्मान किया तथा शिक्षालयों को अपरिमित द्रव्य दान में दिया था। तत्कालीन भारतीय मठों में बौद्ध ग्रन्थों का अनुशीलन किया जाता था।

पाओ-युन—उसने ३६७ ई० में अपनी भारतीय यात्रा आरम्भ की। मध्य एशिया जाते समय फाहियान के साथ उसकी भेंट हुई। वह उसके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साथ भारतवर्ष पहुँचा। उसने यहाँ संस्कृत का प्रचुर अध्ययन किया। वह भारतवर्ष से बौद्ध ग्रन्थों की कई प्रतिलिपियों को अपने साथ ले गया था। उसने अपनी भारतीय यात्रा का विवरण भी लिखा है, जो दुर्भाग्यवश अनुपलब्ध है।

चे-मोंग—उसने ४०४ ई० में चौदह मित्रों के साथ अपनी भारतीय यात्रा प्रारम्भ की। मध्य एशिया में कूची और खोतान का पर्यटन करने के उपरान्त वह पामीर होता हुआ काश्मीर आया। पामीर का रास्ता इतना खराब था कि उसके नव मित्र अधीर होकर वहाँ से स्वदेश वापस लौट गये। एक भारतीय भिक्षु, जो उनके साथ मार्ग-पर्यवेक्षण का कार्य कर रहा था, थकावट के कारण मृत्यु का शिकार हो गया। परिणामतः जब वह काश्मीर पहुँचा, उस समय उसके केवल चार मित्र अवशिष्ट रह गये थे। उसके उपरान्त उसने बौद्ध तीर्थों का पर्यटन किया। उसने ४२४ ई० में उसी मार्ग से चीन के लिये प्रस्थान किया। ४३६ ई० में मध्य एशिया में रुक कर उसने अपनी भारतीय यात्रा का विवरण लिखा। यह अभी तक अप्राप्त है।

फा-यंग—उसने ४२० ई० में अपनी भारतीय यात्रा प्रारम्भ की। वह तुर्फान, काशगर तथा पामीर होता हुआ काश्मीर आया। वह संस्कृत भाषा एवं बौद्ध ग्रन्थों के अनुशीलन के निमित्त वहाँ एक वर्ष तक रुका हुआ था। तदनंतर विभिन्न बौद्ध तीर्थों का पर्यटन करता हुआ वह ताम्रलिप्ति आया। वहाँ पर जहाज में बैठ कर वह स्वदेश वापस लौटा। उसका भारतीय यात्रा-विवरण अनुपलब्ध है। इस समय के अन्य चीनी यात्रियों में ताओ-पु, फा-शेंग, फा-वेइ, ताओ-यो तथा ताओ-ताई उल्लेखनीय हैं। ताओ-पु चीन के एक सम्राट् के द्वारा बौद्ध ग्रन्थों की खोज के निमित्त भारतवर्ष भेजा गया था। उसके साथ दस सहायक लेखक भी भारतवर्ष भेजे गये गये थे। दुर्भाग्यवश मार्ग में जहाज के टूट जाने के कारण यहाँ पहुँचने के पूर्व ये सभी मृत्यु को प्राप्त हुये। फा-शेंग ने अपनी भारतीय यात्रा का वर्णन किया था। यह अभी तक प्राप्त न हो सका है। ताओ-यो भारतवर्ष ४५१ ई० में आया हुआ था। उसने सांकाश्य तक विभिन्न भारतीय तीर्थों का पर्यटन किया था। उसका विवरण अप्राप्य है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हुयेनसांग—वह चीनी यात्रियों में सबसे प्रसिद्ध माना जाता है। उसने ६२९ ई० में चंगन से भारतवर्ष के लिये प्रस्थान किया। वह यहाँ सबसे पहले कपिशा पहुँचा। तत्पश्चात् काश्मीर, जलंधर, कुलूत, शतद्रु, पारयात्र, मथुरा, थानेश्वर, स्रुघ्न, मतिपुर, ब्रह्मपुत्र, सुवर्णगोत्र, गोविशान, अहिच्छत्र एवं सांकाश्य होता हुआ वह हर्ष की राजधानी कान्यकुब्ज पहुँचा। उसने इस नगर का रोचक वर्णन किया है। उसके अनुसार यह ३ मील लम्बा तथा १$\frac{1}{2}$ मील चौड़ा था। इसके चतुर्दिक मेखला एवं सुदृढ़ प्राकार विद्यमान थे। नगर के भीतर अनेक उपवन, वितान, सरोवर तथा अट्टालिकायें वर्तमान थीं। यहाँ की बाज़ारों में विक्रय के निमित्त सुदूर देशों से संख्यातीत भांड केन्द्रित किये गये थे। नागरिकों का चरित्र-संगठन उच्च कोटि का था। वे धनधान्य से संपन्न, सभ्य, सुसंस्कृत, साहित्य एवं शिक्षा के प्रेमी, धर्मनिष्ठ एवं सरल हृदय थे। नगर के विहारों में भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों का बाहुल्य था। स्थान-स्थान पर अनेक ब्राह्मण मन्दिर भी बने हुये थे। कान्यकुब्ज के पश्चात् वह अयोध्या, श्रावस्ती, कपिलवस्तु, रामग्राम, कुशीनगर प्रयाग, कौशाम्बी, वाराणसी, वैशाली, पाटलिपुत्र, मुंगेर, चंपा एवं कजंगल होता हुआ कामरूप पहुँचा। वहाँ के सम्राट भास्करवर्मा ने उसका पर्याप्त सम्मान किया। वह पुल्केशिन् के राज्य में भी आया हुआ था। उसने उसके राज्य के नागरिकों के उत्साह एवं वीरता की प्रशंसा की है।

शासन-पद्धति—उसने हर्ष की शासन-व्यवस्था का रोचक वर्णन किया है। उसके अनुसार वे अथक परिश्रमी थे। उनका दिन तीन भागों में विभक्त था, जिसमें एक भाग वे शासन-कार्यों में व्यतीत करते थे। शासन के मामलों में वे इतना अधिक व्यस्त रहते थे कि उन्हें दिन बहुत छोटा लगता था। अधिक कार्य-संलग्नता के कारण कभी-कभी वे भोजन और विश्राम भूल जाते थे।

हुयेनसांग के अनुसार हर्ष का शासन उदार था। राजकीय आवश्यकतायें अत्यल्प थीं। नागरिकों को पर्याप्त स्वतंत्रता प्राप्त थी। उनके व्यक्तिगत मामलों में सम्राट का कोई भी हस्तक्षेप नहीं था। लोगों से बेगार कम लिया जाता था। करों की संख्या कम थी। दण्डविधान साधारण था। अपराधियों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की संख्या कम थी। हुयेनसांग के विवरण से लगता है कि सामाजिक शिष्टाचार के विरुद्ध कार्य करने वाले अपराधियों को कड़ी सजा दी जाती थी। उसके अनुसार माता-पिता के साथ अनुचित व्यवहार करने पर अंग-भंग की सजा मिलती थी।

सामाजिक दशा—तत्कालीन समाज परंपरागत चार वर्गों में विभक्त था—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र। समाज में ब्राह्मणों का स्थान सबसे ऊँचा था। वे अपने शुद्धाचरण तथा सरल जीवन के कारण आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। हुयेनसांग ने क्षत्रियों की भी प्रशंसा की है। उसके अनुसार वे शुद्धाशय, उदार विचारों से युक्त तथा मितव्ययी थे। वैश्य अपने अतिथि-सत्कार एवं दानशीलता के कारण प्रसिद्ध थे। उन्होंने औषधालयों, दानगृहों एवं विश्रामालयों का निर्माण कराया था। शूद्रों की स्थिति समाज में निम्न थी।

हुयेनसांग के अनुसार मछुये, जल्लाद तथा नट आदि की गणना चण्डालों की कोटि में की जाती थी। वे अपने निवास-स्थान पर पहचान के लिये चिन्ह लगाते थे। उन्हें बस्ती के बाहर रहना पड़ता था। राजमार्गों पर वे बाईं ओर दबक कर चलते थे, ताकि उनसे कोई छू न जाय। हुयेनसांग का यह विवरण बाणभट्ट के विवरण से मिलता है। उसने कादम्बरी में चण्डालों को अस्पृश्य कहा है। उसने एक परम सुन्दरी चण्डाल-कन्या के विषय में लिखा है कि वह न दिखाई देने वाली वस्तु के समान स्पर्श-वर्जिता तथा चित्रलिखित वस्तु के समान दर्शनमात्र का फल थी (**अमूर्तामिव स्पर्शवर्जितामालेख्यगतामिव दर्शनमात्रफलाम्—कादम्बरी**)। जब उस सुन्दरी ने विदिशा के सम्राट् शूद्रक के दरबार में प्रवेश किया, उस समय उसने दरबारियों को अपने आगमन की सूचना प्रदान करने के लिये सभा की फर्श पर बारंबार प्रहार किया था (**प्रविश्य च सा वेणुलता-मादाय नरपतिप्रबोधनार्थं संस्कृतसभाकुट्टिमाजघान्-कादम्बरी**)। कादम्बरी से भी ज्ञात होता है कि चण्डालों के रहने का ढंग गर्हित तथा घृणित था।

हुयेनसांग के अनुसार उस समय अन्तर्जातीय विवाह भी हुआ करते थे। लोगों की वेशभूषा साधारण थी। उत्तरीय एवं अधोवस्त्र दर्जी के सिले

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुये नहीं होते थे। सफेद रंग सबसे अधिक पसंद किया जाता था। विभिन्न रंग के कपड़े का कोई सम्मान नहीं था। पुरुष वर्ग कमर के चारों ओर बगल तक एक लंबा किंतु कम चौड़ा कपड़ा लपेटता था तथा दाहिने कंधे को खुला छोड़ देता था। भोजन में स्वच्छता पर अधिक ध्यान दिया जाता था। भोजन करने के पूर्व लोग अपने हाथ, पैर और मुँह को भली भाँति धोते थे। उच्छिष्ट एवं अवशिष्ट अखाद्य समझा जाता था। मिट्टी एवं काठ के बर्तनों का केवल एक ही बार प्रयोग किया जाता था। लोग धातु के बर्तनों को भली भाँति स्वच्छ कर उन्हें प्रयोग में लाते थे। उसके अनुसार भारतीय नागरिकों का चरित्रसंगठन उच्च कोटि का था। वे पाप से डरते तथा चोरी एवं धोखा आदि से बचने की चेष्टा करते थे।

सार्वजनिक कार्य—हुयेनसांग लिखता है कि हर्ष सार्वजनिक कार्यों में व्यस्त रहते थे। उसके अनुसार राजकीय भूमि के चार भाग थे। एक भाग की आय के द्वारा राज्य की ओर से की जाने वाली पूजा, उपासना तथा सरकारी कामों का व्यय चलाया जाता था। दूसरे भाग से बड़े सार्वजनिक कर्मचारियों की धनसंबन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती थी। तीसरे भाग की आय से प्रकांड विद्वानों को पुरस्कार तथा चौथे भाग की आमदनी से पुण्यार्जन के निमित्त विभिन्न संप्रदायों को दान दिया जाता था।

शिक्षा—हुयेनसांग के अनुसार उस समय नालंदा का विश्वविद्यालय शिक्षा का सबसे महत्त्वपूर्ण केन्द्र था। यहाँ विद्यार्थियों को निःशुल्क भोजन, वस्त्र तथा शिक्षा दी जाती थी। इसकी आर्थिक सहायता के लिये भारतीय नरेशों ने दो सौ ग्राम दान में दिये थे। इस विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों की संख्या दस हजार थी।

इस विश्वविद्यालय को लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् सुशोभित करते थे। धर्मपाल तथा तदुपरान्त उनके शिष्य शीलभद्र ने यहाँ अध्यक्ष-पद पर कार्य किया था। चन्द्रपाल बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों के प्रवर्तन, गुणमति एवं स्थिरमति यशस्विता, प्रभामति बुद्धि की कुशाग्रता तथा जिनमित्र वादविवाद की श्रेष्ठता के कारण प्रख्यात थे। अध्यापन-कार्य के अतिरिक्त इन आचार्यों की कीर्ति विविध ग्रंथों की रचना के कारण भी सर्वव्यापिनी थी। नालंदा के प्रसिद्ध विद्वानों के नाम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नवागंतुकों तथा अभ्यागतों की सूचना के निमित्त विश्वविद्यालय के प्रधान द्वार पर उत्कीर्ण किये गये थे।

यहाँ के आचार्य तथा विद्यार्थी नियमों एवं सिद्धान्तों के पालन के लिये सुप्रसिद्ध थे। इसकी ख्याति से आकर्षित होने के कारण विदेशों से भी विद्यार्थी यहाँ अध्ययन के निमित्त आते थे। हुयेनसांग के अनुसार नालंदा के विश्वविद्यालय में प्रवेश पाना दुष्कर था। इसके प्रधान द्वारों पर पंडितों की नियुक्ति की गई थी। वे प्रवेश चाहने वाले विद्यार्थियों की योग्यता तथा प्रतिभा की परीक्षा लेने के लिये उनसे दार्शनिक विषयों तथा जटिल समस्याओं पर कठिन प्रश्न पूछते थे। समुचित उत्तर देने के उपरान्त ही उन्हें विश्वविद्यालय में प्रवेश के लिये आज्ञा मिलती थी। बीस प्रतिशत विद्यार्थी बड़ी कठिनता के साथ इस परीक्षा में सफलता प्राप्त कर पाते थे।

इस विश्वविद्यालय में वादविवाद एवं विमर्श के द्वारा पठन-पाठन होता था। हुयेनसांग के अनुसार यहाँ के आचार्य एवं विद्यार्थी अपने कार्य में इतना संलग्न रहते थे कि उन्हें दिन बहुत छोटा प्रतीत होता था। नालंदा में पाठ्यक्रम उच्च श्रेणी का था। वहाँ बौद्ध साहित्य के अतिरिक्त ब्राह्मण ग्रंथों का भी पठन-पाठन निरंतर हुआ करता था। वेद, हेतुविद्या, शब्दविद्या, चिकित्साशास्त्र, योगशास्त्र, न्याय, कोष, विभाषा तथा अर्थविद्या की यहाँ शिक्षा दी जाती थी। इन विषयों के अध्ययन के लिये बाहर से जो विद्यार्थी आते थे, वे नालंदा के प्रवीण विद्वानों से अपनी शंकाओं का समाधान कराते थे।

शिक्षाकार्य की सरलता के लिये नालंदा में एक वृहद् पुस्तकालय भी था। इसमें विविध विषयों के ग्रंथ एकत्र थे। इन ग्रंथों की प्रतिलिपि करने के लिये चीनी विद्यार्थी वहाँ आते थे। कभी कभी इस कार्य के निमित्त तिब्बत के विद्यार्थी भी नालंदा आया करते थे। आर्थिक दृष्टि से यह विश्वविद्यालय पर्याप्त रूप में समृद्ध था।

धार्मिक विश्वास—हुयेनसांग के अनुसार हर्ष के समय में विभिन्न धर्मों का विकास स्वाभाविक रूप में हो रहा था। वह लिखता है कि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाराणसी में शैवमतावलंबी रहते थे। इनमें से कुछ लोग शिर को मुंडित कराते तथा कुछ लंबे केशों को समेट कर जटाजूट बाँधते थे। कुछ लोग नंगे रहते तथा कुछ शरीर पर भस्म लगाते थे। वे पूजा, व्रत तथा नियम में संलग्न रहते थे। निर्वाण प्राप्त करना उनका प्रधान लक्ष्य था। हुयेनसांग के वर्णन से ज्ञात होता है कि लोग प्रयाग में आत्महत्या करते थे। कुछ लोग वट-वृक्ष की चोटी से कूद कर प्राणोत्सर्ग करते थे। उसके नीचे हड्डियाँ बिखरी हुई थीं। पुराणों में भी वट-वृक्ष से कूद कर आत्महत्या का उल्लेख मिलता है—

"वटमूलं समाश्रित्य यस्तु प्राणान्परित्यजेत्।
सर्वलोकानतिक्रम्य रुद्रलोकं स गच्छति॥"

(कूर्म पुराण, अध्याय ३६)

"प्रयागवटशाखाग्रात् पत्तनं च करोति यः।
महापापक्रियः स्वर्गे दिव्यान् भोगान्समश्नुते॥"

(ब्रह्म पुराण, अध्याय ·८)

हुयेनसांग के यात्रा-विवरण में संगम के जल में डूब कर मरने का उल्लेख मिलता है। पुराणों से ज्ञात होता है कि उसका यह कथन असत्य नहीं है—

"जलप्रवेशं यः कुर्यात्संगमे लोकविश्रुते।
राहुग्रस्तो यथा सोमो विमुक्तः सर्वपातकैः॥"

(कूर्म पुराण, अध्याय ३६)

"सितासितेसरिच्छ्लेष्टे तत्रास्तासुरदुर्लभे।
यत्राल्पुतः नरः पापः परब्रह्माधिगच्छति॥"

(विष्णुधर्मोत्तर महापुराण, अध्याय ८३)

हुयेनसांग के अनुसार लोग कायाक्लेश के द्वारा भी प्रयाग में प्राणत्याग करते थे। वह लिखता है कि कुछ लोग संगम की भूमि पर ऊँचे लट्ठे गाड़ते थे। उनकी चोटी पर चढ़कर वे सूर्य को निरंतर देखते रहते थे। सूर्यास्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के पश्चात् वे नीचे उतर आते थे तथा दूसरे दिन पुनः उसी क्रिया को प्रारंभ करते थे। इस कठोर तपश्चर्या के द्वारा क्रमशः आत्मघात कर लेने में लोगों की असीम निष्ठा थी।

पंचवर्षीय दान-वितरण—हुयेनसांग लिखता है कि हर्ष अपने शासन-काल के प्रत्येक पाँचवें वर्ष प्रयाग दान-वितरण के निमित्त आते थे। उनके अंतिम दान-वितरण के अवसर पर वह भी प्रयाग में उपस्थित था। वह लिखता है कि राजाज्ञा का पालन कर श्रमण, ब्राह्मण, निर्ग्रन्थ, निर्धन तथा अनाथ दान-ग्रहण के निमित्त प्रयाग में एकत्र हुये। वहाँ संगम पर एक वर्गाकार हाता बनवाया गया, जो हजार फीट लम्बा तथा हजार फीट चौड़ा था। बीच-बीच में छोटी झोपड़ियाँ बनी थीं; जिनके अंदर सोना, चाँदी, इन्द्रनील तथा महानील सदृश सुन्दर मोती आदि बहुमूल्य कोष एकत्र थे। रेशमी एवं सूती वस्त्र तथा सोने एवं चाँदी के सिक्के भांडागारों में सुरक्षित थे। हर्ष एक महीने तक इन वस्तुओं का दान करते रहे। जब कोष रिक्त हुआ, तभी उन्होंने दानवितरण की क्रिया समाप्त की।

कान्यकुब्ज की धार्मिक सभा—हुयेनसांग के अनुसार हर्ष ने कान्य-कुब्ज में एक विशाल धार्मिक सभा का आयोजन किया था। इसका उद्देश्य महायान धर्म की विशेषताओं का प्रतिपादन था। नियत तिथि पर राजाज्ञा के अनुसार भारतवर्ष के प्रत्येक भाग से विभिन्न धर्मों के अनुयायी प्रभूत संख्या में एकत्र हुये। लोगों के बैठने के निमित्त एक विशाल सभा-भवन का निर्माण किया गया था। सभा प्रारंभ होने के पूर्व गौतम बुद्ध के सम्मान में एक विशाल जलूस निकाला गया। हाथी की पीठ पर उनकी तीन फीट ऊँची एक प्रतिमा रखी हुई थी। इस जलूस में हर्ष के सभी सामंत सम्मिलित थे। वलभीनरेश ध्रुवसेन द्वितीय तथा कामरूप-नरेश भास्करवर्मा भी इस अवसर पर उपस्थित थे। नगर के प्रत्येक भाग में घूम लेने के अनन्तर जलूस सभा-भवन की ओर वापस लौटा। इस सभा का अध्यक्ष हुयेनसांग चुना गया। वादविवाद की शर्तों के अनुसार यदि कोई भी व्यक्ति महायान धर्म में एक भी बात तर्क-विरुद्ध सिद्ध कर देता, तो हुयेनसांग अपनी हार स्वीकार कर लेता। १८ दिन बीत गये पर किसी को भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महायान धर्म के विरुद्ध कुछ कहने का साहस नहीं हुआ। परिणामतः हुयेनसांग विजयी घोषित किया गया तथा महायान धर्म को सर्वश्रेष्ठ धर्म स्वीकार कर लिया गया। अंत में हुयेनसांग ने इस धर्म की विशेषताओं की पर्याप्त प्रशंसा की। उसके वर्णन से लगता है कि उस समय साम्प्रदायिक शत्रुता काफी अधिक थी। ब्राह्मणों ने हर्ष एवं हुयेनसांग की हत्या के लिये षडयंत्र रचा। पर वे सभी पकड़े गये तथा उन्हें देशनिष्कासन का दंड दिया गया।

लि-यि-पियाओ—हर्ष ने चीन-सम्राट् के पास अपना एक राजदूत भेजा था। उसने बदले में हर्ष के पास लि-यि-पियाओ नामक चीनी दूत भेजा। उसने ६४३ ई० में अपनी भारतीय यात्रा प्रारंभ की। उसने विभिन्न बौद्ध तीर्थों का पर्यटन किया था। ६४७ ई० में वह चीन लौट आया।

वंग-हुयेन-त्सो—वह भारतवर्ष कई बार आया था। पहली बार वह लि-यि-पियाओ के साथ यहाँ आया था। दूसरी बार वह ६४७ ई० में भारतवर्ष भेजा गया था। जिस समय वह कान्यकुब्ज पहुँचा, उसके पूर्व हर्ष की मृत्यु हो चुकी थी। वह लिखता है कि हर्ष के मंत्री ने उसके राज्य को छीन लिया था। उसने वंग-हुयेन-त्सो को मार डालने की योजना बनाई। पर इसकी कार्यान्विति के पूर्व वह नेपाल भाग आया। वहाँ का शासक चीन का मित्र था। उसकी सहायता से वह स्वदेश वापस लौटा। ६५७ ई० में वह तीसरी बार एक भारतीय तांत्रिक को भारतवर्ष पहुँचाने आया था। उसको किसी भारतीय नरेश ने चीन-सम्राट् के पास भेजा था। वह चीन के लोगों को अपने ज्ञान एवं चमत्कार के द्वारा प्रभावित करने में पर्याप्त रूप में सफलीभूत हुआ। ६६४ ई० में हुयेन-चाओ नामक चीनी भिक्षु को स्वदेश वापस लाने के निमित्त वंग-हुयेन-त्सो भारतवर्ष पुनः भेजा गया। यह उसकी चौथी भारतीय यात्रा थी। वह इसको लेकर नेपाल एवं तिब्बत होता हुआ चीन लौट आया। वंग-हुयेन-त्सो का विवरण नष्ट हो चुका है। इसके कुछ अंश उद्धरण के रूप में अन्य रचनाओं में उपलब्ध हुये हैं। ये प्राप्त अंश भारत एवं चीन के सम्बन्ध को समझने में उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

इत्सिंग—हुयेनसांग के उपरांत इत्सिंग ही चीन का सबसे बड़ा बौद्ध

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विद्वान् था।[1] उसने ६७१ ई० में अपनी भारतीय यात्रा प्रारंभ की। वह जल-मार्ग के द्वारा श्रीविजय आया। उस समय शैलेन्द्र राजाओं के संरक्षण में वहाँ भारतीय अनुशीलन का विस्तृत प्रचार था। वहाँ कुछ समय तक रुक कर उसने बौद्ध ग्रंथों का अध्ययन किया। तदनन्तर ताम्रलिप्ति, राजगृह, वैशाली, कुशीनगर तथा सारनाथ आदि का भ्रमण कर लेने के उपरांत वह नालंदा आया। वहाँ पर उसने दस वर्षों तक रुक कर बौद्ध ग्रंथों की प्रतिलिपियों को प्रस्तुत किया। ६९५ ई० में उसने अपने साथ ४०० संस्कृत के ग्रंथों की प्रतिलिपियों को लेकर स्वदेश प्रस्थान किया था। वह लिखता है कि नालंदा के विश्वविद्यालय के भवन गगनचुम्बी थे। नालंदा से प्राप्त एक ताम्रलेख में भी इस विद्यालय के भवनों को गगनस्पर्शी कहा गया है—

"यस्याम्बुधरावलेहिशिखरश्रेणीविहारावली।
मालेवोर्ध्वविराजिनी विरचिता धात्रा मनोज्ञा भुवः॥"

इत्सिंग ने चीनी भिक्षुओं को संस्कृत समझने में सहायता प्रदान करने के लिये एक शब्दकोष का संकलन किया था।

चीनी सभ्यता को भारतवर्ष की देन

बौद्ध साहित्य—बौद्ध साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण भाग अपने अनूदित रूप में लंका, वर्मा, स्याम, नेपाल तथा चीन आदि देशों से प्राप्त हुआ है। चीन में बौद्ध साहित्य के अनुवाद की वास्तविक महत्त्वपूर्ण परंपरा कुमारजीव ने स्थापित की थी। वह संस्कृत, पाली तथा चीनी भाषाओं का मर्मज्ञ था। इस कारण उसके अनूदित ग्रंथ पर्याप्त अंशों में प्रामाणिक थे। इनके अध्ययन के कारण चीनी विद्वानों की अभिरुचि बौद्ध धर्म में जागृत हो उठी। अतएव उन लोगों ने स्वयं बौद्ध ग्रंथों का अनुवाद करना प्रारंभ किया। यह चीन में बौद्ध साहित्य के अनुवाद का द्वितीय काल था। इन चीनी विद्वानों ने वहाँ पर भारतवर्ष से आये हुये विद्वानों की सहायता से संस्कृत एवं पाली भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। चीन में बौद्ध साहित्य के अनुवाद

१. "Next to Hiuan Tsang, he was the greatest Buddhist scholar in China." —P. C. Bagchi.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का तृतीय काल हुयेनसांग का इस क्षेत्र में अवतरण था। उसने लगभग ७५ भारतीय ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। वह संस्कृत का एक प्रकांड विद्वान् था। बौद्ध दर्शन में उसकी गति सुविशेष थी। उसने अपने देश के निवासियों को बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का ठीक ज्ञान देने के निमित्त चेष्टा की। इसी समय यहाँ पर प्रसिद्ध भारतीय विद्वान् प्रभाकरमित्र के पर्यवेक्षण में भी बौद्ध ग्रंथों का अनुवाद हो रहा था। वह नालंदा के विश्वविद्यालय का प्रसिद्ध आचार्य था। तत्कालीन चीन-सम्राट ने उसके विश्राम के लिये चंगन में व्यवस्था की थी।

महायान ग्रंथ—चीनी भाषा में अनूदित महायान साहित्य तीन वर्गों में विभाजित है—(१) विनयपिटक, (२) सूत्रपिटक तथा (३) शास्त्र। विनयपिटक में सबसे प्रसिद्ध बोधिसत्वचर्यानिर्देश तथा बोधिसत्वप्रातिमोक्ष थे। बोधिसत्वचर्यानिर्देश का चीन में दो बार अनुवाद किया गया था। पहली बार ४२१ ई० में धर्मक्षेत्र ने इसका चीनी रूपान्तर प्रस्तुत किया था। तदनन्तर गुणवर्मा ने ४३१ ई० में इसका द्वितीय अनुवाद किया था। इसी प्रकार बोधिसत्वप्रातिमोक्ष का भी दो बार चीनी रूपान्तर प्रस्तुत किया गया। इसका प्रथम अनुवाद धर्मक्षेत्र के द्वारा संपन्न किया गया था। कुमारजीव ने ४०६ ई० में ब्रह्मजालसूत्र का चीनी रूपान्तर किया। इसकी गणना भी विनयपिटक साहित्य में की जाती है।

चीन का महायानसूत्रपिटक साहित्य पाँच वर्गों में विभाजित था—(१) प्रज्ञापारमिता, (२) रत्नकूट, (३) महासन्निपात, (४) अवसंतक तथा (५) निर्वाण। 'प्रज्ञापारमिता' 'प्रज्ञापारमितासूत्र' के विभिन्न भागों का चीनी अनुवाद है; उदाहरणार्थ शतसाहस्रिका, प्रज्ञापारमिता, पंचविंशतिसाहस्रिका, दशसाहस्रिका, पंचशतिका तथा सप्तशतिका। चीन में इनका अनुवाद ४२२ ई० तथा ६५६ ई० के बीच किया गया था। रत्नकूट वर्ग के संग्रह में सबसे प्रसिद्ध महारत्नकूटसूत्र तथा सुखावतीव्यूहसूत्र हैं। सुखावतीव्यूहसूत्र का चीन में बारह बार अनुवाद किया गया था। प्रथम अनुवाद १४८ ई० में प्रस्तुत हुआ था। महासन्निपात वर्ग के संकलन में चन्द्रगर्भसूत्र, सूर्यगर्भसूत्र तथा क्षितिगर्भसूत्र सम्मिलित थे। अवसंतक वर्ग के संकलन में सबसे प्रसिद्ध

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बोधिसत्वतंशक-महावैपुल्यसूत्र था। इसका अनुवाद काश्मीर के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् बुद्धभद्र के द्वारा किया गया था। निर्वाण वर्ग के संग्रह में सबसे प्रसिद्ध महापरिनिर्वाणसूत्र था। धर्मक्षेत्र ने इसका अनुवाद ४२३ ई० में किया था। चीन के महायान शास्त्रसाहित्य में सबसे प्रसिद्ध महाप्रज्ञापारमिता-सूत्र-शास्त्र था। इसके मूल लेखक नागार्जुन थे। यह संस्कृत के एक लक्ष श्लोकों में लिखा गया था। यह अपने मूल रूप में अप्राप्य है। इसका केवल चीनी रूपान्तर ही उपलब्ध है।

हीनयान ग्रंथ—चीन का अनूदित हीनयान साहित्य तीन वर्गों में उपलब्ध हुआ है—(१) विनयपिटक, (२) सूत्रपिटक तथा (३) अभिधर्म-पिटक। चीनी भाषा में पाँच विभिन्न विनयपिटकों के अनुवाद मिलते हैं। इनका मूल रूप अनुपलब्ध है। (१) महासंघिक संप्रदाय का विनयपिटक—इसमें ३४ अध्याय हैं। फाहियान मूल ग्रंथ को अपने साथ भारतवर्ष से चीन ले आया था। उसने ४२४ ई० में बुद्धभद्र नामक विद्वान् की सहायता से इसका चीनी भाषा में अनुवाद किया था। (२) सर्वास्तिवाद संप्रदाय का विनयपिटक—इसमें ६१ अध्याय मिलते हैं। कुमारजीव एवं पुण्यत्रात ने ४०४ ई० में इसका चीनी भाषा में अनुवाद किया था। (३) धर्मगुप्तक संप्रदाय का विनयपिटक—इसमें ६० अध्याय मिलते हैं। इसका अनुवाद काश्मीर के प्रसिद्ध विद्वान् बुद्धयशस् ने ४०५ ई० में किया था। (४) महा-शासक संप्रदाय का विनयपिटक—इसमें ३० अध्याय मिलते हैं। काश्मीर के विद्वान् बुद्धजीव ने इसका अनुवाद ४२३ ई० में किया था। (५) मूलसर्वा-स्तिवाद का विनयपिटक—इत्सिंग ने इसका अनुवाद सातवीं शताब्दी में किया था।

भारतीय पाली सूत्रपिटक पाँच भागों में विभक्त है—(१) दीघ (दीर्घ), (२) मज्झिम (मध्यम), (३) संयुत्त (संयुक्त), (४) अंगुत्तर (अंगूत्र) तथा (५) खुद्दक (क्षूद्रक)। चीन में इनमें से केवल प्रथम चार भागों का अनुवाद किया गया था। चीनी अनुवाद में अंगुत्तर के स्थान पर एकोत्तर नाम आता है। काश्मीर के एक बौद्ध भिक्षु ने ४१३ ई० में दीघ का चीनी अनुवाद किया था। मध्यम का अनुवाद काश्मीर के विद्वान् गौतमसंघदेव

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के द्वारा ३६८ ई० में संपादित किया गया था। गुणभद्र (जो काश्मीर से चीन गया था) ने ४२७ ई० में संयुक्त का अनुवाद किया था। एकोत्तर का अनुवाद धर्मनन्दि के द्वारा ३८२ ई० में किया गया था। चीन में अभिधर्मसाहित्य का भी अनुवाद प्रस्तुत किया गया था। काश्मीर के विद्वान् गौतमसंघदेव ने ३८४ ई० में ज्ञानप्रस्थानशास्त्र का अनुवाद किया था। हुयेनसांग ने ६५१ ई० तथा ६६० ई० के बीच अभिधर्मसंबन्धी ६ भारतीय ग्रंथों का अनुवाद किया था; उदाहरणार्थ संगातिपर्याय, धातुकायपाद, प्रज्ञाप्तिसारपाद, धर्मस्कन्ध, विज्ञानकायपाद तथा प्रकरणपाद।

ज्योतिषशास्त्र एवं नक्षत्रविद्या—इन दोनों क्षेत्रों में चीन के निवासी भारतीय ज्ञान से प्रभावित हुये थे। तंग-काल में कैलेंडर-निर्माण के निमित्त भारतीय विद्वान् नियुक्त किये गये थे। सातवीं शताब्दी में चंगन में नक्षत्र-विद्या के अध्ययनार्थ तीन गृह बने हुये थे—(१) गौतमगृह (२) काश्यपगृह तथा (३) कुमारगृह। ७१८ ई० में एक भारतीय विद्वान् ने चीन-सम्राट को एक भारतीय कैलेंडर समर्पित किया था। चीन के प्राचीन ग्रंथों में इसका उल्लेख क्यू-चे-लि (नवग्रह-सिद्धान्त) नाम से किया गया है। सुङ वंश के काल में चीन में भारतीय ज्योतिष-ग्रंथों का अनुवाद किया गया था। ये अनूदित ग्रंथ अनुपलब्ध हैं। तंग-सम्राटों के दरबार में भारतीय ज्योतिषी विद्यमान थे। चीन के लोग भी विश्वास करने लगे थे कि मनुष्य के जीवन पर नक्षत्रों की स्थिति का प्रभाव पड़ता है। चीन के एक प्राचीन ग्रंथ में भारतीय ज्योतिष-शास्त्र की ओर संकेत करते हुये कहा गया है कि "सूर्य एवं चंद्र तथा पाँच अन्य नक्षत्र मनुष्य के भाग्य को निर्धारित करते हैं। प्रतिदिन वे एक दूसरे को स्थानांतरित करते हैं। सात दिनों के पश्चात् चक्र पूर्ण हो जाता है। उसके उपरांत यह क्रम पुनः प्रारंभ होता है। नक्षत्रों का स्थान महत्त्व-पूर्ण है। उनमें से प्रत्येक का मनुष्य की दैनिक चेष्टाओं पर अनुकूल एवं प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यदि किसी को नक्षत्रों के विषय में विशेष ज्ञान प्राप्त करना हो, तो वह पंच भारत के निवासियों से इसे सीखने की चेष्टा करे।"

चिकित्साशास्त्र—चीन में चिकित्साशास्त्र-सम्बन्धी ग्रंथों का भी अनुवाद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया गया था। उदाहरणार्थ रावणकुमारतंत्र नामक भारतीय ग्रंथ का वहाँ अनुवाद प्रस्तुत किया गया। इसमें बच्चों के रोगसम्बन्धी निदान का उल्लेख मिलता है। चीन में काश्यपसंहिता का भी अनुवाद किया गया। इसमें स्त्री-रोगों के निदान का वर्णन प्राप्त होता है। कुछ भारतीय चिकित्सा-संबन्धी ग्रंथ इस देश के निवासियों द्वारा मध्य एशिया लाये गये थे। किंग-शेंग नामक चीनी यात्री इन्हें अपने साथ मध्य एशिया से चीन ले गया था। चीन के सम्राट भारतवर्ष से तांत्रिक योगियों को अपने दरबार में बुलाते थे। वे जादूमंत्र के द्वारा रोग को ठीक करते थे।

कला—चीनी कला के इतिहास में बौद्ध धर्म ने युगान्तर का प्रवर्तन किया था।[१] चीनी यात्री अपने साथ भारतीय स्थापत्य की कुछ प्रतिकृतियों को स्वदेश ले गये थे। फाहियान ने ताम्रलिप्ति में दो वर्ष रुक कर चीन ले जाने के निमित्त बौद्ध प्रतिमाओं का चित्र प्रस्तुत किया था। हुयेनसांग अपने साथ भारतीय कला के कुछ दृष्टान्तों को लेकर स्वदेश लौटा था; उदाहरणार्थ ३ फीट ऊँची बुद्ध की एक सुवर्ण-प्रतिमा, ३ फीट ५ इंच ऊँची बुद्ध की चन्दन की लकड़ी की एक मूर्ति तथा ३ फीट ५ इंच ऊँची बुद्ध की एक रजत्-प्रतिमा। हुइ-लुन अपने साथ नालंदा के विश्वविद्यालय की एक प्रतिकृति चीन ले गया था। वांग-हुअन-त्सो बोधिगया की बुद्ध-प्रतिमा का एक खाका चीन ले आया था।

चीन में बौद्ध स्थाप्रत्य के तीन केन्द्र थे—तुन-हुअंग, युन-कंग तथा लांग-मेन। तुन-हुअंग में बौद्ध गुफाओं के आदर्श पर गुफायें बनाई गईं थीं। युन-कंग में कुल २८ गुफायें विभिन्न कालों में निर्मित की गईं। इन गुफाओं के भीतर अजंता के गुफा-मन्दिरों की भाँति बौद्ध मन्दिर मिलते हैं। इनकी भीतरी दीवालों पर गौतम बुद्ध एवं बोधिसत्वों की प्रतिमायें अंकित की गई हैं। इसे हम महायान धर्म का प्रभाव मान सकते हैं। लांग-मेन की गुफाओं में भी बौद्ध स्थापत्य के नमूने उपलब्ध होते हैं। इनकी भीतरी एवं बाहरी दीवालों पर गौतम बुद्ध, उनके शिष्यों एवं बोधिसत्वों की प्रतिमायें

१. "Buddhism gave a new vigour to the development of art in China." —P. C. Bagchi.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अंकित की गई हैं। यहाँ की कला के ऊपर गंधार कला का प्रभाव दृष्टि-गोचर होता है।

भारतीय अनुकरण पर चीन में शिखरयुक्त मन्दिर बनाने गये थे। ५१६ ई० में इस प्रकार का एक मन्दिर लोयंग में विद्यमान था। इसके स्तंभों पर मूर्तियाँ अंकित की गई थीं। इनके ऊपर कलश की आकृति प्रदर्शित की गई थी। चीन में भारतीय आदर्श पर स्तूपों का भी निर्माण किया गया था। वहाँ चट्टानों को काट कर स्तूप बनाये गये थे।

भारतीय चित्रकला ने भी चीनी कला को प्रभावित किया था। वेइ-काल में भारतवर्ष के कुछ चित्रकार चीन में विद्यमान थे, उदाहरणार्थ शाक्यबुद्ध, बुद्धकीर्ति तथा कुमारबोधि। भारतवर्ष में चित्रकला के छह अंग माने जाते थे—(१) रूप (आकृतिज्ञान), (२) प्रमाण (अनुपातज्ञान), (३) भाव (विचार), (४) लावण्ययोजन (सौन्दर्य-सन्निवेश), (५) सादृश्य (तद्रूपता) तथा (६) वर्णिकाभंग (चित्रकला के उपकरणों का ठीक ज्ञान)। इसके आधार पर चीन में भी चित्रकला के छह अंग माने जाते थे। सि-हो ने चीनी चित्रकला के छह सिद्धान्तों का उल्लेख किया है।

संगीत—चीन के सम्राट संगीत के प्रेमी थे। वे बाहरी देशों के संगीत-कारों को अपने देश में आमंत्रित करते थे। ५८१ ई० में एक राजकीय उत्सव में भारतवर्ष, कुचार, बोखारा, समरकंद तथा काशगर से संगीतज्ञ चीन आमंत्रित किये गये थे। चीन में संगीत का प्रचार मध्य एशिया के माध्यम से हुआ। वहाँ कुचार में एक ब्राह्मण (उपाध्याय) परिवार रहता था। इसके सदस्य संगीत के प्रेमी थे। इस परिवार का एक व्यक्ति ५५० ई० में चीन आमन्त्रित किया गया था। छठी शताब्दी में चीन में भारतीय संगीत का प्रचार था। काओत्सु (५८१ ई०-५९५ ई०) ने चीन में भारतीय संगीत के प्रचार को रोकने के लिये अपनी एक आज्ञा के अनुसार इसे अवैध घोषित कर दिया। तथापि वहाँ इसे लोग बड़ी अभिरुचि के साथ सीखते थे। ५७८ ई० में सुजीव नामक भारतीय संगीतज्ञ चीन आमंत्रित किया गया था। तंग-लेखों के अनुसार भारतीय संगीतज्ञ काली टोपी तथा सिल्क का वस्त्र पहनते थे। चीन में भारतीय सप्त स्वर के आधार पर संगीत के सात स्वर माने जाते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बोधि नामक एक भारतीय संगीतज्ञ चीन होता हुआ जापान गया था। वहाँ उसने बैरो (भैरव) राग का प्रचार किया। चीन के प्राचीन लेखक भरत (पन-लंग-तो) के नाम से परिचित थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय १२

हूण

मूलस्थान एवं प्रसरण—हूण मध्य एशिया की एक खानाबदोश बर्बर जाति थी। वे बड़े ही नृशंस एवं आततायी थे। किञ्चित् कारणों से इन्होंने मूल स्थान को छोड़ कर पश्चिम की ओर बढ़ना प्रारम्भ किया। ये लोग क्रमशः दो शाखाओं में विभक्त हो गये :—(१) पश्चिमी शाखा तथा (२) पूर्वी शाखा। पश्चिमी शाखा के हूण फैलते हुये यूरोप तक बढ़ आये। उनकी ध्वंसात्मक कृतियों के फलस्वरूप रोम-साम्राज्य को काफी धक्का पहुँचा। पूर्वी शाखा के हूण क्रमशः आगे बढ़ते हुये आक्सस नदी के तट पर बस गये। यूनानी लेखकों ने पूर्वी शाखा के हूण को श्वेत हूण कहा है। इन्हीं को इतिहास के पृष्ठों में 'एफ्थलाइट' भी कहा जाता है।

पश्चिमी शाखा के हूण—पाश्चात्य प्राचीन लेखकों के अनुसार वे छोटे कद पर भयावह आकृति के थे। उनकी घूरती आँखें मज़बूत दिल में भी कम्पन उत्पन्न कर देती थीं। वे छोटी दाढ़ी रखते थे और उनकी आदतें प्रायः गन्दी ही थीं। वे अपना अधिकांश समय घोड़े की पीठ पर ही बिता दिया करते थे। अपने अश्वों को तीव्र गति से भगाते हुये वे शत्रुसेना को सुगमता के साथ चीर कर आगे निकल जाते थे। उनकी तेज़ी और फुर्ती उनके विपक्षियों को चमत्कृत कर देती थी। उन्होंने ३७४ ई० में अलन जाति के लोगों को परास्त कर दिया। ये उत्तरी काकेशस के समीप रहते थे तथा इनमें जर्मन एवं ईरानी रक्त का सम्मिश्रण था। इसके पश्चात् उनका संघर्ष पूर्वी गोथ के साथ हुआ। वे डान तथा नियेपर नदियों के दोआबे में रहते थे। यद्यपि उन्होंने बहादुरी के साथ इनका सामना किया, पर वे अन्ततो-गत्वा असफल सिद्ध हुये एवं उनके सम्राट ने अपने सतत् पराजयों के फलस्वरूप आत्महत्या कर ली। तदुपरान्त उन्होंने पश्चिमी गोथ जाति को भी हरा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिया। वे अपनी सुरक्षा के हेतु अपना स्थान छोड़ कर डैन्यूब नदी की ओर हट आये। कालान्तर में हूण-प्रभाव बढ़ने पर उन्हें यह प्रदेश भी छोड़ देना पड़ा। गोथ जाति के लगभग दो लाख व्यक्तियों ने तत्कालीन रोम-सम्राट (वलेन) से शरणयाचना की। इनमें से अधिकांश ईसाई मत को मानते थे। उल्फिलाज़ नामक विशप की मध्यस्थता के फलस्वरूप इन्हें रोम-साम्राज्य में बसने के लिये स्थान तो मिल गया, पर रोम-सम्राट ने इनके सामने जो शर्तें रखीं उनके अनुसार इन्हें अपने शस्त्र समर्पित कर देने पड़े। कहा जाता है कि रोम के कर्मचारियों ने इनकी विवशता का लाभ उठा कर कुछ समय तक इनके साथ पाशविक बर्ताव किया। उनमें से कुछ ने प्रभावशाली एवं धनी-मानी रोम-नागरिकों को अपनी असहाय सन्तानों को दास के रूप में समर्पित कर दिया, तथापि उनके साथ दुर्व्यवहार किया गया।

उल्दीन—इसके नेतृत्व में हूणों की शक्ति और भी बढ़ गई। ४४१ ई० के प्रारंभिक भाग में उसने बाल्कन प्रायद्वीप के ऊपर आक्रमण कर दिया, जो रोम-साम्राज्य का अधिकार क्षेत्र था। उल्दीन को अपनी शक्ति का बड़ा ही गर्व था। वह चाँद सितारों को भी तोड़ने का दावा रखता था। उसके उपद्रवों के कारण चतुर्दिक खलबली मच गई। डैन्यूब नदी के तट पर स्थित कैस्ड्रा मार्टिस को उसने जीत लिया। ऐसा लगता था, मानो वह संपूर्ण बाल्कन प्रायद्वीप को ही जीतने जा रहा हो। रोम-सम्राट ने उसके आक्रमण की बाढ़ को देख कर सुरक्षा के साधनों को मज़बूत करना प्रारंभ किया। प्रमुख नगरों की सुदृढ़ किलेबन्दी की गई। बाइज़ेंटियम को बचाने के लिये उसके चारों ओर नई ऊँची दीवाल खड़ी की गई। पर रोम के सैनिक उल्दीन को आगे बढ़ने से रोकने में असफल सिद्ध हुये। परिस्थितियों की प्रतिकूलता को देख कर रोम-साम्राज्य ने उसे एक गहरी रकम भेंट की, जिससे सन्तुष्ट होने पर उसने अपनी भावी विजय-योजनाओं को स्थगित कर दिया।

रुगिला—उसने हूण-जाति के विभिन्न वर्गों को संगठनबद्ध किया। रोम के एक लेखक के अनुसार उसकी ऊँचाई औसत थी तथा वह पुरुषार्थ के गुणों से युक्त, सुरूप, कुशाग्र, चतुर घुड़सवार, कुशल तीरंदाज़, सशक्त, तलवार के प्रयोग में दक्ष, प्रवीण योद्धा, धैर्यवान तथा अथक परिश्रमी था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आपत्ति के क्षणों में वह निर्भीक रहता था। भूख, प्यास एवं अनिद्रा के कष्टों को सहने की उसमें विचित्र क्षमता थी। उसने थेइस तथा डैन्यूब नदियों के बीच अपनी जड़ों को जमा लिया। पूर्वी रोम-सम्राट थिओडोसियस द्वितीय ने ४२४ ई० में उसे ३५० पौंड सुवर्ण की वार्षिक भेंट प्रस्तुत करना स्वीकार कर लिया। ४३४ ई० में रुगिला की मृत्यु हो गई।

अत्तिल—रुगिला के अनन्तर उसका भतीजा अत्तिल हूण-साम्राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। पश्चिमी हूणों में वह सबसे प्रसिद्ध था। उसने राइन नदी से लेकर वाल्गा तक एक विशाल भूखण्ड पर लगभग बीस वर्षों (४५४ ई०) तक राज्य किया। उसने रोम-साम्राज्य के विभिन्न भागों में काफी लूटपाट मचाया। उसके इस स्वभाव को देखते हुये कुछ इतिहासकारों ने उसकी तुलना चंगेज़ खाँ से की है। गोथिक लेखकों के अनुसार उसका ललाट उन्नत, रंग काला, नाक चिपटी तथा कन्धे चौड़े थे। उसकी गतियों एवं व्यवहारों में अहंकार की भावना छिपी थी। उसका रोषमय व्यक्तित्व शत्रुओं को दहला देता था। प्रिस्कस नामक इतिहासकार ने उसके दरबारी शानशौकत का रोचक एवं सजीव वर्णन किया है। ४४८ ई० में उसे इस हूण-नरेश के साक्षात्कार का अवसर प्राप्त हुआ। इस समय वह एक ऐसे महल में सिंहासनासीन था, जिसकी दीवालों पर सुन्दर पालिश चढ़ाई गई थी। इस प्रासाद के चतुर्दिक एक चहारदीवारी भी थी। इसके कमरों की फर्श के ऊपर चटाइयाँ बिछी हुई थीं। राजमहिषी की सेवा में चेरियाँ संलग्न थीं। एक अलग बड़े कमरे में दर्शनाभिलाषियों के बैठने के निमित्त दीवाल के किनारे कुर्सियाँ लगी थीं। भोजन-कक्ष में सेवकगण विविध खाद्य-पदार्थ सोने और चाँदी की तश्तरियों में सजा रहे थे। वहाँ का शाही ठाटबाट देखते ही बनता था। अन्धकार होते ही यथास्थान प्रकाश जला दिये गये। चारणों ने आकर गीत सुनाये, जिनमें उसकी वीरता एवं सफलता का वर्णन था। कणों को आह्लादित करने वाले उनके स्वरों से दरबारी विभोर हो रहे थे। शूरों के हृदय में उनके स्वर युद्ध के लिये लालसा उत्पन्न कर रहे थे। शिष्टाचार के नियमों का पालन कड़ाई के साथ करना पड़ता था।

पूर्वी रोम-साम्राज्य पर आक्रमण—४३४ ई० से लेकर ४५० ई० तक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह पूर्वी रोम-साम्राज्य में युद्ध-संलग्न था। उसके आतंक से भयभीत होकर पूर्वी रोम-सम्राट थिओडोसियस ने उसके साथ सन्धि कर ली। इसकी शर्तों के अनुसार उसे अब हूण-सम्राट को पहले की दुगुनी रकम (७०० पौंड सुवर्ण) प्रतिवर्ष देनी थी। अत्तिल की सेना को छोड़ कर भागे हुये हूण, जिन्होंने रोम-साम्राज्य में शरण ली थी, लौटा दिये गये। इस सन्धि के अनुसार पूर्वी रोम-सम्राट भविष्य में विद्रोही हूणों को किसी प्रकार की भी सहायता न करने के निमित्त वचनबद्ध किया गया। इस सुलह के पश्चात् ७ वर्षों (४४१ ई०) तक वह काकेशस पहाड़ के पूर्व में अपनी शक्ति का विस्तार कर रहा था। ४४१ ई० में परिस्थितियों ने एक नया राजनीतिक रूप पकड़ा। इस समय थिओडोसियस वंडाल तथा ईरानियों के साथ युद्ध करने में व्यस्त था। अत्तिल को इस समय पूर्वी रोम-साम्राज्य के ऊपर हमला करने के लिये एक अच्छा अवसर मिल गया। उसने युद्ध का बहाना यह बनाया कि थिओडोसियस ने उसे निश्चित वार्षिक कर (७०० पौंड सुवर्ण) पूरा और समय से नहीं अदा किया था तथा शरणार्थी हूणों को उसने लौटाया भी न था। जब रोम के राजदूत उसके पास वार्तालाप के लिये आये, उस समय उसने झूठी शिकायत की कि मार्गस के रोमन विशप ने हूणों के अधिकार-क्षेत्र में प्रवेश कर वहाँ की राजकीय कब्रों में गड़े हुये खजानों को चुरा लिया था और यह माँग रखी कि ऐसे अपहृत कोष शीघ्र लौटा दिये जायँ। हूण-नरेश का यह प्रस्ताव इतना कड़ा और अमान्य था कि किसी प्रकार का समझौता असंभव हो गया।

फलतः अत्तिल ने पूर्वी रोम-साम्राज्य के अन्तर्गत रतिआरिया नामक नगर पर, जो कि डैन्यूब नदी के तट पर स्थित था, आक्रमण कर दिया। शहर लूट लिया गया। तदुपरान्त मार्गस नामक नगर को लूट कर उसने नौसस के ऊपर हमला किया। यहाँ के नागरिकों ने भी हूण-आक्रमणकारियों का वीरता के साथ सामना किया, पर हूणों की बहुसंख्या एवं उनके रण-चातुर्य के कारण उन्हें पराजित होना पड़ा। इतिहासकार प्रिस्कस इस नगर के विनाश का वर्णन करता हुआ लिखता है कि यह पुर वीरान हो गया था। वहाँ के गिरजाघरों में कुछ घायल लोग कराहते हुए दीख पड़ते थे। सड़कों पर मरे हुये आदमियों की हड्डियाँ बिखरी पड़ी थीं। जब उन्होंने डैन्यूब के तट

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर स्थित असेमस के सुदृढ़ दुर्ग पर आक्रमण किया, उस समय स्थानीय नागरिकों ने बड़े ही शौर्य एवं धैर्य के साथ इसकी सुरक्षा के हेतु प्रयत्न किया। पर अन्ततः उनके आक्रमण की बाढ़ को रोकने में वे असफल सिद्ध हुये। ४४३ ई० में थ्रेस में अत्तिल की शानदार विजय हुई। ऐसा लगता था कि कांस्टैन्टिनोपुल का भी विनाश होने ही वाला था। अतएव थिओडोसियस ने बाध्य होकर उसके साथ ऐसी सन्धि की, जिसकी शर्तें अपमानजनक थीं। इसके अनुसार पूर्वी रोम-साम्राज्य के द्वारा हूण-सम्राट को देय कर तिगुना कर दिया गया। अर्थात् अब प्रति वर्ष सात सौ पौंड सुवर्ण के स्थान पर इक्कीस सौ पौंड सुवर्ण कर के रूप में हूण-नरेश को देना था। हूण-सेना के द्रोही भी लौटा दिये गये। इस समय उसने अपने भाई बलेद को, जो उसका प्रतिद्वन्द्वी सिद्ध हो रहा था, मरवा डाला।

पर इन सब अत्याचारों के बावजूद भी अभी तक अत्तिल की विजय-पिपासा शान्त न हो सकी। इस घटना के तीन ही वर्ष अनन्तर ४४७ ई० में उसने इलीरियन एवं थ्रेस के प्रान्तों को जीतने की योजना बनाई। इस बार भी हूणों को रोकना दुष्कर सिद्ध हुआ। उन्होंने क्रमशः कई सुरक्षा-आधारों को जीत लिया। रोम-सेना का नायक अर्नेगिसक्लस लड़ता हुआ मारा गया। हूण इस बार भी कांस्टैन्टिनोपुल तक बढ़ आये। इसके अधिकांश नागरिक अपनी जान को बचाने के लिये इसे छोड़ कर भाग गये। एक समसामयिक लेखक लिखता है कि वहाँ पर रह जाने वाले लोगों में कई व्यक्ति मार डाले गये। इन प्रतिकूल परिस्थितियों से बाध्य होने के कारण पूर्वी रोम-सम्राट ने ४४८ ई० में अत्तिल से पुनः सन्धि की, जिसके अनुसार डैन्यूब नदी के तट पर स्थित सिंगिडनम से लेकर नोवाई तक का विशाल भूखंड इस हूण-नरेश को प्राप्त हुआ। इसके पश्चात् भी उसने रोम-साम्राज्य से शिकायत एवं माँग की नीति जारी रखी। उसके व्यवहारों के कारण पूर्वी रोम का राजकीय कोष खाली होता जा रहा था। इससे ऊब कर क्रिसेफियस नामक रोम के एक उच्च पदाधिकारी ने इस समय अत्तिल के विरुद्ध एक षडयंत्र रचा। उसने उसके एडिकन नामक मुख्य मन्त्री तथा एक राजदूत को मिलाकर उसकी हत्या की योजना बनाई। परन्तु इसका भेद पहले ही खुल गया। षडयंत्रकारियों को बुरी तरह दंड दिया गया। इस कुचक्र से कुपित होने के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
कारण उसने पूर्वी रोम-साम्राज्य के विरुद्ध दमन की नीति को और अधिक बढ़ा दिया। इस समय (४५० ई० में) वह यूरोप का सबसे शक्तिशाली व्यक्ति माना जाता था।

पश्चिमी रोम-साम्राज्य पर आक्रमण

कारण :—(१) होनोरिया का निमन्त्रण—४५० ई० में पश्चिमी रोम-साम्राज्य की आन्तरिक स्थिति शोचनीय हो गई थी। इस समय वहाँ वलेन्टिनियन तृतीय नामक नरेश राज्य कर रहा था, जो कि अयोग्य एवं कमज़ोर प्रकृति का शासक था। उसका बौद्धिक विकास एवं चरित्रसंगठन निम्न कोटि का था। उसके शासन-काल के प्रारंभिक भाग में उसकी बहिन होनोरिया रोम के वास्तविक शासन में काफी प्रभाव रखती थी। एक तरह से असली राज्य-कार्य उसी के निर्देशों में संपन्न हो रहा था। वह महत्त्वाकांक्षी एवं स्वतन्त्र विचारों की महिला थी। वलेन्टिनियन के विवाह के पूर्व राज-दरबार में उसका स्थान सबसे महत्त्वपूर्ण था। पर इस विवाह से सन्तान होते ही उसके अधिकार क्रमशः कम कर दिये गये और प्रतिबन्धों के द्वारा उसकी महत्त्वाकांक्षाओं को कुचलने का प्रयास किया गया। इस बात को लेकर वलेन्टिनियन के साथ उसका वैमनस्य उत्तरोत्तर बढ़ता गया। ४४६ ई० में अपने गुप्त प्रेमी यूजेनियस के साथ उसने अपने भाई की हत्या के निमित्त षडयन्त्र रचा। किन्तु इसका रहस्य वलेन्टिनियन को पहले ही विदित हो गया और इस कारण यह कुचक्र-योजना कार्यान्वित न हो पाई। यूजेनियस पकड़ा गया और उसे फाँसी की सजा दी गई। होनोरिया को क्षमा तो कर दिया गया, पर वह कठोर नियन्त्रण में रखी गई। इस प्रकार के जीवन से वह उन्मुक्त होना चाहती थी। उसने अपना सन्देशवाहक अंगूठी और उप-हार की सामग्री के साथ अत्तिल के पास भेजा तथा उससे सहायता की याचना की। हूण-सम्राट ने उसे सहायता प्रदान करना स्वीकार कर लिया। उसने होनोरिया के द्वारा भेजी गई हुई अंगूठी को अपने साथ विवाह का सांकेतिक प्रस्ताव समझा। उसका सन्देशवाहक उससे ४५० ई० में मिला था। उसने इस समय पश्चिमी रोम-साम्राज्य के ऊपर आक्रमण करने का पूर्ण निश्चय बना लिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(२) गैसेरिक का सहयोग—इस समय गोथ-शासक थिओडोरिक गाल में पश्चिमी रोम-साम्राज्य की अधीनस्थता में शासन कर रहा था। वंडाल नरेश गैसेरिक इसका प्रबल शत्रु था। इस शत्रुता का कारण गैसेरिक की कलुषता थी। थिओडोरिक ने अपनी पुत्री का विवाह गैसेरिक के पुत्र हुनेरिक से किया था। गैसेरिक इस विवाह-संबन्ध से सन्तुष्ट नहीं था, अतएव उसने थिओडोरिक-पुत्री पर मिथ्या आरोप लगा कर उसकी नाक एवं कान को कटवा दिया और इस रूप में उसे अपमानित कर उसे अपने पिता के पास वापस भेज दिया। इस अपमान के कारण थिओडोरिक की कोपाग्नि प्रज्वलित हो उठी। वह गैसेरिक से बदला लेने के लिए योजनायें बनाने में संलग्न हो गया। वंडाल-गोथ-शत्रुता इन परिस्थितियों में पराकाष्ठा पर पहुँच गई। गैसेरिक ने बहुमूल्य उपहारों के साथ अपना दूतमंडल अत्तिल के पास भेजा। उसने हूण-नरेश के साथ अपना संबन्ध सुदृढ़ किया तथा छल-कपट द्वारा थिओडोरिक के विरुद्ध उसे भड़काया। अत्तिल ने इस गोथ-सम्राट को कुचलने के लिये गाल पर आक्रमण कर दिया। एक सामयिक लेखक का कथन है कि वास्तव में गैसेरिक को उपकृत करने के लिये ही अत्तिल ने गाल पर हमला किया था। गाल पश्चिमी रोम-साम्राज्य का अधीनस्थ प्रदेश था, अतएव हूण-नरेश के साथ इसका संघर्ष अवश्यंभावी हो गया।

(३) साम्राज्य-संपन्नता—इस समय तक पूर्वी रोम-साम्राज्य के नगर हूण-नरेश के द्वारा काफी लूटे जा चुके थे। यूनान, डैलमेशिया, मैसीडन तथा थ्रेस आदि प्रान्त पर्याप्त क्षति उठा चुके थे। इसके प्रतिकूल पश्चिमी रोम-साम्राज्य काफी संपन्न था। यहाँ के समृद्धिशाली नगर बर्बर हूणों के लूटपाट से बचे हुये थे। यह प्रलोभन भी पश्चिमी रोम-साम्राज्य के ऊपर आक्रमण का कारण माना जाता है।

युद्ध :—(१) आर्लियाँ का घेरा—४५१ ई० में हूण-नरेश ने गाल पर आक्रमण कर दिया। उसकी सेना में अधीन जातियों के भी सैनिक सम्मिलित थे। कई नगरों को जीतने के पश्चात् आर्लियाँ के दुर्ग पर उसने घेरा डाल दिया। अत्तिल ने यहाँ पर प्रयत्न यह किया कि गोथ एवं रोम की सेनायें एक दूसरे से मिलने न पायँ। अत्तिल की सफलताओं को देखते हुये लगता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
था मानो बर्बर हूणों का आधिपत्य गाल पर स्थापित होने जा रहा हो।

(२) **कैटेलोनियन का संग्राम**—इस समय पश्चिमी रोम-साम्राज्य का सेनानायक एटियस बड़ा ही सुयोग्य था। वह इलीरियन पिता एवं इटैलियन माँ से उत्पन्न था। वह प्रारंभ में हूणों को जमानत के स्वरूप में दे दिया गया था। उनके बीच में रह कर उनकी युद्ध-कला को वह अच्छी तरह सीख चुका था। पश्चिमी रोम-साम्राज्य को हूणों के खतरे से बचाने का वास्तविक श्रेय उसी को था। उसने गोथ-नरेश थिओडोरिक के साथ एक सम्मिलित मोर्चा स्थापित कर कैटेलोनियन के मैदान में अत्तिल का सामना किया। यह भयङ्कर युद्ध दो दिनों तक चलता रहा। दोनों दलों के अनेक सैनिक काम आये। संग्राम-भूमि रक्त-धारा से रंजित हो उठी। थिओडोरिक बहादुरी के साथ लड़ता हुआ मारा गया। पर एटियस ने धैर्य नहीं छोड़ा। इस समय मृत थिओडोरिक के पुत्र थोरिसमड ने एक नई सेना के साथ उसकी सहायता की। इस बार हूण-नरेश पराजित किया गया। अजेय अत्तिल की यह पहली पराजय विश्व-सभ्यता के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्वीकार की गई है। इसने पश्चिमी यूरोप को नृशंस हूणों के शिकंजे में पड़ने से बचा दिया। इस युद्ध की तिथि ४५१ ई० मानी जाती है।

(३) **अन्तिम सैनिक अभियान**—अत्तिल अपने जीवन के इस पराजय का बदला लेना चाहता था। उसने होनोरिया की सुरक्षा के प्रश्न को पुनः छेड़ा और ४५२ ई० में उसने उत्तरी इटली पर आक्रमण कर दिया। एक्विलिया तथा कई नगर ध्वस्त कर दिये गये। यद्यपि एटियस ने बड़ी बहादुरी दिखाई, तथापि उसे रोकना कठिन हो गया। इस समय रोम के ऊपर सीधा आक्रमण का साफ खतरा था। वलेन्टिनियन ने आपत्ति के इस अवसर पर रोम के बिशप लिवो प्रथम के द्वारा अत्तिल के पास शान्ति-सन्देश भेजा। रोम के लेखकों का कथन है कि अत्तिल के ऊपर उसके व्यक्तित्व का चामत्कारिक प्रभाव पड़ा। इसी बीच प्लेग आ गई, जिसके कारण उसका आगे बढ़ना असंभव सिद्ध हुआ। प्राचीन लेखकों के अनुसार बिशप लिवो ने अपने आध्यात्मिक बल के द्वारा हूणों के विनाश-हेतु इस संक्रामक रोग को वहाँ फैला दिया था। इसी बीच पूर्वी रोम-साम्राज्य से भी एक सेना पश्चिमी रोम-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सेना की सहायता के लिये वहाँ आ पहुँची। अतएव उसने अपनी भावी सैनिक योजनाओं को स्थगित कर दिया। इस घटना के एक ही वर्ष पश्चात् ४५४ ई० में वह मर गया। उसकी मृत्यु के साथ हूणों के आगामी खतरों से यूरोप सुरक्षित हो गया।

अत्तिल के वंशज—उसके पुत्रों में किसी के पास भी संगठनशक्ति नहीं थी। उन्होंने विशाल हूण-साम्राज्य का आपसी बटवारा करने की योजना बनाई। उनके इस आन्तरिक वैमनस्य का लाभ उठा कर इस विशाल साम्राज्य की विभिन्न जातियों ने संगठित होकर विद्रोह किया। इनकी सम्मिलित सेना ने नेदाओ के संग्राम में अत्तिल के वंशजों को परास्त कर उनकी शक्ति को हमेशा के लिये छिन्न-भिन्न कर दिया। यह युद्ध ४५४ ई० में हुआ था। इस युद्ध को 'राष्ट्रों का संग्राम' (बैटिल ऑफ नेशन्स) की संज्ञा दी जाती है।

पूर्वी शाखा के हूण—इस शाखा के हूणों ने आक्सस नदी के तट पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। महाभारत के भीष्मपर्व में इन हूणों का उल्लेख पारसीकों के साथ हुआ है (हूणाः पारसिकैः सह)। कालिदास के अनुसार वे वंक्षु (आक्सस) नदी के तट पर रहते थे। उनके अनुसार सम्राट रघु के घोड़े, जो मार्ग के थकान से आक्रान्त हो उठे थे एवं जिनके गले में कुंकुम-केसर लगे हुये थे, वंक्षु नदी के तट पर पहुँचे। वहाँ पर रघु ने हूणों को परास्त कर अपने शौर्य का परिचय प्रदान किया :—

"विनिताध्वश्रमास्तस्य वंक्षुतीरविचेष्टनैः ।
दुधुवुर्वाजिनः स्कन्धाँल्लग्नकुंकमकेसरान् ॥
तत्रहूणावरोधानां भर्तृषुव्यक्तविक्रमम् ।
कपोलपाटलादेशि बभूव रघुचेष्टितम् ॥"

(रघुवंश, सर्ग ४, श्लोक ६७-६८)

फारस में हूणों की कृतियाँ—४२५ ई० तक पूर्वी हूणों के फारस आ जाने के विषय में निश्चित प्रमाण उपलब्ध होते हैं। इनकी भयंकरता तथा दलबल को देख कर फारसीवासी दहल उठे। इस समय वहाँ ससैनियन वंशी बहराम पंचम राज्य कर रहा था। वह बड़ा ही सुयोग्य, युद्धकला में दक्ष तथा आखेट का प्रेमी था। उसकी शूरता के विषय में फारस में नाना किंवदन्तियाँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
प्रचलित थीं। कालान्तर के साहित्य में भी उसकी शूरता के विषय में रोचक वर्णन उपलब्ध होते हैं। उसने बड़े ही धैर्य एवं बुद्धिमत्ता के साथ कार्य लिया। रात्रि के अवसर पर जब कि हूण गाढ़ निद्रा में अचेत पड़े थे, उसने आकस्मिक ढंग से अपने अश्वारोहियों के साथ उन पर आक्रमण कर दिया। इस पर हूणों को अपनी स्थिति को सँभालना कठिन हो गया। इस संग्राम में हूण-सम्राट मार डाला गया तथा उसकी प्रधान महिषी बन्दी बना ली गई। इसके अनन्तर सतत् कई युद्धों में हूणों को परास्त कर उसने उन्हें ईरान की सीमा के बाहर खदेड़ दिया। ४३८ ई० में वहराम की मृत्यु हो गई। उसके उत्तराधिकारी यज़्दगर्द द्वितीय के शासनकाल में ४४३ ई० के लगभग उन्होंने ससैनियन राज्य के पूर्वी भाग पर पुनः आक्रमण कर दिया। हूणों के साथ ४५१ ई० तक उसका युद्ध चलता रहा। हूण यद्यपि उसके द्वारा पराजित किये गये, तथापि उनका दमन विशेष रूप से नहीं हो सका तथा वे अब भी फारस पर आक्रमण करने के लिये अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा में थे।

फीरोज़ की हत्या—यज़्दगर्द द्वितीय के उपरान्त ससैनियन वंश की गद्दी पर फीरोज़ सिंहासनारूढ़ हुआ, जिसे पाश्चात्य लेखकों ने पिरोज़ भी कहा है। ४५६ ई० से ४८४ ई० तक का उसका राज्यकाल हूण-युद्ध के लिये उल्लेखनीय है। इस समय हूणों का सम्राट खुश-नेवाज़ नामक था, जो कि बड़ा ही अहंकारी तथा नृशंस था। उसके विरुद्ध फीरोज़ पहले ही असफल सिद्ध हुआ तथा एक कठोर सन्धि को स्वीकार करने के लिये बाध्य किया गया जिसके अनुसार उसे अपनी एक पुत्री हूण-सम्राट को उसकी भार्या के स्वरूप में प्रस्तुत करनी थी। इस अपमान से बचने के लिये ससैनियन सम्राट ने उसके पास दास-कन्या भेजी। इसका रहस्य कुछ ही दिनों में खुल गया। इस पर खुश-नेवाज़ की कोपाग्नि प्रज्वलित हो उठी, पर इसे प्रगट करने के पूर्व उसने किसी अन्य प्रदेश पर सैनिक अभियान के बहाने उससे कुछ सैनिक पदाधिकारियों की सहायता माँगी। फीरोज़ ने विश्वास कर ससैनियन सेना के तीन सौ मजे हुये योद्धाओं को उसके पास भेज दिया। इनको अपने वश में पा लेने पर उसने बड़ी क्रूरता का व्यवहार किया। उनमें से कुछ मार भी डाले गये और कुछ को अंगच्छेद की सजा दी गई। इस अमानुषिक ढंग से उसने अपनी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मर्यादा की ठेस का बदला लिया। खुशनेवाज़ की क्रूरता एवं शक्ति उत्तरोत्तर और बढ़ने लगी। उसके नाना अत्याचारों से फीरोज़ ऊब चुका था। उसने इस आततायी हूण-सम्राट के दमन के लिये एक सुसंगठित सेना के साथ स्वयं प्रस्थान किया। पर भाग्यचक्र ने पुनः उसका साथ नहीं दिया। हूणों ने उसकी सेना को चारो ओर से घेर लिया। ससैनियन दल के सैनिक बुरी तरह काट डाले गये। इसमें फीरोज स्वयं लड़ता हुआ मारा गया। इस पराजय के कारण फारस को ४८३ ई० से लेकर ४८५ ई० तक हूण-सम्राट को निश्चित कर देना पड़ता था।

कवद का हूण-युद्ध—फीरोज़ के उत्तराधिकारी कवद ने अपने वंश के गौरव के पुनरुद्धार-हेतु मदोन्मत्त हूणों का विनाश करना आवश्यक समझा। उसने दस वर्षों (५०३ ई०-५१३ ई०) तक उनके साथ सतत युद्ध किये। प्रमाणाभाव के कारण इन युद्धों के विषय में कोई निश्चित जानकारी नहीं है। तथापि यह स्पष्ट है कि उनकी पूर्वकालीन शक्ति एवं महत्ता समाप्त हो गई और फारस उनके संभावित खतरों से सुरक्षित हो गया। इसके बाद के ईरानी साहित्य में उनका जहाँ कहीं भी उल्लेख हुआ है, वहाँ आततायी एवं नृशंस आक्रमणकारी के रूप में नहीं। हूणों के भयानक हमलों से ईरान की सुरक्षा फीरोज के यश में चार चाँद लगाती है।

नौशेरवाँ तथा हूण—हूणों के दमन एवं अन्तिम विनाश का वास्तविक श्रेय सुप्रसिद्ध पारसीक सम्राट नौशेरवाँ को दिया जा सकता है। उसने उनके ऊपर स्वयं आक्रमण किया। यद्यपि इस हमले की वास्तविक तिथि के विषय में कुछ निश्चियात्मक रूप से कहना दुष्कर है, तथापि यह लगता है कि यह घटना ५५४ ई० के अनन्तर ही घटी होगी, क्योंकि इसके पूर्व यह सम्राट रोम के साथ युद्ध करने तथा तुर्कों की समस्या को सुलझाने में व्यस्त था। इस युद्ध में तत्कालीन हूण-सम्राट लड़ता हुआ मारा गया। इस विजय ने हूणों को अच्छी तरह कुचल दिया। इस सफलता के फलस्वरूप पारसीक नरेश को बल्ख प्राप्त हो गया। यह घटना फारस के इतिहास में राजनीतिक एवं आर्थिक दोनों ही दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय अभियान

प्रथम आक्रमण—भारतवर्ष पर हूणों का प्रथम आक्रमण स्कन्दगुप्त के समय में हुआ। इसे हम भारतीय हूण-आक्रमण की प्रथम बाढ़ कह सकते हैं। भितरी के लेख के अनुसार स्कन्दगुप्त ने उन्हें परास्त किया। उसकी इस विजय का काव्यात्मक ढंग से वर्णन प्रस्तुत करते हुए प्रशस्तिकार कहता है कि हूणों का सामना करने के निमित्त जब स्कन्दगुप्त समरांगण में उतरे, उस समय पृथ्वी उनके बाहुबल के द्वारा कम्पित हो उठी (**हूणैर्यस्य समागतस्य समरे दोर्भ्यां धरा कंपिता**)। चान्द्र व्याकरण की सूत्रवृत्ति में 'अजयत् गुप्तो हूणान्' (अर्थात् गुप्तों ने हूणों को जीत लिया) लेखक के जीवन-काल की घटना के रूप में कहा गया है। लगता है कि यहाँ पर स्कन्दगुप्त की हूण-विजय की ओर संकेत किया गया है।

जूनागढ़ के लेख में हूणों को म्लेच्छ कहा गया है। इस अभिलेख के अनुसार वे पर्याप्त रूप में शक्तिशाली थे। इसमें समकालीन आततायियों की समता उन विषधर सर्पों से की गई है, जो कि मान एवं दर्प के कारण डसने के लिये अपने फन को सर्वदा ऊपर उठाये रहते हैं। स्कन्दगुप्त ने अपने शौर्य के द्वारा इनका विनाश किया। यहाँ पर इस गुप्त-नरेश के द्वारा संभवतः हूणों की शक्ति को चूर करने की ओर संकेत किया गया है :—

"नरपतिभुजगानां मानदर्पोत्फणानाम्
प्रतिकृतिगरुडाज्ञां निर्विषीं चावकर्ता।"

जूनागढ़ के लेख के अनुसार उसने म्लेच्छों के गर्व को समूल नष्ट कर दिया। इस कारण सभी लोग उसकी वीरता की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते थे—

"अपि च जितमेव तेन प्रथयन्ति यशांसि यस्य रिपवोऽपि।
आमूलभग्नदर्पा निर्वचना म्लेच्छदेशेषु॥"

भितरी के लेख से प्रतीत होता है कि हूणों के साथ स्कन्दगुप्त का युद्ध गंगा नदी के तट पर हुआ था (**श्रोत्रेषु गांगध्वनिः**)।

विद्वानों का अनुमान है कि हूणों ने कुमारगुप्त की मृत्यु के ठीक अन-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

न्तर (अर्थात् ४५५ ई० में) गुप्त-साम्राज्य के ऊपर आक्रमण कर दिया। भितरी के अभिलेख के चौथे श्लोक में कहा गया है कि कुमारगुप्त के निधन के पश्चात् गुप्तकुल की लक्ष्मी विचलित हो उठीं तथा स्कन्दगुप्त को उसे पुनः स्थापित करने के निमित्त बहुत बड़ी चेष्टा करनी पड़ी थी। वह इस समय अपने शत्रु को परास्त करने के उपरान्त अपनी अश्रुयुक्त नेत्रों वाली माता के पास उसी प्रकार पहुँचा, जिस प्रकार भगवान् कृष्ण रिपुओं के दमन के अनन्तर अपनी माता देवकी के पास पहुँचे थे—

"पितरि दिवमुपेते विप्लुतां वंशलक्ष्मीं
भुजबलविजितारिर्यः प्रतिष्ठाप्य भूयः।
जितमिति परितोषान्मातरं सास्रनेत्रां
हतरिपुरिव कृष्णः देवकीमभ्युपेतः॥"

डाक्टर रमेशचन्द्र मजुमदार का कथन है कि भितरी के उपर्युक्त श्लोक में अपने सौतेले भाई पुरुगुप्त के साथ स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकार-संबन्धी युद्ध का संकेत हैं। जिन कृष्ण के साथ उसके विजय की तुलना की गई है, उनके शत्रु स्वजन थे। अतएव स्कन्दगुप्त का भी रिपु उसका घरेलू शत्रु पुरुगुप्त रहा होगा। यह युद्ध उसके पिता की मृत्यु के पश्चात् हुआ था। इस कारण इसे उत्तराधिकार-संबन्धी गृहयुद्ध मानना ठीक होगा।

पुरुगुप्त कुमारगुप्त के राज्य का वास्तविक उत्तराधिकारी था, क्योंकि गुप्तवंशीय अभिलेखों में उसकी माता अनन्तदेवी को महादेवी कहा गया है। अतएव उसे सम्राट-पद पाने से वंचित करने के निमित्त स्कन्दगुप्त को उसके साथ युद्ध करना अनिवार्य प्रतीत हुआ होगा। पर भितरी के उपर्युक्त श्लोक से इस प्रकार का निष्कर्ष निकालना ठीक न होगा। जूनागढ़ के लेख की तिथि गुप्त संवत् १३६ अर्थात् ४५५ ई० है। इसमें स्कन्दगुप्त के म्लेच्छों (हूणों) के विजय का उल्लेख मिलता है। कुमारगुप्त की मृत्यु ४५५ ई० में हुई। इसी समय हूणों ने अनुकूल अवसर पाकर गुप्त-साम्राज्य के ऊपर आक्रमण कर दिया होगा। भितरी के चतुर्थ श्लोक के अनुसार कुमारगुप्त की मृत्यु के पश्चात् गुप्तकुल की वंश-लक्ष्मी को इसके शत्रु ने विचलित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया था। अतएव स्कन्दगुप्त के शत्रु हूण रहे होंगे, न कि उसका कोई घरेलू शत्रु।

सुरक्षा-व्यवस्था—इस विजय के अनन्तर स्कन्दगुप्त के द्वारा हूण गंगा-घाटी से भगा दिये गये। वे अब उत्तर-पश्चिम भारतवर्ष के गंधार-क्षेत्र में राज्य करने लगे और इसको आधार बना कर गंगा-घाटी के ऊपर पुनः आक्रमण के निमित्त योजनायें बनाने लगे। जूनागढ़ के लेख की भाषा से प्रतीत होता है कि इस समय भी गुप्त-साम्राज्य को हूण-आक्रमण का खतरा बना हुआ था। स्कन्दगुप्त ने अपने साम्राज्य की उत्तर-पश्चिम सीमा की सुरक्षा के लिये योजनायें बनाईं। सुराष्ट्र प्रान्त उनके साम्राज्य का सबसे पश्चिमी प्रान्त था। इस पर हूण-आक्रमण का सबसे पहले भय था। अतएव उसने पर्णदत्त नामक सुयोग्य कर्मचारी को इसका राज्यपाल नियुक्त किया। इस अभिलेख में पर्णदत्त को गोप्ता (रक्षक) कहा गया है। यह शब्द सुराष्ट्र प्रान्त के ऊपर हूण-आक्रमण के खतरे की ओर संकेत करता है। जूनागढ़ के लेख के अनुसार पर्णदत्त स्कन्दगुप्त के सभी कर्मचारियों में सबसे अधिक योग्य था। सुराष्ट्र प्रान्त के भारवहन के निमित्त वह एकमात्र समर्थ चुना गया।

"सर्वेषु भृत्येष्वपि संहतेषु
यो मे प्रशिष्यान्निखिलान्सुराष्ट्रान्।
आं ज्ञातमेकः खलु पर्णदत्तो
भारस्य तस्योद्वहने समर्थः॥"

जिस प्रकार देवता वरुण को पश्चिमी दिशा का अधीश्वर चुनकर विश्वासयुक्त हो गये थे, उसी प्रकार सम्राट स्कन्दगुप्त पर्णदत्त को अपने पश्चिमी प्रान्त (सुराष्ट्र) का राज्यपाल चुनकर धृतिसंपन्न हो गया था—

"नियुज्य देवाः वरुणं प्रतीच्यां
स्वस्थाः यथानोन्मनसो बभूवुः।
पूर्वेतरस्यां दिशि पर्णदत्तं
नियुज्य राजा धृतिमांस्तथाभूत्॥"

तोरमाण—स्कन्दगुप्त के लगभग ३३ वर्ष उपरान्त (५०० ई० में)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तोरमाण के नेतृत्व में हूण-आक्रमण की द्वितीय बाढ़ भारतवर्ष में आई। तोरमाण काफी शक्तिशाली था। डॉ० दिनेश चन्द्र सरकार का कथन है कि तोरमाण नाम तुर्की शब्द तोरमान, तूरमान एवं तोरेमेन से (जिसका अर्थ विद्रोही होता है) तुलनीय है। उसके राज्य-काल के दो लेख प्राप्त हुये हैं—(१) एरण की वराह-प्रतिमा वाला लेख तथा (२) कुर (पंजाब) का शिलालेख।

कुर के लेख में उसे 'तोरमाण-षाहि-जऊब्ल' कहा गया है। जऊब्ल सामन्त-उपाधि थी। इससे कीलहार्न तथा बूलर का कथन है कि कुर के लेख का तोरमाण एक सामन्त शासक था। अतएव वह हूण-सम्राट् तोरमाण नहीं हो सकता, जो कि काफी प्रभावशाली था। यह मत भ्रान्तिमूलक माना जा सकता है। तोरमाण प्रारम्भ में सामन्त था। उसका चक्रवर्ती हूण-नरेश बैक्ट्रिआ में शासन करता था। इस प्रकार वह 'जऊब्ल' की उपाधि धारण करता होगा। लगता है कि स्वतन्त्र होने के पश्चात् भी वह 'जऊब्ल' की उपाधि धारण करता था। स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने के उपरान्त भी पुष्य-मित्र शुंग ने सेनापति तथा उज्जयिनी के शकों ने महाक्षत्रप की उपाधियाँ धारण की थीं। ये सामन्त-उपाधियाँ हैं। अतएव स्पष्ट है कि कुर के लेख का तोरमाण तथा हूण-नरेश तोरमाण एक ही व्यक्ति हैं। सोमदेव के अनुसार उसके नेतृत्व में हूण चित्रकूट तक बढ़ आये थे। ४८५ ई० वाले एरण के लेख से ज्ञात होता है कि यहाँ पर महाराज मातृविष्णु बुधगुप्त नामक गुप्त-सम्राट की अधीनता स्वीकार करता था। इसके उपरान्त के एरण के एक दूसरे लेख से ज्ञात होता है कि मातृविष्णु का भाई धन्यविष्णु वहाँ पर हूण-नरेश तोरमाण के शासन-काल के प्रथम वर्ष में उसकी अधीनता स्वीकार करता था :—

"वर्षे प्रथमे पृथिवीमपृथु-कीर्त्तौ पृथुद्युतौ।
महाराजाधिराजश्रीतोरमाणे प्रशासति॥"

इससे स्पष्ट है कि बुधगुप्त के उपरान्त (अर्थात् ५०० ई० के पश्चात्) तोरमाण के नेतृत्व में हूणों ने एरण को जीत लिया। कौशाम्बी से हूणराज

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तोरमाण की एक मुहर मिली है। आठवीं शताब्दी के जैन ग्रंथ कुवलयमाला में तोरमाण को उत्तरापथ का शासक कहा गया है। यह रचना गंगा-घाटी में उसके राजनीतिक प्रभाव को व्यक्त करती है। इसके अनुसार उसकी राजधानी चन्द्रभागा (चेनाब) नदी के तट पर विद्यमान थी। तोरमाण का उल्लेख राजतरंगिणी में भी हुआ है।

इस नरेश की 'अश्वारोही वर्ग' की कुछ रजत-मुद्रायें उपलब्ध हुई हैं। इनके मुख भाग पर अश्वारोही का चित्र तथा उसके पीछे हूण-प्रतीक अंकित हैं। इनके पृष्ठ भाग पर यूनानी अक्षरों में 'षाहि-जऊब्ल' लेख मिलता है। उसकी ताम्र-मुद्रायें पंजाब तथा सतलज एवं यमुना के बीच वाले क्षेत्र से उपलब्ध हुई हैं। इनके ऊपर उसके नाम का पूर्वार्द्ध 'तोर' अंकित मिलता है।

उसके समय के एरण के लेख के प्रारंभ में वराह की वन्दना की गई है :—

"जयति धरण्युद्धरणे घन घोणाघात-घूर्णित महीधरः।
देवो वराहमूर्त्तिस्त्रैलोक्य-महागृह-स्तम्भः॥"

(एरण का लेख, श्लोक १)

इससे निष्कर्ष निकलता है कि उसका सामन्त धन्यविष्णु वैष्णव मतावलंबी था। इसमें समस्त जगत् के मंगल की कामना की गई है (स्वस्त्यस्तु गो-ब्राह्मण-पुरोगाभ्यः सर्व्व-प्रजाभ्य इति)। कुर का लेख उसके 'अभिवर्धमानराज्य संवत्सर' के 'मार्गशिर' मास के शुक्ल पक्ष की द्वितीया में उत्कीर्ण किया गया था। इस लेख के अनुसार रोट-जयवृद्धि के पुत्र रोट-सिद्धवृद्धि ने भाई, भगिनी, पत्नी, पुत्र तथा दुहिता के पुण्यार्थ महीशासक संप्रदाय के आचार्यों के निवास के लिये एक बौद्ध विहार का निर्माण किया था। उसके लेखों के प्राप्तिस्थान एवं उनके अंतःसाक्ष्य से लगता है कि उसने पश्चिम में पंजाब से लेकर पूर्व में एरण (आधुनिक सागर) तक के प्रदेशों पर राज्य किया। मिहिरकुल-कालीन ग्वालियर के लेख से ज्ञात होता है कि वह अनेक गुणों से संपन्न था (प्रभूतगुणः)। उसने सत्य, शौर्य तथा न्याय आदि से पृथ्वी का शासन किया था (सत्यप्रदानशौर्य्याद्येन महीं न्यायतः शास्ता)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिहिरकुलः—तोरमाण के अनन्तर मिहिरकुल ने राज्य किया। ग्वालियर से उसके शासन-काल के पंदरहवें वर्ष (अभिवर्द्धमानराज्ये पंचदशाब्दे) का एक लेख मिला है, जिसके प्रारम्भ में सूर्य की स्तुति की गई है :—

"भुवनभवनदीपः शर्व्वरीनाशहेतुः।
तापितकनकवर्णैरंशुभिः पंकजानाम् ॥"

इस अभिलेख में उसके पिता के नाम के प्रारम्भ में दो अक्षर 'तोर' मिलते हैं। उसके नाम के बाद वाले अक्षर मिट गये हैं। विद्वानों का अनुमान है कि ग्वालियर के लेख का नामांश 'तोर' तोरमाण नाम का प्रथमार्द्ध है। इस अभिलेख के अनुसार मिहिरकुल अत्यन्त पराक्रमी था। उसने अपने कुल की कीर्ति का विस्तार किया तथा वह शिव का अखंड पुजारी था :—

"तस्योदितकुलकीर्त्तेः पुत्रोऽतुलविक्रमः पतिः पृथिव्याः।
मिहिरकुलेतिख्यातोऽभंगो यः पशुपतिम् ॥"

राजतरंगिणी से भी निष्कर्ष निकलता है कि वह शैव धर्म का अनुयायी था। मिहिरकुल के विषय में कुछ अन्य साधनों से भी सूचना मिलती है; उदाहरणार्थ सुंग युन, कास्मस, हुयेनसांग का विवरण, कल्हण की राजतरंगिणी तथा यशोधर्मा के काल का मन्दसोर का लेख।

सुंग युन का वर्णन—चीन की वेइ वंश की एक साम्राज्ञी ने सुंग युन नामक व्यक्ति को ५१८ ई० में भारतवर्ष बौद्ध ग्रन्थों की प्रतिलिपियों को लाने के निमित्त भेजा था। उसके साथ हुई-शेंग नामक एक बौद्ध भिक्षु भी था। उसकी यात्रा केवल उत्तर-पश्चिम भारतवर्ष विशेषतः उड्डियान (स्वात की घाटी) और गन्धार (पेशावर) तक ही सीमित थी। वह ५२२ ई० में चीन वापस लौट गया। उसका विवरण अप्राप्य है। उसके कुछ विवरण उद्धरण के रूप में कालान्तर के लेखकों की रचनाओं में मिलते हैं। बील ने इन उद्धरणों का अंग्रेजी अनुवाद 'रेकर्ड्स ऑफ दी वेस्टर्न वर्ल्ड' (जिल्द १) में किया है।

गन्धार के विषय में सुंग युन लिखता है कि वह ५२० ई० में इस क्षेत्र में आया हुआ था। उसके अनुसार यह प्रदेश उचंग राज्य से काफी मिलता-जुलता था। इसे हूणों ने जीता था। तब से इस जाति के दो पीढ़ी के नरेश राज्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर चुके थे। उस समय का शासक बड़ा ही क्रूर तथा आसुरी प्रवृत्ति का था। वह बौद्ध धर्म में विश्वास नहीं करता था। उसके निर्दयतापूर्ण व्यवहारों से लोग ऊब चुके थे। उसे अपने बाहुबल में दृढ़ विश्वास था। उसने किपिन (काश्मीर) के ऊपर आक्रमण किया था। वह लगभग तीन वर्षों से इसके जीतने के प्रयास में था। उसकी सेना में सात सौ हाथी सम्मिलित थे। उसके राज्य की जनता दुखी थी। लगता है कि यहाँ पर मिहिरकुल की ओर संकेत है। सुंग युन के वर्णन के अनुसार उसकी राजधानी गन्धार में स्थित थी।

कास्मस का उल्लेख—सिकन्दरिया का यूनानी यात्री कास्मस (५३५ ई०) लिखता है कि भारतवर्ष के उत्तरी भाग में श्वेत हूण शासन करते थे। उनके सम्राट गोल्लास की अश्वारोहिणी सेना शक्तिशालिनी थी। उसकी गज-सेना में दो हजार हाथी सम्मिलित थे। वह लोगों को बहुत सताता और अन्य राज्यों से कर वसूल करता था। सिन्धु नदी उसके राज्य की सीमा का निर्माण करती थी। कास्मस के लेख में वर्णित गोल्लास नामक हूण-नरेश की एकता मिहिरकुल (मिहिरगुल) से की जाती है।

हुयेनसांग का साक्ष्य—उसने मिहिरकुल के विषय में लिखा है कि वह उसके आगमन के कुछ शताब्दियों पूर्व भारतवर्ष में राज्य कर रहा था। उसकी राजधानी शाकल (स्यालकोट) में वर्तमान थी। उसने आस-पास के राजाओं को काफी दवा रखा था। हुयेनसांग के अनुसार मिहिरकुल पहले बौद्ध धर्म का आदर करता था। उसने भिक्षुसंघ से उसके पास एक बौद्ध श्रमण भेजने को कहा। भिक्षुसंघ ने उसके पास श्रवण के स्थान पर एक भृत्य भेजा। इस पर मिहिरकुल कुपित हो उठा। उसने पंच भारत में भिक्षुओं के संहार के लिये एक आज्ञा घोषित की। हूण-सम्राट की इस आज्ञा के अनुसार बौद्ध संघ के समूल उच्छेदन के निमित्त प्रयास किया गया। उसने अनेक स्तूपों और बिहारों को ध्वस्त करा दिया था।

बालादित्य की पहचान—हुयेनसांग के अनुसार गुप्त-सम्राट बालादित्य ने मिहिरकुल को परास्त किया था। वह लिखता है कि मगध-नरेश बालादित्य बौद्ध धर्म का सम्मान करता था। जब उसने मिहिरकुल के अत्याचारों के विषय में सुना, उस समय उसने अपने साम्राज्य की सीमाओं की मोर्चे-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बन्दी करना प्रारम्भ कर दिया। हूण-सम्राट ने बलावलेप के कारण बालादित्य के साम्राज्य के ऊपर आक्रमण कर दिया। गुप्त नरेश के सैनिकों ने उसका बहादुरी के साथ सामना किया। मिहिरकुल बन्दी बनाकर बालादित्य के समक्ष लाया गया। उन्होंने अपने कर्मचारियों को उसे प्राणदंड देने के लिये आज्ञा दी, पर उनकी माता के अनुरोध के कारण वह छोड़ दिया गया।

डॉ० भट्टशाली तथा डॉ० बसाक ने इस बालादित्य की एकता नरसिंहगुप्त बालादित्य से की है। परन्तु यह एकता असमीचीन है। नरसिंहगुप्त बालादित्य ने कभी हूणों को परास्त नहीं किया था। हुयेनसांग के बालादित्य के पिता एवं पितामह का नाम क्रमशः तथागत एवं बुधगुप्त था। नरसिंहगुप्त के पिता पुरुगुप्त एवं पितामह कुमारगुप्त प्रथम थे। हुयेनसांग के बालादित्य के पुत्र का नाम वज्र था पर नरसिंहगुप्त बालादित्य के पुत्र का नाम कुमारगुप्त द्वितीय था। दोनों के वंशवृक्ष की यह विभिन्नता हुयेनसांग के बालादित्य एवं नरसिंहगुप्त बालादित्य को सर्वथा पृथक प्रमाणित करती है।

भानुगुप्त का हूण-युद्ध—डॉ० रायचौधरी ने हुयेनसांग के बालादित्य की एकता भानुगुप्त नामक गुप्त-सम्राट् से की है।[१] उसके काल का एक लेख एरण से प्राप्त हुआ है। इसमें भानुगुप्त को एक विख्यात शूरमा सम्राट कहा गया है (**श्रीभानुगुप्तो जगति प्रवीरो राजामहान्पार्थसमोऽतिशूरो**)। इस लेख में उसके सामन्त गोपराज का नाम आता है। वह माधवराज का पुत्र तथा शरभराज का दौहित्र था। वह अपने वंश का तिलक तथा विख्यात पौरुष एवं श्रीसंपन्न व्यक्ति था। एरण के लेख के अनुसार उसने भानुगुप्त की ओर से किसी युद्ध में भाग लिया था। इसमें वह बहादुरी के साथ लड़ता हुआ मारा गया :—

"तेनाथ सार्द्धन्त्विह गोपराजो मित्रानुगत्येन किलानुयातः।
कृत्वा च युद्धं सुमहत्प्रकाशं स्वर्गं गता दिव्यनरेन्द्रकल्पः॥"

इसके उपरान्त उसकी भार्या सती हो गई (**भक्तानुरक्ता च प्रिया च**

---

१ "It is not improbable that Baladitya was a biruda of the glorious Bhanugupta." —Roychaudhari.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कान्ता भार्यावलग्नानुगताग्निराशिम्)। एरण का यह लेख प्रस्तर-स्तंभ के ऊपर उत्कीर्ण है। स्थानीय लोग शिवलिंग समझ कर इसकी पूजा करते हैं। अधिक संभव है कि इस पूजा का प्रारंभ सती-पूजा के रूप में हुआ हो।

भानुगुप्त का यह युद्ध हूणों के विरुद्ध हुआ होगा। ऊपर इस बात की चर्चा की जा चुकी है कि बुद्धगुप्त के उपरांत (५०० ई० के पश्चात्) हूणों ने एरण को जीत लिया था। भानुगुप्त का एरण का उपर्युक्त युद्ध (जो कि ५१० ई० में हुआ) इस क्षेत्र से हूणों का आधिपत्य हटाने के लिये हुआ था। एरण से भानुगुप्त-कालीन लेख की प्राप्ति इस बात का सूचक है कि इस युद्ध में विजय के फलस्वरूप इस गुप्त-नरेश ने इस प्रदेश (अर्थात् एरण-आधुनिक सागर) को जीत लिया। इसके समीपवर्ती प्रदेश पर ५१० ई० से लेकर ५२८ ई० तक शासन करने वाले परिव्राजक महाराज गुप्तों की अधीनता स्वीकार करते थे।

मिहिरकुल की अंतिम पराजय—भानुगुप्त से हारने के पश्चात् मिहिरकुल यशोधर्मा के द्वारा पराजित किया गया। मन्दसोर के शिलालेख के अनुसार उसकी उपाधि जननेन्द्र थी। जिन प्रदेशों के ऊपर गुप्त-नरेश भी नहीं शासन कर सके थे, उन पर इसने अपने प्रताप एवं बाहुबल के कारण आधिपत्य स्थापित किया (**ये भुक्ता गुप्त-नाथैर्न्न-सकल-वसुधाक्क्रान्ति दृष्टप्रतापैः**)। पूर्वी सागर से लेकर लौहित्य नदी के उपकण्ठ तक तथा पश्चिमी समुद्र से लेकर हिमालय पर्वत तक इसने विजययात्रा की थी—

"आलौहित्योपकण्ठात्तलवनगहनोपत्यकादामहेन्द्रा-
दागंगाश्लिष्टसानोस्तुहिनशिखरिणपश्चिमादापयोधेः।"

मन्दसोर के लेख से ज्ञात होता है कि उसने मिहिरकुल को परास्त किया था। इसमें काव्यात्मक ढंग से कहा गया है कि "जिसने शिव को छोड़ कर अन्य किसी के सामने अपने सिर को नहीं झुकाया तथा जिसकी भुजाओं के द्वारा आलिंगित होने के कारण हिमालय व्यर्थ ही दुर्लंघनीय दुर्ग शब्द को अभिमानपूर्वक धारण करता है, ऐसे मिहिरकुल के मस्तक को अपने बाहुबल के द्वारा यशोधर्मन ने नीचे झुका कर उसे क्लेशयुक्त किया तथा उसके

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बालों की जूट में लगे हुये पुष्पों के द्वारा अपने दोनों पैरों की उसने पूजा कराई।"

"स्थाणोरन्यत्र येन प्रणति-कृपणतां प्रापितं नोत्तमाङ्गं
यस्याश्लिष्टो भुजाभ्यां वहति हिमिगिरिदुर्ग्गशब्दाभिमानम्।
नीचैस्तेनापि यस्य प्रणति-भुजबलावर्ज्जन-क्लिष्ट-मूर्द्धा
चूडापुष्पोपहारैर्म्मिहिरकुलनृपेणार्चितं पादयुग्मम्॥"

(यशोधर्मन् का मन्दसोर का स्तम्भलेख, श्लोक ६)

लगता है कि यशोधर्मा से पराजित होने के उपरांत (अर्थात् ५३३ ई० में) गंगा-घाटी के किसी क्षेत्र के ऊपर मिहिरकुल का कोई भी राजनीतिक प्रभाव नहीं था। मंदसोर के शिला-लेख के अनुसार इस समय मिहिरकुल केवल हिमगिरि (काश्मीर एवं उसके आसपास के क्षेत्र) का शासक रह गया था।

राजतरंगिणी का वर्णन—राजतरंगिणी में भी मिहिरकुल का उल्लेख मिलता है। इस ग्रन्थ में भी वह क्रूर एवं विध्वंसकारी के रूप में वर्णित है। इसके अनुसार 'उस दुष्टकर्मा ने श्रीनगरी में मिहिरेश्वर के मन्दिर की स्थापना की तथा होलदा में मिहिरपुर नामक एक विशाल पुर का निर्माण किया। गन्धार के ब्राह्मणों ने उससे अग्रहार-दान पाया। वे भी चरित्र में उसी की कोटि के थे। वे ब्राह्मणों में सब से नीच माने जाते थे।' राजतरंगिणी के 'मिहिरेश्वर' देवता से तात्पर्य शिव से है। यशोधर्मा के मन्दसोर-लेख के अनुसार मिहिरकुल स्थाणु (शिव) का उपासक था। ग्वालियर के लेख में कहा गया है कि वह पशुपति का पुजारी था।

ग्वालियर के लेख से सूचनायें—इस लेख में ग्वालियर का प्राचीन नाम 'गोपाह्वय भूधर' कहा गया है। इसी को गोपगिरि तथा गोपाद्रि भी कहा जाता था। इस अभिलेख में इसे रमणीक प्रदेश कहा गया है। इसमें मातृचेट नामक व्यक्ति का उल्लेख मिलता है, जो कि मातृतुल का पौत्र तथा मातृदास का पुत्र था। उसने माता, पिता तथा अपने यश एवं पुण्य की वृद्धि के लिये ग्वालियर में एक सूर्य-मन्दिर का निर्माण किया था :—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

"नानाधातुविचित्रे गोपाह्वयनाम्नि भूधरे रम्ये।
कारितवान्शैलमयं भानोः प्रासाद-वर-मुख्यम् ॥"

इससे लगता है कि उस समय सूर्य-पूजा का पर्याप्त प्रचार था। उपर्युक्त लेख के अनुसार जो लोग चन्द्रमा की किरणों के समान धवल सूर्य-मन्दिर का निर्माण करते हैं, उन्हें स्वर्ग में अखण्ड स्थान उपलब्ध होता है।

मिहिरकुलोत्तर हूण-इतिहास—मिहिरकुल के उपरांत हूणों का इतिहास अन्धकारमय हो जाता है। डॉ० हीरानन्द शास्त्री ने 'नालन्दा ऐंड इट्स एपिग्रैफिक मैटिरियल्स' नामक पुस्तक तथा श्री ए० घोष ने 'इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली' (जिल्द १६) में प्रकाशित एक लेख में इतिहासकारों का ध्यान किसी राजवंश के क्रमिक नरेशों के नामों की ओर आकर्षित किया है। इनके विषय में सूचना नालन्दा से प्राप्त दो मुद्रा-लेखों के द्वारा प्राप्त होती है :—

महाराज लवखाण
|
महाराजाधिराज (नाम लेख से लुप्त)
महिषी—विटववदेवी
|
(महाराज) जरीव
महिषी—मेलयदेवी
|
महाराजाधिराज (नाम लेख से लुप्त)
|
नाम लुप्त
(मुद्रा का निर्माता)

नालन्दा के मुद्रा-लेख के लवखाण तथा जरीव की पहचान लखाण तथा जरी नामक हूण-सम्राटों के साथ की जा सकती है, जिनके विषय में सिक्कों के द्वारा सूचना उपलब्ध होती है। लगता है कि लवखाण को ही राज-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तरंगिणी में लखाण नरेन्द्रादित्य कहा गया है। इन हूण-शासकों ने मिहिरकुल के पश्चात् राज्य किया होगा (द्रष्टव्य—सुधाकर चट्टोपाध्याय, अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृष्ठ २२४-२२५)।

मौखरियों की हूण-विजय—५५० ई० से लेकर ६०६ ई० तक उत्तर-पश्चिम भारतवर्ष में हूणों के वर्तमान होने की सूचना भारतीय ग्रंथों के द्वारा उपलब्ध होती है। ५५० ई० में गुप्तसाम्राज्य के अधःपतन के अनन्तर इस राजवंश के नरेशों के सामंत स्वतंत्र होने लगे। ईशानवर्मा के नेतृत्व में मौखरि तथा कुमारगुप्त के नेतृत्व में उत्तरगुप्त स्वतंत्र हो गये। उत्तरी भारतवर्ष में सार्वभौम सत्ता की स्थापना के निमित्त दोनों नरेशों के बीच युद्ध प्रारम्भ हुआ, जिसके विषय में अफसढ़ के लेख के द्वारा सूचना प्राप्त होती है। ईशानवर्मा शक्तिशाली था। उसे अफसढ़ के लेख में राजाओं में शशि-तुल्य कहा गया है तथा उसकी सेना की तुलना क्षीरसागर से की गई है **(भीमः श्रीशानवर्मा क्षितिपतिशशिनः सैन्यदुग्धोदसिंधुः)**।

गुप्तों के अधःपतन के उपरांत अनुकूल अवसर पाकर हूणों ने गंगा-घाटी पर आधिपत्य जमाने के लिये आक्रमण कर दिया। ईशानवर्मा ने इन्हें पराजित किया। हरहा के लेख के अनुसार ईशानवर्मा ने पृथ्वी का एक ऐसे समय उद्धार किया, जब वह कलि-प्रकोप से डगमगाकर रसातलरूपी समुद्र में डूबने जा रही थी। यह संभवतः हूणों के द्वारा किये गये हुये उपद्रव की ओर संकेत करता है। अफसढ़ के लेख में मौखरि-सेना को हूणों का विजेता कहा गया है। इसके अनुसार इसमें अनेक हाथी थे। जब मौखरियों की गज-सेना समरांगण में उतरती थी, उस समय लगता था मानो काले बादलों की घटा छा गई हो **(यो मौखरेः समितिषूद्धतहूणसैन्यवल्गद्घटाविघटयन्नुरुवारणानाम्)**।

मुद्राराक्षस में अवन्तिवर्मा को म्लेच्छों से पीड़ित **(म्लेच्छैः उद्वेज्यमाना)** वसुधा की रक्षा करने वाला कहा गया है। यहाँ पर म्लेच्छों से तात्पर्य हूणों से है। पुराणों में हूणों को म्लेच्छ कहा गया है (**प्रजास्ते भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छाः राजन्यरूपिणः**)।

वर्द्धनों का हूण-युद्ध—इस समय वर्द्धनों का भी हूणों के साथ युद्ध हुआ। हर्षचरित के अनुसार प्रभाकरवर्द्धन हूणरूपी हरिण के लिये केसरी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के तुल्य थे (हूणहरिणकेसरी)। उन्होंने अपने शासनकाल के अन्तिम वर्ष (६०५ ई०) में हूणों को हराने के लिये राज्यवर्द्धन को उत्तर दिशा में भेजा था (हूणान्हन्तुं उत्तरदिशिं प्राहिणोत्)।

हूण-मुद्रायें—यहाँ पर उल्लेखनीय है कि हूणों की कतिपय मुद्रायें भी उपलब्ध हैं। इनमें दो विशेषतायें प्रधान रूप से दृष्टिगोचर होती हैं:—(१) इनके सिक्के चाँदी एवं ताँबे के द्वारा निर्मित हैं। इनकी कोई सुवर्ण-मुद्रा नहीं प्राप्त हुई है। (२) इनकी मुद्राओं में कोई मौलिकता नहीं दृष्टिगोचर होती। जिन प्रदेशों को हूणों ने जीता, उनमें प्रचलित मुद्राओं के अनुकरण पर उन्होंने अपने सिक्कों का निर्माण किया।

उनकी सबसे प्रारम्भिक मुद्रायें ससैनियन सम्राटों से जीते गये हुये प्रदेशों में प्रचलित करने के निमित्त तैयार की गई थीं। अतएव उन पर ससैनियन मुद्राओं का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। वे आकार में पतले किन्तु लम्बे हैं। उनसे मुख-भाग पर ससैनियन शैली में सम्राट की ऊर्ध्वकाय मूर्ति अंकित है तथा पृष्ठ भाग पर अग्निकुण्ड एवं अग्नि-परिचारकों के चित्र उत्कीर्ण मिलते हैं।

जब हूणों ने उत्तर-पश्चिम भारतवर्ष में पहली बार प्रवेश किया, उस समय उन्होंने अपनी मुद्राओं के ऊपर हिन्दू प्रतीकों के चिन्हों को अंकित करना प्रारम्भ किया; उदाहरणार्थ शंख, चक्र तथा त्रिशूल। उनके मुद्रा-लेख अब पह्लवी के स्थान पर ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण किये जाने लगे। पंजाब एवं काश्मीर को जीत लेने के अनन्तर उन्होंने कुषाण-सिक्कों का अनुकरण किया। मध्य भारत को जीतने के पश्चात् उन्हें गुप्त-मुद्राओं के आदर्श पर अपने सिक्कों को प्रचलित कराने की आवश्यकता प्रतीत हुई। इस कोटि की रजत-मुद्राओं के मुख-भाग पर राजा के शरीर का ऊपरी हिस्सा तथा पृष्ठ-भाग पर मोर का चित्र अंकित मिलता है। इन पर सम्राट की विरुद गुप्त-सम्राटों की विरुद से समानता रखती है; उदाहरणार्थ 'विजितावनिरपति-श्रीतोरमाण'।

गुप्तों के अनुकरण पर तैयार की गई ताम्र-मुद्राओं के मुख-भाग पर राजा का चित्र तथा पृष्ठ-भाग के ऊपरी हिस्से में प्रतीक-चिन्ह एवं निचले

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हिस्से में राजा का नाम अंकित मिलता है। तोरमाण की मुद्राओं में उसे 'शाहि जवुल' कहा गया है। कुर के लेख में उसके नाम के साथ 'शाहि-जऊब्ल' लेख मिलता है। पहले इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि जवुल (अथवा जऊब्ल) सामन्त-उपाधि थी। मिहिरकुल के सिक्कों के एक ओर ऊपरी हिस्से में नन्दि का चित्र तथा निचले हिस्से में 'जयतु वृषभः' लेख मिलता है। इससे स्पष्ट है कि वह शैव मतावलम्बी था। मिहिरकुल की मुद्राओं में गुप्त-सिक्कों के अनुकरण का कोई प्रमाण नहीं मिलता। अतएव कहा जा सकता है कि उसके समय में गुप्तों के प्रान्तों पर हूणों का कोई राजनीतिक प्रभाव अधिक समय तक नहीं था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्रन्थ-सूचा

अलेक्ज़ेंडर दी ग्रेट—टार्न डब्लू० डब्लू०
अलेक्ज़ेंडर दी ग्रेट—राबिन्सन सी० ए०
अलेक्ज़ेंडर दी ग्रेट—ह्वीलर बी० आई०
अर्ली कामर्स विथ बैबीलन (ज० रॉ० ए० सो०, १८६८, पृष्ठ २५० तथा आगे)—केनेडी जे०
आवर ओरियेंटल हेरिटेज—विल ड्यूरैंट
ऑन य्वान च्वांग, जिल्द १ तथा २, वाटर्स
आर्ट इन ऐंशेंट रोम—स्ट्रांग ई० यस०
आयोनिया ऐंड दी ईस्ट—होगर्थ डी० जी०
आर्क्यालॉजिकल हिस्ट्री ऑफ ईरान—हर्ज़फेल्ड ई०
इंडिया ऐंड ईरान थ्रू दी एजेज़—देवार, एफ० सी०
इंडिया ऐंड चाइना—बागची, पी० सी०
इनरमोस्ट एशिया ऐज़ ए फैक्टर इन हिस्ट्री—स्ताइन, ऑरेल
इंटरकोर्स बिटवीन इंडिया ऐंड दी वेस्टर्न वर्ल्ड—रालिन्सन, एच० जी०
इनरमोस्ट एशिया—स्ताइन, ऑरेल
इंडिया ऐंड सेन्ट्रल एशिया—चक्रवर्ती, एन० पी०
इंडिया ऐज़ नोन टू ऐंशेंट वर्ल्ड—बैनर्जी, जी० यन०
इंडियन कल्चरल इन्फ्लुयेंस इन कम्बोडिया—चटर्जी बी० आर०
इंडियन ट्रैवेल्स ऑफ ऐपोलोनियस—प्रायलक्स
इंडियन लिटरेचर इन चाइना ऐंड दी फार ईस्ट—मुकुर्जी पी० के०
इंडियन कल्चर—रेनो लुई
ईरान—घर्शमन आर०
ईरान ऐंड इट्स कल्चर—देवार एफ० सी०
ए हिस्ट्री ऑफ दी ऐंशेंट वर्ल्ड, जिल्द २, रोस्टोवत्ज़ेफ एम० आई०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ए हिस्ट्री ऑफ दी पर्सियन इम्पायर—आम्स्टेड ए० टी०
ए हिस्ट्री ऑफ ऐंशेंट पर्सिया—रोजर्स, आर० डब्लू०
ए हिस्ट्री ऑफ रोम—बोक, ए० ई० आर०
ए हिस्ट्री ऑफ रोम डाउन टू दी रेन ऑफ कांस्टैन्टाइन—कैरी, एम०
ए हिस्ट्री ऑफ रोम—फ्रैंक टी०
ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ दी रोमन इम्पायर—वेल्स जी०
एजुकेशन इन ऐंशेंट इंडिया—अल्टेकर ए० यस०
ए हिस्ट्री ऑफ दी पर्सियन इम्पायर—आम्स्टेड ए० टी०
ए स्टडी ऑफ हिस्ट्री—टॉयनबी आर्नाल्ड
ए सर्वे ऑफ वर्ल्ड सिविलाइज़ेशन्स, जिल्द १, बर्न्स
ए हैन्डबुक ऑफ वेस्टर्न सिविलाइज़ेशन, मोनील डब्लू० एच०
ए हिस्ट्री ऑफ ऐंशेंट वर्ल्ड—स्मिथ ऐंड मूरलैंड
ए स्मालर हिस्ट्री ऑफ दी रोमन इम्पायर—स्मिथ बी० ए०
ऐंशेन्ट वर्ल्ड—काल्डवेल डब्लू आर०
ऐंशेन्ट पर्सिया ऐंड इरानियन सिविलाइज़ेशन—हुअर्ट सी०
ऐंशेन्ट खोतान—स्ताइन ए०
ऐंशेन्ट इंडियन कल्चर इन अफगानिस्तान—घोषाल यू० यन
ऐंशेंट इंडियन कालोनीज़ इन फार ईस्ट—मजुमदार र० च०
ऐंशेंट इंडियन एजुकेशन—मुकर्जी रा० कु०
ऐन इंट्रोडक्शन टू हिस्ट्री ऑफ रोम—अस्मन एच० यन०
ऐंशेंट ग्रीक हिस्ट्री—बरी जे० डब्लू०
ऐंशेंट इंडियन सिविलाइज़ेशन—मुकर्जी रा० कु०
ऐन इन्ट्रोडक्शन टू वर्ल्ड हिस्ट्री—साउथ गेट जी० डब्लू०
ऐंशेंट खोतान—स्ताइन आरेल
ऐंशेंट पार्थियन ऐंड इरानियन सिविलाइज़ेशन—होगार्थ डी० जी०
ऐंशेंट रोम ऐट वर्क—लुई पी०
क्लैसिकल एज—मजुमदार र० च०
कम्बुजदेश—मजुमदार र० च०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
कामर्स बिटवीन दी रोमन इम्पायर ऐंड इंडिया—वार्मिङ्गटन ई० एच०
कारपोरेट लाइफ इन ऐंशेंट इंडिया—मजुमदार र० च०
कांक्वेस्ट ऑफ सिविलाइज़ेशंस—जेम्स हेनरी
कांप्रिहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया—बनर्जी जे० यन०
ग्रीको रोमन इन्फ्लुयेंस ऑन सिविलाइज़ेशन ऑफ ऐंशेंट इंडिया (जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसायटी बंगाल, ५८, पृष्ठ १०७ और आगे)—स्मिथ वी० ए०
ग्रीक्स इन बैक्ट्रिआ ऐंड इंडिया—टार्न डब्लू० डब्लू०
ग्रीक इम्पीरियलिज़्म—फर्गुसन डब्लू० एस०
चम्पा—मजुमदार र० च०
चाइना—फिट्ज़रल्ड
चाइनीज़ सिविलाइज़ेशन्स—ग्रेनेट एम०
जेनरल हिस्ट्री ऑफ रोम—चार्ल्स मरविले
ट्वेन्टी फाइव हंड्रेड इयर्स ऑफ बुद्धिज़्म—बापत पी० वी०
ट्रेड रूट ऐंड कामर्स आफ दी रोमन इम्पायर—चार्ल्सवर्थ एम० पी०
डिक्शनरी ऑफ ग्रीक ऐंड रोमन ऐंटिक्वीटीज़—स्मिथ, विलियम
डिक्लाइन ऐंड फाल ऑफ दी रोमन इम्पायर—गिबन (जिल्द १, २, ३)
डिक्लाइन ऑफ दी रोमन रिपब्लिक—लांग जी०
डिक्लाइन ऐंड फाल ऑफ दी रोमन इम्पायर—स्मिथ वी० ए०
दि बर्थ आफ सिविलाइज़ेशन इन दी नियर ईस्ट—फ्रैन्कफर्ट एच०
दि ऐंशेंट वर्ल्ड, जिल्द २, स्वेन जे० डब्लू०
दि लाइफ आफ ग्रीस—विल ड्यूरैंट
दि चाइनीज़, देयर हिस्ट्री ऐंड कल्चर—लातुरेत के० यस०
दि ग्रेट कल्चरल ट्रेडीशन्स, जिल्द २—टर्नर रैल्फ
दि हार्पर हिस्ट्री आफ सिविलाइज़ेशन—स्वेन जे० डब्लू०
दि हेलेनिस्टिक एज—बरी जे० डब्लू०
दि ग्रीक्स इन बैक्ट्रिआ ऐंड इंडिया—टार्न डब्लू० डब्लू०
दि लिगेसी ऑफ रोम—बेली सी०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दि अचीवमेंट ऑफ रोम—ग्रीन डब्लू० सी०
दि लिगेसी ऑफ रोम—बर्ग
दि ग्रैंडुअर दैट वाज़ रोम—स्टोबर्ट जे० सी०
दि रेलिजस लाइफ आफ एँशेंट रोम—कार्टर जे० बी०
दि पर्सियन्स—रास ई० डी०
दि आउटलाइन ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री—डेविस एच० ए०
दि लिगेसी ऑफ अलेक्ज़ेंडर—केरी यम०
दि सोशल ऐंड इकोनामिक हिस्ट्री ऑफ दि हेलेनिस्टिक वर्ल्ड—रोस्टोवत्ज़ेफ, एम० आई०
दि कामन पीपुल आफ एँशेंट रोम—ऐबोट एफ० एफ०
दि मेकिंग ऑफ ग्रेटर इंडिया—वेलीस, एच० जी० क्यू०
दि वंडर दैट वाज़ इंडिया—बैशम ए० यल०
दि एज आफ दी नन्दाज़ ऐंड मौर्याज़—शास्त्री के० ए० यन०
दि एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी—मजुमदार र० च०
दि हिस्ट्री ऑफ दी रोमन इम्पायर डाउन टु दि रेन आफ कांस्टैन्टाइन—केरी यम०
दि ग्रीक ऐंड रोमन वर्ल्ड—केरी ऐंड हारहेफ
दि कान्कवेस्ट ऑफ सिविलाइज़ेशन—ब्रेस्टेड जे० यच०
दि हिस्ट्री ऑफ रोम, जिल्द १, २ तथा ३—थियोडोर यम०
दि रोमन वर्ल्ड—मूर एफ० जी०
दि ट्रेडीशन ऑफ दी रोमन इम्पायर—रसेल सी० यच०
दि हिस्ट्री ऑफ रोम—रोबिन्सन
दि डेवेलमभेंट आफ दी वेस्टर्न सिविलाइज़ेशन्स—हेन्स सी० जी०
दि एँशेंट एक्सप्लोरर्स—वार्मिंगटन
दि होली रोमन इम्पायर—ब्राइस
पेरिक्लीज़ ऐंड दी गोल्डेन एज ऑफ एथेन्स—एबोट ई०
पेरिक्लीज़ ऐंड एथेन्स—बर्न ए० आर०
पोज़ीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइज़ेशन—अल्टेकर ए० यस०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फारेन इन्फ्लुयेन्सेज़ इन दी सिविलाइज़ेशन आफ ऐंशेंट इंडिया—रालिन्सन एच० जी०

फारेन नोटिसेज़ ऑफ साउथ इंडिया—शास्त्री के० ए० यन०
फार ईस्ट—शास्त्री के० ए० यन०
बुद्धिस्ट आर्ट इन इंडिया, सीलोन ऐंड जावा—फोगेल
यूरोप ऐंड चाइना—हडसन जी० ई०
रोम ऐंड दी रोमन्स—शोरमन जी०
रोम बियांड दि इम्पीरियल फ्रंटियर्स—ह्वीलर
रोमन स्टोइसिज़म—आर्नाल्ड ई० वी०
रोमन इम्पायर इन दी सेकेन्ड सेन्चुरी ए० डी०—केप्स डब्लू० डब्लू०
रोम ऐंड चाइना—ट्रेगर्ट
रोम—ट्रेवर आर० जी०
रोमन सोसायटी फ्राम नीरो टू मार्कस आरेलियस—हिल सेन्यूल
रोमन हिस्ट्री—नीवर
रोम—फाउलर डब्लू० डब्लू०
रोमन इम्पायर—रेड जे० यस०
रोमन रिपब्लिक—ह्वीलर डब्लू० ई०
रेकर्डस ऑफ दी बुद्धिस्ट रेलिजन—तक्कुसु
लिगेसी ऑफ रोम—फलिग्नो ऐंड अर्नेस्ट
लाइफ ऑफ ग्रीस—विल ड्यूरैंट
लोकल गवर्नमेंट इन ऐंशैंट इंडिया—मुकर्जी रा० कु०
लाइफ इन दी गुप्ता एज—सैलेटोर आर० यन०
लाइफ इन रोमन वर्ल्ड—टूकर एफ० जी०
वर्ल्ड हिस्ट्री ऐट ए ग्लान्स—रीथर जे०
वाकाटक-गुप्त एज—मजुमदार र० च०
वाल पेंटिंग्स ऑफ इंडिया, सेंट्रल एशिया ऐंड सीलोन—बेनजैमिन आर०
सीज़र ऐंड क्राइस्ट—विल ड्यूरैंट
साइंस ऐंड सिविलाइज़ेशन इन चाइना, जिल्द १—नीढम जोसेफ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्टोइक्स, एपिक्यूरियन्स ऐंड स्केप्टिक्स—ज़ेलर एफ०
सुवर्णद्वीप—मजुमदार र० च०
साउथ इंडियन इन्फ्लुयेंसेज़ इन दी फार ईस्ट—शास्त्री के० ए० यन०
सोशल लाइफ इन एंशेंट इंडिया—चकलदार ह० च०
सिटीज़ ऐंड सिटी-लाइफ इन ऐंशेंट इंडिया, थीसिस, राय यू० यन०
स्टडीज़ ऑफ रोमन इम्पीरियलिज़्म—आर्नाल्ड ई० वी०
सिसरो ऐंड रोमन रिपब्लिक—कावेल आर०
स्टडीज़ इन ऐंशेंट पर्सियन हिस्ट्री—करशेस्फ पी०
स्टोरी ऑफ नेशन्स, रोम—गिलमैन
सोशल लाइफ ऐट रोम—फाउलर डब्लू० डब्लू०
स्टोइक्स ऐंड स्केप्टिक्स—बेवन ई० आर०
सोशल ऐंड इकानामिक हिस्ट्री ऑफ दी रोमन इम्पायर—रोस्टोवत्ज़ेफ एम० आई०
स्टोरी ऑफ नेशन्स, पार्थिया (जिल्द ३४)—रालिन्सन
स्टोइसिज़्म ऐंड इट्स इन्फ्लुयेंस—वेनले आर० यम०
स्टोइक्स ऐंड एपीक्यूरियन्स—हिक्स आर० डी०
सिविलाइज़ेशन्स इन यूरोप—शेपिरो
हिस्ट्री ऑफ ऐंशेंट सिविलाइज़ेशन, जिल्द १ तथा २—ट्रेवर
हिस्ट्री ऑफ दी वर्ल्ड—वीच डब्लू० यन०
हेलेनिस्टिक सिविलाइज़ेशन—टार्न डब्लू० डब्लू०
हेलेनिस्टक फिलासफीज़—मूर पां० ई०
हेलेनिस्टिक आर्किटेक्चर—फाइफ टी०
हेलेनिस्टिक स्कल्पचर—डिकेन्स जी०
हिस्ट्री ऑफ दी ऐंशेंट वर्ल्ड, जिल्द १ तथा २—फान सिकिल
हेलेनिस्टिक मिलिटरी ऐंड नैवेल डेवेलपमेंट—टार्न डब्लू० डब्लू०
हेलेनिज़्म इन ऐंशेंट इंडिया—बैनर्जी जी० यन०
हिन्दू कालोनीज़ इन फार ईस्ट—मजुमदार र० च०
हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र—काणे पी० वी०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हिन्दू सिविलाइज़ेशन—मुकर्जी रा० कु०
हिस्ट्री ऑफ रोम, जिल्द १, २, ३—आर्नाल्ड ई० वी०
हेलेनिस्टिक एज—एबोट ई०
हिस्ट्री ऑफ अर्ली ईरान—केमरून
हिस्ट्री ऑफ सिविलाइज़ेशन्स—ग्यूज़ेट एफ०
हेलेनिस्टिक स्कल्पचर—डिकेन्स जी०
हेलेनिस्टिक एथेंस—फर्गुसन डब्लू० यस०
हेलेनिस्टिक आर्किटेक्चर—फाइफ टी०
हिस्ट्री ऑफ दी ईस्टर्न रोमन इम्पायर—बरी जे० बी०
हिस्ट्री ऑफ दी ईस्टर्न रोमन इम्पायर—बरी जे० बी०
हिस्ट्री ऑफ साइन्सेज़ इन ग्रीको-रोमन हिस्ट्री—आर्नाल्ड रेमन्ड
हिस्ट्री ऑफ रोम—लिडेल एच० डी०
हिस्ट्री ऑफ रोम—स्टुअर्ट जोन्स यच०
हेलेनिस्टिक कल्चर—फ्यूज़न ऐंड डिफ्यूज़न
हिस्ट्री ऑफ पर्सिया—साइक्स

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शब्दानुक्रमणी

अरस्तू १८, २७, ४७, ५१, ८०, ८७
अंतियोक २२, १५०
अफ्रीका २३, १०२, १३१
असीरिया २४, ३१, २६२
अलेक्ज़ेन्ड्रिआ २६
अस्टीस २७
अस्टक २७
अम्बष्ठ २८, २६
अर्जुनायन २८, २६
अगलस्सोई २८
अलसन्द ३०
अशोक ३०
अफगानिस्तान ३१
अर्तज़रक्जीस ३२
अरिस्टार्कस ४३
अरब ४६, ५४
अटलांटिक ५२
अमेरिका ५२
अम्ब्रेसिया ५४
अलेक्ज़ेन्डर सर्कोफेगस ५८
अग्रिपिन्ना टाइबेरियस १५२
अलेक्ज़ेन्डर सेवेरस १६०
अनुविस ८२
अमोघवज्र २७६
अर्सेकिज़ प्रथम २६१
असाक २६१
आलिम्पिआस १६, १५५
आर्बेला २४, ३०४
आम्फीस २८
आक्सीद्रकाई २८
आभीर २६
आइसोक्रेटीज़ २६
आगस्टस ३५, ६८, १२५ १३१, २६६
ऑन दी ओशन ५१
आर्कटिक ५२
आयोनिक ५६
ऑर्किमिडीज़ ६४, ६६
ऑन स्पिरल्स ६४
ऑन फ्लोटिंग ब्रॉडीज़ ६४
ऑन किंगशिप ७४
आर्केसिलस ७६
आल्पस १०५
आप्टीमेट्स ११०, ११७
आक्टेवियन १२४, १२५
आगस्टोडनम १४३
ऑन की सब्लाइम १४३
आक्टेविया १५४
आर्मेनिया १५७, २६४

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आइसिस १८१
आस्पीसियम १६४
आहुरमज़्द ३१४
इलीरियन २०, २१, २४
ईसस २१, ३१
इप्सस ३६
इरैटोस्थनीज़ ४३, ४५, ६३
इफेसस ४३, १५०
इटली ५०, १०२, १०७
इरैसिस्ट्रेटस ६३, ६७
इनीड १३३, १४१
इपोड्स १३५
ईजियन ३०, ८६
ईरानी २६
ईलियड १३४
उपनिवेश २१, ४०
एथेन्स १७, २०, ३७, ७०, ७५
एशिया माइनर २१, ३६, ५१, ३२७
एन्टीपेटर २१, २४
एशिया २३, ३६, ४०
एजिस २४
एमन २४
एकबतना २५, २६२
एरियन २८, ४१
एपोलोनियस ४३, ६२, ६३
एपिरस ४४, १०६
एलेक्सीज़ ४६
एगाथर्काइडीज़ ५१
एपोलोडोरस ५१
एम्पीथियेटर ५६
एपोलो ५६, ५६
एफ्रोडाइट ५६
एरिस्टार्कस ६२, ६६
एस्किलपियाडीज़ ६८
एन्टीगोनस ७०
एपीक्यूरियन ७५, ७७,
एपीक्यूरियस ७५, ७८
एनेसिडेमस ७६
एलेक्टिसिज़्म ८०
एन्टोस्थनीज़ ८०
एडाइल ६७, ११५
एट्रूस्कन ६१, १००, १०१
एक्वियन १००
एब्रो १०३
एपिरस १०६
एनाल्स ऑफ दी रोम ११४
एमिलिनौस ११५
एन्टोनियस १२०
एलिज़ाबेथ १३२
एक्लोग्स १३३
एपिस्टिल्स १३६
एपोलो १४४, १४६
एरापेसीज़ १४५
एरियस १४६
एन्टोनाइन १५१, १५७
एथेनियस १५६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एलेगेबलस १६०
एपिफेनीज़ ८१
एनाल्स पोंटीफिक्स ८६
एनाल्स मेक्सीमी ८६
एनियस ८६
एलो-पेन २७६
ऐबेस्टनोई २६
ऐन्टीगोनस ३६,४६
ऐन्टोनी १२४,२६६
ऐल्बियस टिबुलस १३७
ऐमोरस १३८
ऐंटोनिस १५६
ऐगाथोक्लीज़ २६१
ओल्ड टोस्टामेन्ट ३८
ओरेशन्स अगेन्स्ट गेयस
वेरस १२०
ओविड १२६,१४४
ओडिसी ११४,१३४
ओड्स १३६
ओथो १५५
ओरिसिस १८३
ओरोड्स द्वितीय २६६
कठ २८
कर्टियस २६,४१
कमीशिआ सेंचुरिआटा ६८
कमीशिआ ट्रिबुटा ६८
कमोडियस १५८
काबुल २७
काश्मीर २८
कात्यायन २६
कार्थेज़ ४३,४६
कार्डिया ४४
कांस्टैंटिनोपुल ५६
कापर्निकस ६२
कार्नीडीज़ ७६, ११४
कार्सिका १०२, १०७
कादकार्ड १४३
कालेजिआ १४६
कालिगुला १५३
क्लाडियस १५४
क्लायंट ६३
क्लिटस २६
क्लिटार्कस ४८
क्रिडेनस ६३
क्लिन्थीज़ ७०, ७१
क्लिटोमेकस ७६
क्विन्टस एनियस ११८
क्विंटलस १२१
क्लिओपात्रा १२५
क्विंटिलियन १३६
क्रीसिप्पस ७०, ७१
कुरुक्षेत्र २६
केलिस्थनीज़ २७
क्रेट्स ४६
क्वेस्टर ६७, ६८
केमलस ११८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्रेसस १२०, २६६
केसियस १२४, १२५
केडिज १४१
कैठेग्रोई २८
कैलीमेकस ४३, ४८, ४६
कैमीकोलिग्रान ४४
कैसेन्डर ७४
कैटो ६६, ११५
कैटीलाइन १२०, १२१
कैस्टर्न १४३
कैरेकल्ला १५६, ३०४
कैन्टन २७५, २७६
कोरिन्थ २०, ८६, १५०
कोरिया ३८
कोनिक्स ६३
क्रोनोग्राफिग्रा ६४
क्रोन्टन ११८
क्योर ऑफ लव १३८
कोरिना १३८
कौरव २६
खुर्श-ए-ग्रर्देशिर ३२०
गन्धार २७३
गल्बा २८५
गार्डनर २६०
गिबन ३०४
ग्रेयस नेवियस ११४
ग्रेकस लॉ ११
गेयस ग्रेकस ११८
गेयस मेरियस ११८, ११६
गेयस १५२
ग्लैडस्टन १३६
गैमेलस १५२, १५३
चन्द्रगुप्तमौर्य ३०
चंगगन २७३
चारेस ५६
चॉसर १३६
चालुक्य २७८
चाउ तुन-ई २८६
चीन ३८, ५१
चुग्रन-चाऊ २७५
चेनाब २८।३०
चेन-मेन २७७
चेंग-चिग्राग्रो २८३
चेंग-हाग्रो २८६
चेंग प्रथम २८६
ज़रक्सीज़ २५, २८
जर्मनी १०५
जर्मेनिकस १५२, १५४
जातक २८
जापान ३८
ज़ार १२४
ज़ियस-एमन २४, ५८, ११५
ज़िग्राग्रैफिका ६४, १४८
जिग्रार्जिक्स १३३
जुपीटर ६४, ११५
जुपीटर कैपिटोलिनस १४४
जूलियस सीज़र ४५, १२६, २६६
जूडिग्रा ४६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जूनो ११५
जूरी ११६, १२०
जूलिया १२१, १३६
जूलियन कैलेन्डर १२३
जूलियन लाज़ १२६, १५०
जूलियस हाइज़िनस १४१
जूलिश्रो क्लाडियन १५१
जूलेनियस १५६
जेड्रोशिश्रा ३०
जेनोफेन ३५
ज़ेनो ४७, ६०, ६४
जेमिनस ६४
ज़ेनस १४४
जेरुस्लम १५३
जेक्सार्टिस ८६
जेन्टीज़ ६३
जैकोवाइट २७५
झेलम २७, ३१
टर्संस ३६, ७१
टर्गिस ५५
टालेमी ३५, ४५, ६३, १२१
टायर २२, २४, ३१
टाइबर ६१, १००
टाइबेरियस ग्रेकस ११७, १४८, १५२, १५६
ट्राय ६०
टार्क्विन प्रथम ६२
टार्क्विन दी प्राइड ६२
ट्रिब्यून ६७, ११६
ट्रिब्यूटम सोली १३०
ट्रिब्यूटम कैपिटीज़ १३०
टिटस १५६
ट्यूरिन १४३
टैलेन्ट २५, १०३, १०७
ट्रेजन ३५, ६०, १५७
ट्रेवर ४६, ५४, ८५, १७०
टेरेन्टम ५४, ११८
टेसिवियस ६६
टेरेन्स ११४
टेसीटस १५३, ३१३
ट्वेल्व टेबुल्स १८६, १६६
टोमी १३६
ड्रायसेन ४१
डायोज़िनीज़ ८०, १५६
ड्राइडन १३३
डायोकोसियस १५६
डिश्रोडोरस २८, ४१, १४२
डिकार्कस ४६, ५२
डिमाक्रिटस ७७
डियो १२२
डियोनिसियस १४२
डिवाइन जूलियस १४४
डियोकेसियस १५६
ड्रूसस १५२
डैन्यूब २०, १५७
डेनोक्रेटीज़ २३
डेलोस ५५
डेमोस्थनीज़ ५६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
डेलिश्रा १३७
डोमिशियस १५४, १५६
डोमिनस एट डिश्रस १५६
तक्षशिला २७, ३८
तंग सम्राट २७३
तंग-ए सरवाक २६७
तख्ते-रुस्तम ३२०
ताई-सुंग २७६
ताश्रो २८०
ताइत्सु २८१
ताई-पिंग २८१
तिब्बत ३८
तिमन ७८
तिरिदतीज़ २६१
तुषास्फ ३०
तुर्किस्तान ५१
तुंग तियेन २८०
तू-यू २८०
तोश्रो-सुश्रन २७७
थर्मम ५२
थियोफ्रेस्टस ४६, ६७, ८०
थिश्राक्रिटस ४६, १३३
थिश्रोस ८१
थिश्रोगेटस २६१
थीब्ज़ १७, २१, ४६
थ्यूसीडाइड्स ४३, ४४, १४०
थ्रेस १७, १४७, ३२६
थेसली १७
थेस्सैलोनिया १५०
दमिश्क २२, ४५, ३१०
दज़ला २४, १३१
दारा तृतीय २१, २२, ३५
दान्ते १३४
दी लाइफ श्रॉफ हेलाज़ ४६
दी मेथड ६४
दी मेज़रमेन्ट श्रॉफ ए सर्किल ६४
दी काड्रेचर श्रॉफ दी पैरेबोला ६४
दी स्फियर ऐन्ड दी सिलिन्डर ६४
दी सैण्ड रेकनर ६४
दी हिस्ट्री श्रॉफ दी प्लान्टस ६७
दी काज़ेज़ श्रॉफ प्लांट्स ६७
नर्वा १५६, १५७
नाइक ५६
निकाइया ३०
निश्रार्कस ३०, ५२
निश्रोप्लेटोनिज़्म ३१, ३५
निकोलस ४५, १४३
निश्रोपाइथागोरियन १४६
निब्रिया ८७
नील १८, २३
नीरो १४६, १५४, ३६०
न्यूटन ६४
न्यूयार्क १५०
नेपुल्स १३३
नेस्टोरियन २७६, ३३४
नैपोलियन १०४, ३२६
पर्मेनिश्रो २२, २४, २६
पर्सिपोलिस २५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर्गेमम ४३, ५५, ५८, ८५, १५०
पर्सियस १०७
पार्थिया २६
पाणिनि २८
पॉटलिपुत्र ३०, ३१५
पालीब्रियस ४१, ६०, ११४
पाइथागोरस ६१
प्रायटर ६७, १२३
पापुलरेस १११
पाम्पी ११६, १२१, १२३, १४५
पांटीफेक्स मैक्सीमस १२०, १२२
पाम्पियस ट्रोगस १४१
पार्थेनन १४५
पिरोज़ ४४
पिथिसस ५२
प्लिनी ५४, १४१, १५१
पिरोह ७८
प्रिंसिपुल ऑफ आर्केमिडीज़ ६५
पिट १३६
पिसो १५२
पीटर महान १७
पुरु २८
प्लूटार्क १८, ३५, ४१, ३०४, ३१०
प्यूकेलाओतीस २७
प्यूनिक युद्ध १०१, १०४
पेलुसिअस २३
पेरिप्लस ३०
पेरीसतीज़ ३२
पैलेस्तीन ३६
प्लेटो ३६, ३८, ७० ३३५
पेरिपिटेटिक ४६, ८०
पेरीक्लीज़ ५२, ६६ १६२
प्रेक्सीटेलीज़ ५८
पेट्रीशियन ६३, ६६
प्लेब्रियन ६३, ६६, १३०
प्लेटस ११४
पेनेटियस ११५
पेटर पेट्रीआई १२२, १२६
पेरिस १५०
पैसीडोनियस ४४, ६१
पैट्रिआ पोटेस्टाज़ ६३
पोर्ट सईद २३
पोरस २८, ३०
पोंटुस ३६
पोएम्स ऑफ सैडनेस १३६
पोर्ट्रेचर १४४
पोपिया सेबिना १५४
पोर्ट नैक्स १५६
पौरव २८
फरात २२, ५१, २६३
फारस २१, २५, ३८, ५४
फाहियान ३०
फॉर्चून ऑफ एन्टिओक ६०
फॉक्स १३६
फास्टी १३८
फासियांग २७६
फिलिप १७, १६, ५५
फिलोटस २६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
फिलार्कस ४४
फिलोकोरस ४५
फिनीशिया ४६, १०२
फिलोमेन ५०
फिलिनस ६८
फिलोस्ट्रेटस १५६, ३०७
फीडिआस ६४
फेबियस पिक्टर ८८, ६६, ११५
फेरो १२६
फ्लेबियन १५१, १५५, १५६
बर्क १३६
बल्ख २७६
बाइज़ेन्टाइन ३५, ३३६
बृहत्संहिता २८
ब्रिटेनिकस १५४
बुरस १५५
बूकेफेला ३०
ब्रूटस १२३, १२४, १२५
ब्रूंदिसियस १३३
बेबीलोनिया २४, ३०, ४५
५२, ७१, २६२
बेसस २६
बेरोसस ४५
बेलबस १४४
बैक्ट्रिआ २६, ५१, २६१
बोकैशियो १३६
भारतवर्ष २७, ३१, ५२
भिषक ३४
भूमध्यसागर २७६
मसेना ४७, १०२
मस्सिलिया ५४, ८६
मक्का ऑफ फार्चून हन्टर्स ११०
मंदुआ १३२
मसेलिया १५४
मनीच २७६, ३२३
मालव ३०
माइम ५०
माइकेलैंजिलो ६०, १४३
माल्टा १०७
मास्टर पोयेट १३४
मार्स अल्टोर १४४
मार्सिलेज १४४
मॉर्कस आरेलियस १५६, १५७
मार्दूक ८२
मार्कस टेटेन्टियस वरो ६०
मांटेस्क्यू ६६
मिश्र २३, ३१, ३६, ४५, १०७
मिलेटस ५६, ८५, ८६
मिलान १३२
मिल्टन १३६
मीडिया २४, २६२, ३१०
मेसीडोनिया १७, २१, ३३
मेम्फीज़ २३, २४
मेगस्थनीज़ ३०, ८६, ३१५
मेनिप्पस ४६
मेनेन्डर ४६, ५०, ११४
मेलोस ५६
मेट्रोडोरस ७७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मेरियस १३०, १४७
मेसिनस १३५, १३८
मेटामारफोसेज़ १३८
मेक्रिनस १५०, २०४
मैक्सिमस १६०
मैकेल १६४
यहूदी ३८
यशघोष २७८
यूनान १७, ४०, १०६, ११४
यूरप ६७
यूमिनीज़ ४४, ५८
यूथोपिया ४६
यूटोपियन ४७, ७४
यूडोक्सस ६२
यूक्लिड ६३, ६४
यूरेका ६५
यूनिवर्सल हिस्ट्री १४२
र्‌हेटारिकल हिस्टोरियन्स ९०
रत्नकूट २७८
राइन १३०
रेगलस १०२, १०३
रेमुस ९०
रोड्स २३, ५७, ६०, १०७, १५०
रोक्ज़ाना २७, ३९
रोम ३४, ४२, ९६, ११६
रोमलस ९१, ११८
रोमन ऐन्टीक्वीटीज़ ९०, १४२
लाइब्रेरी आफ हिस्ट्री ४१
लाइफ आफ यूरीपिडीज़ ४६
लाओकून ६०
लास आफ वेट ६५, ६६
लायरटिमस १५६
लियोनियास १८
लिसिमेकस १८
लिकोफ्रोन ५२
लिवी ५६, ८९, १०४, १३६
लिवियस ऐन्ड्रोनिकस ११४
लिवियस ड्रूसस ११६
लिगैटी १२८, १३१
लिज़नरी फोर्स १२८, १३०
लियोनार्दो १४३
लुंग-मेन २७३
ल्यूक्रिटस ७५
ल्यूसियन ७९
लेटीफंडिया १०६
लेलियस ११५
लेपिडस १२४
लेटर्स फ्राम दी पोंट्स १३६
लेक्स मेजेस्टेरिस १२२
लोयङ्ग २७३
वर्जिल ४६, १३२, १३४
वर्जिन मेरी ८२
वलेरियस एंटियस ९०
वंग-वेई २७४
वालिशयन १००, १०१
वालपोल १३६
विलड्यूरैन्ट ५७, ६८
वियना ६८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विट्रूवियस १४१, १४३
विटोलियस १५५
विकस टस्कस ६०
वु-ताश्रो-सुश्रन २७४
वेनिस ३७
वेस्पेशियन ६६, १५५
वैटिकन ५६, ६०, १४४
वैरो ११०
वैरेस १२०
वैरियस फ्लेकस १४१
शिवि २२, २६
शीलभद्र २७८
शुभाकरसिंह २७८
शूद्र २८, २६
शेक्सपियर १३६
समरकन्द २६, २७६, ३२२
संगल २८
सतलज ३०
स्ततिरा ३२
संत पाल ३६, १५५
सर्पियम ५६
सरपिस ८२
सर्बियस टुलियस ६२
ससैनियन २७६
सनत्रोकिज़ २६१
ससैन ३१७
स्तख ३१७
स्पार्टा १७, २०, १०६
साखामनीष २५, ३०६
साइलेशिया ३६
साइप्रस ७०
सार्डीनिया १००, १०७
सोमाली २८५
साइरस ३२१
साइक्स ३२१
सिकन्दर १७, ४८, ६१, ७८, १०७, ११७
सिकन्दरिया २३, ४८, ५८, ५६
सिन्ध २७, ३०
सिवोई २८
सिसली ४१, ५०, ६०, १०२, १२०
सिराक्यूज़ ५४, ६४, ८६
सिरीनिक ७७
स्किपिश्रो १०६, ११५
सिसरो १२०, १२१
सिलुइस १५४
सिया-कुई २८५
सिंगापुर २८८
सिथियन २६०, ३२१
सीरिया २२, ३४, ३६ ८७, १०७
सीडन २२
सुकरात ६७, ७०, ७६
सुला ११६, १२०, २६५
सुंग-काल २८१
सु-म-कुश्रंग २८३
सुरेन २६७
सूसा २५, ३०, ३१६
स्ट्रेबो २७, ३८, १४५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सेल्यूकस ३६, ३६, ५४, ६८, २८६
सेमाइट ३६
सेंटिरस ४६
स्टेडीज़ ५१, ५२
सेल्यूशिया ५४, ५५, २६३
सेमोथ्रेस ५६, ५६
स्ट्रेटो ६७
सेमोस ७५
सेस्टर्टियस ६६
सेब्राइन ६१, १०१
सेम्नाइट १००, १४७
स्पेन १०२, १०५
सेगंटम १०३, १०५
सेबेस्टीज़ १२६
सेक्सटस प्रापर्टियस १३०
सेनेका १५०, १५१
सेजनस १५२
सेन्ट पीटर १५५
सेप्टिमस १५६
सेप्टीमोनोटियम ६१
सेडान २८६
सेवेरस ३२२
सोग्डिआना २६, ३१, २६१
सोड्राई २६
स्टोइक ३६, ७०, ७७
स्टोआ ७०
सोफिस्ट ७७, ७८
सोमाली २८८
सोफी ३०६
सौराष्ट्र ३०
हरपेलस २५०, ३५
हर्मिकस ४६
हन-कन २७४
हन-यू २८०
हायरोनियस ४४
हायरोन ६५, ६७
हिन्दुकुश २७, ६७, ६६
हिस्टरीज़ ४४
हिस्टारिकल लिबर्टी ४५
हिप्पार्कस ६२
हिप्पोक्रेटीज़ ६८
ह्यूमनिस्ट १३४
हेलेनिस्टिक १७, ३५ ३७, ४१, ६७
हेरात २६, २७६, २६३
हेलेनिक ४०
हेरोडोटस ४३, ८८, १४०
हेरोड ४५
हेकाटोस ४५
हेराक्लिडीज़ ६२
हेरो ६६, ११५
हेरोफिलस ६६, ६८
हेरोइड्स १३८
हेड्स ८२
हेड्रियन १५६, १५७
हैमिलकर १०२, १०३
हैनिबाल १०३, १०६, ११५ १४१
होमर ४८, १३८
होरेस १३४, १३८, १३६
च्चूद्रक २८, २६
त्रिकोण-युद्ध ४०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नव भारती
प्रकाशन